सूर्यकुमारी पुस्तकमाला—२

करुणा

मूल लेखक

श्रीराखालदास बंद्योपाध्याय, एम० ए०

अनुवादक

श्री रामचंद्र वर्मा

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, वाराणसी।

तृतीय संस्करण : ११००, सं० २०२२

मल्य ४—५०

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्रीअजीतसिंह जी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित-शास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राज-नीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामी जी से घंटों शास्त्रचर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंह जी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंह जी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंह जी की रानी आउआ (मारवाड़) की चांपावत जी के गर्भ से तीन संतति हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूरजकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्रीनाहरसिंह जी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेद-सिंह जी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंह जी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंह जी थे जो राजा श्रीअजीतसिंह जी और रानी चांपावत जी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति संचित कर्मों के परिणाम से दुःखमय हुई। जयसिंह जी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ और सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्रीसूर्यकुँवर बाई जी को एकमात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाई जी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृवियोग और पतिवियोग दोनों का असह्य दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रताप-

गढ़ के कुँवर श्रीरामसिंह जी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंह जी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीवी वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाला चमत्कृत रह जाय। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंद जी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामी जी के लेखों और आध्यात्मिक, विशेषतः अद्वैत वेदांत, की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते न बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार लगभग एक लाख रुपया श्रीमती के इसी संकल्प की पूर्ति के लिये विनियोग किया। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। स्वामी विवेकानंद जी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायंगे और लागत से कुछ ही अधिक मूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे। इस ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी अक्षय नीवी में जोड़ दी जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंह जी के पुण्य और यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञानलाभ।

———

निवेदन

विवेकानंद-ग्रंथावली में "ज्ञानयोग" सूर्यकुमारी पुस्तकमाला की पहली पुस्तक थी। आज दूसरी पुस्तक पाठकों की सेवा में उपस्थित की जाती है। यह "करुणा" नामक ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है मूल उपन्यास बँगला में है। उसके रचयिता श्रीयुत राखालदास बंद्योपाध्याय, एम० ए०, हैं, जो पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। वे वर्षों तक इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता, के अध्यक्ष रहे और आजकल भारतवर्ष के पुरातत्व खोज विभाग के पश्चिमी हलके के अध्यक्ष हैं। ऐतिहासिकों की खोज से जो प्राचीन बातें जानी गई हैं, उन्हें रोचक रूप में सर्वत्र प्रचारित करने के उद्देश्य से उन्होंने यह उपन्यास लिखा है। ऐसे ही उन्होंने "शशांक" और 'मयूख,पाल" नामक उपन्यास भी भिन्न-भिन्न समय के ऐतिहासिक चित्रों को अंकित करने को लिखे हैं। मुझे उन्होंने अपने इन उपन्यासों का अनुवाद करने तथा प्रकाशित करने की आज्ञा दी है। यह अनुवाद बाबू रामचंद्र वर्मा ने किया है।

इस उपन्यास में गुप्तसाम्राज्य के क्षय के समय का चित्र है। आज से प्रायः सोलह सौ वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र में चंद्रगुप्त प्रथम नामक एक साधारण राजा राज्य करते थे। सन् ३०८ के लगभग उन्होंने लिच्छवी वंश की कुमारदेवी नामक एक राजकुमारी से विवाह किया था। इस विवाह के कारण चंद्रगुप्त की प्रतिष्ठा और प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था; और मगध तथा आस पास के प्रदेशों में वे प्रधान राजा समझे जाने लगे थे। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार करते हुए तिरहुत, दक्षिण विहार और अवध तक का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था; और अंत में सन् ३२० के आरंभ में उन्होंने अपना संवत् भी चलाया था। इसके दस बारह वर्ष बाद उन्होंने कुमारदेवी के गर्भ से उत्पन्न समुद्रगुप्त नामक अपने पुत्र को राज्य देकर स्वर्गारोहण किया था। समुद्रगुप्त ने अपने राज्य का विस्तार करके उसे साम्राज्य बना लिया था, यहाँ तक कि दक्षिण में दक्षिण कोशल, केरल, कांची, पूर्व में नेपाल

तथा कामरूप तक के राजा तथा पश्चिम में नरवर, मालव और खानदेश तक के राजा उनका आधिपत्य स्वीकार करते थे। देवपुत्रों और शकों तक को उनके आगे अपना सिर झुकाना पड़ा था। कदाचित् मौर्य्यों के उपरांत और किसी राजवंश के साम्राज्य का उस समय तक इतना अधिक विस्तार नहीं हुआ था। उनके साम्राज्य का विस्तार हुगली से चंबल तक और हिमालय की तराई से नर्मदा तक था। लंका आदि दूर देश के राजा भी इनके दरबार में राजदूत भेजा करते थे। उन्होंने पीछे से एक अश्वमेध यज्ञ भी किया। वे केवल वीर ही नहीं थे, बल्कि विद्वान्, बुद्धिमान् और गुणग्राही भी थे। ऐतिहासिक लोग उन्हें भारतीय नेपोलियन की पदवी देने में संकोच नहीं करते। यद्यपि उनके मृत्युकाल का ठीक ठीक पता नहीं लगता, पर फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने प्रायः पचास वर्षों तक बहुत अच्छी तरह अपने साम्राज्य का शासन किया था।

समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरांत उनकी दत्तदेवी नाम्नी सम्राज्ञी के गर्भ से उत्पन्न चंद्रगुप्त द्वितीय ने राज्यारोहण किया। यह बात सन् ३७५ के लगभग की है। उनकी उपाधि विक्रमादित्य थी। कुछ लोगों का विश्वास है कि दंतकथाओं में जिन विक्रमादित्य का उल्लेख आता है, वे यही थे। इनके समय में गुप्त साम्राज्य का और भी अधिक विस्तार हुआ। सौराष्ट्र या काठियावाड़ इन्हीं के समय में गुप्तसाम्राज्य में मिला था। इनके समय में युरोप तक के साथ भारतवर्ष का वाणिज्य संबंध स्थापित हुआ था। सुप्रसिद्ध यात्री फाहियान इन्हीं के समय में भारत आया था। सन् ४१३ में इनकी मृत्यु के उपरांत इनकी ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न कुमारगुप्त प्रथम ने राज्याधिकार पाया था। इस उपन्यास की घटनाओं का आरंभ इन्हीं कुमार गुप्त के शासनकाल से आरंभ होता है। इन्हीं कुमारगुप्त के एक छोटे सगे भाई और थे जिनका नाम गोविंदगुप्त था और जो शकमंडल के प्रधान अधिकारी थे। इस उपन्यास में अनेक स्थानों पर उनका और उनके कार्य्यों का भी उल्लेख है।

प्रथम कुमारगुप्त के राज्यकाल के अंतिम भाग में गुप्त साम्राज्य पर पुष्यमित्रीय और हूण नामक दो जातियों के आक्रमण हुए थे। पुष्यमित्रीय जाति की सेना से युद्ध में साम्राज्य की सेना हार गई थी। उस समय प्रथम कुमारगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भट्टारक स्कंदगुप्तदेव ने बड़े कष्ट से उन लोगों को परास्त किया था। इसके उपरांत पाँचवीं शताब्दी के मध्य में मध्य एशिया के हूणों ने भी गुप्त साम्राज्य पर कई बार आक्रमण किए थे, जिनके कारण साम्राज्य को बहुत कुछ हानि उठानी पड़ी थी। सन् ४५० और ४५५ ईसवी के बीच में किसी समय प्रथम कुमारगुप्त की मृत्यु हुई थी। कुमारगुप्त के कई विवाह हुए थे और उनके सोने के सिक्कों पर राजमूर्त्ति के साथ दो पट्टमहिषियों की मूर्त्तियाँ मिलती हैं। इससे पुरातत्व के पंडितों का अनुमान है कि कुमारगुप्त ने वृद्धावस्था में किसी युवती के साथ विवाह किया था और उसके बहुत आग्रह करने पर पहली पट्टमहादेवी के जीवनकाल में ही नई महादेवी को पट्टमहादेवी बना लिया था। पहली पट्टमहादेवी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम स्कंदगुप्त और दूसरी पट्टमहादेवी (जिसका नाम आनंददेवी अथवा अनंतादेवी था) के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम पुरगुप्त था। प्रथम कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरांत उनके ज्येष्ठ पुत्र स्कंदगुप्त सिंहासन पर बैठे थे। अपने पिता के जीवनकाल में ही, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, उन्होंने पुष्यमित्रीय और हूण जाति के आक्रमणों से साम्राज्य की रक्षा की थी। कहते हैं कि उस समय युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने पितृकुल की विचलित राजलक्ष्मी स्थिर करने के लिये तीन रातें जमीन पर सोकर बिताई थीं। हूण लोग पहली बार परास्त होकर ही चुपचाप नहीं बैठ गए थे और उन्होंने उत्तरापथ पर कई बार आक्रमण करके प्राचीन कपिशा और गांधार पर अधिकार करके वहाँ अपना नया राज्य स्थापित किया था। सन् ४५७ ईसवी तक अंतर्वेदी पर स्कंदगुप्त का ही अधिकार था, पर पीछे वह भी उनके हाथ से निकल गई। उसी समय से कुछ तो भीतरी उपद्रवों के कारण और कुछ बाहरी शत्रुओं के आक्रमणों के कारण गुप्त साम्राज्य

की शक्ति घटने लग गई थी। प्रांतीय शासक लोग सम्राट् के नाम का उल्लेख किए बिना ही लोगों को जागीरें आदि देने लग गए थे। ४६५ ईसवी के बाद हूणों ने फिर कई बार गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किए थे। लगातार बहुत दिनों तक युद्ध करने के कारण स्कंगुप्त की शक्ति बहुत घट गई थी और अंत में एक हूण युद्ध में ही उनके प्राण गए थे। स्कंदगुप्त के सिक्कों पर किसी पट्टमहादेवी का उल्लेख नहीं मिलता और न उनके किसी पुत्र के होने का ही प्रमाण पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि उनका विवाह ही नहीं हुआ था। अंतिम समय में स्कंदगुप्त की शक्ति क्षीण हो जाने और आर्थिक अवस्था के बिगड़ जाने का एक प्रमाण यह भी है कि उनके आरंभिक शासनकाल के सिक्कों का सोना और तौल दोनों वैसे ही हैं जैसे उनके पूर्वज सम्राटों के सिक्कों के हैं; पर अंतिम काल के सिक्कों मे तौल में तो कमी नहीं हुई है पर उनमें शुद्ध सोना प्रायः तीन चौथाई से भी कम ही पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि हूणों के साथ युद्ध करने में राजकोश का बहुत सा धन निकल गया था।

स्कंदगुप्त की मृत्यु सन् ४८० ईसवी के लगभग हुई थी और साम्राज्य उनकी विमाता अनंता के गर्भ से उत्पन्न पुरगुप्त को मिला था। जान पड़ता है कि प्रथम कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरांत स्कंदगुप्त और पुरगुप्त में सिंहासन के लिये कुछ झगड़ा भी हुआ था, क्योंकि पुरगुप्त के पोते द्वितीय कुमारगुप्त की राजमुद्रा में स्कंदगुप्त का नाम नहीं है। पुरगुप्त ने बहुत ही थोड़े समय तक राज्य किया था और उस समय में कोई ऐसी बात नहीं हुई जो उल्लेख करने के योग्य हो। हाँ, सिक्कों में सोने का अंश अवश्य ही बहुत कुछ बढ़ गया था। सन् ४८५ ईसवी में पुरगुप्त की मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र नरसिंहगुप्त सिंहासन पर बैठे थे। नरसिंहगुप्त की बौद्धधर्म पर औरों की अपेक्षा कुछ विशेष कृपा थी। नरसिंह के उपरांत उनके पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त राज्याधिकारी हुए थे। और उन्हीं के समय में गुप्त साम्राज्य का अंत भी हो गया था। इसके उपरांत फिर गुप्त राजवंश के अधिकार में मगध का वही थोड़ा सा

प्रांत रह गया, जो आरंभ में प्रथम चंद्रगुप्त के समय में था।

यहाँ हम उस समय की सामाजिक और धार्मिक अवस्था का भी थोड़ा दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं जिस समय से हमारा उपन्यास संबंध रखता है। द्वितीय चंद्रगुप्त के समय में गुप्त साम्राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चला था। उस समय के पाटलिपुत्र की अवस्था आजकल के बहुत बड़े बड़े नगरों से किसी प्रकार कम नहीं थी। अशोक का सुप्रसिद्ध विशाल राजप्रासाद इतना सुंदर और अद्‌भुत बना हुआ था, कि उसकी समता का दूसरा राजप्रासाद ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन था। नगरनिवासी, जिनकी संख्या लाखों तक पहुँचती थी बहुत ही संपन्न थे। संपन्नता, सभ्यता और व्यवस्था आदि में उस समय संसार का कोई ऐसा नगर नहीं था, जिसकी पाटलिपुत्र से तुलना हो सकती हो। बौद्धों की उस समय बहुत ही प्रबलता थी। प्रायः सारे भारत में अधिकांश बौद्ध ही बौद्ध दिखाई देते थे। जो लोग बौद्ध नहीं होते थे उन्हें भी बहुत से अंशों में बौद्धों के ही सिद्धांत मानते पड़ते थे। बौद्धों की प्रबलता के कारण बौद्ध भिक्षुओं आदि में बहुत अनाचार भी फैल गया था। इसलिये लोग बौद्धों के विरोधी भी हो चले थे। दूसरी शताब्दी के अंत में पुष्यमित्र ने, चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त ने और पाँचवीं शताब्दी में कुमारगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किए थे। अनेक शिला-लेखों आदि से भी इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि उस समय के राजाओं आदि की बौद्धधर्म पर कृपा हो चली थी। और वैष्णव अथवा हिंदूधर्म की फिर से वृद्धि होने लगी थी। यही कारण है कि उस समय अनेक बौद्ध वैष्णव राजाओं और उनके शासन के विरोधी हो गए थे और राज्य में अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े करते थे।

इस उपन्यास में यह दिखलाया गया है कि महाराज कुमारगुप्त के समय में गुप्तसाम्राज्य कितना वैभवशाली था; उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था क्या थी; हूणों के आक्रमणों के कारण गुप्त साम्राज्य को कैसी कैसी हानियाँ उठानी पड़ीं। और

किस प्रकार कुमारगुप्त की विलासिता और बौद्धों के षडयंत्र के कारण गुप्त साम्राज्य के पतन का आरंभ हुआ, और अंत में किस प्रकार उनका नाश भी हो गया। इसमें स्कंदगुप्त, गोविंदगुप्त, बंधुवर्मा चक्रपालित, हर्षगुप्त आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, और शेष में से अधिकांश कल्पित हैं स्कंदगुप्त का हूण-युद्ध भी ऐतिहासिक घटना है। इधर हाल में जो नए शिलालेख आदि मिले हैं, उनसे सिद्ध होता है कि तोरमाण किसी प्रकार स्कंदगुप्त का समसामयिक नहीं हो सकता। यह भी निश्चित है कि स्कंदगुप्त के जीवनकाल में हूण लोग गुप्त साम्राज्य पर अधिकार नहीं कर सके थे। स्कंद के दो पीढ़ियों बाद ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं, व्यवहारों और रीति नीति आदि की यथावत् छाया दी गई है। हूणों का आक्रमण, बिगड़ैल बौद्ध भिक्षुओं की दुर्नीति, कुमारगुप्त की विलासप्रियता, महाराज्य की गठन ढीली होने का प्रकार आदि सब बातें इतिहास पर ही अवलंबित हैं।

राजव्यवहार तथा सामाजिक कार्यों के पारिभाषित शब्द आदि भी ज्यों के त्यों रखे गए हैं। यह पुस्तक पढ़ने से आँखों के सामने उस समय के समाज का सजीव चित्र आ खड़ा होता है। कदाचित् यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि देशी भाषाओं में ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास बहुत ही इने गिने होंगे जो अपने ऐतिहासिक काल का ठीक ठीक सामाजिक चित्र खींचकर पाठकों के संमुख उपस्थित करने में इसकी बराबरी कर सकें। आशा है, हिंदी पाठकों को इसके पढ़ने से मनोविनोद की प्राप्ति के साथ ही साथ सत्य इतिहास का भी बहुत कुछ ज्ञान होगा और हिंदी संसार इसका यथेष्ट आदर करेगा।

श्रीयुत् राखालदास वंद्योपाध्याय के शशांक नामक उपन्यास का भी अनुवाद कराया जा चुका है और संभवतः इस माला का तीसरा पुष्प वही होगा।

मेयो कालेज अजमेर
१—६—१९२१

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

परिच्छेद सूची

अंगार

भस्म

बोधिसत्वाय

करुणा

पहला परिच्छेद

प्रमोद-उद्यान

वसंत ऋतु का अंत हो गया है और ग्रीष्म का आरंभ हो रहा है। संध्या का समय हो चला है। सूर्य की सुनहरी किरणों के कारण बन की शोभा बढ़ रही है। प्रमोद-उद्यान के तालाब के किनारे संगमरमर की बारहदरी में एक युवती बैठी है। तालाब में तरह तरह के कमल खिले हुए हैं और बहुत से हंस इधर उधर तैर रहे हैं। युवती उस तालाब के स्वच्छ जल में अपने आलते से रँगे गोरे गोरे कोमल पैर डाले हुए बैठी हंसों और हंसियों की जलक्रीड़ा देख रही है। घाट पर कटहल के एक बड़े वृक्ष की छाया आ गई है। युवती उसी छाया में बैठी है। कटहल की शाखाओं और पत्तों के बीच में से छनकर सूर्य की जो तेज किरणें आ रही हैं, वे उस युवती के सुंदर मुख पर पड़ रही हैं जिसके कारण उसके चमकते हुए ललाट पर पसीने की छोटी छोटी बूँदे दिखाई दे रही हैं।

घाट के ऊपर माधवी लता का एक कुंज है जिसकी ठंढी छाया में जमीन पर एक दासी सो रही है। मोरपंख की बनी हुई सुंदर पंखी और चाँदी के डंडेवाला चँवर दोनों उसके हाथ से छूटकर जमीन पर पड़े हुए हैं। इतने में जल्दी से एक और दासी उस माधवी-कुंज में आई और इधर उधर देखने लगी। अंत में उसकी दृष्टि जमीन पर पड़ी हुई उस पहली दासी पर गई। उसने तुरंत पास जाकर उसे हाथ के इशारे से उठाया। वह घबराकर उठ बैठी और जल्दी से चँवर और पंखी सँभालकर पंखी झलने लगी। यह देख-कर दूसरी दासी हँस पड़ी और बोली—"तुम किसे पंखी झल रही हो?" पंखी झलनेवाली यह देखकर मन ही मन बहुत लज्जित हुई कि कुंज में और कोई नहीं है।

दूसरी दासी ने पूछा—देवी कहाँ हैं ?

पहली—अभी तो यहीं थी।

दूसरी—उन्हे जल्दी ढूँढ़ो, प्रभु आ रहे हैं।

पहली—मैं उन्हें कहाँ ढूँढ़ूँ ? यह महाबलाधिकृत का प्रमोद-उद्यान है। कोई छोटी-मोटी जगह तो है ही नहीं, जो दम भर में जाकर उन्हें ढूँढ़ लाऊँ।

दूसरी—बातें रहने दो और उन्हें जाकर ढूँढ़ो। प्रभु अब आते ही होंगे। जरा देखो, कहीं देवी तालाब के किनारे तो नहीं गईं।

पहली दासी माधवी-कुंज की शीतल छाया छोड़कर मत्स्यदेशीय संगमरमर के घाट की तरफ बढ़ी। थोड़ी ही दूर बढ़ने पर उसने देखा कि प्रभु, पत्नी तालाब के जल में अपने अलता लगे पैर डुबाए हँसो और हँसियों की जलक्रीड़ा देख रही हैं। उन्हें देखते ही दूसरी दासी बोल उठी—देवी जी, जल्दी चलिए, प्रभु आपकी खोज में आ रहे हैं।

घाट पर बैठी हुई देवी ने उस दासी की ओर देखकर कहा–तुम्हारे प्रभु आते हों तो उन्हें आने दो, मैं उनके लिये क्यों उठकर जाने लगी ? यहाँ तक आने के लिये सीधा रास्ता भी बना है और यहाँ बैठने के लिये स्थान की कमी भी नहीं है। वे आवें और आकर चाहे बैठे और चाहे खड़े रहें। उनका जो जी चाहे सो करें, पर मैं क्यों उनके लिये उठने लगी ?

दासी कुछ लज्जित होकर बोली—देवी किस समय किस भाव में रहती हैं यह केवल प्रभु ही अच्छी तरह समझते हैं। अच्छा तो मैं जाकर देख आऊँ कि वे कहाँ तक आए हैं।

इतना कहकर वह दासी वहाँ से चली गई। गंगा जमुनी पनडब्बा सामने रखकर पहली दासी ने प्रभु-पत्नी को पंखा झलना आरंभ किया। इतने में दूसरी दासी दौड़ती हुई आई और हाँफती हुई बोली—देवी जी, जल्दी चलिए, प्रभु माधवी-कुंज के द्वार तक आ पहुँचे हैं।

युवती ने फिर मुस्कराते हुए कहा—आवें न, मै क्या कुंज का द्वार रोककर बैठी हूँ ?

दासी—तो क्या आप सचमुच न उठेंगी ?

युवती—नहीं।

इतने में माधवी-कुंज के नीचे घाट की सब से ऊपरवाली सीढ़ी पर आकर एक गोरे युवक ने कहा—वनदेवी क्या आज जलदेवी हो गई हैं ?

युवती युवक की ओर मुँह करके बैठ गई और बोली—हाँ। अब तक मेरे परम भक्त मेरे पास नहीं थे, इसीलिये मुझे कुछ आनंद न आता था।

युवक ने विनय से गले में उत्तरीय डालकर और दोनों हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा—अच्छा, अब तो देवी प्रसन्न हों और इस भक्त का अपराध क्षमा करें। अब तक मैं अपने प्रभु के कार्यों में लगा था इसी कारण देव-सेवा में विलंब हो गया।

युवती—अच्छा तो फिर देव-सेवा को जाने दो और जाकर प्रभु का कार्य करो।

युवक - अपराध क्षमा हो। मैं उचित प्रायश्चित्त करूँगा।

युवती—नहीं, प्रायश्चित की भी आवश्यकता नहीं।

युवक ने घाट की सब से नीचेवाली सीढ़ी पर पहुँचकर घुटने टेक दिए और हाथ जोड़कर कहा—देवि, मयि प्रसीद।

युवती ने कुछ लज्जित होकर युवक का हाथ खींच लिया और कहा—वाह, यह क्या करते हो ?

तुरंत दोनों दासियाँ वहाँ से खसक गईं और युवक खिंचकर युवती के पास जा बैठे।

युवती का यौवन वर्षाऋतु की नदी की तरह पूर्ण था। वह असाधारण सुंदरी थी। कुंद की तरह सुंदर रंग, चित्र की तरह दोषरहित और अत्यंत मनोहर गठन, भँवर के से काले काले बाल, बड़ी बड़ी आँखें और खूब लाल लाल होंठ, उसके शरीर पर बहुमूल्य श्वेत कौषेय (रेशमी) वस्त्र और सर्वांग में जड़ाऊ गहने थे। अवस्था १८ वर्ष से अधिक नहीं थी। युवक का शरीर भी खूब गठा हुआ था और रंग खूब गोरा था। वे भी सुंदर सफेद कपड़े पहने हुए थे। उनके कानों में कुंडल, हाथों में वलय और मस्तक पर जड़ाऊ किरीट था।

स्वामी के पास आकर बैठते ही युवती से कहा—नाव मँगाओ। चलो, घूम आवें।

युवक ने कोई उत्तर न दिया। वे ठंढी साँस लेकर चिंतित हो गए। उन्हें इस दशा में देखकर युवती ने भी कुछ दुःखित होकर पूछा—क्यों, क्या सोच रहे हो ? इस समय राढ़ देश के राजकार्य की चिंता है ? क्या नाव पर चढ़कर भी घूमने न चलोगे ?

युवक फिर भी पहले की तरह चुपचाप रहे। युवती ने उनका हाथ खींचकर फिर कहा—यदि इस समय भी तुम्हें राजकार्यों की ही चिंता थी तो फिर तुम यहाँ उद्यान में क्यों आए ? वहीं गौड़ में रहते।

युवक ने बहुत ही दुःखपूर्वक कहा—करुणा ! बहुत ही बुरा समाचार आया है।

करुणा—क्या वंगदेश की प्रजा ने विद्रोह किया है ? या बौद्धों का कोई विप्लव खड़ा हुआ है ?

युवक—करुणा, यह हँसी की बात नहीं है। जो कुछ मैंने सुना है यदि वह सत्य हो तो समझ लो कि बहुत ही बुरा हुआ।

करुणा—कुछ कहो भी तो सही।

युवक—महाराजाधिराज ने इस वृद्धावस्था में एक बालिका का पाणि-ग्रहण किया है।

करुणा—भला पुरुषों के लिये यह कौन सी नई बात है ? किसी दिन तुम भी ऐसा ही करोगे।

युवक—नहीं करुणा, महाराजाधिराज ने केवल विवाह ही नहीं किया है बल्कि वे नववधू को अपनी पट्टमहादेवी भी बनानेवाले हैं। कुमार ने मुझे पत्र लिखा है।

करुणा—तो क्या महादेवी की मृत्यु हो गई है ?

युवक—यदि मृत्यु हो जाती तब तो अच्छा ही होता। परंतु ऐसा नहीं हुआ और अब उनकी जगह यह बालिका आर्यावर्त्त की पट्टमहादेवी होगी।

करुणा—भला ऐसा कभी हो सकता है ? गुप्तवंश में आज तक कभी ऐसी बात नहीं हुई।

युवक—परंतु करुणा ! आज तो असंभव बात भी संभव हो गई। कुमार ने मुझे स्मरण किया है। मुझे इसी समय पाटलिपुत्र जाना पड़ेगा। चलो

नगर को लौट चलें। क्यों करुणा! अब फिर कितने दिनों में मुझे तुम्हारा यह हँसता हुआ मुखड़ा दिखाई देगा?

करुणा—नित्य ही।

युवक—वह कैसे?

करुणा—तुम्हें किस मूर्ख और नेत्रहीन ने गुप्त साम्राज्य का महाबलाधिकृत बनाया था? मैं तो कह ही रही हूँ कि तुम्हारे ये बड़े बड़े नेत्र नित्य ही इस दासी का मुँह देखकर कष्ट पाया करेंगे।

युवक—तुम्हारी यह पहेली मेरी समझ में न आई।

करुणा—तुम नित्य मुझे देखा करोगे।

युवक—वह कैसे?

करुणा—अपने साथ रखकर।

युवक—तो क्या तुम भी पाटिलीपुत्र चलोगी?

करुणा—अवश्य।

युवक—क्यों?

करुणा—इसके अनेक कारण हैं। एक तो यह कि विश्वासघातक, मिथ्यावादी और चापलूस पुरुष-जाति को कभी अकेले न छोड़ना चाहिए। दूसरे यह कि बहुत दिनों से मैंने राजधानी नहीं देखी। तीसरे यह कि विरह मुझ से सहा न जायगा और चौथे ज्योतिष का वचन।

युवक—ज्योतिष का वचन कैसा?

करुणा—ज्योतिषियों ने गणना करके कहा है कि दो तीन वर्ष के अंदर मेरे भाग्य में तुम्हारे विरह की वेदना सहना नहीं लिखा है।

युवक—लेकिन तुम पाटलिपुत्र कैसे चलोगी?

करुणा—पालकी पर।

युवक—कुमार तो चाहते हैं कि जितनी जल्दी हो सके मैं राजधानी में पहुँच जाऊँ। मैं घोड़े पर जाऊँगा। पालकी मेरे साथ कैसे रह सकेगी?

करुणा—अच्छा तो फिर रथ पर सही। तुम्हें याद है, विवाह के उपरांत मैं पाटलिपुत्र से रथ पर चार ही दिन में गौड़ आ पहुँची थी।

इतने में घाट के ऊपर से कोई बोल उठा—याद क्यों नहीं है! बहुत अच्छी तरह याद है। आप रथ पर बधना बोरिया छोड़ कर भागी थीं। परंतु आप यह न भूल जाइएगा कि आपके इस क्रीतदास के उदर में अत्यधिक भूख और आँखों में लज्जा है। आप अवश्य राजधानी जाइएगा। और नहीं तो मैं बिना अन्न के शरीर त्याग कर दूँगा। अच्छा तो फिर मैं जाकर रथ ले आऊँ।

युवती ने कुछ घूँघट खींच लिया और युवक वहाँ से कुछ हटकर बैठ गए। इतने में एक हट्टा कट्टा काला ब्राह्मण माधवी-कुंज के द्वार पर आ खड़ा हुआ। युवक ने उससे पूछा—ऋषभ! तुम कहाँ थे?

ऋषभ—आपके पीछे पीछे।

युवक—हैं! तुम मेरे पीछे पीछे थे! और मुझे पता न लगा!

ऋषभ—पता कैसे चलता? भानुमित्र जिस समय महाबलाधिकृत रहते हैं उस समय तो उनकी आँखें भी रहती हैं, कान भी रहते हैं, नाक भी रहती है, जीभ भी रहती है, सब कुछ रहता है। परंतु—

युवती ने पूछा—हाँ, "परंतु" क्या?

ऋषभ—परंतु जिस समय वे इन लाल लाल और कोमल चरणों के एकनिष्ठ सेवक बनकर देवी की चिंता करते हुए रास्ता चलते हैं उस समय वे पाँचों इंद्रियों से रहित एक पिंडमात्र हो जाते हैं।

करुणा देवी ने कुछ लज्जित होकर घूँघट खींच लिया। भानुमित्र ने पूछा—ऋषभ! आज तो तुमने बहुत अच्छी तरह भोजन किया है तब फिर क्यों इस समय मेरे पीछे लगे?

ऋषभ—मैंने देखा कि आज पाटलिपुत्र से सम्राट का दूत आया है और वह दूत गौड़ नगर के राजमहल में न रुक कर सीधा उपनगर के प्रमोद-उद्यान में आ पहुँचा। इसलिये मैंने समझ लिया कि कोई बहुत बड़ी बात है। या तो साल भर के फलाहार का ठिकाना लगेगा और या बहुत दिनों तक उपवास करना पड़ेगा। दूत से पूछने पर मालूम हुआ कि वह परमेश्वर परम-वैष्णव परमभट्टारक युवराज स्कंदगुप्त देव के यहाँ से युवराज भट्टारकपादीय महाबलाधिकृत भानुमित्र देव के पास पत्र लेकर आया है, अतः मुझे आपके पीछे लगना आवश्यक हो गया। क्यों भइया, क्या युवराज का विवाह है?

भानुमित्र—नहीं भाई, युवराज का विवाह नहीं, स्वयं महाराजाधिराज का विवाह है और उसके साथ ही साथ गुप्त साम्राज्य के श्राद्ध का भी आरंभ होगा।

ऋषभ—यह पहला संवाद तो बहुत ही शुभ है। यदि महाराजाधिराज चाहें तो एक नहीं हजार विवाह कर सकते हैं। इससे तो ब्राह्मण-समाज का मंगल ही मंगल होगा। नित्य ब्राह्मण भोजन हुआ करेगा। ब्राह्मणों के लिये भय की तो कोई बात नहीं है, पर अंत में आपने क्या कहा था ?

भानुमित्र—महाराजाधिराज के विवाह के साथ ही गुप्त साम्राज्य के श्राद्ध का भी आरंभ होगा।

ऋषभ—यह कैसी बात ?

भानुमित्र—भाई ऋषभ ! यह हँसी की बात नहीं है ? बस सर्वनाश का आरंभ होना चाहता है। इसी लिये कुमार ने मुझे शीघ्र पाटलिपुत्र पहुँचने की आज्ञा भेजी है।

ऋषभ—तो फिर फलाहार की आशा तो व्यर्थ ही ठहरी।

भानुमित्र—भाई, यह बड़ी विपत्ति का समय है। मुझे तुरंत प्रस्थान करना पड़ेगा।

ऋषभ—तो मैं कैसे चलूँगा ?

भानुमित्र—तुम क्यों चलोगे ?

ऋषभ—जब देवी यहाँ से चली जायँगी तब नित्य राजभोग का प्रबंध कौन करेगा ?

भानुमित्र—करुणा ! क्या तुम सचमुच मेरे साथ चलोगी ?

ऋषभ—(बीच ही में) अवश्य। और नहीं तो आप न जाने पावेंगे।

युवती ने घूँघट में से कहा—मैं सचमुच चलूँगी। मैं यहाँ नहीं रहूँगी।

भानुमित्र—तो फिर रथ मँगवाऊँ ?

करुणा देवी ने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

ब्राह्मण ने फिर पूछा—और मैं कैसे चलूँगा ?

भानुमित्र—रथ पर।

ऋषभ—कृपाकर ब्रह्महत्या न कीजिए।

भानुमित्र—वह कैसे ?

ऋषभ—यदि मैं रथ पर सौ कोस की यात्रा करूँगा तो अवश्य ही मर जाऊँगा।

भानुमित्र—तो फिर कैसे चलोगे?

ऋषभ—या तो हाथी पर या पालकी पर।

करुणा—तो फिर मार्ग में तुम्हें खिलावेगा कौन?

ऋषभ—आप और कौन?

करुणा—मैं तो रथ पर आगे निकल जाऊँगी।

ऋषभ—तो फिर मैं भी रथ ही पर चला चलूँगा। शंकर मंगल करें।

रथ आया और सब लोग उसपर चढ़कर उद्यान से नगर की ओर चल पड़े।

———

दूसरा परिच्छेद

दामोदर शर्म्मा

उस समय भी पाटलिपुत्र ही उत्तरापथ का राजनगर था। गंगा और सोन के संगम पर बसा हुआ वह विस्तृत नगर उस समय भी बहुत समृद्धिशाली था। समुद्रगुप्त के पौत्र कुमारगुप्त उन दिनों विस्तृत गुप्त साम्राज्य के अधीश्वर थे। समुद्र से समुद्र तक और हिमालय से कुमारिका तक का वह विस्तृत साम्राज्य बहुत शांतिपूर्ण और समृद्ध था और बहुत अच्छे ढंग से उसका शासन होता था। समुद्रगुप्त की मृत्यु हुए पचास वर्ष बीत चुके हैं। आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य में सर्वत्र गुप्तवंशीय सम्राटों का अखंड प्रभुत्व है। चंद्रगुप्त के दीर्घ राजत्व काल की समाप्ति पर प्रौढ़ावस्था में कुमारगुप्त सिंहासन पर बैठे थे। कुमारगुप्त के सम्राट पदवी प्राप्त करने के थोड़े ही समय के उपरांत ईसवी पाँचवी शताब्दी के प्रथम पाद में हमारी यह आख्यायिका आरंभ होती है। कुमारगुप्त के सबसे बड़े पुत्र स्कंदगुप्त उस समय साम्राज्य के उत्तराधिकारी थे, और उनके छोटे भाई महाराजपुत्र गोविंदगुप्त शकराष्ट्र के मंडलेश्वर थे। द्वितीय चंद्रगुप्त के मंत्री दामोदर शर्म्मा, महाबलाधिकृत

अग्निगुप्त, महादंडनायक रामगुप्त और महाधर्माधिकृत देवगुप्त उस समय तक अपने अपने पद पर प्रतिष्ठित थे।

इस समय पाटलिपुत्र के एक किनारे के विस्तृत उद्यान में बने हुए विशाल भवन के दूसरे खंड की एक छोटी कोठरी में पलंग पर बैठे हुए एक वृद्ध चिंता कर रहे हैं। वृद्ध की अवस्था ७० वर्ष से कुछ अधिक ही है। उनके सिर पर बाल नहीं हैं, और जो दो एक बाल हैं भी वे बिलकुल पके हुए हैं। वृद्ध हथेली पर सिर रखकर गंभीर चिंता में मग्न हैं। पास ही एक दूसरी कोठरी में कुछ दंडधर और द्वारपाल बैठे हैं। उस विशाल भवन में बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ है। दास और दासियाँ बहुत ही चुपचाप और धीरे धीरे इधर से उधर आती जाती हैं। अंतःपुर की स्त्रियाँ रोते हुए बालक के मुँह पर हाथ रखकर उसे अपनी कोठरी में ले जा रही हैं। कई दिन से युवराज भट्टारक-पादीय महामंत्री दामोदर शर्म्मा किसी प्रकार का शब्द सहन नहीं कर सकते। इधर कई दिनों से उन्होंने आहार और निद्रा आदि का परित्याग कर दिया है और वे सदा चिंतित रहते हैं। थोड़ी देर में महामंत्री ने ताली बजाई। सुनकर तुरंत ही एक द्वारपाल घुटने टेकता हुआ उस कोठरी में आ पहुँचा। महामंत्री ने उससे पूछा—जालंधर से कोई दूत आया है?

द्वारपाल ने उत्तर दिया—नहीं।

महामंत्री ने उदासीनतापूर्वक कहा—अच्छा जाओ।

द्वारपाल चला गया।

थोड़ी देर के उपरांत महामंत्री के घर के सामने एक रथ आकर खड़ा हुआ। उस रथ पर से एक प्रौढ़ अस्त्रधारी ने उतरकर महामंत्री के घर में प्रवेश किया। द्वारपाल और दंडधर लोग सम्मानपूर्वक उनका अभिवादन करके उन्हें दूसरे खंड की छोटी कोठरी में ले गए। उन्हें देखते ही वृद्ध मंत्री का मुखमंडल कुछ प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—अग्नि! तुमने इतना विलंब क्यों किया?

प्रौढ़ ने वृद्ध मंत्री का चरण-रज लेकर कहा—देव! मैं इस टोह में था कि महाकुमार महाराजपुत्र आए या नहीं। क्या वे अभी तक नहीं आए?

वृद्ध—नहीं अग्नि! गोविंद अभी तक नहीं आए। समुद्रगुप्त के साम्राज्य

की अंतिम दशा उपस्थित है। यदि ऐसा न होता तो चंद्रगुप्त का पुत्र पट्ट-महादेवी को पदच्युत करके उसके स्थान पर एक नट की कन्या क्यों स्थापित करना चाहता और यह समाचार सुनकर दूसरा पुत्र चुपचाप जालंधर में कैसे बैठा रहता।

इतना कहते कहते रोष और क्षोभ के कारण वृद्ध सचिव का गला रुक गया। गुप्त साम्राज्य के प्रधान सेनापति महाबलाधिकृत अग्निगुप्त पलंग पर बैठ गए।

कुछ समय के उपरांत दामोदर शर्म्मा बोले—अग्नि! स्कंद कहाँ हैं? उनके आने में इतना विलंब क्यों हो रहा है और रामगुप्त भी अभी तक क्यों नहीं आए?

महामंत्री की बात समाप्त होने से पहले ही एक द्वारपाल ने कोठरी के द्वार पर आकर धीरे से कहा—देव! युवराज भट्टारक द्वार पर उपस्थित हैं।

वृद्ध ने बिना आसन परित्याग किए कहा—कौन? स्कंद? अंदर आओ।

एक हृष्टपुष्ट गोरे युवक ने कोठरी में प्रवेश करके पहले तो महामंत्री को और तब महाबलाधिकृत को प्रणाम किया और तब वे एक ओर चुपचाप खड़े हो गए। दामोदर शर्म्मा ने उनसे पूछा—स्कंद! क्या तुम्हें गोविंद का भी कोई समाचार मिला?

युवराज—कोई समाचार नहीं मिला। उन्हें ढूँढ़ने के लिये मैंने वाराणसी तक चर भेजा है। परंतु वह भी अभी तक लौट कर नहीं आया।

उत्तर सुनकर दामोदर शर्म्मा पागलों की तरह उठ खड़े हुए। उनके मस्तक पर से किरीट और अंग पर से उत्तरीय दोनों भूमि पर गिर पड़े। गहरी साँस लेते हुए उन्होंने कहा—अच्छा तो फिर दामोदर ही आर्य समुद्रगुप्त की नीति में बाधा डालेंगे। यही विधि का अखंडनीय लेख जान पड़ता है। स्कंद! सत्तर वर्ष की अवस्था में वृद्ध दामोदर शर्म्मा से एक नटी की दासता न हो सकेगी और न मुझसे रंगमंच पर नाचा जायगा। स्कंद! यद्यपि समुद्रगुप्त के अन्न से मेरा पालन हुआ है तो भी आज मैं विद्रोही हूँ। मैं किसी समय चंद्रगुप्त के दाहिने हाथ के समान था परंतु आज मैं ही चंद्रगुप्त के पुत्र को सिंहासन के उतारूँगा। यदि तुम पितृद्रोही न बनोगे।

गोविंद यदि अपने भाई के सिंहासन पर बैठना स्वीकृत न करेंगे तो मैं आर्य्यपट्ट उठाकर गंगा में फेंक दूँगा। समुद्रगुप्त के राजप्रासाद में—

वृद्ध सचिव को आसन पर से उठते स्कंदगुप्त और अग्निगुप्त भी अपने स्थान से उठ खड़े हुए थे। बीच में ही स्कंदगुप्त ने कहा—पितामह! आप यह क्या कह रहे हैं? शांत होइए।

दामोदर—स्कंद! तुम अभी तक बालक हो। तुम नहीं जानते कि साम्राज्य पर कितना बड़ा संकट आ रहा है। कल नर्त्तकी इंद्रलेखा की कन्या के साथ चंद्रगुप्त के पौत्र परमेश्वर परमवैष्णव परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीमत् कुमारगुप्त का विवाह होगा। कल तुम्हारी माता पट्टमहादेवी सिंहासन पर से उतरेंगी और उनके स्थान पर फल्गुयश नट की कन्या उसी सिंहासन पर बैठेगी। और मैं—मैं दमोदर शर्म्मा—पत्थर की मूरत की तरह दूर से खड़ा खड़ा यह सब दृश्य देखूँगा। परंतु स्कंद, यह असंभव है। यह मेरे लिये असंभव है। तुम्हारे लिये असंभव है, अग्निगुप्त के लिये असंभव है, रामगुप्त के लिये असंभव है और साम्राज्य के एक साधारण पदाति तक के लिये असंभव है। एक गोविंद का ही भरोसा था। कुमार जिसे बाल्यावस्था में मैंने अपनी गोद में लेकर खेलाया उसी कुमार ने मेरे अनुरोध की रक्षा नहीं की। महाराज ने किसी के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया। परंतु वे गोविंद के अनुरोध की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। गोविंद नहीं आए—गोविंद के लिये साम्राज्य का सत्यानाश हो गया। गोविंद! क्या तुम्हारे मन में यही था।

वृद्ध सचिव थककर पलंग पर बैठ गए। इतने में एक द्वारपाल ने द्वार पर आकर कहा—'महादंडनायक रामगुप्त।'' थोड़ी ही देर में एक हृष्टपुष्ट वृद्ध ने जिनका रंग साँवला था और जो सफेद कपड़े पहने हुए थे, कोठरी में प्रवेश करके दामोदर को प्रणाम किया। स्कंदगुप्त और अग्निगुप्त ने आगे बढ़कर उन वृद्ध महाशय के चरण छुए। वृद्ध महामंत्री ने सूखे कंठ से विकट रूप से हँसकर कहा—राम! उत्सव के लिये प्रस्तुत हो न? कल युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त की माता सिंहासन से उतारी जायँगी और उनके स्थान पर नर्त्तकी इंद्रलेखा और फल्गुयश नट की कन्या बैठेगी। कल गुप्त साम्राज्य का

अभिजात संप्रदाय उसके सामने घुटने टेकेगा । तुम भी तो कुमारगुप्त के सजातीय और प्रथम चंद्रगुप्त के वंशजात हो न ?

रामगुप्त थोड़ी देर तक बड़े आश्चर्य से वृद्ध सचिव की ओर देखते रहे ! अंत में उन्होंने धीरे धीरे कहा—पितृव्य ! तो क्या विवाह हो गया ?

दामोदर—अभी तक तो नहीं हुआ पर कल हो ही जायगा । उसे कौन रोक सकता है ? गोविंद अभी तक आए ही नहीं !

पाम०—परंतु अभी तक तो समय है ।

दामो०—स्कंद ने वाराणसी तक दूत भेजा था परंतु वह दूत अभी तक लौटकर नहीं आया ।

रा०—आज अंतिम दिन है । यदि वे कल आए तो कदाचित् कोई फल न होगा ।

दामो०—नहीं, कल चंद्रगुप्त के वृद्ध पुत्र फिर से युवक बनेंगे । अतः कोई उनसे भेंट भी न कर सकेगा । संध्या समय विवाह और रात के पहले पहर में उत्सव होगा । जो उस उत्सव में नहीं जायगा उसे दूसरे दिन श्रीपट्ट लौटा देना पड़ेगा ।

राम०—क्या यह महाराजाधिराज का आदेश है ?

दामो०—इस आदेश पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं हुए ।

राम०—क्या महाराजाधिराज ने आपको इसके प्रचार के संबंध में कोई आदेश दिया है ’

दामो०—नहीं । परंतु मैं समझ गया हूँ कि ऐसा आदेश होगा, इसी लिये मैंने अध्यक्षों को इसके प्रचार के लिये प्रस्तुत होने की आज्ञा दे दी है ।

राम—पितृव्य ! क्षोभ में आपने और कौन कौन से आदेश दिए हैं ?

दामो०—राम ! हँसी मत करो । मैंने और एक आदेश दिया ।

राम०—वह क्या ?

दामो०—मैंने सम्राट के लिये कुछ वीणाएँ मोल ली हैं ।

स्कंदगुप्त ने हँसकर पूछा—तो क्या पितामह साम्राज्य का कार्य छोड़कर वीणा बजाने में समय बितावेंगे ?

वृद्ध महामंत्री ने सूखी हँसकर कहा—भाई केवल मुझे ही नहीं, बहुत से महानायको और महामांडलिकों को इसी प्रकार वीणा बजाकर समय विताना पड़ेगा।

राम०–देव ! वीणाएँ मोल लेने का कारण तो मेरी समझ में भी न आया।

अग्नि०—आप यह सब क्या कर रहे हैं ?

दामो०—समय पड़ने पर आप ही आप सब बातें तुम लोगों की समझ में आ जायँगी।

एक द्वारपाल ने कोठरी में प्रवेश किया।

वृद्ध ने उससे पूछा—संध्या होने में कितना विलंब है ?

द्वारपाल—प्रायः दो दंड।

वृद्ध—अच्छा जाओ।

द्वारपाल ने स्कंदगुप्त को संबोधन करके कहा—महाराज ? एक कवचधारी सैनिक मार्ग में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब मैंने उनसे उनका परिचय पूछा तब उन्होंने केवल इतना कहा कि युवराज भट्टारकसे कहो कि शंख आये हैं।

स्कंद०—उन्हें यहीं ले आओ।

द्वारपाल अभिवादन करके चला गया।

अग्निगुप्त ने पूछा—युवराज ये शंख कौन हैं ?

स्कंद—बलाधिकृत भानुमित्र।

अग्निगुप्त—अग्निमित्र के पुत्र ?

स्कंद०—हाँ।

अग्नि०—वह तो गौड़ में थे न ?

स्कंद—हाँ, उन्हें बुलाने के लिये मैंने दूत भेजा था।

इतने में भानुमित्र को लेकर द्वारपाल ने फिर कोठरी में प्रवेश किया। भानुमित्र ने आते ही म्यान से तलवार निकालकर शिरस्त्राण से छुलाई और इस प्रकार युवराज, महामंत्री, महाबलाधिकृत और महादंडनायक का अभिवादन किया। रामगुप्त और अग्निगुप्त ने उठकर उनका स्वागत किया और दामोदर शर्म्मा ने हाथ उठाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। युवराज ने भानुमित्र को अपनी ओर खींचकर पूछा—भानु ! कब आए ? शिरस्त्राण उतार डालो।

भानुमित्र ने शिरस्त्राण उतारकर कहा—मैं अभी आ रहा हूँ। रथ अभी बाहर ही खड़ा है।

स्कंद०—कह दो कि रथ चला जाय।

भानु०—रथ में और लोग भी हैं।

स्कंद०—वे लोग मेरे स्थान पर चले जायँ।

भानु०—वे लोग तुम्हारे यहाँ न जा सकेंगे।

स्कंद०—क्यों ?

भानु०—फिर बतलाऊँगा।

स्कंद—फिर कब ?

भानुमित्र ने युवराज के कान में धीरे से कहा—रथ पर करुणा है। उसे कहाँ भेजूँ ?

युवराज कुछ चकित हुए परंतु उन्होंने कोई प्रश्न नहीं किया। केवल इतना कहा—रथ को माता के आवास में भेज दो।

भानुमित्र कठोरी से निकलकर बाहर चले गए। उनके जाने पर दामोदर शर्म्मा ने ठंढी सांस लेकर कहा—सुनो राम! चंद्रगुप्त की सेवा में जीवन बिताकर अब अंत में इस वृद्धावस्था में मुझे विद्रोह करना पड़ेगा। कल संध्या समय मैं विद्रोही हो जाऊँगा। जो मस्तक ध्रुवस्वामिनी के सिंहा-सन के सामने झुका था वह इंद्रलेखा की कन्या के सामने ने झुक सकेगा। इतने में अग्निगुप्त बोल उठे—देव! मैं पहले से सोच समझकर कुछ स्थिर नहीं कर सका था। अतः जो मार्ग आप है वही मेरा भी है। महादंडनायक क्या करेंगे ?

राम०—अग्नि! मैंने निश्चित कर लिया है कि मैं विवाह-सभा में नहीं जाऊँगा।

दामोदर—तो फिर तुम्हें पदच्युत होना पड़ेगा।

राम०—अच्छी बात है। मैं जाकर काशीवास करूँगा।

दामोदर—परंतु मुझसे तो यह न हो सकेगा। मैं जिसका विवाह कराके लाया हूँ, जिसे मैंने अपने हाथों से अभिषिक्त किया है, उसे इंद्रलेखा की

कन्या के द्वारा पदच्युत होते मुझसे न देखा जायगा। अग्नि! क्या अच्छा होता! यदि अब भी गोविंद आ जाते।

इतने में सबने सुना—"मैं आ गया।"

सब लोगों ने चकित होकर देखा, कोठरी के द्वार पर उज्ज्वल वस्त्र पहने एक प्रौढ़ खड़े हँस रहे हैं।

तीसरा परिच्छेद

कुमारगुप्त के श्वसुर

संध्या हो गई है। पाटलिपुत्र के नगरके राजपथों पर हजारों दीपक जल रहे हैं। गरमी के दिन हैं। सुगंधित फूलों से हाटों और दूकानों के झरोखे, खिड़कियाँ और द्वार सजे हुए हैं। छोटे छोटे बालक और बालिकाएँ इधर उधर फूलों की मालाएँ बेचती फिरती हैं। नागरिक लोग जूही और कुंद के फूलों की मालाएँ मोल ले रहे हैं। धीरे धीरे राजपथों पर लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। एक दो अथवा चार घोड़ों के रथों पर सुंदर जड़ाऊ गहने और कपड़े पहने हुए और फूलों की मालाएँ लिए हुए राजधानी के विलासी धनी लोग वायुसेवन के लिये निकल पड़े। जिन लोगों के पास रथ या घोड़े आदि नहीं थे वे लोग यथासाध्य अच्छे वस्त्र आदि पहनकर पैदल ही घूमने के लिये निकल पड़े। भीड़ के मारे मार्गों में स्थान न रह गया।

जौहरियों के हाट के पास ही एक छोटा मार्ग था। उस मार्ग पर मद्य की कई दूकानें थीं। उन सब दूकानों पर बहुमूल्य मद्य बिकते थे। इस कारण साधारण लोग उस ओर न आते थे। संध्या के समय एक नाटे गोरे मनुष्य ने उस मार्ग में प्रवेश किया। वह कमर में एक मैला वस्त्र पहने था परंतु उसके कंधे पर वाराणसी का बहुमूल्य सुनहला उत्तरीय और गौड़ीय वस्त्र का उष्णीष था। कुछ दूर चलकर युवक ने एक बड़ी दूकान में प्रवेश किया। दुकान में दो तीन छोटे छोटे दीपक जल रहे थे। सामने काठ की एक ऊँची

चौकी पर एक हट्टा कट्टा काला सा बुड्ढा बैठा पान खा रहा था, और दो एक सेवक इधर उधर बैठे हुए कुछ काम कर रहे थे। युवक ने दूकान में पहुँचते ही उस बुड्ढे से कहा—क्यों जी अक्षयनाग ! अच्छे हो ?

अंधकार के कारण बुड्ढा उस युवक को न पहचान सका। उसने कहा—कौन ?

युवक–मैं हूँ चंद्रसेन। इतने दिनों की बात चीत और तुम इस प्रकार भूल गए ?

वृद्ध–हाँ, चंद्रसेन ? आज तुम किस प्रकार इधर आए ? क्या अपना ऋण चुकाने के लिए आए हो ?

युवक—भाई अक्षय, मुझसे बड़ी भूल हुई। तुम्हारा ऋण बहुत दिनों तक पड़ा रह गया परंतु तुम धैर्य रखो। मैं दो ही तीन दिन में तुम्हारा सारा ऋण चुका दूँगा। तुम्हारा कितना पावना है ?

वृद्ध—एक हजार ग्यारह दीनार छः द्रम्म। प्रायः तीन वर्ष से तुम्हारा यह ऋण चला आ रहा है।

युवक—अक्षय ! क्षतिपूर्त्ति के लिये मैं परसों प्रातःकाल सब मिलाकर तुम्हें बारह सौ दीनार अवश्य दे जाऊँगा।

वृद्ध—देखो चंद्रसेन ! तुम ब्राह्मणसंतान हो। तुम्हारे पितामह ने बहुत दिनों तक साम्राज्य की सेवा की थी। अपने वंश में केवल तुम्हीं ऐसे हो जो इस हीन दशा में अपना जीवन बिता रहे हो। इंद्रलेखा को प्रसन्न करने के लिये तुमने अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया। यहाँ तक कि तुम्हारे रहने का घर भी बिक गया। तुम इतना धन कहाँ पाओगे जो कल ही मुझे १२०० दीनार ला दोगे ? क्या अंत में तुमने चोरी करना ही विचारा है ?

उस बुड्ढे की बात सुनकर युवक को बहुत क्रोध आया। परंतु उसने उस क्रोध को छिपाकर कहा—अक्षय ! बहुत सी बातें हैं। फिर किसी दिन मैं तुम्हें सब बातें सुनाऊँगा। जिस दिन मैं तुम्हें कुमारगुप्त के सिक्के के सोने के १२०० दीनार देने आऊँगा उसी दिन सब बातें सुनाऊँगा। अब मेरे वे पहले के से दिन नहीं रहे। मेरा भाग्य फिर खुला है। इस समय मुझे दस पात्र गौड़ीय कादंब चाहिए—

बुड्ढे ने बात काटकर कहा—भइया, यह सुनकर तो मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम्हारा भाग्य फिर गया, पर एक बात है। तुम ब्राह्मणसन्तान हो, अप्रसन्न न होना। मैं तुम्हें उधार मद्य नहीं दे सकता। हाँ यदि तुमसे हो सके तो तुम अपना ऋण चुका जाना।

चंद्रसेन—तुम समझते नहीं हो, आज मैं बहुत कृपा करके तुम्हारी दूकान पर मद्य लेने आया हूँ। कल से कोई चंद्रसेन को पाटलिपुत्र की गलियों में पैदल चलता न देखेगा।

बुड्ढा—जो हो, परंतु मैं तुम्हें बिना मूल्य लिए मद्य नहीं दे सकता।

चंद्रसेन—सुनो, पागलों की तरह व्यर्थ बातें न करो। यदि तुम इस समय मुझे गौड़ीय कादंब के दस पात्र दे दोगे तो परसों ही तुम्हें १२०० दीनार मिल जायँगे, क्योंकि कुमारगुप्त कादंब के अतिरिक्त और कोई मद्य नहीं छूते।

बुड्ढा—कुमारगुप्त! कुमारगुप्त कौन?

चंद्र०—मेरे भावी जामाता।

बुड्ढा—क्या पागलोंकी भाँति बकते हो? तुम्हारा तो विवाह ही नहीं हुआ; फिर तुम्हारे जामाता कहाँ से आए?

चंद्र०—पहले पूरी पूरी बात तो सुन लो। यह तो तुम जानते ही हो कि इंद्रलेखा के साथ मेरा संबंध है। उसके साथ मेरा गांधर्व विवाह हुआ है—माल्य विनिमय हुआ है। अतः इंद्रलेखा की कन्या अनंता अब मेरी ही कन्या है। कुमारगुप्त अनंता के लिये पागल हो रहे हैं। कल संध्या समय उनका विवाह अनंता के साथ होगा। अब तुम्हें यह भी बतलाऊँ कि कुमारगुप्त कौन हैं?—परमेश्वर परम भट्टारक परमवैष्णव परममाहेश्वर महाराजाधिराज श्रीमत् कुमारगुप्त देवपाद। जब अनंता के साथ उनका विवाह हो जायगा तब वे आप ही आप मेरे जामाता बन जायँगे। और फिर यह कोरा विवाह ही नहीं है। विवाह होते ही अनंता पट्टमहादेवी हो जायगी। कुमारगुप्त ने कहा है कि स्कंदगुप्त की माता पट्टमहादेवी के पद से हटा दी जायगी।

बुड्ढा अक्षयनाग चुपचाप ये सब बातें सुनता रहा। अंत में उसने धीरे से कहा—चंद्रसेन! तुम यह क्या कहते हो? इंद्रलेखा की कन्या के साथ और महाराजाधिराज का विवाह! मैंने सुना था कि महाराज इस वृद्धावस्था

में भी एक नीच जाति की कन्या के साथ विवाह करेंगे। परंतु मैंने यह नहीं सुना था कि इंद्रलेखा की कन्या पट्टमहादेवी होगी।

चंद०—अक्षय ! यह सत्य है—ध्रुव सत्य है। इसका एक अक्षर भी मिथ्या नहीं है। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो तुम मेरे साथ मद्य लेकर इंद्रलेखा के घर तक चलो। वहीं तुम्हें महाराजाधिराज बैठे हुए मिलेंगे।

राजपथ पर दो योद्धा जा रहे थे। वे चंद्रसेन की बातों का अंतिम अंश सुनकर खड़े हो गए। अक्षयनाग ने कहा—अच्छा तुम मद्य ले जाओ परंतु परसों मूल्य अवश्य दे जाना।

चद्रसेन ने मारे आनंद के उछलकर कहा—अक्षय ! तुम्हारी जय हो। मैं ब्राह्मण हूँ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारी परमायु हो अक्षय ! और लक्ष्मी का तुम्हारे घर में अचल रूप से निवास रहे। परसों मैं कुमारगुप्त को ही तुम्हारे द्वार पर बाँधकर बैठा जाऊँगा।

अक्षयनाग की आज्ञा से एक सेवक मद्य से भरे हुए काँच के दस पात्र ले आया। चंद्रसेन ने उन पात्रों को अपने बहुमूल्य उत्तरीय में बाँधते हुए कहा—देखो अक्षय ! मैंने स्थिर किया है कि परसों से तुम्हारे अतिरिक्त और कोई पाटलिपुत्र नगर में गौड़ीय कादंब अथवा पारसीक न बेच सकेगा, और बुड्ढे दामोदर शर्मा को मैं सबसे पहले पदच्युत करूँगा।

इतने में दोनों सैनिक आगे बढ़कर उस दूकान में आ पहुँचे। चंद्रसेन ने द्वार के निकट खड़े होकर अक्षयनाग से कहा—अक्षय! तुम अपने सेवक से कह दो कि वह इन पात्रों को लेकर इंद्रलेखा के घर पहुँचा आवे। मैं मदालिका के यहाँ माला और केशवदास के यहाँ पान लेने जाऊँगा।

अक्षयनाग ने एक सेवक को वे सब पात्र इंद्रलेखा नर्त्तकी के घर पहुँचा आने की आज्ञा देकर चंद्रसेन से कहा—चंद्रसेन ! तुम इतनी देर बातें कर रहे हो, तुम्हारा गला सूख गया होगा, थोड़ा सा मद्य तुम भी ले लो।

चंद्रसेन ने कुछ घबराकर कहा—नहा नहीं, आज नहीं। मैं जाता हूँ।

इतना कहकर ज्योंही चंद्रसेन बाहर निकलना चाहता था त्योंही दोनों सैनिकों में से एक ने आगे बढ़कर पूछा—तुम कौन हो ?

चंद्रसेन ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम कौन हो ?

दूसरा सैनिक बोल उठा—हम चाहे जो हो, तुम्हारे लिये यह जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। बतलाओ तुम कौन हो?

चंद्र०—देखो, यदि तुम अपना भला चाहते हो तो मार्ग छोड़ दो। नहीं तो कल या परसों प्रातःकाल तुम्हारा सिर काट लिया जायगा—

चंद्रसेन की बात समाप्त होने से पहले ही पहले सैनिक ने उसका कान पकड़ लिया और दूसरे ने दूकान के दीपक के सामने ले जाकर उसे सिर से पैर तक देखा और तब उसे एक लात मारकर कहा—बतलाओ तुम कौन हो?

चंद्र०—मैं कुमारगुप्त का श्वसुर हूँ।

सैनिक—कौन कुमारगुप्त।

चंद्र०—और कौन कुमारगुप्त? स्वयं सम्राट्—महाराजाधिराज कुमारगुप्त। कल संध्या को ही तुम्हें इसका प्रतिफल मिल जायगा।

सैनिक ने उसे और दो तीन लात मारकर कहा—तुम महाराजाधिराज के श्वसुर हो? अवश्य ही तुम मद्य पीकर उन्मत्त हुए हो।

मार पड़ते ही चंद्रसेन ने चिल्ला चिल्लाकर रोना आरंभ किया—अरे बाप रे! मुझे मार डाला! अरे कोई मुझे बचाओ! मैं—मैं—चंद्रसेन-मैं सम्राट का श्वसुर—कुमारगुप्त का श्वसुर—इंद्रलेखा का धर्मपति—अरे बाप रे—

उसका रोना सुनकर बहुत से मद्यविक्रेता और उनके सेवक वहाँ आ पहुँचे। उनमें बहुतेरे चंद्रसेन को पहचानते थे, क्योंकि एक तो चंद्रसेन उच्च वंश का था और दूसरे वह इस हाट के प्रायः सभी स्थानों से बहुमूल्य मद्य मोल लेने में अपना बहुत-सा धन नष्ट कर चुका था। सब लोग पूछने लगे कि चंद्रसेन को क्यों मार रहे हो? इसपर उन सैनिकों ने कहा—यह व्यक्ति महाराजाधिराज पर कलंक लगाता है और उनके संबंध में कुत्सित बातें कहता है। इसीलिये यह पीटा गया है।

सम्राट का नाम सुनकर किसी को कुछ कहने सुनने का साहस न हुआ। केवल बुड्ढे अच्युतनाग ने धीरे से कुछ आगे बढ़कर पूछा—महाशय! यह क्या कहता था?

सैनिक—यह अपने आपको महाराजाधिराज का श्वसुर बतलाता था

और मद्य की एक दूकान पर खड़ा होकर कहता था कि मैं महाराजाधिराज को तुम्हारे द्वार पर बाँधकर बैठा जाऊँगा।

अक्षयनाग बिना और कुछ पूछे ही वहाँ से भाग निकला। दोनों सैनिक चंद्रसेन को लेकर वहाँ से चले गए। इतने में जनता में से कोई बोल उठा- चंद्रसेन चाहे अभी तक सम्राट का श्वसुर न हुआ हो परंतु कल अवश्य हो जायगा और तब वह तुम दोनों से अच्छी तरह समझेगा।

दोनो सैनिक बिना कोई उत्तर दिए चंद्रसेन को लेकर चले गए।

जब वे लोग मद्यविक्रय के स्थान से बहुत आगे निकल गए तब उन्होंने चंद्रसेन को मार्ग में एक वृक्ष से रस्सी से कसकर बाँधा। तब वे कुछ हटकर खड़े हो गए और परस्पर परामर्श करने लगे। पहला सैनिक बोला—देखो, यदि यह व्यक्ति सचमुच ही महाराजाधिराज का भावी श्वसुर हो तब तो बड़ी विपत्ति आवेगी।

दूसरा सैनिक बोला—विपत्ति काहे की? जो व्यक्ति मार्ग में खड़ा होकर महाराजाधिराज को गालियाँ देता था उसे हम लोगों ने पकड़ लिया, इसमें विपत्ति काहे की?

पह० सै०-सुना है कि महाराजाधिराज एक नीच जाति की कन्या के रूप पर मोहित होकर वर्त्तमान पट्टमहादेवी को सिंहासन पर से उतारना चाहते हैं। यदि यही व्यक्ति उस कन्या का पिता हो तब तो अवश्य ही हम लोगों पर भारी विपत्ति आवेगी।

दू० सै०-अच्छा तो फिर इसे महाप्रतीहार के पास न ले जाकर महाराज-कुमार के ही पास ले चलना चाहिए।

पह० सै०—महाराजकुमार इस समय कहाँ हैं?

दू० सै०—यह तो मैं नहीं कह सकता।

पह० सै०—अच्छा तो फिर इसे कुमार हर्षगुप्त के पास ले चलें। उनसे परामर्श करके तब महाराजकुमार अथवा युवराज भट्टारक के हाथ सौंप देंगे।

दू० सै०—यह बहुत ठीक है। चलो इसे रथ पर बैठाकर प्रासाद की ओर ही ले चलें।

दोनों सैनिक चंद्रसेन को लेकर एक रथ पर जा बैठे। वहाँ उन्होंने उष्णीय

से चंद्रसेन का मुँह और हाथ-पैर भली भाँति बाँध दिए और एक सैनिक उसके ऊपर चढ़ बैठा। दूसरा सैनिक हाथ में नंगी तलवार लेकर रथ चलानेवाले के पास जा बैठा। उसे प्रासाद की ओर रथ ले चलने की आज्ञा मिली। नंगी तलवार देखकर सारथी को किसी प्रकार की आपत्ति करने का साहस न हुआ। शीघ्र ही रथ प्रासाद के प्रथम तोरण में जा पहुँचा। द्वितीय तोरण के प्रतिहारों ने उन लोगों का परिचय पूछा परंतु महाराजपुत्र गोविंद-गुप्त का नाम सुनकर उन्होंने संमानपूर्वक मार्ग छोड़ दिया। तृतीय तोरण पर रथ के चालक को दोनों सैनिकों ने कुछ पारितोषिक देकर बिदा कर दिया और तब उन्होंने चंद्रसेन के साथ स्कंदगुप्त के आवास में प्रवेश किया।

चौथा परिच्छेद

मंद-मलयानिल

महाराजपुत्र गोविंदगुप्त का कंठस्वर सुनकर कोठरी में बैठे हुए सब लोग उठ खड़े हुए। स्कंदगुप्त पितृव्य के दोनों पैर पकड़कर रोने लगे। अग्निमित्र और भानुमित्र ने कोष में से तलवार निकालकर सामरिक प्रथा के अनुसार उनका अभिवादन किया। रामगुप्त उन्हें गले लगानेके लिये आगे बढ़े। उस समय तक गोविंदगुप्त ने दामोदर शर्म्मा को नहीं देखा था अतः उन्होंने रामगुप्त से पूछा—तात! पितृव्य कहाँ हैं?

इतने में युवराज ने देखा कि प्रभुपरायण वृद्ध मंत्री मूर्छित होकर भूमि पर पड़े हैं। युवराज की आज्ञा होते ही सेवक लोग ठंढा जल और पंखे लेकर वहाँ आ पहुँचे। थोड़े ही समय में महामंत्री चैतन्य हो गए। उन्होंने आँखें बंद किए किए ही पूछा—गोविंद क्या तुम सचमुच आ गए? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ?

गोविंदगुप्त ने दामोदर शर्म्मा के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—नहीं पितृव्य, आप स्वप्न नहीं देख रहे हैं, मैं सचमुच आ पहुँचा हूँ।

दामोदर—यदि तुम आज न आकर कल आते तो सारा श्रम निष्फल

हो जाता। वत्स ! अब इस वृद्ध का कार्य तो समाप्त हो चुका। अब तुम्हीं अपने पिता के राज्य की रक्षा करो।

इतना कहते कहते दामोदर शर्म्मा को निद्रा आ गई। इसपर सेवकों ने कहा कि इधर दो महीनों में महामंत्री कभी सोए नहीं थे।

गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त रामगुप्त अग्निगुप्त और भानुमित्र दूसरी कोठरी में चले गए और वहीं बैठकर परामर्श करने लगे। महाराजपुत्र ने पूछा—क्या हुआ है ?

रामगुप्त—गुप्तवंश का सर्वनाश होना चाहता है। अब आप आ गए हैं। देखिए, यदि उसकी रक्षा हो सके तो कीजिए। शारदीय उत्सव के समय नर्त्तकी इंद्रलेखा राजसभा में नाचने के लिये आया करती थी। उस समय उसकी कन्या अनंता भी उसके साथ ही प्रासाद में आती थी। महाराजाधिराज उस युवती के अपूर्व लावण्य पर मोहित होकर उसे सोन-तटवाले उद्यान में ले गए थे। वहाँ वे उसके नाचने गाने पर और भी अधिक मोहित हो गए। कुछ समय तक अनंता उसी उद्यान में रही। पहले तो नित्य संध्या को हम लोगों को भी निमंत्रण हुआ करता था; परंतु पीछे वह बंद हो गया। कुछ दिनों के उपरांत सुनने में आया कि महाराजाधिराज उसके साथ विवाह करेंगे। उस समय भी हम लोग यह नहीं समझ सके थे कि कोई भारी विपत्ति आना चाहती है। श्री पंचमी के दिन मेरी पत्नी ने प्रासाद से लौटकर मुझे बतलाया कि महादेवी ने मुझे स्मरण किया है। इससे पहले ही महाराजाधिराज राज्य के सब कार्यों से उदासीन हो रहे थे। अतः महादेवी ने हम लोगों को स्कंद के विवाह के लिये पात्री ढूँढ़ने की आज्ञा दी थी। मैंने भी चेदी वंशी महानायक जयहस्ति की कन्या के रूप गुण और वंश-मर्यादा आदि के विचार से उसे साम्राज्य की महादेवी बनने के योग्य पात्री स्थिर किया था और सोचा था कि यही बात मैं चलकर महादेवी से भी कहूँगा। परंतु प्रासाद के अंतःपुर में प्रवेश करते ही मैं बहुत चकित हुआ। वह विशाल अंतःपुर बिलकुल सुनसान था और वहाँ सन्नाटा छाया था। एक महल्लिका के मुँह से मैंने सुना कि महादेवी श्यामा मंदिर में—

गोविंद—महादेवी ने क्या कहा ?

राम—महादेवी ने कहा कि वृद्धावस्था में महाराजाधिराज रूप के मोह में पड़कर ज्ञान खो बैठे हैं। इंद्रलेखा की कन्या ने प्रण किया है कि मैं साधारण महिषी की भाँति प्रासाद में प्रवेश न करूँगी। उसका प्रण है कि यदि उसी को पट्टमहादेवी का पद मिले और यदि स्कंदगुप्त के स्थान पर उसी का गर्भजात पुत्र सिंहासन पर बैठने का अधिकारी हो तब तो वह वृद्ध कुमारगुप्त से विवाह करेगी, नहीं तो नहीं।

गोविंदगुप्त ने हँसकर कहा—वेश्या की कन्या समुद्रगुप्त के सिंहासन पर न बैठेगी तो और कौन बैठेगी। इसपर महाराजाधिराज ने क्या कहा था ?

राम—वे उस समय पागल हो रहे थे। वे महादेवी को पदच्युत करके इंद्र-लेखा की कन्या को उस पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये उद्यत हो गए हैं और स्कंदगुप्त को यौवराज्य से—

गोविंद—बस, मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता। अब यह बतलाइए कि आप लोगों ने क्या किया।

राम—साम्राज्य में जितने प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, उन सब ने एकएकबार महाराजाधिराज को समझाने का प्रयत्न किया; परंतु कोई फल नहीं हुआ। वृद्ध दामोदर शर्म्मा नित्य हाथ जोड़कर और घुटने टेककर प्रार्थना करते थे, परंतु फिर भी हत-चेतन कुमारगुप्त को ठीक मार्ग पर न ला सके। सब बातें निश्चित हो चुकी हैं, यहाँ तक कि विवाह और अभिषेक का दिन भी स्थिर हो चुका है। साम्राज्य को नष्ट होते देखकर महामंत्री ने अंत में महापुरोहित पुंडरीक का आश्रय लिया। उस समय हम लोग समझ गए थे कि आपके अतिरिक्त और कोई साम्राज्य की रक्षा न कर सकेगा। इधर तो आपके पास समाचार भेजा गया और उधर पुंडरीक तथा चाचा जी ने तरह तरह की बातें बनाकर—कभी यह कहकर कि अभी शुभ दिन नहीं है और कभी अकाल और मलमास आदि की सच्ची और झूठी बाधाएँ उपस्थित करके इंद्रलेखा की कन्या का विवाह और अभिषेक रोक रखा है। अब आप आ गए हैं। यदि आपसे हो सके तो समुद्रगुप्त की वंशमर्यादा की रक्षा कीजिए।

गोविंद—आप चिंता न करें, कल का विवाह मैं अवश्य रोक दूँगा।

राम—आप क्या करेंगे ?

गो०—मैं अभी महाराज से भेंट करूँगा।

राम—यदि वे भेंट न करें तो ?

गो०—वे मुझसे अवश्य भेंट करेंगे। मैं और कोई नहीं, ध्रुवस्वामिनी का पुत्र, कुमारगुप्त का भाई और जगद्विजयी चंद्रगुप्त का पुत्र हूँ। वे मुझसे भेंट न करें, यह असंभव है। आप लोग मेरे साथ चलें और गुप्तवंश के समस्त शुभचिंतकों को निमंत्रित करें। कल इंद्रलेखा की कन्या का विवाह नहीं होगा।

इतना कहकर गोविंदगुप्त उठ खड़े हुए। उनके साथ ही साथ स्कंदगुप्त और दूसरे सब लोग भी खड़े हो गए। सब लोग उस कोठरी से बाहर निकले और रथ पर चढ़कर प्रासाद की ओर चले। पहले तोरण के प्रतीहारों ने कहा कि सम्राट् संध्या से पहले ही प्रासाद छोड़कर नगर में चले गए हैं। परंतु कोई यह न बतला सका कि वे कहाँ और किस के यहाँ गए हैं। विवश होकर सब लोगों ने रथ लौटाया। मार्ग में गोविंदगुप्त ने कहा—इंद्रलेखा नर्त्तकी के घर चलो। सारथी उनके मुँह की ओर देखने लगा। गोविंदगुप्त ने कहा—कपोतिक संघाराम के निकट इंद्रलेखा नर्त्तकी का घर है, वहीं चलो। सारथी ने चुपचाप उसी ओर को रथ बढ़ाया। कोई आधे दंड मे पत्थर के बने प्राचीन विशाल कपोतिक संघाराम के सामने रथ जा पहुँचा। गोविंदगुप्त कूदकर उसपर से उतर पड़े। संघाराम के एक ओर एक छोटा दोतल्ला घर था। अलिंद में खड़ी एक स्त्री ने पूछा—कौन, चंद्रसेन ? अब तक क्या करते थे।

गोविंद—नहीं, मैं चंद्रसेन नहीं हूँ। वह पीछे पीछे आ रहा है।

स्त्री—तुम कौन हो ?

गोविंद—तुम मुझे नहीं पहचान सकोगी। मैं मंदमलयानिल हूँ।

स्त्री—क्या कहा ?

गो०—चलो, अंदर चलकर बतलाता हूँ।

गोविंदगुप्त ने सारथी को वहीं ठहरने की आज्ञा देकर घर में प्रवेश किया। स्त्री भी वहाँ से हट गई। उस अँधेरे घर में घुसकर महाराजपुत्र गोविंदगुप्त परिचितों की भाँति सीढ़ियों से होते हुए ऊपर जा पहुँचे। दूसरे खंड की एक छोटी कोठरी में एक साधारण दीपक जल रहा था, वहीं तीन-

चार पुरुष बैठे थे। उनमें से एक गोविंदगुप्त के पैरों की आहट सुनकर चौंक पड़ा। कोठरी में काश्मीर देश की बनी एक चादर बिछी थी और सोने के छोटे से दीपक में तिलों का सुगंधित तेल जल रहा था। कोठरी में इधर उधर खूँटियों पर पारिजात और जूही की मालाएँ लटक रही थीं। एक सुंदरी युवती दीपक के उस मंद प्रकाश में नाच रही थी। गोविंदगुप्त ने द्वार पर रुककर मस्तक से नंगी तलवार का स्पर्श कराके अभिवादन किया। जो लोग कोठरी में बैठे हुए नाच देख रहे थे, उनमें से एक ने पूछा—कौन ?

गोविंद—मैं हूँ गोविंद।

प्रश्न करनेवाले घबराकर उठ खड़े हुए और नाच रुक गया। उन्होंने पूछा—कौन ? गोविंद ? तुम जालंधर से कब आए ?

गोविंद—मैं इसी समय चला आ रहा हूँ। प्रासाद में महाराजाधिराज नहीं मिले, अतः मैं यहीं चला आया।

प्रश्नकर्त्ता ने कहा—अच्छा चलो, चलें।

इतने में वह स्त्री आ पहुँची जो अलिंद में गोविंदगुप्त को मिली थी। उसने आते ही कहा—महाराज, यह क्या! आज अनंता का अधिवास और कल विवाह है। क्या आप इस समय चले जायँगे ? उत्सव की सब व्यवस्था हो चुकी है। सब नर्त्तकियाँ आती ही होंगी।

उस स्त्री के इंगित करने पर नाचनेवाली युवती ने बढ़कर सम्राट् का हाथ पकड़ लिया। सम्राट् रुक गए। उस समय गोविंदगुप्त ने धीरे धीरे युवती के हाथ से सम्राट् का हाथ छुड़ाया और उस युवती को दूर ढकेलकर दूसरी स्त्री से कहा—महाराजाधिराज के विवाह की व्यवस्था प्रासाद में हुआ करती है, नर्त्तकियों के घर पर नहीं। तुम नर्त्तकियों को लेकर ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में आना।

उस स्त्री की आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगीं। उसने चिल्लाकर कहा—महाराजाधिराज, आप इनके साथ न जाइएगा। नहीं तो फिर कल विवाह न होगा।

इसके उपरांत उसने गोविंदगुप्त की ओर देखकर कहा—तुम कौन हो ?

और क्यों बिना आज्ञा के मेरे घर में चले आए ? तुम नहीं जानते ! मैं अभी तुम्हें कुत्तों से नोचवा सकती हूँ।

महाराजपुत्र ने मुस्कराकर कहा—प्रिये ! क्या इतना प्रेम एक दम से भूल गई ? मैं वही मंद मलयानिल हूँ जिसे यदि तुम एक दंड भी नहीं देखती थीं तो विरह से अधीर हो जाती थीं और जिसे छोड़कर तुम फल्गु-यश के साथ भाग गई थीं। मेरा नाम गोविंदगुप्त है। मैं द्वितीय चंद्रगुप्त का पुत्र हूँ। अतः तुम्हारी कौन कहे, स्वयं कुमारगुप्त भी मुझे कुत्तों से नहीं नोचवा सकते।

वह स्त्री मंद-मलयानिल का नाम सुनकर कुछ आगे बढ़ आई थी, परंतु गोविंदगुप्त का नाम सुनकर वह दस हाथ पीछे हट गई। गोविंदगुप्त ने कुमारगुप्त का हाथ पकड़कर कहा—महाराज, चलिए चलें।

मंत्रमुग्ध की भाँति सम्राट् अपने भाई के साथ उस घर से निकल आए और रथ पर जा बैठे। मार्ग में कपोतिक संघाराम के सामने और भी छः सात रथ खड़े थे। गोविंदगुप्त ने रथ पर बैठकर सारथी को प्रासाद की ओर चलने की आज्ञा दी। उनका रथ उसी ओर चल पड़ा और उसके पीछे और सब रथ भी चलने लगे।

जब वे रथ कुछ दूर जाकर आँखों से ओझल हो गए तब कपोतिक संघाराम के तोरण में से एक व्यक्ति ने निकलकर नर्त्तकी इंद्रलेखा के घर में प्रवेश किया। इंद्रलेखा उस समय आँगन में खड़ी हुई कुछ बक झक रही थी। आगंतुक ने घर में प्रवेश करके उसके पास जाकर कहा—मुझे केवल इतना समाचार मिला है कि गोविंदगुप्त आए हैं और महामंत्री के घर गए हैं। मैं संघाराम के पास छिपकर—

इंद्रलेखा ने तुरंत ही एक झाड़ू लेकर उससे आगंतुक को मारना आरंभ किया और कहा—बड़ा अच्छा समाचार लाया है। गोविंदगुप्त आए भी और आकर मेरा सर्वस्व भी नष्ट कर गए। तू अबतक कहाँ था ?

दो चार झाड़ू खाकर आगंतुक वहाँ से भाग निकला। उसे बहुत आशा थी कि मैं जब यह आवश्यक समाचार सुनाऊँगा तब मुझे अवश्य ही विशेष

पुरस्कार मिलेगा। परंतु जो पुरस्कार मिला उससे वह अवश्य ही बहुत विस्मित हुआ होगा।

दूत के भाग जाने पर एक और व्यक्ति इंद्रलेखा के घर से निकला। वह व्यक्ति पहले से नीचे के खंड में अँधेरे में छिपा बैठा था। इंद्रलेखा के घर से निकलकर वह एक द्वार से कपोतिक संघाराम में घुसा और दूसरे द्वार से बाहर निकल गया। बाहर एक और व्यक्ति एक घोड़ा लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा था; बस वह उसी घोड़े पर चढ़कर महामंत्री के घर की ओर चल पड़ा।

उस समय दामोदर शर्म्मा की नींद खुल चुकी थी और वे गोविंदगुप्त को ढूँढ़ने के लिये प्रासाद में जाने का उद्योग कर रहे थे। दूत ने वहाँ पहुँचते ही देखा कि अलिंद में दामोदर शर्म्मा खड़े हैं। उन्हें देखते ही उसने प्रणाम करके कहा—देव! मैं महाराजपुत्र का समाचार ले आया हूँ।

दामोदर—क्या समाचार लाए हो?

दूत—महाराजपुत्र इंद्रलेखा के घर से महाराजाधिराज को प्रासाद में ले गए हैं।

दूत प्रणाम करके चला गया। महामंत्री पालकी पर चढ़कर प्रासाद की ओर चल पड़े।

पाँचवाँ परिच्छेद

कनिष्क चैत्य में अतिथि

गोविंदगुप्त जिस समय अपने बड़े भाई को लिए हुए इंद्रलेखा के घर से प्रासाद की ओर जा रहे थे, उसी समय पंचनद के उत्तर प्रांत में एक पथिक शीघ्रता से गिरिसंकट पार करके पुरुषपुर नगर के पश्चिम तोरण की ओर बढ़ता हुआ चला जा रहा था। उस समय रात प्रायः एक पहर बीत चुकी थी। नगर द्वार से पुरुषपुर तक के विस्तृत मार्ग में उस समय सन्नाटा छाया हुआ था। अंधकार वह व्यक्ति जिस प्रकार बढ़ता हुआ चला जा रहा था, उससे

जान पड़ता था कि वह नगर के सब मार्गों से परिचित है। जब नगर प्रायः एक कोस रह गया तब तोरण में दूसरे पहर का मंगल वाद्य बजने लगा। पथिक वह मंगल वाद्य सुनकर खड़ा हो गया। उन दिनों शांति के समय एक पहर रात बीतने पर ही नगर के सब तोरण बंद हो जाते थे, अतः पथिक ने मंगल वाद्य सुनकर समझ लिया कि अब सब तोरण बंद हो गए होंगे। उसने नगर में आश्रय पाने की आशा छोड़ दी। ज्यों ही तोरण का मंगल वाद्य बंद हुआ त्यों ही पास के एक और स्थान मे असंख्य शंख और घंटे बजने लगे और हजारों दीपक जल उठे। पथिक ने उस ओर मुड़कर देखा कि नगर के तोरण के पास ही एक पर्वताकार स्थान में हजारों छोटे छोटे दीपक जुगनू की भाँति इधर उधर चमक रहे हैं। देखते ही उसे परम आश्चर्य हुआ। क्षणभर ठहरकर वह उसी दीपमाला की ओर बढ़ा।

सहसा शंख और घंटे बंद हो गए और दीपक बुझ गए। पथिक चौंक-कर खड़ा हो गया। वह उस समय दीपमाला के बहुत पास पहुँच चुका था। बहुत से मनुष्यों का कंठस्वर सुनकर उसने फिर आगे बढ़ना आरंभ किया। कुछ ही क्षणों के उपरांत उसने देखा कि कुछ लोग आ रहे हैं। उनमें से एक ने उससे पूछा—कौन ?

पथिक—मैं एक थका हुआ सूर्योढ़ पथिक हूँ। पास ही बहुत से दीपक देखकर आश्रय पाने के लिये मैं आ रहा था, परंतु मेरे आते आते दीपक बुझ गए। क्या आप कृपाकर मुझे बतला सकते हैं कि किस मार्ग से जाने पर मुझे आश्रय मिलेगा ?

प्रश्न करनेवाले व्यक्ति ने आगे बढ़कर पूछा—तुम कहाँ से आ रहे हो ?

पथिक—वाह्लीक नगर से। यह कौन स्थान है ?

व्यक्ति—पुरुषपुर नगर का बाहरी भाग।

पथिक—इतने दीपक कहाँ जल रहे थे ?

व्यक्ति—कनिष्क चैत्य में।

पथिक—क्यों ?

व्यक्ति—जान पड़ता है, तुम सद्धर्म्मी नहीं हो। यह दूसरे पहर की आरती है।

पथिक—मैं ब्राह्मण हूँ। क्या यहाँ पहर पहर पर आरती हुआ करती है?

व्यक्ति—हाँ।

पथिक—कितनी दूर जाने पर मुझे आश्रय मिलेगा?

व्यक्ति—तुम मेरे साथ आओ।

पथिक—क्या चैत्य में मुझे आश्रय न मिलेगा?

व्यक्ति—कनिष्क विहार का संस्कार करना भिक्षा से अपना निर्वाह करने-वाले भिक्षु श्रमणों का कार्य नहीं है। कनिष्क विहार गिर रहा है। हम लोग संघाराम के खंडहर मे पर्णकुटी बनाकर रहते हैं।

पथिक उस व्यक्ति के साथ अंधकार में चलने लगा। थोड़ी दूर जाने पर वे लोग पत्थर की एक बड़ी अट्टालिका के खंडहर में जा पहुँचे। पथिक का आश्रयदाता अट्टालिका के आँगन की एक छोटी कुटी में चला गया और वहाँ से एक दीपक लाकर उसने पथिक से कहा—आओ, चलो। पथिक चुपचाप उसके साथ चल पड़ा। आँगन के दूसरे ओर टूटी हुई अट्टालिका के पत्थर के एक द्वार के सामने एक और भिक्षु खड़ा था। पहले भिक्षु ने उसे देखकर पूछा—धर्मसिंह, संघस्थविर कहाँ हैं?

दूसरे भिक्षु ने उत्तर दिया—संघस्थविर कोठरी में हैं। क्या तुम उनसे भेंट करोगे?

पह० भि—हाँ।

दू० भि—इस समय तो भेंट नहीं हो सकेगी। संघस्थविर ने आज्ञा दे रखी है कि मैं आचार्य संघरक्षित के अतिरिक्त और किसी से तीसरे पहर से पहले भेंट नहीं करूँगा। तुम्हारे साथ कौन है?

पह० भि०—एक अतिथि। धर्मसिंह! तुम संघस्थविर से जाकर कह दो कि बुद्धरक्षित अपने साथ वाह्लीक देश के एक ब्राह्मण को लेकर आया है और आपकी आज्ञा पाकर आपसे भेंट करना चाहता है। अतिथि ने अभी तक विश्राम नहीं किया है।

दू० भि०—उन्हें विश्राम कर लेने दो। विश्राम के उपरांत ले आना।

प० भि०—नहीं। संघस्थविर ने आज प्रातःकाल ही मुझे आदेश किया था कि यदि गिरिसंकट पार करके नगरद्वार से आवे तो मुझे समाचार देना;

और यदि संभव हो तो मेरे पास ही ले आना। अतः तुम विलंब न करो और शीघ्र जाकर उन्हें यह समाचार दो।

दूसरा भिक्षु उस टूटे हुए प्रासाद में गया और थोड़ी देर में वहाँ से लौटकर बोला— बुद्धरक्षित, तुम अतिथि को लेकर संघस्थविर के कमरे में जाओ, वे तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पहले भिक्षु ने उस अतिथि को साथ लेकर भवन में प्रवेश किया। कमरे में एक छोटा दीपक जल रहा था। पथिक ने उसके प्रकाश में देखा कि कुछ दूर पर एक छोटी कोठरी में एक और दीपक जल रहा है और कोठरी के द्वार पर एक हृष्ट पुष्ट गोरे भिक्षु खड़े हैं। बुद्धरक्षित ने उनके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम किया और ब्राह्मण ने दोनों हाथों से ललाट को स्पर्श करके अभिवादन किया। दीर्घाकार भिक्षु ने कहा—स्वागत। क्या आप वाह्लीक देश से आते हैं?

पथिक—जी हाँ। मेरा नाम विष्णुभद्र है। मैं वाह्लीक नगर का निवासी हूँ और इस समय एक विशेष कार्य के लिये आर्यावर्त में आया हूँ।

भिक्षु—महाशय, आप अतिथि हैं; मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। आपके लिये पहले पाद्य, अर्घ्य और भोजन आदि की कोई व्यवस्था न करके इस स्थान पर एक विशेष कार्य के लिये आपको बुलाया गया है। यह कार्य यद्यपि आर्य सेवक के उपयुक्त नहीं है, तो भी मुझे विवश होकर इस प्रकार भद्राचार के विरुद्ध आचरण करना पड़ा है। आशा है आप मुझे क्षमा करेंगे मैंने वाह्लीक देश के संबंध में कुछ बातें पूछने के लिये आपको कष्ट दिया है।

पथिक—हाँ हाँ, पूछिए।

भिक्षु—मैं जिस विषय में आपसे कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ वह बहुत ही गोपनीय है। बुद्धरक्षित! तुम जाकर आपके लिये भोजन आदि की सभी सामग्री मेरी कोठरी में ले आओ।

भिक्षु बुद्धरक्षित ने वहाँ से प्रस्थान किया और संघस्थविर तथा विष्णुभद्र दोनों कोठरी में चले गए। विष्णुभद्र ने देखा कि उस कोठरी में हजारों ग्रंथ भरे पड़े हैं। एक कोने में घी का एक उज्ज्वल दीपक जल रहा है। उसके

पास एक आसन, एक लेखनी, मसिपात्र और भोजपत्र के कई टुकड़े पड़े हैं। आसन के पास ही एक छोटी शय्या बिछी है। संघस्थविर अतिथि से उसी शय्या पर बैठने का अनुरोध करके स्वयं आसन पर बैठ गए। संघस्थविर ने पूछा—महाशय! कितने दिनों पहले आपने वाह्लीक नगर छोड़ा था?

विष्णु—प्रायः दो मास पहले।

संघ०—अब आप कहाँ जायँगे?

विष्णु—यदि पुरुषपुर मे मेरा उद्देश्य सिद्ध न हुआ तो मैं जालंधर जाऊँगा और यदि मैं जालंधर मे भी कृतकार्य न हुआ तो मुझे पाटलिपुत्र जाना पड़ेगा।

संघ०—जिस समय आपने यात्रा आरंभ की थी, उस समय आपने हूण जाति के संबंध में भी कुछ सुना था?

विष्णुभद्र ने चौंककर पूछा—क्या कहा?

संघ—हूण जाति के संबंध में भी आपने कुछ सुना था?

विष्णु—आप यह बात क्यों पूछते हैं?

संघ०—यही पूछने के लिये मैंने आप को यहाँ बुलाया है।

कुछ समय तक विष्णुभद्र चुपचाप बैठे रहे। इसके उपरांत उन्होंने धीरे धीरे कहा—संघस्थविर, हूण जाति के लिये ही मैं वाह्लीक से पुरुषपुर आया हूँ; और यदि आवश्यकता हुई तो पाटलिपुत्र तक जाऊँगा।

विष्णुभद्र की बात सुनकर संघस्थविर स्तंभित हो गए। विष्णुभद्र भी यह समझकर चुप हो गए कि मेरी बातों के कारण संघस्थविर को कुछ दुःख हुआ। हवा के झोंकों से दीपक की शिखा नाचने लगी और उसके साथ ही साथ दीर्घाकार संघस्थविर की दीर्घतर छाया दीवार पर नाचने लगी। नाचते नाचते दीपक बुझ गया संघस्थविर उस समय भी अपनी चिंता में मग्न थे। कोई आध दंड के उपरांत जब बुद्धरक्षित अतिथि के लिये भोजन सामग्री लाया तब उसके पैरों की आहट सुनकर संघस्थविर ने पूछा—कौन?

उत्तर मिला - मैं हूँ बुद्धरक्षित। मैं अतिथि के लिये भोजन सामग्री लाया हूँ।

संघ०—दीपक बुझ गया है। जाकर दूसरा दीपक ले आओ। बुद्धरक्षित उसी अंधकार में भोजन का पात्र रखकर दीपक लाने के लिये चला गया। संघस्थविर ने पूछा—क्या आप कल प्रातःकाल ही यहाँ से चले जायँगे ?

विष्णु—जी हाँ। कल मैं नगर में जाऊँगा और विषयपति से भेंट करके जालंधर चला जाऊँगा। महाशय ! मैं विदेशी हूँ। यदि मेरे किसी बात से आपको कुछ दुःख हुआ हो तो—

संघ०—भद्र ! मुझे दुख नहीं हुआ। आप जो समाचार लाए हैं वह आर्यावर्त्त के लिये अच्छा समाचार नहीं है; परंतु मैं आजन्म इसी की प्रतीक्षा करता हूँ।

इतने में एक भिक्षु ने हाथ में दीपक लेकर कोठरी में प्रवेश किया। उसने देखा कि अतिथि विस्मित होकर संघस्थविर के मुँह की ओर देख रहे हैं। संघस्थविर कहने लगे—आप विस्मित न हों। बहुत दिनों से पुरुषपुर के समस्त विहारों के संघस्थविर इसी संवाद की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तीन शताब्दी से हम सब लोग गुरुपरंपरा से यही सुनते चले आते हैं कि जिस समय बिना नाकवाली बर्बर जाति वक्षु नदी को पार करेगी, उस समय आर्यावर्त्त और आर्य-संघों का नाश हो—

विष्णुभद्र बीच में ही बोल उठे—मैंने सुना है कि पहले महानदी को लोग वक्षु ही कहते थे। परंतु आपने यह कैसे जाना कि मैं बहुत ही गुप्त रूप से यह समाचार लेकर सम्राट् के पास जा रहा हूँ ?

संघ०—मैंने तो केवल गुरु जी से सुना था; परंतु बोधिसत्व नागार्जुन ने गणना करके यह बात पहले से ही जान ली थी। आज से सौ वर्ष पहले जब हूण जाति ने उत्तरकुरु पर अधिकार किया था उस समय पुरुषपुर के विहारस्वामी ने जान लिया था कि जिस बिना नाकवाली बर्बर जाति ने वक्षु नदी के उत्तर तीर पर अधिकार किया है, उसका नाम "हूण" है। उसी समय से हम लोग हूण जाति के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

विष्णु—क्यों ?

संघ०—इसलिये कि बोधिसत्वपाद नागार्जुन ने भविष्यद्वाणी की थी कि यही बिना नाकवाली जाति कनिष्क चैत्य नष्ट करेगी।

विष्णु—आश्चर्य ! आप लोग तीन सौ वर्षों से हूणों के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

संघ—हाँ।

विष्णु—आप लोगों ने देश और धर्म की रक्षा के लिये कोई उपाय भी किया है ?

संघ—बात तो यह है कि इसका कोई उपाय ही नहीं है। यदि किसी उपाय से हूण लोग वक्षु नदी के उसी पार रोके जा सकें तो फिर सब ओर रक्षा ही रक्षा है।

विष्णु—यह कार्य कौन करेगा ?

संघ०—यदि कोई न करेगा तो सबका नाश होगा।

विष्णु—इस समय गुप्तवंश में सबसे अधिक योग्य कौन है ?

संघ—सबसे अधिक योग्य महाराजपुत्र गोविंदगुप्त और उनके उपरांत युवराज स्कंदगुप्त हैं।

विष्णु—इस समय महाराजपुत्र कहाँ हैं।

संघ—वे शकमंडल के मंडलेश्वर हैं और जालंधर में रहते हैं। परंतु सुना है कि वे एक विशेष कार्य से राजधानी गए हैं।

विष्णु—और युवराज ?

संघ—वे भी पाटलिपुत्र में ही हैं ?

विष्णु—पाटलिपुत्र तो अभी बहुत दूर है।

संघ०—तो क्या हूण जाति महानदी पार कर चुकी है ?

विष्णु—यद्यपि अभी तक वह इस पार नहीं आई है, तो भी आगामी ग्रीष्म ऋतु में आ जायगी।

संघ०—अच्छा अब आप भोजन करें, और बातें फिर होंगी।

विष्णुभद्र शय्या छोड़कर भोजन के लिये आसन पर जा बैठे। उनके भोजन कर चुकने पर संघस्थविर ने पूछा—महाशय, क्या राजधानी में किसी से आपका परिचय या मित्रता है ?

विष्णु—नहीं।

संघ—तो फिर आप किस प्रकार यह समाचार सम्राट् तक पहुँचावेंगे ?

विष्णु—मुझे तो ईश्वर पर ही भरोसा है।

संघ—अच्छा तो मैं भी आपके साथ पाटलिपुत्र चलूँगा।

छठा परिच्छेद

साम्राज्य के द्वाररक्षी

प्रात:काल के समय पुरुषपुर नगर की एक बड़ी अट्टालिका के दूसरे खंड में एक सैनिक ने एक कमरे के बंद द्वार पर खड़े होकर एक बार धीरे से किवाड़ खटखटाया। कोई उत्तर न पाकर आधे दंड के उपरांत सैनिक ने दूसरी बार द्वार खटखटाया। उस समय कमरे के अंदर से किसी ने पूछा—कौन ?

सै०—मैं हूँ सिद्धवृद्धि।

प्र०—क्या चाहते हो ?

सै०—कनिष्क विहार के संघस्थविर भेंट करने के लिये प्रार्थना करते हैं।

उत्तर—उनसे संध्या समय आने के लिये कहो।

सै०—मैंने कहा था।

उत्तर—तो उन्होंने क्या कहा ?

सै०—उन्होंने कहा कि मैं इसी समय जालंधर जा रहा हूँ।

उ०—तो फिर वे कल ही क्यों नहीं आए ?

सै०—मैंने यह भी पूछा था।

उ०—उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

सै०—यही कि कल भेंट करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

उ०—तो फिर इस समय क्या आवश्यकता है।

सै०—उन्होंने कहा है कि एक विशेष आवश्यकता है।

उ०—अच्छा, तो उनसे कह दो कि विषयपति का शरीर अस्वस्थ है, इस समय भेंट नहीं हो सकती।

सै०—मैंने यह भी कहा था।

उ०—तब वे क्या चाहते हैं ?

सै०—वे बिना भेंट किए नहीं जायँगे।

उ०—बड़ी विपत्ति है। अच्छा तो उन्हें मंत्रगृह में ले आओ, मैं आता हूँ। सैनिक चला गया और थोड़ी देर के उपरांत कमरे का द्वार खुला। उसमें से एक दुबले पतले, नाटे और गोरे रंग के युवक निकले। एक सेवक ने चंदन की पादुका उनके सामने रखी और एक दूसरा सेवक सुवासित जल से भरी हुई सोने की एक झारी ले आया। एक तीसरा सेवक उस झारी के जल से युवक के पैर धोने लगा। इसके उपरात पहले सेवक ने उन धोए हुए पैरों को एक सुगंधित वस्त्र से पोंछा और उनमें हाथीदाँत के काम की चंदन की पादुका पहना दी। युवक ऊपर से उतरकर नीचे के खंड में आए। चार वाहक द्वार पर एक सोने के काम की पालकी ले आए जिसपर युवक जा बैठे। एक सेवक ने उनके मस्तक पर जड़ाऊ छत्र लगाया और दूसरा पंखा लेकर झलने लगा। तीसरा सेवक पालकी के आगे आगे सुगंधित जल छिड़कता हुआ चलने लगा। उस सेवक के पीछे पीछे बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए चार दंडधर हाथ में सोने के दंड लिए हुए चलने लगे। पालकी के पीछे चार और सेवक थे जिनमें से एक के हाथ में तांबूल, दूसरे के हाथ में पानी भरी झारी, तीसरे के हाथ में सोने का एक पात्र और चौथे के हाथ में एक वस्त्र था। थोड़ी ही देर में सारे दुर्ग में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया कि विषयपति की नींद खुल गई और वे अपने स्थान से मंत्रगृह की ओर गए हैं।

समाचार सुनते ही दुर्ग के द्वार के प्रतीहार लोग सज्जित होकर खड़े हो गए। दंडधर लोग अपनी अपनी शय्या छोड़कर वेश पहनने लगे। सेवक लोग जल्दी से मंत्रगृह साफ करने लगे। नगर के कर्म्मचारी लोग विषयपति का यह बिलकुल नया आचरण देखकर डर गए और अपने अपने इष्टदेवता का स्मरण करने लगे। विषयपति कभी दोपहर से पहले अपने निवासस्थान से बाहर नहीं निकलते थे और तीसरे पहर से पहले कभी मंत्रगृह में नहीं आते थे। विषयपति का ऐसा आचरण पुरुषपुर के नागरिकों ने पहले कभी नहीं

सुना था। उनके आगमन से एक मुहूर्त्त पहले ही मंत्रगृह ठीक हो गया। नगरपाल और कर्म्मचारी लोग सामने आकर खड़े हो गए। विषयपति ने पालकी से उतरते ही नगरपाल से पूछा—संघस्थविर कहाँ हैं?

नगरपाल ने विस्मित होकर कहा—प्रभु! कौन संघस्थविर?

विषय०—कनिष्क विहार के संघस्थविर। मैं उनसे भेंट करने के लिये आया हूँ।

नगर०—मैंने तो उन्हें नहीं देखा।

विषय०—मैंने सिद्धवृद्धि से कह दिया था कि मैं मंत्रगृह में संघस्थविर से भेंट करूँगा। देखो वे कहाँ हैं।

नगरपाल उसी समय संघस्थविर को ढूँढ़ने चल पड़ा। संघस्थविर और विष्णुभद्र उस समय मंत्रगृह के पास ही खड़े थे। परंतु किसी ने उन्हें देखा नहीं था। सब लोग उन्हें ढूँढ़ते थे परंतु कोई उनसे कुछ पूछता नहीं था। दंडधरों की बातें सुनकर संघस्थविर ने समझ लिया कि मुझे ही लोग ढूँढ़ रहे हैं। थोड़ी देर के उपरांत उन्होंने एक दंडधर से पूछा—तुम लोग किसे ढूँढ़ रहे हो?

दंड०—कनिष्क विहार के पूज्यपाद संघस्थविर को।

संघ—मैं ही देवपुत्र शाहि कनिष्क के पुरुषपुरवाले विहार का महास्थविर हूँ।

दंड०—आप ही हैं?

संघ०—क्यों, तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ?

दंड०—बौद्ध संघ के परम पूजनीय स्थविर पैदल और अकेले ही आए हैं?

संघ०—हाँ। क्या तुम सद्धर्म्मी नहीं हो?

दंड०—नहीं, मैं वैष्णव हूँ। पाटलिपुत्र में महास्थविर लोग हाथी अथवा पालकी पर प्रासाद में आया करते हैं।

संघ०—भिक्षु के लिये किसी यान पर चढ़ना निषिद्ध है। तुम विषयपति से जाकर कह दो कि मैं उपस्थित हूँ। इतने लोग व्यर्थ ही कष्ट पा रहे हैं। उन्हें रोक दो।

दंडधर मंत्रगृह की ओर चला गया और थोड़ी ही देर के उपरांत एक और दंडधर को साथ लेकर लौट आया। वह दूसरा दंडधर बौद्ध था। अतः उसने संघस्थविर को देखते ही पहचान लिया और प्रणाम किया। इसके उपरांत उसने अपने साथी पहले दंडधर से कहा—हाँ, यही कनिष्क विहार के संघस्थविर हैं।

अब पहला दंडधर संघस्थविर को देकर मंत्रगृह की ओर चला। विष्णुभद्र भी उन लोगों के पीछे पीछे चलने लगे।

जिस समय संघस्थविर मंत्रगृह में पहुँचे, उस समय पुरुषपुर विषय के विषयपति बहुत अधीर हो रहे थे। सहसा वृद्ध संघस्थविर को देखकर विषयपति प्रसन्न हो गए। उन्होंने पूछा—प्रभु! इतनी देर तक आप कहाँ थे? मैं प्रायः आधे दंड से मंत्रगृह की इन सीढ़ियों पर खड़ा हूँ।

संघस्थविर ने कुछ हँसकर कहा—अपराध क्षमा कीजिएगा। मैं तो यहीं पास ही था। आपकी अनुमति नहीं मिली थी, इसीसे मैं नहीं आ सका। जो लोग मुझे ढूँढ़ते थे, उनमें से कोई मुझे पहचानता नहीं था।

विषयपति मन ही मन कुछ क्रुद्ध हुए, परंतु उस क्रोध को दबाकर उन्होने कहा—प्रभु! इन सेवकों में सौजन्य का जो अभाव है उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। आइए, मंत्रगृह में चलें।

सब लोगों ने मंत्रगृह में प्रवेश किया। विषयपति के आसन ग्रहण करने पर सब लोग बैठ गए। विषयपति ने विष्णुभद्र की ओर देखकर संघस्थविर से पूछा—ये कौन हैं?

संघ०—इनका नाम विष्णुभद्र है। ये वाह्लीक के रहनेवाले ब्राह्मण हैं और इस समय जालंधर जा रहे हैं। इन्हीं के लिये मुझे इस समय आपके पास आना पड़ा है।

जब विषयपति ने यह सुना कि ये आगंतुक ब्राह्मण हैं, तब उन्होंने उठकर उनके चरण छूए। इस पर संघस्थविर कुछ हँसे जिससे विष्णुभद्र कुछ लज्जित हुए। विषयपति ने फिर अपने आसन पर बैठकर पूछा—आपने इन्हीं के लिये यहाँ तक आने का कष्ट किया है?

संघ०—हाँ। यह एक विशेष समाचार लेकर वाह्लीक से महाराजपुत्र गोविंदगुप्त के पास जालंधर जा रहे हैं। वह समाचार आपको भी सुना देना उचित है।

विषय०—क्या समाचार है?

विष्णु—वाह्लीक और कपिशा की प्रजा बहुत डर गई है। क्या आपने हूण जाति का नाम सुना है?

विषय०—नहीं, क्या वे लोग शक हैं?

विष्णु—उन लोगों के समान आज तक और कोई जाति आर्य जाति के राज्यों में देखने में नहीं आई। वे न तो आर्य हैं और न शक।

विषय०—तो फिर वे कौन हैं?

संघस्थविर अब तक चुप थे। उन्होंने देखा कि इन मद्यप विषयपति को हूणों के विप्लव का यथार्थ स्वरूप समझाना सहज नहीं है। उन्होंने कहा—आपने महानदी का नाम तो सुना ही होगा?

विषय०—हाँ।

संघ०—कोई पचास वर्ष हुए, हूण नाम की एक जंगली जाति ने उत्तर कुरु देश से आर्यों का अधिकार नष्ट करके और सद्धर्म का विनाश करके एक नवीन राज्य स्थापित किया था। थोड़े दिन हुए, खिंखिल नामक एक हूण राजा ने महाचीन से पारसिक साम्राज्य की सीमा तक अपना अधिकार बढ़ा लिया है।

विषय०—तो क्या इस समय वही खिंखिल वाह्लीक और कपिशा पर अधिकार करना चाहता है?

संघ०—हाँ।

विषय०—तो फिर मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? वाह्लीक बहुत दूर है और फिर मेरी शक्ति भी अधिक नहीं है।

संघ०—मैं वाह्लीक की रक्षा के लिये आपसे सहायता माँगने यहाँ नहीं आया हूँ।

विषय०—तो फिर किसलिये आए हैं?

संघ०—यदि हूण जाति ने महानदी पार कर लिया तो शीघ्र ही पुरुषपुर

पर भी आक्रमण होगा। अतः आप अभी से युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जायँ।

विषय०—वाह्लीक और कपिशा पर अधिकार करके वे गांधार और उद्यान पर आक्रमण करेंगे न ? तो फिर अभी तो बहुत विलंब है।

संघ—भट्टारक, मैं बहुत दिनों से पुरुषपुर नगर में रहता हूँ। नागरिकों के कल्याण की चिंता करना ही मेरे जीवन का कर्तव्य है। इसीलिये असमय में मैंने आपको कष्ट दिया है। सहस्रों नर नारियों के जीवन की रक्षा का भार आप पर है। यदि आप इसी समय से चेष्टा करें तो नगर की रक्षा हो सकती है। गिरिसंकट के दुर्गों को और भी दृढ़ करें, नगर और प्राकार का संस्कार करें और नगर में भोजन-सामग्री एकत्र करें जिसमें घिर जाने पर भूखे नागरिकों के अनुरोध से आत्मसमर्पण न करना पड़े।

विषय०—आप भयभीत न हों, अभी बहुत समय है। कोई जंगली जाति सहसा महाराजाधिराज के राज्य पर आक्रमण करने का साहस न करेगी।

विष्णु—भट्टारक, मैं ब्राह्मण हूँ। मैं नारायण, वासुदेव, हृषीकेश और दामोदर का नाम लेकर शपथ करता हूँ कि मैं मिथ्या भय के कारण आर्यावर्त्त में नहीं आया हूँ। साम्राज्य के लिये घोर विपत्ति के दिन आ रहे हैं। हूण जाति बहुत ही अदम्य और निष्ठुर हैं। उसने एक वर्ष के अंदर उत्तरकुरु को उजाड़ दिया था और पाँच वर्ष में हरे भरे राज्य को मरुभूमि बना दिया था। आप मुझ वृद्ध ब्राह्मण की बातों पर विश्वास करें। अब भी समय है। समय रहते आप सावधान हो जायँ।

संघ०—आप यही समाचार सुनाने के लिये जालंधर के मंडलाधिपति महाराज के पास जा रहे हैं ?

विष्णु—हाँ

विषय०—यदि आप कहें तो मैं ही यह समाचार भेज दूँ। ब्राह्मण महाशय, आप बहुत दूर की यात्रा करके थक गए होंगे। कुछ दिनों तक इसी नगर में रह कर आप विश्राम करें। हूण लोग कभी महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक के पवित्र राज्य में पैर रखने का साहस न करेंगे।

विष्णु—भट्टारक ! मैं आपकी सुजनता से बहुत प्रसन्न हूँ। यदि महा-

राजपुत्र मेरी बात पर विश्वास न करेंगे तो मुझे पाटलिपुत्र जाना पड़ेगा। अतः दूत के हाथ यह समाचार भेजना व्यर्थ होगा।

विषयपति अपना आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। उन्हें देखकर संघस्थविर और विष्णुभद्र भी उठ गए। विषयपति ने जँभाई लेकर पूछा—आप यहाँ से कब प्रस्थान करेंगे?

सघ० – इसी समय।

विषयपति ने बिष्णुभद्र को प्रणाम करके संघस्थविर का अभिवादन किया। आगंतुक लोग विदा होकर मंत्रगृह से चल पड़े। उन लोगों के चले जाने पर विषयपति ने पुकारा– "सिद्धवृद्धि"।

एक सेनानायक ने मंत्रगृह मे प्रवेश करके अभिवादन किया। विषयपति ने उससे पूछा—सिद्धवृद्धि, पाटलिपुत्र की नर्त्तकी कहाँ है?

सिद्ध० – उत्तर फाटक के उद्यान में।

विषय०— चलो, मैं अभी उद्यान में चलूँगा।

सिद्ध०— प्रभु! नगरपाल कहते थे कि एक बहुत आवश्यक कार्य है।

विषय०—उनसे कह दो कि इस समय भेंट नहीं हो सकती।

———

सातवाँ परिच्छेद

अरुणा

संध्या का समय है। पाटलिपुत्र के राजप्रासाद में गंगातट पर संगमरमर के अलिंद में दो युवती स्त्रियाँ टहल रही हैं। गरमी के दिन हैं। सूखी हुई गंगा के जल से मिलकर आई हुई संध्या की ठंढी हवा झरोखों से उस अलिंद में प्रवेश कर रही है जिसके कारण उनके खुले हुए बाल और आँचल लहरा रहे हैं। बड़ी स्त्री पूर्ण युवती और परम सुंदरी है और छोटी देखने में अब भी किशोरी जान पड़ती है। यौवन की सीमा में उसने अभी अभी पैर रखा है। वह ऐसी कुमुदिनी है जो अभी तक खिली तो नहीं, पर बहुत

शीघ्र खिलना चाहती है । बड़ी स्त्री उस किशोरी का हाथ पकड़कर टहल रही है । किशोरी उससे अनेक प्रकार के प्रश्न करती है, परंतु दो एक प्रश्नों को छोड़कर और प्रश्नों का उत्तर नहीं पाती । उसने पूछा—बहन ! अब तो तुम दिखलाई ही नहीं पड़तीं । तुम आतीं क्यों नहीं ?

बड़ी स्त्री और कोई नहीं, हमारी पूर्वपरिचिता करुणा ही है । उसने कहा—अरुणा ! कुमार जिस समय तुम्हारा विवाह कर देंगे, उस समय तुम लोगों को दिखलाई न पड़ोगी ।

अरुणा—जाओ, तुम तो हँसी करती हो । क्यों बहन, क्या तुम्हारा जी नहीं घबराता ?

करु०—किसके लिये ?

करु०—इन्हीं लोगों के लिये ।

करु०—तुम लोग कौन ?

अरु०—मैं और—

करु०—और कौन ?

अरु०—यही महादेवी—

करु० और ?

अरु०—और मैं नहीं जानती । तुम यह बतलाओ कि तुम आतीं क्यों नहीं ?

करु०—क्या करूँ, तुम्हारे जीजा नहीं छोड़ते ।

अरु०—अच्छा, तुम यहीं रहो । जब वे आवेंगे तब मैं उनसे कह दूँगी ।

करु०—किससे कह दोगी ? कुमार से ?

अरु०—उनसे क्यों, जीजा जी से ।

करु०—इसी डर से तो मैं मरी जा रही हूँ ।

अरु०—जाओ, मैं तुमसे बात नहीं करती ।

करु०—अरुणा ! महादेवी कहाँ हैं ?

अरु०—श्यामा मंदिर में । जब से उन्होंने सुना है कि नर्त्तकी की कन्या से महाराजाधिराज का विवाह होगा, तब से वे श्याम मंदिर में ही रहने लगी हैं और कभी वहाँ से बाहर नहीं निकलतीं ।

करु०—क्या वे कभी किसी से भेंट नहीं करतीं ?

अरु०—नहीं, वे किसी को मुँह नहीं दिखलातीं।

करु०—चलो, उनके पास चलें।

अरु०—चलो बहन, तुम भी प्रयत्न कर देखो। यदि तुम उन्हें कुछ भोजन करा सको तो करा देना। उन्होंने दो दिन से जल तक नहीं छूआ है। तुमने तो सब कुछ सुना ही होगा।

करु०—हाँ, मार्ग में सब सुन लिया है। अरुणा, महाराज की मति-गति ऐसी क्यों हो गई ?

अरु०—क्या जाने बहन ! दो मास से पिता जी अंतःपुर में नहीं आए। पहले यदि वे संध्या समय एक बार हम लोगों को नहीं देख लेते थे तो बहुत घबराते थे और माता से कहकर हमें बुलवाया करते थे। परंतु अब तो मैं ही प्रार्थना करने पर भी उनसे भेंट नहीं कर सकती। सौराष्ट्र के जिस ब्राह्मण ने पिता जी के प्राण बचाए थे, उसका पुत्र सयाना हो गया है। वह ब्राह्मण अपने पुत्र को कोई पद दिलाने के लिये नगर में आया था। उसी के लिये मैंने महाराज से भेंट करने की प्रार्थना की थी, परंतु—

अरुणा का गला रुँध गया और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। करुणा ने कहा—तुम भी बड़ी अभिमानिनी हो। पिता जी ने तुमसे क्या कहलाया था ?

रुँधे हुए कंठ से अरुणा ने उत्तर दिया—बहन, पिता जी ने कहला भेजा कि मुझे अवकाश नहीं है।

करुणा और अरुणा दोनों अलिंद छोड़कर श्यामा मंदिर की ओर चल पड़ीं। श्यामा मंदिर के फाटक पर दो महल्लिकाएँ थीं। मंडप में खंभे की ओट में और भी दो तीन महल्लिकाएँ थीं। मंदिर का द्वार खुला था और पट्टमहादेवी की परिचारिका मंदिर के बाहर उदास होकर बैठी हुई थी। दोनों बहनों को आते देखकर वे उठ खड़ी हुईं। मंदिर में घी का एक दीपक जल रहा था। पत्थर की श्यामा मूर्ति के पैरों के पास एक स्त्री पड़ी हुई थी। द्वार पर रुक कर अरुणा देवी ने पुकारा—"माँ"। परंतु कोई उत्तर

नहीं मिला। उसने फिर पुकारा—माँ! गौड़ से बहन आई हैं। उसके साथ ही साथ व्याकुल होकर करुणा ने भी पुकारा—"माँ!" आर्यावर्त की अधीश्वरी, गुप्त साम्राज्य की पट्टमहादेवी उठ बैठीं। उन्होंने टूटे फूटे स्वर में कहा—कौन, करुणा? करुणा तुरंत ही दौड़कर महादेवी के गले से जा लिपटी। दोनों एक दूसरे के गले लगकर रोने लगीं। इसी प्रकार प्रायः दो दंड बीत गए। इसके उपरांत अरुणा देवी ने मंदिर के द्वार पर खड़े होकर कहा—बहन! पूजा का समय हो गया है। पुरोहित जी आए हैं।

महादेवी पालिता कन्या के कंधे पर हाथ रखकर धीरे धीरे मंदिर से बाहर निकलीं। परिचारिकाएँ मंदिर में प्रवेश करके पूजा का प्रबंध करने लगीं। महादेवी के साथ मंडप में आकर करुणा ने कहा—माता जी! इस प्रकार रहकर आप कितने दिनों तक जीवित रहेंगी!

महा०—बेटी करुणा, मैं बहुत दिनों तक जी चुकी। मैं अब तक जीवित थी, इसीलिये न मुझे अब तक यह सब सहन करना पड़ा है।

करु०—आप क्यों मरने लगीं? हम लोगों को आप किस के भरोसे छोड़ जायँगी?

महा०—मैं क्यों मरने लगी? करुणा आज तक बिना अपराध के कब और कौन पट्टमहादेवी अपने पद से हटाई गई है? तुम कह सकती हो किस समय और कौन राजपुत्री, कौन अभिषिक्ता महिषी एक वेश्या की कन्या के लिये सिंहासन छोड़कर वेदी के नीचे आ खड़ी हुई है?

करु०—माता जी? नर्त्तकी की कन्या के लिये आप क्यों सिंहासन छोड़ने लगीं?

महा०—करुणा, जिन्होंने मुझे सिंहासन पर बैठने का अधिकार दिया था, जब वे ही वह अधिकार छीनने पर तुले हुए हैं तब मैं और किसके भरोसे उस सिंहासन पर रह सकती हूँ! इंद्रलेखा की कन्या प्रकाश्य रूप से राज-सभा में आर्य समुद्रगुप्त के सिंहासन पर बैठेगी और ध्रुवस्वामिनी के पद पर अभिषिक्त होगी! मैंने कानों से जो यह सुन लिया है कि मेरे स्कंद को राज-पद न मिलेगा, सो मेरे लिये यही बहुत है। मुझसे यह न देखा जायगा।

आज मेरा अंतिम दिन है। तुम दोनों मेरे पास रहो और स्कंद से कहला भेजो कि मेरे अंतिम समय में वह आकर मेरे सामने खड़ा रहे।

करु०—माता जी! क्या इच्छा करने ही से मृत्यु आ जाती है?

महा०—करुणा, मैं जब श्यामा मंदिर में मरने के लिये आई हूँ तो अपनी मृत्यु का मार्ग प्रशस्त करके ही आई हूँ।

इतने में मंडप में किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी। थोड़ी ही देर में एक नपुंसक ने आकर कहा—देवी! जान पड़ता है कि भगवती प्रसन्न हुई हैं। युवराज का एक दूत गुप्त रूप से समाचार दे गया है कि परमभट्टारक महाराजपुत्र अभी अभी नगर में आए हैं।

समाचार सुनकर महादेवी ने कहा—तुम्हारा समाचार शुभ है। अतः प्रतीहारक से कहो कि वह महाराजपुत्र से कहला भेजे कि स्कंदगुप्त की माता उनसे प्रार्थना करती है कि वे मेरी मृत्यु के समय आकर मुझे दर्शन दें।

उस दिन बिना वाद्य आदि बजे ही श्यामा देवी की पूजा हुई। पुरोहित के चले जाने पर महादेवी ने गीले कपड़ों से मंदिर में प्रवेश करके हाथ जोड़कर कहा—माता! बहुत दिनों से मैं तुम्हारी पूजा करती आई हूँ। कभी मैंने कोई अपराध नहीं किया। तो भी इस समय तुम क्यों विमुख हो रही हो? कल अपने हृदय के रक्त से तुम्हारी प्यास बुझाऊँगी। देवी! मुझसे तो तुम विमुख हो गई, परंतु स्कंद से विमुख न होना।

माता की ऐसी बातें सुनकर करुणा और अरुणा रोते रोते उनके गले से लिपट गईं और बहुत देर तक तीनों चुपचाप रोती रहीं। प्रायः दो दंड इसी प्रकार बीत गए। सहसा सैकड़ों उल्काओं के उज्ज्वल प्रकाश से श्यामा देवी की पत्थर की मूर्ति चमकने लगी। प्रतीहारों, महल्लिकाओं, दंडधरों और परिचारकों से मंदिर का आँगन भर गया। करुणा और अरुणा ने चकित होकर देखा कि एक दीर्घाकार पुरुष एक दूसरे व्यक्ति का हाथ खींचते हुए उन्हें मंदिर की ओर ला रहे हैं। करुणा घबराकर उठ खड़ी हुई और बोली —माँ पिता जी आ रहे हैं।

महादेवी ने शीघ्रतापूर्वक प्रतिमा के हाथ से खड्ग ले लिया और कहा—

करुणा, अच्छा तो अभी सब बातों का अंत हुआ जाता है। स्कंद से कह देना कि उनसे भेंट न हो सकी।

क्षण ही भर में तीक्ष्ण धारवाला कृपाण महादेवी के कलेजे में उतर गया। अरुणा ने दोनों हाथों से वह कृपाण पकड़ने का प्रयत्न किया जिसके कारण उसकी उँगलियों में कई जगह घाव हो गए। उसी समय मंदिर के द्वार पर खड़े होकर एक दीर्घाकार पुरुष ने पूछा—मंदिर में कौन है? क्या महादेवी जीवित हैं?

रुँधे हुए कंठ से करुणा ने उत्तर दिया—हाँ, जीवित हैं।

इतने में उल्काओं के तीव्र प्रकाश से मंदिर जगमगा उठा। दीर्घाकार पुरुष ने कहा—महाराजाधिराज, पितरों के पुण्यप्रताप से स्कंद की माता अब तक जीवित हैं। समुद्रगुप्त का वंश अभी तक स्त्रीहत्या के पाप से कलंकित नहीं हुआ, परंतु स्त्री के रक्त से श्यामा देवी का मंदिर अवश्य रँग गया।

महाराज—क्या महादेवी घायल हुई हैं?

उल्काओं के प्रकाश में गोविंदगुप्त ने देखा कि तीनों स्त्रियों के वस्त्र रँगे हुए हैं। उन्होंने पुनः पूछा—यह किसका रक्त है।

करुणा—महादेवी ने आत्मबलि करने का प्रयत्न किया था। उन्हीं के हाथ का खड्ग पकड़ने के प्रयत्न में अरुणा घायल हो गई है।

दीर्घाकार पुरुष ने कहा—महाराजाधिराज, इंद्रलेखा की कन्या को समुद्रगुप्त के सिंहासन पर बैठाने के नाटक का यह केवल पहला अंक है।

वृद्ध सम्राट् सिर झुकाए मंदिर के द्वार पर खड़े थे। कुछ ही क्षणों के उपरांत उन्होंने सिर उठाकर कहा—अरुण! रात अधिक हो गई है। तुम लोग महादेवी को प्रासाद में ले जाओ। गोविंद, किसी दंडधर को आज्ञा दो कि वह जाकर दामोदर शर्म्मा से मंत्रगृह में आने के लिये कह आवे। अरुण, गोविंद और हम दोनों थोड़े ही समय में अंतःपुर में आते हैं।

सम्राट् और गोविंदगुप्त श्यामा देवी के मंदिर से चले गए। एक दासी ने आकर अरुणा के घाव पर पट्टी बाँधी। करुणा और अरुणा ने महादेवी को लेकर अंतःपुर में प्रवेश किया।

———

आठवाँ परिच्छेद

राजधानी का फलाहार

महाराजपुत्र गोविंदगुप्त जिस समय नर्त्तकी इंद्रलेखा के हाथ से गुप्त साम्राज्य का उद्धार करने में लगे थे, करुणा देवी जिस समय आत्महत्या करने के लिये उद्यत पट्टमहादेवी को बचाने के प्रयत्न में थी, उस समय पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के फाटक पर एक गौड़वासी ब्राह्मण बहुत ही विपत्ति में फँसा हुआ खड़ा था। जब संध्या हो गई तब प्रतीहारों ने उसे प्रासाद की सीमा से निकल जाने को कहा। उस समय ब्राह्मण ने कातर होकर उनसे कहा—भइया, फिर मैं कहाँ जाऊँ ?

एक प्रतीहार ने विरक्त होकर उत्तर दिया—हम लोग क्या जानें ?

एक दूसरे रसिक प्रतीहार ने परिहास करते हुए कहा—इसमें चिंता की कौन बात है। संध्या हो गई है, ससुराल चले जाओ।

इतने पर भी जब वह ब्राह्मण वहाँ से न टला तब एक प्रतीहार ने क्रुद्ध होकर कहा—ब्राह्मण देवता, क्यों अपमानित होते हो ? अब चले जाओ। सूर्यास्त के उपरांत अपरिचित व्यक्ति प्रासाद की सीमा में नहीं रहने पाता।

ब्रा०—भइया, दया करके मेरी एक बात सुन लो। गौड़ के महाबलाधिकृत भानुमित्र मेरे सखा हैं। मैं आज तीसरे पहर उनके साथ राजधानी में आया हूँ। जिस समय उनकी पत्नी करुणा देवी अंतःपुर में जाने लगी थीं, उस समय वे मुझे रथ से उतार कर कह गई थीं कि तुम इसी स्थान पर मेरी प्रतीक्षा करो, मैं अंतःपुर में जाकर तुम्हारी व्यवस्था कर देती हूँ। इसी कारण मैं इस स्थान पर बैठा हूँ। परंतु जान पड़ता है कि अब मुझे अधिक समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी। तुरंत ही अंतःपुर से दंडधर आकर मुझे ले जायगा। तुम लोग कृपा करके मुझे और कुछ समय तक यहीं ठहरने दो। मैं विदेशी हूँ। राजधानी के मार्ग और गलियाँ नहीं जानता। अंधकार हो गया है, कहीं ऐसा न हो कि मैं मार्ग भूलकर किसी विपत्ति में पड़ जाऊँ।

ब्राह्मण के कातर वचन सुनकर एक वृद्ध प्रतीहार के मन में दया आ गई। उसने कहा—ब्राह्मण देवता, तुम यहीं ठहरो। मैं महाप्रतीहार और अंतःप्रतीहार से तुम्हारे संबंध में पूछ आऊँ।

पहले रसिक प्रतीहार ने हँसते हुए कहा—देखो हरिदत्त, तुम बहुत ही नासमझ हो। यह ब्राह्मण अवश्य ही झूठा है। तुम इसकी बातों में पड़कर क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो? मैं अभी उसे मार कर भगा देता हूँ।

वृद्ध प्रतीहार ने उसका हाथ पकड़कर कहा—आदित्य, तुम पागल हो। संध्या से पहले ही करुणा देवी का रथ अंतःपुर में गया था। अतः इस ब्राह्मण की बात सत्य भी हो सकती है। यदि तुम इसे मारोगे तो संभव है कि तुम्हीं विपत्ति में पड़ जाओ।

वृद्ध ब्राह्मण को वहीं ठहराकर हरिदत्त ने प्रासाद में प्रवेश किया। मारपीट की बात सुनकर ब्राह्मण का मुँह सूख गया था; परंतु वृद्ध के आश्वासन देने पर वह फाटक के एक कोने में बैठ गया।

करुणा देवी आज बहुत दिनों पर पाटलिपुत्र में आई और अपनी बहन से मिली थीं। वह अपनी मातृस्वरूपा पट्टमहादेवी की विषम विपत्ति का समाचार सुनकर चिंतित हो रही थी, अतः उसे ऋषभ शर्म्मा का ध्यान ही न रहा। उसे यह स्मरण ही नहीं था कि ऋषभ शर्मा प्रासाद के फाटक पर खड़े होंगे। इसी कारण अंतःपुररक्षी अंतःप्रतीहार अथवा महाप्रतीहार कृष्णगुप्त को ऋषभ शर्म्मा के संबंध में कोई आज्ञा नहीं मिली थी। जब महाप्रतीहार कृष्णगुप्त और अंतःप्रतीहार से गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्र के सखा के संबंध में पूछा गया तब उन लोगों ने कहा कि अंतःपुर से उसके संबंध में कोई आज्ञा नहीं आई है। अतः वृद्ध प्रतीहार ने फाटक पर लौटकर ऋषभ शर्म्मा से कह दिया—ब्राह्मण देवता, अब आप चले जायँ, क्योंकि आपके संबंध में अंतःपुर से कोई आज्ञा नहीं आई है।

ब्राह्मण ने घबराकर कहा—भइया, यदि तुम लोग कुछ दया न करोगे तो व्यर्थ यह ब्राह्मण मारा जायगा। मैं विदेशी हूँ और राजधानी के मार्गों आदि से नितांत अपरिचित हूँ। मुझे इस समय बहुत भूख लगी है। राज-

प्रासाद के फलाहार के भरोसे पर मैंने दोपहर के समय भरपेट भोजन भी नहीं किया था। यदि ऐसे समय तुम लोग मुझे यहाँ से निकाल दोगे तो तुम लोगों को ब्रह्महत्या का पाप लगेगा।

वृद्ध प्रतीहार ने कहा—ब्राह्मण देवता, हम लोग क्या करें? बिना महा-प्रतीहार की आज्ञा के कोई अपरिचित व्यक्ति सूर्यास्त के उपरांत प्रासाद की सीमा में नहीं रहने पाता।

इतना कहकर उस प्रतीहार ने ब्राह्मण का हाथ पकड़कर उसे परिखा के बाहर कर दिया और फाटक बंद कर लिया।

ऋषभ शर्मा जिस फाटक पर प्रतीक्षा कर रहे थे, वह पाटलिपुत्र के राज-प्रासाद का तीसरा फाटक था। इसी फाटक को पार कर के लोग राजांतःपुर में प्रवेश करते थे। अंतःपुर से नगर को जाने के लिये तीन अलग फाटक पार करने पड़ते थे। ऋषभ शर्म्मा तीसरे फाटक के बाहर खड़े होकर रो-गा रहे थे। इतने में दूसरे फाटक के प्रतीहारों ने उन्हें पकड़कर उस फाटक की सीमा के भी बाहर कर दिया। इतने में चारों ओर बहुत सी उल्काओं का प्रकाश फैल गया। सहसा किसीने पीछे से आकर ब्राह्मण की गर्दन पकड़कर उसे दूर ढकेल दिया। बहुत चोट लगने के कारण ऋषभ शर्म्मा चिल्लाकर रोने लगे। उसी समय एक और व्यक्ति ने आकर उनके मुँह पर हाथ रख दिया और इस प्रकार उन्हें चिल्लाने से रोक दिया। इतने में सैकड़ों सवारों से घिरे हुए एक चार घोड़ोंवाले रथ ने फाटक में प्रवेश किया। जब वह रथ दूसरे फाटक की ओर बढ़ गया और उल्काओं का प्रकाश भी दूर निकल गया तब उस व्यक्ति ने ब्राह्मण के मुँह पर से हाथ हटाकर पूछा—तुम कौन हो?

ब्राह्मण ने बहुत ही दीन भाव से कहा—मैं ऋषभदेव शर्म्मा हूँ। उस व्यक्ति ने पुनः पूछा—तुम कहाँ के रहनेवाले हो?

ऋषभ—गौड़ नगर का।

व्यक्ति—यहाँ क्यों आए हो?

ऋषभ—राजधानी में बढ़िया फलाहार पाने की आशा से श्रीमती के साथ आया था।

व्यक्ति—कौन श्रीमती ?

ऋषभ—महाबलाधिकृत भानुमित्र की पत्नी करुणा देवी।

व्यक्ति—हम लोग भानुमित्र या करुणा देवी को नहीं जानते। तुम अवश्य यहाँ चोरी करने के विचार से आए हो।

अब ऋषभदेव ने समझ लिया कि मैं चौरोद्धरणिक या चोर पकड़नेवालों के हाथ में पड़ गया हूँ। अतः उन्होंने रोते रोते कहा—भइया, मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ। मैंने सोचा था कि जब श्रीमती पाटलिपुत्र चली जायँगी, तब गौड़ में मुझे भरपेट भोजन न मिलेगा। इसी कारण मैं उनके साथ यहाँ आया हूँ। मेरे सात पुरखा ने भी कभी चोरी नहीं की। मैं चोर नहीं हूँ, तुम मुझे दया करके छोड़ दो। अब ऋषभ शर्म्मा कभी भूलकर भी ऐसा काम न करेगा।

परंतु उस चोर पकड़नेवाले ने ऋषभ शर्म्मा के कातर वचनों पर कुछ भी ध्यान न दिया और वह उसे मारता-पीटता हुआ फाटक के बाहर ले आया। बाहर उसके कई अनुचर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने ब्राह्मण को उन लोगों के हाथ सौंपकर कहा—इसे कारागार में ले जाओ। कल प्रातःकाल इसकी व्यवस्था होगी।

प्रासाद के पास ही एक छोटा कारागार था। रात के समय प्रासाद की सीमा में जो लोग पकड़े जाते थे, वे उसी कारागार में रखे जाते थे। कारागार में पहुँचकर उन अनुचरों ने देखा कि ब्राह्मण के शरीर पर बहुमूल्य शुभ्र कौषेय वस्त्र हैं। ऋषभदेव ने राजधानी में पहुँचने के दिन बहुमूल्य उत्तरीय और कौषेय वस्त्र पहना था। भानुमित्र ने उन्हें रोका था, परंतु उन्होंने उनकी बात नहीं मानी थी। ब्राह्मण के वस्त्र देखकर एक प्रतीहार ने दूसरे से कहा—देखो भाई यह व्यक्ति अवश्य ही उच्च पद का है। ऐसा शुभ्र कौषेय पाटलिपुत्र में १५ दीनार को भी नहीं मिल सकता। इसे चोरों के साथ एक ही कोठरी में रखना ठीक नहीं।

दूसरे प्रतीहार ने कहा—यदि तुम इसे चोरों के साथ न रखोगे तो और कहाँ रखोगे ? इसके लिये राजप्रासाद और सिंहासन कहाँ से लाओगे ?

राजा की आज्ञा से जो खड्ग युवराज भट्टारकपादीय महानायक का सिर काटता है, वही खड्ग महादंडनायक की आज्ञा से साधारण हत्याकारी का भी सिर काटता है। सभी बंदी समान होते हैं।

पह० प्रती०—भाई, यह बंदी कुछ नए ढंग का जान पड़ता है। मैं २५ वर्ष से चोर पकड़ने का काम कर रहा हूँ। मैं अपराधी का मुँह देखते ही उसे पहचान लेता हूँ। यह व्यक्ति कभी चोर नहीं हो सकता।

दू० प्रती०—भाई, तुम बुड्ढे हो गए हो। तुम्हें मतिभ्रम हो गया है। कौन जाने, यह व्यक्ति किस अपराध का अपराधी है। यदि यह भाग जाय तो संभव है कि इसके लिये तुम्हें और मुझे दोनों को प्राणदंड मिले। कारागार में इस प्रकार के प्रेम और भक्ति के लिये स्थान नहीं है।

दूसरे व्यक्ति की बात समाप्त होने के पूर्व ही पहले रक्षक ने ऋषभदेव का हाथ पकड़कर उसे पास ही की एक बड़ी कोठरी में पहुँचा दिया। वहाँ एक करणिक ने उसका नाम लिखकर पूछा—तुम किस अपराध के अभियुक्त हो?

डर के मारे अधमरे ब्राह्मण ने कहा—मैं तो कुछ भी नहीं जानता, मैंने कोई अपराध नहीं किया।

उसके साथी रक्षक ने कहा—यह व्यक्ति प्रासाद की सीमा में पकड़ा गया है। संभवतः इसका अपराध राजद्रोह है।

करणिक ने यही लिख लिया। इसके उपरांत वह रक्षक ऋषभदेव को कारागार में कई साधारण चोरों के साथ बंद कर के चला गया।

प्रासाद का कारागार पत्थर का बना एक छोटा कमरा था। उसमें केवल एक द्वार और दो छोटे छोटे झरोखे थे। झरोखों के नीचे कोई सौ हाथ की दूरी पर एक छोटी नदी थी, जिसके कारण राजपुरुषों ने कारागार की दीवारों पर लोहे की कीलें लगाने की कभी आवश्यकता नहीं समझी थी। ऋषभ के आने से पहले उस कारागार में १४ बंदी एकत्र हो चुके थे, ऋषभ के कारागार में प्रवेश करने पर रक्षक द्वार बंद करके चला गया। जब वह दूर निकल गया तब एक बंदी बोल उठा—बस, अब सब काम हो गया।

ऋषभ ने व्याकुल होकर पूछा—कौन सा काम हो गया?

बंदी—हम लोगों ने निश्चित किया है कि वस्त्र और उत्तरीय को बटकर एक रस्सी बनावेंगे और झरोखे के रास्ते भाग जायँगे।

इतना कहकर उस व्यक्ति ने अपनी फटी पुरानी और मैली पगड़ी ऋषभदेव पर फेंककर उसे वही पहन लेने के लिए कहा। भय के मारे उस घबराए हुए ब्राह्मण ने चुपचाप उस बंदी की बात मान ली और उसकी पगड़ी पहन ली। उस समय वस्त्रों और उत्तरीयों को बटकर रस्सी बनाई गई और बंदी लोग उसीके सहारे झरोखे से निकलकर भाग गए। उन बंदियों के नेता ने बड़े कष्ट से झरोखे में से पहले तो ऋषभ देव का स्थूल शरीर निकाला और तब सब के अंत में वह स्वयं उसमें से निकला। स्वाधीन होकर और सब बंदी तो अपने अपने अभीष्ट स्थान की ओर चले गए, परंतु वह असहाय ब्राह्मण किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर चुपचाप वहीं खड़ा रहा। उसे इस प्रकार खड़ा देखकर बंदियों के नेता ने पूछा—तुम खड़े क्यों हो?

ब्राह्मण ने ठंढी साँस लेकर कहा—मैं कहाँ जाऊँ?

नेता—तुम कहाँ के रहनेवाले हो?

ऋषभ—गौड़ का।

नेता—पाटलिपुत्र में कहाँ रहते हो?

ऋषभ—कहीं नहीं।

नेता—तो फिर पकड़े क्यों गए थे?

ऋषभ—मैं नहीं जानता।

नेता—नगर में क्या करने आए थे?

ऋषभ—राजप्रासाद में फलाहार करने।

उत्तर सुनकर वह व्यक्ति पहले तो कुछ हँसा और फिर बोला—अब यदि तुम यहीं खड़े रहोगे तो लोग तुम्हें फिर पकड़ लेंगे।

ऋषभ—अच्छी बात है। जब मेरे लिए कोई आश्रय ही नहीं है, तब कारावास ही श्रेष्ठ है।

नेता—फिर तुम भागे क्यों?

ऋषभ—तुम लोगों ने मुझे छोड़ा ही कहाँ?

नेता—अच्छा तो तुम मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें आश्रय दूँगा।

इतना कहकर वह व्यक्ति चल पड़ा। ऋषभदेव ने भी चुपचाप उसका अनुकरण किया। बहुत से टेढ़े मेढ़े और अँधेरे रास्तों को पार करते हुए अंत में दोनों काठ के बने एक अँधेरे घर के सामने जा खड़े हुए। ब्राह्मण के साथी ने द्वार खटखटाया। तुरंत द्वार खुल गया। दोनों ने उस घर में प्रवेश किया। द्वार फिर बंद हो गया।

उसी समय महाप्रतीहार कृष्णगुप्त ने प्रासाद के तीसरे फाटक के प्रतिहारों से पूछा—कल संध्या समय गौड़ का जो ब्राह्मण यहाँ ठहरा हुआ था, वह कहाँ गया ? पट्टमहादेवी की आज्ञा है कि उसे अंतःपुर में ले आओ।

———

नवाँ परिच्छेद

मंत्रगृह

रात बहुत बीत चुकी है। विशाल गुप्त साम्राज्य की विशाल राजधानी में आधी रात की आरती के शंखों और घंटों का निनाद थम गया है। गंगा तट पर संगमरमर का बना असंख्य खंभोंवाला साम्राज्य का मंत्रगृह है। उस मंत्रगृह में शुभ्र वस्त्र पहने एक दीर्घाकार कृष्ण वर्ण ब्राह्मण खड़े हैं। मंत्रगृह में सोने की सिकड़ियों से लटके हुए चाँदी के आधारों में सैकड़ों सुगंधित दीपक जल रहे हैं। खंभों की ओट में चाँदनी में बहती हुई भागीरथी का जल चाँदी की धार के समान जान पड़ता है। पास ही गंगा तट पर फाटक पर एक प्रतीहार खड़ा है जिसका वर्म्म चंद्रमा की किरणों में चमक रहा है। वृद्ध ब्राह्मण मंत्रगृह में किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इतने में एक गूँगा सेवक चाँदी की पंखी लिए वहाँ आया। परंतु वृद्ध ने उसे संकेत से वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी।

प्रायः आध दंड के उपरांत अंतःपुर के फाटक के सामनेवाले मार्ग पर उज्ज्वल प्रकाश दिखलाई दिया। कोई सौ उल्काधारी फाटक से बाहर निकले। वृद्ध यह देखकर कुछ हँसे कि उल्काधारियों, महल्लिकाओं और प्रतीहारों से

घिरे हुए दो दीर्घाकार पुरुष धीरे धीरे पैर बढ़ाते हुए मंत्रगृह की ओर आ रहे हैं। कुछ ही क्षणों के उपरांत सम्राट् प्रथम कुमारगुप्त और महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने मंत्रगृह में प्रवेश किया। परिचारकों ने चाँदी के बने दो सिंहासन और एक कुशासन रखा। परंतु सम्राट् ने कुशासन ग्रहण नहीं किया। वे चुपचाप सिर झुकाए वृद्ध के सामने खड़े रहे। गोविंदगुप्त ने एक गूँगे परिचारक को कुछ संकेत किया। उसी समय उल्काधारियों और प्रतीहारों ने मंत्रगृह छोड़कर अपना अपना मार्ग लिया और उनके स्थान पर शस्त्रधारी गूँगे और बहरे परिचारक लोग मंत्रगृह को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए। गुप्त साम्राज्य की यही प्राचीन रीति थी।

उस रात को जो मंत्रणा हुई वैसी मंत्रणा मंत्रगृह के आचारों के अभ्यस्त उन गूँगे और बहरे परिचारकों ने पहले कभी नहीं देखी थी। उल्काधारियों और प्रतीहारों के दूर निकल जाने पर प्रौढ़ सम्राट् सहसा वृद्ध ब्राह्मण के पैरों पर गिर पड़े और रुँधे हुए कंठ से बोले—तात! मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

दामोदर शर्म्मा ने कुमारगुप्त को आलिंगन करके कहा—कुमार! तुम मेरे पुत्र के समान हो। मैं क्या कभी तुम्हारे अपराध पर ध्यान दे सकता हूँ? मैं चंद्रगुप्त का बाल्यावस्था का सखा और समुद्रगुप्त के सचिव का पुत्र हूँ। मैं केवल इसी भय से पागल हो रहा था कि कहीं नर्त्तकी इंद्रलेखा की कन्या के सामने मुझे सिर न झुकाना पड़े।

इतने में गोविंदगुप्त ने कहा—पितृव्य! बीती हुई बात के लिये व्यर्थ चिंता करने से कोई लाभ नहीं। मैं आज ही राजधानी में आया हूँ और कल ही लौट जाऊँगा। मैं सीमांत पर भारी विपत्ति के लक्षण देखता आया हूँ। अतः अधिक समय तक अनुपस्थित रहने का मुझे साहस नहीं होता।

दामोदर—गोविंद! तुम युवावस्था अवश्य ही पार कर चुके हो; परंतु अभी तक बालकोंवाली चपलता ने तुम्हें नहीं छोड़ा। छः महीने का मार्ग एक ही महीने में चलकर अभी दो पहर हुए, तुम घर आए हो। अभी कुछ दिनों तक विश्राम करो। सीमांत पर तो नित्य ही उपद्रव हुआ करते हैं। परंतु शक राजा लोग अभी तक आर्य्य राजनीति अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं। तुम एक महीने तक विश्राम करो, फिर जालंधर चले जाना।

गो०—पितृव्य ! यह नई विपत्ति शक राजाओं के आत्मविद्रोह के कारण नहीं है। कुरुवर्ष में एक नई शक जाति आई है। वक्षु का तट इस समय उसी जाति के अधिकार में है। हूण जाति का नाम आपको स्मरण है न ?

कुमार—गोविंद, तुमने एक बार इस नई जंगली जाति के संबंध के कुछ लिखा भी था न ?

गो०—प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में जब महानदी का बर्फ गल जाता है, तब हूण लोग शकों के राज्य पर आक्रमण करते हैं। पाँच वर्ष पहले मैं शकराज चक्र के अनुरोध से वाह्लीक से इस नई जंगली जाति को मार भगाने के लिये गया था। पितृव्य, हूणों के संबंध की बातें बहुत हैं। अतः आप लोग आसन ग्रहण करें।

सम्राट् और गोविंदगुप्त के सिंहासन पर बैठने के उपरांत दामोदर शर्मा कुशासन पर बैठ गए। सम्राट् ने कहा--गोविंद, तुमने तो उस समय लिखा था कि हूण लोग जिस प्रकार मार भगाए गए हैं, उसे देखते हुए जान पड़ता है कि अब वे लोग कभी साम्राज्य की सीमा में पैर रखने का साहस न करेंगे।

गो०--मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि सहसा सीमांत की समस्त जंगली जातियों ने क्यों इस प्रकार सिर उठाया है। गत वर्ष चीन सीमांत से व्यापारी लोग माल लेकर आर्यावर्त्त में नहीं आने पाए। हम लोगों के स्वार्थवाह लोग वक्षु तट से लौट आए हैं। मरुभूमि के बालुका-समुद्र में किस प्रकार यह नई तरंग उठी है, यह समझ में नहीं आता।

दा०--गोविंद, सीमांत की जंगली जातियों का उपद्रव तो शक मंडलेश्वर के लिये कोई नई बात नहीं है। फिर तुम इसके लिये इतने चंचल क्यों हो गए ?

गो०--तात, मैंने हूण जाति को अनेक बार उपद्रव करते देखा है, परंतु उनका ऐसा भाव मैंने आज तक कभी नहीं देखा। जालंधर में मुझे २० वर्ष बीत गए। इस बीच में मुझे अनेक बार अनेक जंगली जातियों से युद्ध और विग्रह करना पड़ा है; परंतु आजतक मैं कभी भयभीत नहीं हुआ। इस समय शक लोग तो निर्वीर्य हो गए हैं, परंतु हूण लोग वीर्यवान् हो रहे हैं। शकों की सेना लेकर अब हूणों की बाढ़ रोकना संभव नहीं है।

कुमार०—तो क्या तुम यह समझते हो कि हूण लोग भट्टारक समुद्रगुप्त के साम्राज्य पर आक्रमण करने का साहस करेंगे ?

गो०—इस वर्ष तो उन्होंने ऐसा नहीं किया, परंतु आगामी ग्रीष्म ऋतु में वे अवश्य आक्रमण करेंगे। वे लोग बाह्लीक और कपिशा के शकों को तृणवत् समझते हैं। हूण जाति को कभी साम्राज्य की सेना से काम नहीं पड़ा, अतः आर्यावर्त्त की सेना के प्रति उन लोगों की विशेष श्रद्धा नहीं है।

दा०—गोविंद, यह तुम क्या कर रहे हो ? क्या एक साधारण जंगली जाति की गति रोकने के लिये पाटलिपुत्र से युद्ध की व्यवस्था करनी पड़ेगी ?

गो०—तात ! केवल पाटलिपुत्र में ही नहीं, साम्राज्य के प्रत्येक नगर, प्रत्येक मंडल और प्रत्येक भुक्ति में इस युद्ध की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

कुमार०-सीमांतपर आक्रमण करने के लिये अथवा आत्मरक्षा के लिये ?

गो०—मैं यह तो नहीं कह सकता कि आत्मरक्षा की चेष्टा करनी पड़ेगी या नहीं, परंतु सीमांत की रक्षा के लिये विशेष रूप से चेष्टा करनी पड़ेगी। यदि गांधार और कपिशा की पर्वतमाला की रक्षा न होगी, तो आर्यावर्त की रक्षा असंभव हो जायगी। महाराज ! मैंने सुना है कि किसी समय एक बार वक्षुतट पर जंगली शक जाति समुद्र की तरह विक्षुब्ध हो उठी थी। जिस समय उसकी तरंगें कपिशा, गांधार और उद्यान को पार करके पंचनद तक आ पहुँची थीं, उस समय उसके सामने आर्यावर्त्त के राज्यों की बड़ी बड़ी सेनाएँ तिनकों के मुट्ठों की तरह बह गई थी।

दा०—गोविंद, तुम शक-मंडलेश्वर हो। स्वर्गीय परम भट्टारक महाराजाधिराज ने बहुत सोच समझकर ही भट्टारिका ध्रुवस्वामिनी के बहुत से पुत्रों में से तुमको ही सीमांत की रक्षा के लिये नियुक्त किया था। तुम्हें सीमांत की जंगली जातियों से काम पड़ चुका है। अतः तुम सीमांत की अवस्था अच्छी तरह जानते हो। यदि आवश्यक हो तो छः मास में साम्राज्य की समस्त सेना जालंधर में बुला लेना।

कुमार०—गोविंद ! यदि विपत्ति आना ही चाहती हो तो शीघ्र ही युद्ध का प्रबंध करना पड़ेगा। आगामी वर्ष ग्रीष्म ऋतु के आरंभ से पहले ही

वाह्लीक, कपिशा और गांधार को सुरक्षित करना पड़ेगा। मैं कल ही मंत्र-सभा का आह्वान करूँगा। सीमांत की रक्षा के लिए तुम क्या प्रबंध कर आए हो ?

गो०—सौराष्ट्र और मालव युद्ध के सैनिक पहले ही वाह्लीक की ओर जा चुके हैं। भास्करगुप्त कपिशा नगर में पचीस हजार सेना लेकर पड़े हुए हैं। जालंधर में मेरी शरीररक्षक सेना है।

कुमार०—गोविंद, शक जाति का विश्वास नहीं। तुमने पहले ही समाचार क्यों नहीं भेजा ?

गो०—मैंने पत्र भेजा था, परंतु उसका कोई उत्तर नहीं मिला। जान पड़ता है कि वह महाराजाधिराज के सामने उपस्थित नहीं हुआ।

दामो०—यह उस समय गणिका इंद्रलेखा के घर पर थे। इसी कारण उस पत्र का समाचार ये न सुन सके थे।

गो०—इसीलिये मैं सौ योजन चलकर पाटलिपुत्र आया हूँ।

उत्तर सुनकर कुमारगुप्त ने सिर झुका लिया। उस समय गोविंदगुप्त ने कहा—तात, मेरा एक वक्तव्य और है।

दामो० - हाँ हाँ, कहो ।

गो०—पितृव्य, मैं अब प्रौढ़ नहीं हूँ, वृद्ध हो गया हूँ। अग्निगुप्त भी वृद्ध हो गए हैं। हूण युद्ध के लिये एक नए नायक की आवश्यकता है। शाक मंडल में कोई विश्वसनीय और प्रभु भक्त सेनानायक नहीं है।

कुमार०—गोविंद, तुम्हारे साथ स्कंद, हर्ष, भानुमित्र, आदित्य वर्मा आदि तरुण नायक लोग रहेंगे।

दामो०—महाराज, युवराज स्कंदगुप्त, कुमार हर्षगुप्त, भानुमित्र, आदित्य आदि इस नए युद्ध में महाराज पुत्र के साथ रहने के योग्य हैं।

गो० महाराज, मैं यही प्रार्थना करता था।

सम्राट् ने संकेत किया। तुरंत एक गूँगा परिचारक उनके सामने आ खड़ा हुआ। कुमारगुप्त ने दूसरी बार संकेत किया। वह परिचारक अभिवादन करके चला गया। कुछ ही समय के उपरांत हाथ में सोने का दंड लिए हुए दंडधर ने आकर सम्राट् को अभिवादन किया। कुमारगुप्त ने

उसने कहा – महाप्रतीहार को शीघ्र बुला लाओ । कुछ ही समय के उपरांत गुप्त साम्राज्य के महाप्रतीहार कृष्णगुप्त ने मंडप के द्वार पर पहुँचकर सम्राट्, महाराजपुत्र और मंत्री को अभिवादन किया । कुमारगुप्त ने कहा—कृष्ण, कल दिन को तीसरे पहर मंत्रगृह में सभा होगी । इस समय नगर में साम्राज्य के जितने युवराज भट्टारकपादीय और कुमारपादीय राजपुरुष उपस्थित हैं, उन सबके पास तुम स्वयं जाओ और उन सबसे सभा में आने के लिये कह आओ ।

महाप्रतीहार ने अभिवादन करके वहाँ से प्रस्थान किया ।

सम्राट् के पुनः संकेत करने पर गूँगे और बहरे परिचारक लोग चले गए और उल्काधारी दंडधर आ गए । सम्राट्, महाराजपुत्र और महामंत्री उठ खड़े हुए । गोविंदगुप्त जिस समय मंत्रगृह से निकल रहे थे, उस समय एक प्रतीहार अभिवादन करके उनके सामने आ खड़ा हुआ । सम्राट् और दामोदर शर्मा के कुछ आगे बढ़ने पर उस प्रतीहार ने कहा—महाराज की जय हो । एक स्त्री इसी समय आपके दर्शन करने की प्रार्थना करती है ।

गोविदगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—स्त्री ?

प्रतीहार – हाँ प्रभु, स्त्री है, और युवती स्त्री है । कपड़े लत्ते भी वह अच्छे ही पहने हुए है । वह इसी समय आपके दर्शन करना चाहती है ।

गो०—उसने अपना कुछ परिचय दिया है ?

प्रतीहार—जी नहीं ।

गोविंदगुप्त ने एक दंडधर को बुलाकर कहा – तुम महाराजाधिराज से निवेदन कर दो कि मैं आध दंड में अंतःपुर में आऊँगा ।

दंडधर अभिवादन करके चला गया । उस समय गोविंदगुप्त ने प्रतीहार से कहा—स्त्री ने कोई परिचय तो नहीं दिया, परंतु कोई चिह्न भी दिखलाया है या नहीं ?

प्रतीहार—हाँ प्रभु, उसने मुझे सोने की एक अँगूठी दी है ।

इतना कहकर उस सैनिक ने गोविंदगुप्त के हाथ में सोने की एक अँगूठी दे दी । उस सुरक्षित प्रासाद में इतने अधिक रक्षकों से घिरे होते पर भी उस अँगूठी को देखकर महाराजपुत्र गोविंदगुप्त सिहर उठे । प्रतीहार भय के मारे

दो पग पीछे हट गया। तुरंत ही अपने आपको सँभालकर गोविंदगुप्त ने कहा—अच्छा तुम उस स्त्री को मंत्रगृह में ले आओ।

प्रतीहार चला गया और तुरंत ही घूँघट काढ़े हुए एक युवती को अपने साथ ले आया। स्त्री को वहाँ पहुँचाने के उपरांत वह तुरंत ही वहाँ से चला गया। गोविंदगुप्त ने उस स्त्री से पूछा—तुम कौन हो ?

स्त्री ने कोई उत्तर तो नहीं दिया, परंतु अपना घूँघट खोल दिया। गोविदगुप्त ने देखा कि वह युवती बहुत रूपवती है। उन्होंने कुछ मुस्कराकर कहा—मैंने तुम्हें नहीं पहचाना। मेरे रूप पहचानने के दिन निकल गए।

स्त्री—मैं मंदमलयानिल के देश से आई हूँ।

गो०—मैं उस देश से परिचित अवश्य हूँ। तुम क्यों आई हो ?

स्त्री—पत्र देने के लिये।

गो०—किसका पत्र ?

स्त्री०—स्वामिनी का।

गो०—कौन स्वामिनी ?

स्त्री—मैंने सुना है कि महाराजपुत्र बड़े रसिक हैं।

गो०—रसिकता का समय तो अब बीत गया।

स्त्री—परंतु क्या इसी प्रकार भूलना होता है ?

गो०—मैं भूला नहीं हूँ; और कभी भूलूँगा या नहीं, इसमें भी संदेह ही है।

स्त्री - सभी पुरुष यही बात कहा करते हैं।

सहसा गोविंदगुप्त की आँखें चमक उठीं। उन्होंने तीव्र स्वर से कहा—अंतिम स्मृति तपे हुए लोहे की कील के द्वारा मेरे हृदय पर अंकित हुई थी। तुमने मंदमलयानिल को देखा है ?

स्त्री—मैं तो इसी समय देख रही हूँ।

गो०—तुमने अभी तक नहीं देखा। यह देखो।

इतना कहकर महाराजपुत्र ने कोष से तलवार निकालकर युवती के सामने उठाई। युवती ने दो पग पीछे हटकर कहा—प्रभु! मैंने सुना था कि मंदमलयानिल मनुष्य हैं।

गो०—परंतु अब जाकर कह देना कि २० वर्ष में मनुष्य ने यह रूप धारण किया है।

उस समय स्त्री ने अपने आँचल से एक पत्र खोलकर गोविंदगुप्त के हाथ में दिया। दीपक के प्रकाश में वह पत्र पढ़कर उन्होंने कहा—तुम जाओ। इसका कोई उत्तर नहीं है।

स्त्री अभिवादन करके चली गई। तुरंत ही गोविंदगुप्त ने एक दंडधर को आज्ञा दी कि उस स्त्री को बुला लाओ। स्त्री के आने पर महाराजपुत्र ने उससे कहा—तुम कह देना कि मैं भेंट करूँगा, परंतु उस घर में नहीं। पहले जिस प्रकार कुक्कुटाराम के विहार में भेंट हुआ करती थी, उसी प्रकार अब की बार भी भेंट होगी।

स्त्री पुनः अभिवादन करके चली गई। रात के तीसरे पहर महाराजपुत्र की आज्ञा से महाप्रतीहार कृष्णगुप्त उनके पुराने सेवक मुरारी को ढूँढ़ने के लिये निकले।

दसवां परिच्छेद

भोजन-दक्षिणा

जिस समय ऋषभदेव और उसके अपरिचित मित्र ने उस अँधेरे घर में प्रवेश किया, उसी समय उस घर का द्वार बंद हो गया। साथ ही अँधेरे में से किसी ने पूछा—कौन ?

ऋषभदेव के आश्रयदाता ने उत्तर दिया—वन के पक्षी।

फिर प्रश्न हुआ—कहाँ से आते हो ?

"पिंजड़े में से।"

"किस प्रकार ?"

"सिकड़ी तोड़कर।"

"तुम लोग किस बन के पक्षी हो ?"

"वृंदावन के।"

अब प्रश्नकर्त्ता का स्वर बदल गया। अब तक वह विकृत अनुनासिक स्वर में बातें करता था, परंतु अब उसने स्वाभाविक स्वर में पूछा—तुम कौन हो?

उत्तर मिला—शर्वनाग।

सहसा कोठरी के झरोखे का दीपक जल उठा। मोछ दाढ़ीवाले एक व्यक्ति ने पूछा—भागे किस प्रकार?

"झरोखे से होकर।"

"साथ में कौन था?"

"एक और बंदी।"

"वह तुम्हारा परिचित है?"

"नहीं, परंतु फिर भी कोई चिंता की बात नहीं है। ये गौड़ के ब्राह्मण हैं, राजधानी में फलाहार करने आए थे।"

प्रश्न करनेवाले ने हँसकर फिर पूछा—क्यों देवता! राजधानी का फलाहार कैसा लगा?

भूखे और थके हुए ब्राह्मण ने कहा—बहुत ही विषम। बस अब प्राण निकलना चाहते हैं। तुम्हारे घर में कुछ भोजन है?

"हाँ।"

कोठरी का द्वार खुल गया और शर्वनाग तथा ऋषभदेव ने उसमें प्रवेश किया। ब्राह्मण ने बहुत ही कातर होकर गृहस्वामी से कहा—कुछ भोजन लाओ।

उत्तर मिला—पहले दलपति के पास चलो।

तीनों ने पास की एक कोठरी में प्रवेश किया। वह कोठरी बहुत बड़ी और लंबी चौड़ी थी और उसके एक कोने में एक छोटा सा दीपक जल रहा था। उस दीपक से अंधकार दूर नहीं होता था। कोठरी में कई पुरुष बैठे हुए मिट्टी के पात्रों में मद्य पी रहे थे। उनमें से एक ने पूछा—कौन?

गृहस्वा०—शर्वनाग भाग आया है।

व्यक्ति—अच्छी बात है। साथ में कौन है?

गृहस्वा०—एक और बंदी है। वह गौड़ से राजधानी में फलाहार करने के लिये आया था। इसी कारण वह बंदी हो गया था। बेचारा ब्राह्मण बहुत भूखा है।

उस व्यक्ति ने ऋषभदेव से पूछा—क्यों ब्राह्मण देवता! क्या खाओगे?

ऋषभ०—जो कुछ मिल जाय वही खा लूँगा। इस समय जो कुछ यहाँ हो, वही ले आओ।

इतना कहकर ऋषभदेव वहीं बैठ गए। दलपति ने पूछा—गौड़ देश के ब्राह्मण सूअर का मांस खाया करते हैं। भुना हुआ सूअर का मांस है—खाओगे?

ऋषभदेव ने घृणा से मुँह फेरकर कहा—गोविंद! गोविंद!

दलपति—तो फिर जान पड़ता है कि तुम्हें अधिक भूख नहीं लगी है।

ऋ०—भइया, परिहास के लिए बहुत सा समय है। क्या ब्राह्मण भी कभी सूअर का मांस खाते हैं? गोविंद तुम्हारा मंगल करें। घर में और जो कुछ भोजन हो, वह ले आओ।

दलपति—तुम झूठ बोलते हो। तुम कहते हो कि ब्राह्मण सूअर का मांस नहीं खाते। मैं तुम्हें दिखलाऊँ? विश्वेश्वर! तुम कौन जाति हो?

दल के एक व्यक्ति ने कहा—ब्राह्मण।

दल०—तुम सूअर का मांस खाते हो?

विश्वे०—नित्य।

दल०—इस समय खाओगे?

विश्वे०—कहीं है?

ब्राह्मण विश्वेश्वर ने दलपति के जूठे पात्र में से सूअर के मांस का एक टुकड़ा उठाकर चटपट मुँह में डाल लिया। दलपति ने हँसकर पूछा—देख लिया न? अब तो तुम भी खाओगे?

ऋ०—नहीं।

ऋषभदेव गहरी साँस लेकर वहीं लेट गए। दलपति ठठाकर हँस पड़ा। इसी प्रकार कुछ समय बीत गया, परंतु ब्राह्मण देवता न उठे। यह देखकर दलपति ने पूछा—क्यों ब्राह्मण देवता, कुछ खाओगे नहीं?

ब्राह्मण ने बहुत ही दुःखित होकर कहा—नहीं।

दलपति—तुम तो अभी कह रहे थे कि बड़ी भूख लगी है।

ब्र०—हाँ, यह तो ठीक ही है?

दल०—तो फिर खाओगे क्यों नहीं?

ब्र०—विधाता की इच्छा नहीं है।

दल०—मेरे सामने भोजन रखा है। उठकर खा लो।

ब्र०—मागध ब्राह्मण सूअर का मांस खा सकते हैं, पर गौड़ीय ब्राह्मण नहीं खाते।

दल०—अच्छा तो फिर भूखों मरो।

इतने में शर्वनाग बोल उठा—अब इस ब्राह्मण को कुछ खिला दो। अधिक कष्ट मत दो।

दलपति की आज्ञा से मिट्टी के पात्र में कुछ चिउड़े और थोड़ा सा गुड़ रखा गया। ब्राह्मण ने उस पात्र में हाथ डाला ही था कि इतने में किसी ने द्वार पर एक लात मारी। उसी समय दीपक बुझ गए। ब्राह्मण देवता मारे डर के हाथ में भोजन का पात्र लिये उठ खड़े हुए। पास की एक कोठरी में से उसी अँधेरे में एक व्यक्ति ने आकर दलपति से कहा—चोर पकड़नेवाले सैनिकों और स्वयं उनके प्रधान ने आकर घर घेर लिया है। अब किसी ओर भागने का मार्ग नहीं है।

दलपति—अच्छा, तो फिर युद्ध होगा।

आगंतुक—लड़ना व्यर्थ है। हमलोग केवल १५ या २० हैं और बाहर सौ से अधिक सशस्त्र प्रतीहार खड़े हैं।

दल०—तो फिर क्या किया जाय?

आगं०—आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

दल०—अच्छा, तो तुम लोग आत्मसमर्पण करो। मैं भागता हूँ। मैं कहीं कृष्णगुप्त के हाथ में न पड़ जाऊँ नहीं तो दल का कोई चिह्न भी न रह जायगा।

आगं०—किस प्रकार भागोगे?

दल०—प्रतीहार बनकर।

आगं०—तो क्या द्वार खोल दूँ ?

दल०—नहीं······

इतने में प्रतीहार लोग द्वार तोड़कर और हाथ में प्रकाश लिये हुए अंदर आ पहुँचे। हाथ में चिउड़े लिये ऋषभदेव दूसरी बार फिर बिना अपराध के बंदी हुए। प्रतीहार लोग बंदियों को कारागार में ले गए। एक करणिक ने उन सबके नाम लिख लिये और प्रत्येक को अलग अलग कोठरी में बंद कर दिया। केवल ऋषभदेव से वहीं प्रतीक्षा करने के लिये कहा गया। कुछ समय के उपरांत उस व्यक्ति ने ऋषभदेव को लेकर एक दूसरी कोठरी में प्रवेश किया। उस कोठरी में एक दुबले-पतले कृष्णवर्ण वृद्ध बैठे हुए थे। करणिक ने उनसे कहा—प्रभु ! यही वह गौड़ीय ब्राह्मण है।

वृद्ध—तुम्हारा क्या नाम है ?

ऋ०—ऋषभ शर्म्मा।

वृद्ध—कहाँ के रहनेवाले हो ?

ऋ०—गौड़ देश के।

वृद्ध—पाटलिपुत्र में क्या करने आए थे ?

ऋ०—गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्र के साथ राजधानी देखने के लिये।

इसके उपरांत ऋषभदेव ने करुणादेवी के साथ रथ पर प्रमोद तोरण तक आने के समय से लेकर चोरों के घर में दूसरी बार बंदी होने तक की सब बातें विस्तार से कह सुनाईं। वृद्ध उठकर कोठरी से बाहर निकले। उनके आज्ञानुसार ऋषभदेव भी उनके पीछे पीछे हो लिए। द्वारपर एक रथ खड़ा था। दोनों उसीपर बैठ गए। उस रात के तीसरे पहर के समय रथ ने प्रासाद के तीनों फाटकों को पार करके अंतःपुर में प्रवेश किया।

अतःपुर के द्वार पर एक व्यक्ति ने पूछा—प्रभु ?

वृद्ध—हाँ।

व्यक्ति—कुछ ही समय हुआ, सम्राट् आपको पूछते थे।

वृद्ध—तुमने क्या कह दिया ?

व्यक्ति—मैंने कह दिया कि महाप्रतीहार अभी तक नगर से नहीं लौटे।

आप शीघ्र अंतःपुर में जायँ। महादेवी और करुणादेवी ने अभी तक भोजन नहीं किया।

वृद्ध—क्यों ?

व्यक्ति--पुरद्वार से ब्राह्मण भूखा चला गया था। अब जब तक वह भोजन न कर लेगा, तब तक वे लोग अन्न ग्रहण न करेंगी।

महाप्रतीहार और ऋषभदेव ने अंतःपुर में प्रवेश किया। पुरद्वार पर ऋषभदेव को महल्लिका के हाथ सौंपकर कृष्णगुप्त चले गए। अंतःपुर के एक कमरे में सम्राट् कुमारगुप्त, महाराजपुत्र गोविंदगुप्त, पट्टमहादेवी, करुणादेवी, अरुणादेवी, युवराज स्कंदगुप्त और कुमार हर्षगुप्त बैठे हुए थे। महल्लिका ने ऋषभदेव को लेकर उसी कमरे में प्रवेश किया। करुणा देवी कमरे के द्वारपर ही खड़ी थी। उन्होंने ऋषभदेव को देखते ही कहा—ब्राह्मण देवता, तुम आ गए ? मेरे तो प्राण निकल रहे थे।

ब्राह्मण को सब लोगों ने प्रणाम किया। इसके उपरांत एक महल्लिका उन्हे दूसरे कमरे में ले गई और नए वस्त्र पहना लाई। जिस समय ऋषभ देव हाथपैर धोकर और नए सुंदर वस्त्र पहनकर कमरे में आए, उस समय कमरे का रंगढ़ंग परिवर्तित हो चुका था। उस बड़े कमरे में एक ओर सम्राट् गोविंदगुप्त और महादेवी बैठी हुई थी और उनके पीछे खिड़की के पास स्कंदगुप्त और हर्षगुप्त खड़े थे। कमरे के बीच में काश्मीर देश का एक बड़ा आसन बिछा था और उसके चारो ओर सोने और चाँदी के बड़े बड़े पात्र रखे हुए थे जिनमें अनेक प्रकार के यथेष्ट सुंदर खाद्य पदार्थ भरे हुए थे। वह सब भोजन-सामग्री देखकर ब्राह्मण देवता स्तंभित होकर द्वार पर ही रुक गए और सिर पर हाथ रखकर वहीं बैठ गए। उनकी अवस्था देखकर सम्राट् ने घबराकर पूछा—क्यों ब्राह्मण देवता, क्या हुआ ?

ब्राह्मण ने ठंढी साँस लेकर कहा—महाराज ! क्या कहूँ, आज मेरे भाग्य में भोजन बदा ही नहीं है।

गोविंदगुप्त ने कहा—इतना भोजन तो प्रस्तुत है। तुम भोजन क्यों न करोगे ?

ऋ०—महाराज, विधाता मुझसे विमुख हैं। ऐसा सुंदर भोजन – राजधानी का फलाहार मुझे परित्याग करना पड़ता है। अब यदि मैं भोजन करने लूँ तो मेरी प्रतिज्ञा टूट जायगी।

करुणा—हैं! तुम यह क्या कहते हो? तुम्हारे भोजन न करने के कारण तो माताजी ने अभी तक भोजन नहीं किया।

ऋषभदेव ने दुःखित होकर कहा—गौड़ के ब्राह्मण समाज में मेरे संबंध में यह प्रसिद्ध है कि जब तक मैं पात्र का सारा अन्न समाप्त नहीं कर लेता, तब तक आचमन नहीं करता। परंतु यहाँ फलाहार का जो आयोजन है, उसके कारण मेरी वह ख्याति नष्ट हो जायगी। इसके अतिरिक्त गुरुदेव की यह भी आज्ञा है कि पात्र में भोजन छोड़कर नहीं उठना चाहिए। यहाँ जितना भोजन रखा हुआ है, वह तो दस दिन में भी समाप्त न होगा।

ब्राह्मण की बात सुनकर सब लोग ठठाकर हँस पड़े। गोविंदगुप्त ने कहा—ब्राह्मण देवता, तुम्हें न तो यह अन्न परित्याग करना पड़ेगा और न अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ेगी। तुम एक एक पात्र का अन्न एक एक दिन ग्रहण करना।

ब्राह्मण ने ठंढी साँस लेकर कहा—परंतु दस दिन में तो यह सारा अन्न नष्ट हो जायगा।

गोविंद—नहीं, इसकी चिंता जाने दो। महादेवी और करुणा तथा अरुणा पाकविद्या में द्रौपदी ही हैं।

ऋषभ—महाशय, आप बड़े ही विलक्षण हैं। मैं आशीर्वाद देता हूँ—युद्ध में आपकी सदा जय हो। आपका परामर्श सर्वोत्तम है। (करुणादेवी की ओर देखकर) आज मैं केवल अन्न खाऊँगा; और व्यंजन प्रातःकाल के लिये रखवा दीजिए।

ब्राह्मण की बात सुनकर फिर सब लोग हँस पड़े। गोविंदगुप्त ने कहा—व्यंजनों को प्रातःकाल के लिये रखवाने की आवश्यकता नहीं। कल दूसरे व्यंजन बनेंगे। तुम भोजन करो।

ऋषभदेव बड़ी विपत्ति में पड़े। उनके लिये जो भोजन सामग्री रखी हुई थी, उसमें दस प्रकार के तो मांस और मछली के बने हुए ही खाद्यपदार्थ

थे। वे निश्चित न कर सके कि किस पात्र में से भोजन करना चाहिए। रात समाप्त होते देखकर अंत में ब्राह्मण ने अपने सामने का एक पात्र खींचकर भोजन करना आरंभ किया। एक ही दंड में उस चाँदी के पात्र में का ढेर का ढेर अन्न समाप्त हो गया। कमरे के सब लोग बड़े आश्चर्य से आँखें फाड़ फाड़कर ब्राह्मण का अद्भुत भोजन करना देख रहे थे। भोजन की समाप्ति पर सम्राट् ने ताली बजाई। तुरंत एक दंडधर आ पहुँचा। सम्राट् ने उसे महाप्रतीहार को बुलाने की आज्ञा दी। कृष्णगुप्त के आने पर सम्राट् ने कहा—कृष्ण, ब्राह्मण को सौ दीनार की जगह हजार दीनार भोजन की दक्षिणा दो।

एक हजार दीनार दक्षिणा सुनते ही ऋषभदेव मारे आनंद के आपे से बाहर हो गए और उन्होंने जूठे हाथों और जूठे मुँह ही आशीर्वाद दे डाला!

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मुरारी।

दिन के पहले पहर सभा की समाप्ति पर सम्राट् और गोविंदगुप्त अंतःपुर में लौट आए। ऋषभदेव उस समय पाटलिपुत्र का कोस भर लंबा चौड़ा, बहुमूल्य पत्थरों से बना हुआ और अपूर्व चित्रकारी आदि किया हुआ राजप्रासाद घूम घूमकर देख रहे थे। वे संगमरमर के अलिंद में अनेक प्रकार के पत्थरों से जड़कर बनाए हुए वृक्ष, लताएँ, पशु और पक्षी आदि देख रहे थे। इतने में किसीने पीछे से पुकारा—ब्राह्मण देवता!

ब्राह्मण ने पीछे फिरकर देखा, गोविंदगुप्त खड़े हैं। उन्होंने हँसकर कहा—महाराजपुत्र की जय हो। क्या आज्ञा होती है?

गो०—आओ चलो, तुम्हें नगर दिखला लावें।

ऋ०—महाराज, इस ब्राह्मण का अपराध क्षमा कीजिएगा। आपका नगर बहुत कठिन स्थान है। इस दरिद्र गौड़ीय ब्राह्मण से यह नगर देखा जा सकेगा या नहीं, इसमें संदेह ही है।

गो०—नहीं, तुम डरो मत। हम लोग रथ पर चलेंगे। तुम मेरे साथ रहना, फिर किसी प्रकार की विपत्ति की आशंका न रह जायगी।

ऋ०— महाराज, आप लोग नगरों के रहनेवाले हैं। यह नगर आप लोगों को ही सहेगा। मेरा शरीर कुछ कोमल है, इससे कदाचित् मुझे न सहे। मुझे भय है कि कहीं मुझे फिर बिना अपराध के कारागार में न जाना पड़े।

गो०—नहीं नहीं, तुम ब्राह्मण हो; मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं जीवित रहूँगा, तब तक कोई तुम्हारा अंग छू भी न सकेगा।

ऋ०—अच्छा तो फिर चलिए।

गो०—अभी नहीं। दोपहर को भोजन के उपरांत तुम मेरे आवास में आ जाना।

ऋ०—तथास्तु।

दोपहर को भोजन के उपरांत ऋषभदेव ने वही सुंदर वस्त्र पहन लिये जो रात को उन्हें राजप्रासाद में मिले थे; और तब वे सजधज से गोविंदगुप्त के आवास में जा पहुँचे। महाराजपुत्र पहले से ही वस्त्र आदि पहनकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका वेष देखकर ऋषभदेव चकित हो गए। गोविंदगुप्त के सब अंग लोहे के वर्म्म से ढके हुए थे और उस वर्म्म पर चाँदी का काम किया हुआ था। उनकी कमर में तलवार और कृपाण, हाथ में शूल और पीठ पर एक बड़ा सा खाँडा था। ब्राह्मण ने भयभीत होकर पूछा—क्या महाराजपुत्र नगर में युद्ध करने जायँगे?

गोविंदगुप्त ने कुछ हँसकर कहा—क्यों, क्या तुम्हें डर लगता है?

ऋ०—नहीं, डर तो नहीं लगता; परंतु यदि युद्ध के समय ब्राह्मण को साथ ले लिया जाय तो यात्रा शुभ नहीं होती। यदि आज्ञा हो तो मैं महादेवी के आवास को लौट जाऊँ।

गो०—नहीं, तुम डरो मत। मैं युद्ध करने नहीं चल रहा हूँ। रंगभूमि में अभिनय करने चलता हूँ।

हाथ में एक भारी शिरस्त्राण लेकर गोविदगुप्त कमरे से बाहर निकले। उनके आवास के सामने एक रथ खड़ा हुआ था। वे ऋषभदेव को साथ लेकर उसी पर जा बैठे।

जब रथ तीसरे फाटक के बाहर निकल आया तब सारथी ने पूछा—प्रभु, कहाँ चलना होगा?

गो०—कपोतिक संघाराम के उत्तर फाटक पर।

नगर के पत्थर बिछे मार्ग पर रथ शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ने लगा। मार्ग में ऋषभदेव ने पूछा—महाराज! संघाराम तो बौद्धों का मठ है। वहाँ जाने के लिये वर्म्म पहनने की क्या आवश्यकता थी?

गो०—पाटलिपुत्र में हिंदू, बौद्ध या जैन कोई मठ निरापद नहीं है।

ऋ०—परंतु मठ मात्र ईश्वर की आराधना का स्थान है। ऐसे पवित्र स्थान में भी क्या कभी पाप प्रवेश कर सकता है?

गो०—इस तर्क वितर्क से क्या लाभ? शीघ्र ही तुम जान लोगे कि हिंदुओं और बौद्धों के मठ में क्या अंतर है।

इतने में राजपथों की भीड़ चीरता हुआ वह रथ पत्थर के प्राचीर से घिरे हुए कपोतिक संघाराम के बड़े फाटक के सामने जा पहुँचा। गोविंदगुप्त और ऋषभदेव वहीं उतर पड़े। गोविंदगुप्त ने सारथी से कहा—यहाँ रथ लेकर मेरी प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। मद्य विक्रेताओं के स्थान पर जो बड़ा कूआँ है, उसी के पास ठहरकर तुम मेरी प्रतीक्षा करो। यदि मैं आधी रात तक न लौटूँ तो जाकर कृष्णगुप्त से कह देना कि मुझपर कोई विपत्ति आई है।

गोविंदगुप्त और ऋषभदेव ने संघाराम में प्रवेश किया। सारथी रथ लेकर जाना ही चाहता था कि इतने में एक व्यक्ति ने संघाराम में से निकलकर उससे पूछा—यह तो प्रासाद का रथ जान पड़ता है। प्रासाद से रथ पर चढ़कर कपोतिक संघाराम में कौन आया है?

सारथी उसे गोविंदगुप्त का वास्तविक परिचय देना चाहता था; परंतु

फिर उसने न जाने क्या सोचकर कहा—मैं ठीक नहीं जानता; कोई उच्च पदस्थ राजपुरुष होंगे।

गोविंदगुप्त और ऋषभदेव ने संघाराम में पहुँचकर देखा कि सारा आँगन उपासकों और उपासिकाओं से भरा है। आँगन के बीच में एक बड़ा मंदिर था जिसमें घंटे और शंख बज रहे थे। गोविंदगुप्त ने वह स्थान छोड़ कर आँगन के पास की एक छोटी गली में प्रवेश किया। उस गली के दोनों ओर चैत्य और मंदिर थे। जिस स्थान पर वह गली समाप्त होती थी, उस स्थान पर एक छोटे फाटक के द्वार पर एक भिक्षु सोया हुआ था। गोविंदगुप्त ने उसे जगाया। वह तुरंत उठ खड़ा हुआ और पूछने लगा—तुम कौन हो? क्या चाहते हो?

गो०—मैं विदेशी हूँ। बहुत दूर से आया हूँ। तथागतगुप्त के दर्शन करना चाहता हूँ।

भि०—आचार्य्य तथागतगुप्त इस समय क्रियामग्न हैं। उनके दर्शन नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त वे साधारण मनुष्यों के साथ भेंट भी नहीं करते।

गो०—यदि मैं अपना नाम बतला दूँ तो क्या वे मुझसे भेंट करेंगे?

भि०—तुम कौन हो?

गो०—मैं विदेशी हूँ।

भि०—कहाँ से आते हो?

गो०—जालंधर से।

भि०—तुम्हारा नाम क्या है?

गो०—मंदमलयानिल।

भि०—तुम कहते हो कि मैं जालंधर से आ रहा हूँ; परंतु तुम्हारा बात-चीत तो पंचनदवासियों की सी नहीं जान पड़ती।

गो०—मैं मगधवासी हूँ।

भि०—तब फिर तुमने यह क्यों कहा कि मैं जालंधर से आ रहा हूँ?

गो०—कुछ विशेष कार्यों के कारण इधर कुछ दिनों से मैं जालंधर में ही रहता हूँ।

भि०—तुम कौन हो ?

गो०—महाशय, आप कृपाकर आचार्य तथागतगुप्त के पास यह समाचार भेज दीजिए कि मंदमलयानिल आपके दर्शनों की प्रार्थना करते हैं। बस फिर और किसी परिचय की आवश्यकता न रह जायगी।

भि०—अच्छा तो तुम यहीं ठहरो। मैं समाचार देने जाता हूँ।

इतना कहकर उस व्यक्ति ने फाटक के पास की एक छोटी कोठरी में प्रवेश किया। क्षण ही भर में वह बड़ा फाटक खुल गया और उस फाटक में से एक दीर्घकाय भिक्षु निकल आए। उनके साथ पूर्वपरिचित भिक्षु के अतिरिक्त ४-५ और भी भिक्षु थे। दीर्घकाय भिक्षु ने पूछा—मुझसे कौन भेंट करना चाहता है ?

पूर्वपरिचित भिक्षु ने वर्म्म पहने हुए गोविंदगुप्त की ओर हाथ उठा दिया। दीर्घकाय भिक्षु ने गोविंदगुप्त के पास आकर पूछा—क्या आप ही मुझसे भेंट करना चाहते थे ?

गो०—हाँ, क्या आप ही आचार्य तथागतगुप्त हैं ?

भि०—हाँ, आर्यसंघ में मैं इसी नाम से परिचित हूँ। आपने जिस नाम का व्यवहार किया, वह नाम आपने कहाँ सुना था ?

गो०—मुरारी ! क्या तुम मेरा स्वर सुनकर भी मुझे न पहचान सके ?

भि०—प्रभु !

गोविंदगुप्त ने सिर पर से भारी शिरस्त्राण उतार लिया। उनका मुँह देखकर आर्य्यसंघ के आचार्य तथागतगुप्त उनके पैरों पर गिर पड़े। यह देखकर उनके साथ के दूसरे भिक्षु लोग दो पग पीछे हट गए। उस समय महाराजपुत्र ने कहा—मुरारी, उठो। मुझे तुमसे कुछ काम है। अपने इन शिष्यों को विदा कर दो।

तथागतगुप्त या मुरारी ने उठकर विनीत भाव से हाथ जोड़कर कहा—प्रभु ! आप बहुत दिनों पर इस नगर में आए हैं। मैंने आपके शुभागमन का समाचार सुन लिया था। यदि मुझे आज्ञा होती तो मैं स्वयं ही प्रासाद में उपस्थित होता।

गो०—सुनो मुरारी, प्रासाद हम लोगों के परामर्श के लिये उपयुक्त

स्थान नहीं; क्योंकि प्रासाद के प्रत्येक पत्थर के कान हैं। यहाँ पास में कोई एकांत स्थान है?

मु०—हाँ, है। क्या आप संघाराम के बाहर चलेंगे?

गो०—दो एक साधारण विषयों की व्यवस्था करके तब बाहर चलूँगा।

मु०—अच्छा तो फिर दूसरे खंड पर आइए।

मुरारी वा तथागतगुप्त के साथ गोविंदगुप्त और ऋषभदेव ने फाटक के पास की एक छोटी कोठरी में प्रवेश किया। उस कोठरी के एक कोने में बहुत ही छोटी और घुमावदार एक सीढ़ी बनी थी। उसी सीढ़ी पर से होते हुए सब लोग दूसरे खंड पर जा पहुँचे। मुरारी ने सब लोगों को लेकर एक छोटी कोठरी में प्रवेश किया और उसका द्वार बंद कर लिया। उस कोठरी में कोई खिड़की या झरोखा नहीं था। वहाँ पहुँचकर गोविंदगुप्त ने कहा—मुरारी! आज बीस वर्ष के उपरांत फिर तुम्हारी विशेष आवश्यकता पड़ी है।

मु०—कहिए, क्या आज्ञा है।

गो०—आज रात को फिर उसी संकेत स्थान पर चलना होगा।

मु०—क्या उसी मद्य विक्रेताओं के स्थान पर? आप कहाँ जायँगे?

गो०—आज से २० वर्ष पहले जहाँ नित्य रात के समय जाया करता था।

मु०—इंद्रलेखा के घर पर? प्रभु, उसका रूप और यौवन तो बहुत दिन हुए, ढल चुका है।

गो०—मुरारी, जब जीवनपथ में चलते चलते किसी को आधी शताब्दी बीत जाती है, तब वह अभिसार के लिये किसी संकेत स्थान पर नहीं जाता। आज रात को मैं इस नगर में मद्य विक्रेताओं के स्थान पर पितृऋण चुकाऊँगा।

मु०—प्रभु, मैं आपका तात्पर्य नहीं समझ सका। आप आज्ञा दीजिए कि मुझे क्या करना होगा।

गो०—मैं धीरे धीरे सब समझा देता हूँ। पहले एक शपथ करो। लो, मेरी यह तलवार लो।

अंधकार में तलवार लेकर भिक्षु ने पूछा—प्रभु, किस बात की शपथ करूँ?

गो० - शपथ करो कि यदि आज रात को मेरी मृत्यु हो जायगी, तो तुम मेरे साथी इस गौड़ीय ब्राह्मण को तुरंत ही दामोदरगुप्त के घर पर पहुँचा दोगे।

मु०—मैं शपथ करता हूँ।

अब गोविंदगुप्त ने ऋषभदेव से कहा—ब्राह्मण देवता! मैं बिना किसी उद्देश्य के तुम्हें इस स्थान पर नहीं लाया हूँ। मुझे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जिसे पाटलिपुत्र में कोई पहचानता न हो। मैं तुम्हें एक बहुत बड़ा काम सौंपता हूँ। आज रात को यदि मेरी मृत्यु हो जायगी तो मुरारी और उसके अनुचर लोग तुम्हें महामंत्री के पास पहुँचा देंगे। तुम वृद्ध मंत्री से कह देना कि गरुड़ध्वज टूट गया। स्मरण रखना, कई बातें होंगी, उन्हें भूल न जाना। क्योंकि इन्हीं सब बातों पर साम्राज्य का मंगल निर्भर करता है।

ऋषभदेव ने सूखे हुए मुँह से कहा—स्मरण रखूँगा।

गोविंदगुप्त ने भिक्षु से कहा—मुरारी! संघाराम में तो मैं वर्म्म पहनकर आया हूँ। परंतु यहाँ से चलते समय मैं दूसरा वेष धारण करना चाहता हूँ। तुम जाकर कुछ वस्त्र मोल ले आओ।

मु०—प्रभु, मेरे पास ब्रह्मचारियों के बहुत से गैरिक वस्त्र हैं। क्या आप उनका व्यवहार करेंगे?

गो०—हाँ हाँ, जाओ ले आओ।

मुरारी द्वार खोलकर वस्त्र लाने गया। गोविंदगुप्त ने धीरे धीरे अपने शरीर पर से वर्म्म उतारा। ऋषभदेव ने देखा कि वर्म्म के नीचे महाराजपुत्र के कंधों और छाती पर लोहे का बना हुआ सूक्ष्म जाल चढ़ा है। इतने में मुरारी वस्त्र लेकर लौट आया। तीनों ने गैरिक वस्त्र पहन लिये। वस्त्र का एक दूसरा खंड उन लोगों ने शरीर पर ओढ़ लिया और तीसरा खंड सिर से बाँध लिया। उस समय महाराजपुत्र ने कहा—मणिकार ब्राह्मण के घर चलना होगा। नदीतट पर चलकर पहले एक नाव लेनी होगी। तुम हम लोगों को बड़े फाटक से न ले चलकर किसी गुप्त मार्ग से ले चलो और वर्म्म तथा वस्त्र आदि बंधुवर्मा के घर भेज दो।

मुरारी ने एक युवक भिक्षु को बुलाकर वर्म्म तथा वस्त्र ले जाने की आज्ञा दी। इसके उपरांत वह गोविंदगुप्त और ऋषभदेव को लेकर नीचे उतरा। उस स्थान पर एक और युवक भिक्षु हाथ में दीपक लेकर उन लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था। उन लोगों को आते देखकर वह युवक उस अँधेरे मार्ग में आगे बढ़ा। जिस स्थान पर वह मार्ग समाप्त होता था, वहाँ एक छोटी कोठरी थी। उस कोठरी के कोने की सीढ़ियों पर से होते हुए वे लोग बाहर सूर्य्य के प्रकाश में पहुँच गए। गोविंदगुप्त ने देखा कि हम लोग कपोतिक संघाराम के पिछवाड़े एक दूकान में पहुँच गए हैं। उस दूकान से निकलकर वे लोग राजपथ पर जा पहुँचे। दूकानवालों में से किसी ने उन लोगों से कोई बात नहीं पूछी।

गंगातट पर पहुँचकर मुरारी एक छोटी सी नाव ले आया। सब लोग उस नाव पर बैठ गए और नाव पूर्व की ओर चलने लगी। प्रासाद, गंगाद्वार और नगर का पूर्वी प्राकार पार करती हुई वह नाव उपनगर के एक घाट पर जा लगी। घाट पर एक बड़ी अट्टालिका थी। गोविंदगुप्त ने उसी अट्टालिका में प्रवेश किया। गृहस्वामी उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। गोविंदगुप्त ने उससे कहा—ब्राह्मण, हम लोगों को अपने एकांत स्थान में ले चलो।

ब्राह्मण ने उन लोगों को एक ऐसे कमरे में पहुँचा दिया जो जमीन के नीचे बना हुआ था। उस कमरे में दीपक जल रहे थे। ब्राह्मण सब लोगों को वहीं पहुँचाकर चला गया। कमरे में एक बड़ा पलंग बिछा हुआ था। महाराजपुत्र ने पलंग पर बैठकर ऋषभदेव और मुरारी को भी बैठने की आज्ञा दी। जब सब लोग बैठ गए तब महाराजपुत्र ने कहा—मुरारी, बीस वर्ष के उपरांत इंद्रलेखा ने फिर मुझे बुलाया है।

मु०—फिर बुलाया है?

गो०—हाँ, फिर बुलाया है।

मु०—किसलिये?

गो०—प्रेमालाप के लिये नहीं, मेरी हत्या करने के लिये।

मु०—यह क्यों? इंद्रलेखा तो बहुत दिनों से आपसे अलग हो गई है।

फल्गुयश मर गया और उसकी मृत्यु के उपरांत इंद्रलेखा ने बहुत सा धन कमाया है। आजकल नगर के बहुत से श्रेष्ठियों और साहूकारों की अपेक्षा गणिका इंद्रलेखा कहीं अधिक धनवान है। आपने उसका कोई अपकार तो नहीं किया ?

गो०—हाँ, किया है। मैंने इंद्रलेखा की मनोरथ सिद्धि में बाधा खड़ी की है। क्या तुमने यह समाचार नहीं सुना ?

मु०—हाँ, सुना है। आपके ही कारण वृद्ध महाराजाधिराज के साथ इंद्रलेखा की कन्या का विवाह नहीं हो सका।

गो०—इसी कारण वह मेरी हत्या करना चाहती है। परंतु जब तक गोविंदगुप्त के शरीर में प्राण हैं, तब तक वेश्या के गर्भ से नट की उरस जात कन्या के साथ आर्य्यावर्त्त के अधीश्वर का विवाह होना असंभव है।

मु०—प्रभु ? इंद्रलेखा ने क्या कहला भेजा है।

गो०—वह फिर एक बार मुझे केवल देखना चाहती है।

मु०—तो क्या आप आज रात को उसके घर पर जायँगे ?

गो०—नहीं। तुम्हें स्मरण है कि पहले कुक्कुटाराम के पास मैं किस प्रकार उससे भेंट किया करता था ?

मु०—हाँ, स्मरण है।

गो०—बस आज रात को भी मैं उसी प्रकार उससे भेंट करूँगा। देखो, इस समय मैं अपनी रक्षा के लिये साम्राज्य के प्रतीहारों अथवा शरीररक्षकों से काम नहीं लेना चाहता। अतः इस समय तुम्हीं मेरे शरीर की रक्षा करना।

मु०—प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य्य है।

गो०—बौद्धसंघ के आचार्य के लिये कैसा उपयुक्त कार्य है! परंतु मुरारी, यह तो बतलाओ कि तुम भिक्षु क्यों हो गए।

मु०—महाप्रतीहार के भय से। प्रभु! आप जानते हैं कि चीवर और गैरिक वस्त्र से बढ़कर अपने आपको छिपाने का और कोई उपाय नहीं है।

गो०—क्या तुम चीवर त्यागने के लिये प्रस्तुत हो ?

मु०—यदि प्रभु की आज्ञा हो तो मैं इसी समय प्रस्तुत हूँ।

गो०—अच्छा, यह बात अभी रहने दो। आज रात के पहले पहर से ही मद्य विक्रेताओं के स्थान पर सौ से अधिक अस्त्रधारी अनुचर नियुक्त कर दो और उनसे कह दो कि वे तुम्हारी शंखध्वनि सुनते ही कुक्कुटाराम के उत्तर ओर आ पहुँचे। वहीं वृक्षों के नीचे मंदिरों और चैत्यों की आड़ में सौ से अधिक अस्त्रधारी नियुक्त कर देना और तुम स्वयं मेरी ही तरह जालवर्म्म पहनकर अक्षयनाग की दूकान पर उपस्थित रहना। नगर के फाटक पर जिस समय दूसरे पहर का मंगलवाद्य आरंभ होगा उसी समय मैं अक्षयनाग के यहाँ पहुँचूँगा।

मुरारी प्रणाम करके चला गया।

बारहवाँ परिच्छेद

अँगूठी का समाचार

शीत ऋतु के अंतिम दिनों में एक दिन प्रातःकाल एक दीर्घाकार ब्राह्मण गंगास्नान करके पैर बढ़ाए हुए पाटलिपुत्र की ओर जा रहे थे। उनके पीछे प्रायः सौ हाथ की दूरी पर एक सुंदर रथ और तीन चार परिचारक धीरे धीरे आ रहे थे। गंगातट का पथ जिस स्थान पर उत्तरापथ के प्रशस्त राजमार्ग से मिलता था, उसी स्थान पर एक भिक्षु और एक ब्राह्मण मार्ग के पास ही विश्राम कर रहे थे। जिस समय स्नान करके लौटनेवाले दीर्घाकार ब्राह्मण उस स्थान पर पहुँचे, उस समय भिक्षु ने उनसे कहा—भद्र, मैं विदेशी हूँ। महानगर के मार्ग मैं नहीं जानता। पश्चिम फाटक की ओर कौन सा मार्ग जायगा?

ब्राह्मण किसी गंभीर चिंता में मग्न थे; अतः वे भिक्षु का प्रश्न न सुन सके। भिक्षु ने यह बात समझ ली और फिर पूछा—महाशय, पश्चिम फाटक का कौन सा मार्ग है?

ब्राह्मण ने चौंककर पूछा—क्या आपने मुझसे कोई प्रश्न किया है?

भिक्षु—हाँ, हम लोग विदेशी हैं। पहले कभी महानगर में नहीं आए थे? हम लोग निश्चित नहीं कर सकते कि किस मार्ग से होकर पश्चिम फाटक तक पहुँचेंगे। क्या आप कृपाकर मार्ग बतला देंगे?

ब्रा०—नगर के पश्चिम ओर कई फाटक हैं। आप किस फाटक पर जाना चाहते हैं?

भि०—कई फाटक हैं! महाशय, मैं पाटलिपुत्र में आचार्य्य बुद्धदास के अतिरिक्त और किसीसे परिचित नहीं हूँ। वे पारावत अथवा कपोतिक संघाराम में रहते हैं।

ब्रा०—बुद्धदास का नाम तो मैंने नहीं सुना, परंतु पारावत वा कपोतिक संघाराम नगर के मध्य में है। आप लोग मेरे साथ चले आइए। अभी तक मार्गों पर लोगों का आना जाना आरंभ नहीं हुआ; अतः मार्ग पूछने में आप लोगों को बहुत कठिनता होगी।

भिक्षु और उसका साथी ब्राह्मण दोनों उन दीर्घाकार ब्राह्मण के साथ हो लिये। मार्ग में उन्होंने पूछा—क्या आप लोग पंचनद से आ रहे हैं?

भि०—नहीं, मैं पुरुषपुर नगर से आ रहा हूँ और मेरे साथी वाह्लीक के निवासी हैं।

ब्रा०—पुरुषपुर! और वाह्लीक! क्या आप लोग तीर्थयात्रा के लिये निकले हैं?

भि०—नहीं महाशय, तीर्थयात्रा का तो हम लोगों का उद्देश्य अवश्य था, परंतु वह अभी तक सिद्ध नहीं हुआ। इस समय हम अपने ही कार्य से मगध में आए हैं।

ब्रा०—आप तो भिक्षु हैं। तीर्थयात्रा अथवा पर्यटन के अतिरिक्त और किस कार्य्य से आप इतने दूर देश में आए हैं?

भि०—हम लोग महाराजपुत्र गोविंदगुप्त के दर्शनों के लिये पाटलिपुत्र में आए हैं।

ब्रा०—दोनों ही?

भि०—हाँ, दोनों ही।

ब्रा०—महाराजपुत्र थोड़े ही समय के लिये नगर में आए हैं। आशा तो नहीं है कि वे पाटलिपुत्र में रहने के समय किसी विशेष कार्य की ओर ध्यान देंगे।

वाह्लीक निवासी ब्राह्मण अब तक इन दोनों की बातों में संमिलित नहीं हुए थे। परंतु अब वे सहसा बोल उठे—संघस्थविर, तो फिर अब क्या उपाय किया जायगा? वैशाख के प्रारंभ में तो हूण लोग कपिशा पर आक्रमण कर देंगे।

दीर्घाकार ब्राह्मण ने चौंककर पूछा—हूण? हूण नामक जंगली जाति तो वत्तु के उस पार रहती है। वह किस प्रकार कपिशा पर आक्रमण करेगी? यद्यपि वाह्लीक और कपिशा महासाम्राज्य के अंतर्गत नहीं हैं, तथापि शाहीय और शाहानुशाहीय देवपुत्र लोग महाराजाधिराज की अधीनता स्वीकृत कर चुके हैं? हूण लोग एक बार परास्त हो चुके हैं। क्या वे लोग फिर गुप्त सम्राट् के साम्राज्य पर आक्रमण करने का साहस करेंगे!

वाह्लीक का ब्रा०—हाँ करेंगे। खिंखिल ने आदेश दिया है कि आगामी ग्रीष्म ऋतु में राजपुत्र तोरमाण कपिशा में निवास करेंगे।

दीर्घा ब्रा०—खिंखिल कौन?

वाह्लीo ब्रा०—हूणों के एकमात्र अधिपति।

दीर्घा० ब्रा०—(स्वगत) पहले वाह्लीक, फिर कपिशा और दूसरे वर्ष उद्यान और गांधार। गोविंद का अनुमान ठीक ही है। (प्रकाश्य) महाशय आप कौन हैं?

वाह्ली० ब्रा०—मेरा नाम विष्णुभद्र है। मैं वाह्लीक के राजा का पुरोहित हूँ।

दीर्घा० ब्रा०—और आपके साथी?

विष्णु—यह पुरुषपुर नगर के कनिष्क चैत्य के संघस्थविर हैं। इनका नाम बुद्धभद्र है।

ब्राह्मण ने विष्णुभद्र और बुद्धभद्र को एक बार सिर से पैर तक देखकर कहा—परमेश्वर की कृपा से आज आप लोगों से भेंट हो गई। आप लोग अनुग्रह करके मेरे घर पर पदार्पण करें। मैं आप लोगों को महाराजपुत्र गोविंदगुप्त के समीप उपस्थित कर दूँगा।

बुद्धभद्र—महाशय, आप कौन हैं ?

दीर्घा० ब्रा०—मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम दामोदर शर्म्मा है। मैं आर्य्य समुद्रगुप्त के साम्राज्य का एक सामान्य परिचारक मात्र हूँ। आप लोग रथ पर बैठ जायँ।

बुद्ध०—और आप ?

दीर्घा० ब्रा०—मैं गंगास्नान करके आ रहा हूँ। अभी मैं रथ पर नहीं बैठूँगा।

बुद्ध०—मैं भिक्षु हूँ। मेरे लिये भी रथ पर बैठना निषिद्ध है।

दीर्घा० ब्रा०—परंतु मगध के महास्थविर और संघस्थविर तो प्रायः हाथियों और रथों पर बैठा करते हैं।

बुद्ध०—विनय की व्यवस्था सब के लिये समान रूप से है। हाँ, यह व्यक्तिविशेष की इच्छा पर निर्भर है कि वह विधि और निषेध को ग्रहण करे अथवा न करे।

दीर्घा० ब्रा०—अच्छा तो फिर यों ही चलिए।

उस समय चारों ओर खूब हवा चल रही थी। नागरिक लोग उस समय तक सोकर नहीं उठे थे। दीर्घाकार ब्राह्मण उन दोनों को साथ लेकर चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के फाटक पर जा पहुँचे। दीर्घाकार ब्राह्मण को देखकर प्रतीहार लोग फाटक में एक पंक्ति में खड़े हो गए और सबने सामरिक प्रथा से उनको अभिवादन किया। यह देखकर आगंतुक बहुत ही विस्मित हुए।

नगर के पथिक लोग दीर्घाकार ब्राह्मण को देखकर संमानपूर्वक मार्ग छोड़ने लगे। व्यापारी और कुल बधुएँ उन्हें दूर से देखकर प्रणाम करने लगीं। दोनों आगंतुकों का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। इतने में दीर्घाकार ब्राह्मण ने राजपथ के पास के एक फाटक में प्रवेश किया। फाटक के पास ही एक बड़े कमरे में एक हृष्टपुष्ट प्रौढ़ और एक दुबले पतले युवक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों के प्रणाम करने पर ब्राह्मण ने पूछा—गोविंद, तुम इतने तड़के क्यों आए हो।

गो०—एक विशेष कार्य के लिये। आपके साथ ये कौन लोग हैं ? एक तो पंचनदवासी जान पड़ते हैं।

दीर्घा० ब्रा०—ये वाह्लीक के राजा पंचम वासुदेव के पुरोहित हैं, और ये पुरुषपुर के कनिष्क चैत्य के संघस्थविर। ये लोग तुमसे भेंट करने के लिये पाटलिपुत्र आए हैं और इन्होंने मेरा आतिथ्य स्वीकृत करके मुझे कृतार्थ किया है।

गोविंदगुप्त ने विष्णुभद्र को प्रणाम और बुद्धभद्र को अभिवादन किया। यह देखकर उनके साथी युवक ने भी उन लोगों को अभिवादन किया। उस समय दामोदर शर्मा ने कहा—स्कंद, आज तुम कैसे चले आए? अब तक तुम्हें इस वृद्ध का स्मरण है?

युवक युवराज स्कंदगुप्त थे। उन्होंने दामोदर शर्म्मा की बात सुनकर कहा—आपको जब जब परिहास करने का अवसर मिलता है, तब तब आप चूकते नहीं।

दामो०—गोविंद, ये लोग एक विशेष समाचार लेकर यहाँ आए हैं।

गोविंदगुप्त ने कुछ हँसकर पूछा—तो क्या हूण युद्ध निश्चित हो गया?

दामो०—हाँ।

गो०—परंतु आपने यह कैसे जाना कि हूण युद्ध निश्चित है?

दामो०—यदि हूण युद्ध निश्चित न होता तो वाह्लीक के राजपुरोहित पाटलिपुत्र में न दिखाई देते।

इतने में विष्णुभद्र ने आगे बढ़कर कहा—आर्य्य! कदाचित् आप महाराजपुत्र गोविंदगुप्त हैं।

गो०—हाँ मेरा ही नाम गोविंदगुप्त है। ये महाराजाधिराज के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त हैं; और आप जिनके अतिथि हैं, वे महासाम्राज्य के सचिवप्रधान परमेश्वर युवराज भट्टारकपादीय महामात्य दामोदर शर्म्मा हैं।

दामोदर शर्मा का परिचय सुनकर बुद्धभद्र और विष्णुभद्र बहुत ही चकित हुए। दामोदर शर्म्मा की आज्ञा से एक कर्मचारी उन लोगों को विश्रामागार में ले गया। उनके चले जाने पर दामोदर शर्मा ने पूछा—गोविंद, कहो क्या समाचार है?

गो०—समाचार अच्छा ही है। मैं आज रात को एक स्थान पर जाऊँगा। उसीके लिये मैं आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।

दामो०—मेरी आज्ञा ?

गो०—जी हाँ, आपकी आज्ञा। क्योंकि स्कंद मुझे जाने देना नहीं चाहते।

दामो०—क्यों ?

गो०—यह अभी नहीं बतलाऊँगा। पहले मंत्रगृह में चलिए।

गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त और दामोदर शर्मा ने कई कमरों और अलिंदों को पार करते हुए मंत्रगृह में प्रवेश किया। मंत्रगृह के प्रत्येक द्वार और खिड़की पर गूँगे और बहरे दंडधर खड़े कर दिए गए। दामोदर और गोविंदगुप्त तो बैठ गए, परंतु स्कंदगुप्त खड़े रहे। गोविंदगुप्त ने कहा—पितृव्य, आज बीस वर्ष उपरांत फिर इंद्रलेखा मुझसे एक बार भेंट करना चाहती है।

दामो०—इंद्रलेखा ?

गो०—हाँ, उसकी दूती प्रासाद में आकर मुझे बुला गई है।

दामो०—वह दूती किस प्रकार प्रासाद में पहुँची ?

गो०—मेरी अँगूठी दिखाकर।

दामो०—तुम्हारी अँगूठी दिखाकर ! इंद्रलेखा को तुम्हारी अँगूठी कैसे मिली ?

गो०—पितृव्य, मेरा अपराध क्षमा करें। जिस समय यौवनावस्था में इंदलेखा के लिये मैं अपना सर्वस्व त्यागना चाहता था। उसी समय स्मारक स्वरूप मैंने पिता जी के नाम की अँगूठी उसे दी थी, जो उसने फिर नहीं लौटाई।

यह सुनकर वृद्ध महामंत्री स्तब्ध हो गए। कुछ समय के उपरांत गोविंदगुप्त ने पूछा—पितृव्य, आप क्या सोच रहे हैं !

दामो०—गोविंद, जिस प्रकार हो, तुम इसी समय उससे वह अँगूठी ले लो।

गो०—क्यों ?

दामो०—इसलिये कि तुम्हारे आने से पहले उसी अँगूठी की सहायता से अनंता और इंद्रलेखा प्रासाद में पहुँची थी। स्कंद, कृष्णगुप्त को आज्ञा दो कि वह स्वर्गीय महाराज के नाम की अँगूठी इंद्रलेखा से बलपूर्वक ले आवे।

स्कंद—आर्य्य, यदि बल प्रयोग किया जायगा तो महाराजपुत्र का अपयश होगा। पाटलिपुत्र के दुष्ट नागरिक पितृव्य के नाम के गीत बना बनाकर गलियों में गाते फिरेंगे।

गो०—पितृव्य, बल प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं कौशल से ही अपना अभीष्ट सिद्ध कर आऊँगा।

दामो०—अच्छा, तुम चेष्टा कर देखो। यदि आज तुम कृतकार्य्य न हुए तो फिर कल बल प्रयोग ही करना पड़ेगा। तुमने अपनी रक्षा का भी कोई प्रबंध किया है ?

गो०—नागरिक लोग अभी तक मुझे नहीं भूले हैं।

दामो०—तुम उनसे कहाँ भेंट करोगे ?

गो०—कुक्कुटाराम के पास, नगर के उपकंठ में।

दामो०—कब ?

गो०—आज ही रात को।

दामो०—कृष्णगुप्त को कहला दिया है !

गो०—नहीं। यदि कहला दूँगा तो फिर बात छिपी न रह सकेगी।

स्कंद०—पितामह, पितृव्य अकेले जाना चाहते हैं। क्या यह उचित होगा ?

गो०—स्कंद, मैं अकेला नहीं जाऊँगा। मेरे साथ विश्वसनीय नागरिक सेना रहेगी।

दामो०—नागरिक सेना कैसी ? साम्राज्य में तो कोई ऐसी सेना नहीं है।

गो०—ये सब बातें मैं फिर बतलाऊँगा। इस समय मुझे बहुत से कार्य्य हैं, अतः मैं विदा होता हूँ। बाह्लीक के राजपुरोहित क्या समाचार लाए हैं ?

दामो०—तुम्हारा अनुमान सत्य निकला।

गो०—तो फिर कल ही मंत्रसभा का आह्वान करना होगा।

स्कंद०—कल ही ?

गो०—हाँ, क्योंकि कदाचित् परसों ही मुझे जालंधर लौट जाना पड़े। पितृव्य, रात के तीसरे पहर मैं आपके शयनागार में आऊँगा। और यदि मुझे आने में विलंब हो तो महाप्रतीहार को आज्ञा दे दीजिएगा कि कल प्रातः

काल नगर के द्वार बंद रहें। यदि सूर्य्योदय के पहले मेरा समाचार न मिले तो कपोतिक संघाराम के तथागतगुप्त का पता लगाइएगा।

दामो०—वह कौन है?

गो०—वह शक युद्ध में का पुराना सैनिक और मेरा पुराना सेवक मुरारी है।

तेरहवां परिच्छेद

कापालिक का समाचार

प्रभात के समय पूजा करने के उपरांत करुणा और अरुणा के साथ महादेवी गोविंद के मंदिर से निकलीं। उसी स्थान पर सामने कुशासन पर बैठे हुए ऋषभदेव पूजा कर रहे थे। पूजा समाप्त करने से पहले ही ब्राह्मण देवता आसन छोड़कर खड़े हो गए। करुणादेवी ने यह समझा कि कोई अमंगल हुआ है। अतः उसने शीघ्रतापूर्वक उनके पास जाकर पूछा—क्यों, क्या हुआ? पूजा छोड़कर क्यों उठ खड़े हुए?

करुणादेवी के प्रश्न का उत्तर न देकर ऋषभदेव ने कहा—अब मैं देश लौट जाऊँगा।

करुणा—क्यों, इतने उतावाले क्यों हो रहे हो? क्या पाटलिपुत्र अब अच्छा नहीं लगता? मैंने तो समझा था कि इस नगर में आकर तुम अपना देश भूल जाओगे।

ऋषभ—देवी, यह परिहास की बात नहीं है। मेरा जी बहुत ही घबरा रहा है। कल रात को नगर में एक भिक्षु ने गणना करके कहा था कि अब मैं कभी अपने देश को नहीं लौट सकूँगा।

करुणा—बस, इतनी ही बात है? पर यह तो बतलाओ कि वहाँ देश में तुम्हारा कौन बैठा है जिसके लिये तुम्हारा जी इतना घबरा रहा है? और फिर गणक की बात पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि सब लोग

इसी प्रकार गणना करके भविष्य की बात बतला दिया करें तो फिर किसी पर आपत्ति ही क्यों आवे ?

ऋषभ—देवी ? हैं तो मेरे केवल भानुमित्र या तुम, परंतु फिर भी मन नहीं मानता। जिस देश में मैंने जन्म लिया है, जिस देश में पहले पहल सूर्य्य के दर्शन हुए हैं, जिस देश में पिता के स्नेह और माता की गोद में पला हूँ, उस देश को फिर न लौट सकने की बात सुनकर मैं अपना चित्त शांत नहीं रख सकता। देश छोड़े बहुत दिन हो गए। अब तो घर लौट चलो।

उधर महादेवी और अरुणा मंडप में पुरोहित से बातचीत कर रही थीं। चारों ओर देखकर करुणादेवी ने कहा—ऋषभदेव, तुम जानते हो कि यह मेरा पित्रालय है। मैं अपने मुँह से घर लौट चलने की बात कैसे कह सकती हूँ ? तुम उनसे जाकर कहो। तुम्हारी बात सुनकर मेरा चित्त भी व्याकुल हो गया है। मेरी फुलवारी भी इतने दिनों में सूख गई होगी।

ऋषभ—तुम तो इतना कहकर छुट्टी पा गई कि उनसे जाकर कहो। परंतु अब मैं उन्हें जाकर ढूँढूँ कहाँ ? यह कोई गौड़ नगर तो है ही नहीं जिसके सब मार्ग आदि मैं जानता हूँ—जहाँ जी चाहे वहाँ चला जाऊँ। पाटलिपुत्र तो मनुष्यों का जंगल है। और तिस पर तुम्हारा यह पित्रालय भी प्रासाद नहीं, प्रासादों का जंगल ही है। इसमें एक एक सम्राट् एक एक हजार प्रासाद बनवा गए हैं यहाँ के दंडधरों और प्रतीहारों के घर भी हमारे गौड़ के प्रासादों से बड़े हैं। मैं तो अंतःपुर से निकलते ही मार्ग भूल जाऊँगा। क्या तुम यही चाहती हो कि मैं फिर महाप्रतीहार के कारागार में जाऊँ ?

ऋषभदेव की बात सुनकर करुणादेवी हँस पड़ी। उसके हँसने का शब्द सुनकर महादेवी ने पूछा—करुणा, क्या हुआ ?

करुणादेवी ने हाथ जोड़कर ऋषभदेव से कहा—देखो ब्राह्मण देवता, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। तुम माताजी से देश लौटने की बात न कह बैठना। नहीं तो मैं मारे लज्जा के मर जाऊँगी।

ऋ०—देवी, मैं तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं इस बात को पेट में रखने की पूरी पूरी चेष्टा करूँगा। परंतु—

करुणा—फिर परंतु क्या ?

ऋ०—परंतु यही कि यदि सहसा मेरे मुँह से यह बात निकल गई तो फिर क्या होगा ?

करु०—मुँह से निकल कैसे जायगी ? तुम सावधान रहना।

ऋ०—तुमने तो मुझे बड़ी विपत्ती में डाल दिया। एक तो यों ही राजामहाराज को देखकर मेरा मस्तक ठिकाने नहीं रहता; तिसपर स्वयं सम्राट् की ज्येष्ठा पत्नी महादेवी से बात करनी पड़ेगी—

इतने में मंडप में से महादेवी ने फिर पूछा—करुणा ! वहाँ क्या कर रही हो ?

ऋषभदेव ने डरते हुए कहा—देवी, अब तुम चटपट चली जाओ। यह बात मेरे पेट में नहीं समाया चाहती।

करु०—परंतु इतना स्मरण रखो कि यदि तुम यह बात माता जी से कहोगे तो फिर मैं तुम्हें तीन वर्ष तक यहीं पाटलिपुत्र में रोक रखूँगी।

ऋ०—तो फिर तुम्हें ब्रह्महत्या का पातक लगेगा। मैं अभी भानुमित्र को ढूँढ़ने जाता हूँ। परंतु—परंतु डर यही लगता है कि कहीं मार्ग न भूल जाऊँ।

करुणादेवी ठठाकर हँस पड़ी। अरुणादेवी ने मंडप में से मंदिर की ओर आकर पूछा—बहन, तुम्हें क्या हो गया है ? कहीं तुम पागल तो नहीं हो गई हो ?

करुणादेवी मुँह ढँककर अरुणा के पास पहुँची। अरुणा ने पूछा—क्या हुआ है ? बतलातीं क्यों नहीं ?

करुणादेवी का हँसी के मारे पेट फूल रहा था। ऋषभदेव ने आगे बढ़कर पूछा—देवी, तुम इतना हँस क्यों रही हो ? करुणा ने बड़े कष्ट से हँसी रोककर कहा—अरुणा, ऋषभदेव कहते हैं कि मैं अंतःपुर से बाहर निकलते ही मार्ग भूल जाऊँगा।

अब करुणा और अरुणा दोनों एक साथ ही हँस पड़ीं। महादेवी ने फिर पूछा—तुम लोगों को हो क्या गया है ?

अरुणा ने हँसते हँसते कहा—यह ब्राह्मण देवता कहते हैं कि मैं अंतःपुर से निकलते ही मार्ग भूल जाऊँगा।

महादेवी—क्यों ब्राह्मण देवता, मार्ग क्यों भूल जाओगे ?

ऋ०—देवी, मैं सचमुच मार्ग भूल जाऊँगा। कल रात के तीसरे पहर मैं महाराजपुत्र के साथ लौटकर पासाद में आया था। उस समय यदि महाराजपुत्र साथ न होते तो मैं किसी प्रकार अंतःपुर में न पहुँच सकता।

महा०—तो फिर तुम्हें अंतःपुर से बाहर निकलना ही नहीं चाहिए। तुम कहाँ जाना चाहते हो ?

ऋ०—देवी, मैं तो कहीं जाना नहीं चाहता। परंतु मुझे भानुमित्र को ढूँढ़ने—

इतना कहकर ऋषभदेव ने चार अंगुल जीभ बाहर निकाल दी।

महा०—क्या हुआ ?

ऋ०—करुणादेवी ने जो बात कहने से मुझे रोका था, ठीक वही बात मेरे मुँह से निकल पड़ी।

अरु०—जान पड़ता है कि बहन तुम्हें जीजा जी को ढूँढ़ने के लिये भेज रही थीं।

ऋषभदेव निश्चय न कर सके कि क्या उत्तर दूँ। उन्होंने इधर उधर सिर हिलाना आरंभ किया। अवसर पाकर करुणा को अरुणा छेड़ने लगी। वह बोली—बहन, जान पड़ता है, तुम जीजा जी को बुलाना चाहती हो। लो मैं ही उन्हें बुलवा भेजती हूँ।

करु०—मैं उन्हें क्यों बुलवाने लगी। यह ब्राह्मण देवता क्या कहते कहते क्या कह जाते हैं, इसका कुछ ठीक ही नहीं रहता।

अरुणा—क्यों ब्राह्मण देवता, तुम किसे बुलाने जा रहे थे ?

ऋषभदेव ने कोई उत्तर नहीं दिया।

अरु०—देखो, गोविंद के मंदिर में खड़े होकर यदि तुम झूठ बोलोगे तो तुम्हें महापातक लगेगा। और फिर देखते हो, सामने पट्टमहादेवी खड़ी हैं।

ऋषभदेव ने गहरी साँस लेकर कहा—गणक ने बहुत ठीक कहा था। अब मेरे भाग्य में देश लौटना नहीं बदा है। देवी! अब मैं पाटलिपुत्र में ही रहूँगा।

महा०—क्या कहा ?

ऋ०—मैं झूठ नहीं बोलूँगा। करुणादेवी मुझे भानुमित्र को ढूँढ़ने के लिये भेज रही थीं। इसीसे मैंने कहा था कि मैं अंतःपुर से बाहर निकलते ही मार्ग भूल जाऊँगा।

अरुणा हँस पड़ी और महादेवी ने हँसी छिपाने के लिये मुँह फेर लिया। करुणा ने आँचल से मुँह ढँककर कहा—क्यों झूठ बोल रहे हो।

ऋ०—देवी, मैंने तो तुमसे उसी समय कह दिया था कि राजा महाराजा को देखते ही मैं भय के मारे ज्ञानशून्य हो जाता हूँ। दोहाई पट्टमहादेवी की, मैं सबेरे सबेरे गोविंद के मंदिर में खड़ा होकर झूठ नहीं बोलता हूँ।

अरु०—क्यों ब्राह्मण देवता, तुम पाटलिपुत्र में क्यों रहोगे और अपने देश क्यों न जाओगे।

ऋ०—देश जाना मेरे भाग्य में ही नहीं बदा है। करुणादेवी कह चुकी हैं कि यदि मैं महादेवी के सामने यह बात कह दूँगा तो फिर वे मुझे तीन वर्ष तक पाटलिपुत्र में ही रोक रखेंगी।

ब्राह्मण की दशा देखकर महादेवी ने कहा—अच्छा, मैं भानुमित्र को अंतःपुर में ही बुलवा भेजती हूँ। तुम चिंता न करो, तुम्हें अंतःपुर से बाहर न जाना पड़ेगा।

इतना कहकर करुणा और अरुणा के साथ महादेवी गोविंद के मंदिर से चली गईं। ऋषभदेव ने दूसरे मार्ग से श्यामा मंदिर में प्रवेश किया।

श्यामा मंदिर के मंडप में एक कापालिक ध्यान लगाकर जप कर रहा था। वह खंभे की आड़ में बैठा था, अतः ऋषभदेव उसे नहीं देख सके। जब ऋषभदेव उसके बहुत पास जा पहुँचे, तब उसने क्रुद्ध होकर कहा—तुम ऐश्वर्य के मद से मत्त होकर देवता का संमान करना तक भूले जाते हो। क्या तुम यह भूल गए कि इस जीवन में अब तुम फिर कभी लौटकर पाटलिपुत्र न आओगे?

ऋषभदेव ठिठककर वहीं रुक गए और तब वे धीरे धीरे मंडप के बाहर जाकर जूता उतार आए। इसके उपरांत उन्होंने फिर कापालिक के पास आकर कहा—महाशय, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मुझे अनेक प्रकार की दुश्चिंताएँ घेरे थीं, अतः मुझे देवमंदिर का ध्यान न रह गया था।

कापा०—तुम्हें कभी दुश्चिंता न छोड़ेगी; अतः तुम सावधान हो जाओ।

ऋ०—मुझे दुश्चिंता कभी न छोड़ेगी ?

कापा०—नहीं, कल ही तुम्हें मगध छोड़कर पंचनद जाना पड़ेगा।

ऋ०—कल ही ?

कापा०—हाँ, कल ही, दोपहर को। तुम अपने सखा से कह देना कि यदि वे इस यात्रा में स्त्री को भी अपने साथ ले जायँगे तो बड़ी विपत्ति में पड़ेंगे।

ऋ०—मैं यह बात किससे कहूँगा ?

कापा०—अपने बंधु गौड़ के बलाधिकृत भानुमित्र से।

ऋ०—तो क्या भानुमित्र को भी यह देश छोड़ना पड़ेगा ?

कापा०—हाँ, कल युवराज स्कंदगुप्त के साथ भानुमित्र को पंचनद जाना पड़ेगा।

ऋ०—तो क्या भानुमित्र भी पाटलिपुत्र न लौटेंगे ?

कापा०—नहीं, वे लौट आवेंगे।

ऋ०—और उनकी स्त्री ?

कापा०—वह भी लौटेगी; परंतु बहुत समय के उपरांत।

ऋ०—युवराज कहाँ जायँगे ?

कापा०—तुम लोगों के साथ यवनों के देश में।

ऋ०—तो क्या वे भी न लौटेंगे ?

कापा०—लौटेंगे, परंतु एक बार तो हँसते हुए और दूसरी बार बहुत समय तक जीवन्मृत के समान होकर।

ऋ०—क्या हम सब लोग साथ ही जायँगे ?

कापा०—हाँ।

इतना कहकर कापालिक आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और शीघ्रतापूर्वक मंदिर से बाहर निकल गया। परंतु ऋषभदेव ने उसे जाते हुए न देखा। वे उस समय श्यामामंदिर के मंडप का पत्थर का खंभा पकड़कर गौड़ देश की बातें सोच रहे थे। कापालिक के मंदिर से चले जाने पर एक दंडधर वहाँ आ पहुँचा। कुछ समय तक इधर उधर घूमने के उपरांत उसने देखा कि

ऋषभदेव खंभे के साथ लगे खड़े हैं। उसने उनके पास जाकर कहा—देव, गौड़ देश के महाकुमारपादीय महाबलाधिकृत श्रीमत् भानुमित्रदेव ने आपको स्मरण किया है।

ऋषभदेव ने समझा कि कापालिक ही मुझसे बातें कर रहा है। अतः उन्होंने पूछा—मैं कितने दिनों तक जीवित रहूँगा?

अपने प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर ऋषभदेव मंडप के चारों ओर कापालिक को ढूँढ़ने लगे परंतु जब उन्हें कहीं कापालिक दिखाई न दिया, तब वे पागलों की भाँति "कापालिक" "कापालिक" चिल्लाते हुए मंदिर से निकल भागे। यह देखकर दंडधर ने भी उनका पीछा किया।

चौदहवाँ परिच्छेद

गोविंदगुप्त का अभिसार

आधी रात बीत चुकी है। पाटलिपुत्र के नगर के राजपथों के दीपक बुझने लगे हैं। केवल मद्य विक्रेताओं की दूकानों पर दीपक जल रहे हैं। बहुत से नागरिक दूकानों में प्रवेश कर रहे हैं और बहुत से मद्य पान करके घर लौट रहे हैं। उन्मत्त होकर लड़ाई-झगड़ा करनेवाले नागरिकों से मार्ग भरा हुआ है। जब फाटकों पर आधी रात का मंगल वाद्य समाप्त होने लगा, तब सफेद कपड़े पहने हुए दो आदमियों ने उस स्थान पर में प्रवेश किया जहाँ मद्य विक्रेताओं की दूकानें थीं। उनमें से एक का शरीर बहुत हृष्ट पुष्ट और रंग गोर थी। देखने से जान पड़ता था कि उन्होंने अपना अधिकांश जीवन युद्ध में ही बिताया है। दूसरा व्यक्ति साँवला, नाटा और मोटा था। जिस स्थान पर कपोतिक संघाराम के राजमार्ग से मद्य विक्रेताओं के स्थान का मार्ग मिलता था, उस स्थान पर एक अट्टालिका के पास अँधेरे में एक व्यक्ति छिपा हुआ था। वह व्यक्ति उन दोनों आगंतुकों को मद्य-विक्रेताओं के स्थान में प्रवेश किरते देखकर अपने स्थान से निकला और मार्ग में आकर जनता में मिल गया।

मद्य विक्रेता अक्षयनाग की दूकान के ऊपर नाच हो रहा था। जिस कमरे में वेश्या नाच रही थी, उसकी खिड़की में एक नागरिक बैठा हुआ पथिका को गालियाँ दे रहा था। दूर से उन दोनों आगंतुकों को आते देख वह उस खिड़की से उठ गया। सहसा नाच बंद हो गया और उसके साथ ही साथ उस कमरे में से मधुर बंशी की ध्वनि सुनाई देने लगी। उसे सुनकर मद्य की प्रत्येक दूकान में से दो चार नागरिक निकलकर राजमार्ग पर आ खड़े हुए।

दोनों आगंतुक धीरे धीरे आगे बढ़ रहे थे। इतने में सहसा एक नागरिक आकर दीर्घाकार पुरुष पर गिर पड़ा। उसके सँभलने से पहले ही दीर्घाकार पुरुष ने समझ लिया कि मेरे हाथ में एक पत्र दिया गया है। वह नागरिक तो क्षमाप्रार्थना करके चला गया और दोनों आगंतुक अक्षयनाग की दूकान में पहुँचे। बुड्ढा अक्षयनाग दूकान पर बैठा हुआ लोगों से मद्य का मूल्य ले रहा था। दीर्घाकार पुरुष को देखकर वह कुछ विस्मित हुआ। जब दोनों आगंतुक उसके पास पहुँच गए, तब दीर्घाकार पुरुष ने पूछा—अक्षयनाग, तुम मुझे पहचानते हो ?

बुड्ढे अक्षयनाग ने उन्हें सिर से पैर तक देखकर धीरे से कहा—नहीं।

दीर्घा० पु०—मैं मंदमलयानिल हूँ।

बुड्ढा अक्षयनाग काँपता हुआ उठ खड़ा हुआ और बोला—प्रभु !

'हाँ। तुम्हारे नीलकक्ष में तो इस समय कोई नहीं है ?"

'प्रभु की आज्ञा से मैं अभी वहाँ से लोगों को हटा देता हूँ।"

इतने में एक और नागरिक उस दूकान में आ पहुँचा। उसे देखकर मद्यप नागरिकों ने संमानपूर्वक मार्ग छोड़ दिया। उस नए आए हुए व्यक्ति ने दूकान की पिछली कोठरी में प्रवेश किया। उसे देखकर अक्षयनाग ने दीर्घाकार पुरुष से कहा—प्रभु! आप ठहरें, मैं अभी नीलकक्ष से लोगों को हटा देता हूँ।

इतना कहकर अक्षयनाग वहाँ से चला गया। उसी समय और कोई नागरिक दूकान में आ गए और उन दोनों आगंतुकों को घेरकर खड़े हो

गए। तुरंत ही अक्षयनाग ने लौटकर सूचना दी कि अब नीलकक्ष में कोई नहीं है। दोनों आगंतुक उसके साथ हो लिये। जो नागरिक अभी आए थे वे भी एक एक करके वहाँ से चले गए।

जिस समय उन दोनों आगंतुकों ने अक्षयनाग के साथ नीलकक्ष में प्रवेश किया, उस समय एक और व्यक्ति वहाँ उन लोगों की प्रतीक्षा कर रहा था। उसी समय नगर के फाटकों का मंगल वाद्य समाप्त हुआ। उस व्यक्ति ने कहा—प्रभु, समय हो गया। सब कुछ प्रस्तुत है।

दीर्घाकार पुरुष ने पूछा—मुरारी, किस पथ से चलना होगा ?

मुरा०—पहले की भाँति खिड़की के मार्ग से। रस्सी की सीढ़ी प्रस्तुत है।

अक्षय०—प्रभु ! अब उस मार्ग से जाने की आवाश्यकता नहीं। इंद्रलेखा तो आजकल गणिका हो गई है।

मुरा०—यह तो सभी लोग जानते हैं। तुम यहीं ठहरो और जब तक हम लोग लौट न आवे, तब तक कहीं न जाओ। प्रभु, आइए।

मुरारी खिड़की से होकर निकला। गोविंदगुप्त और ऋषभदेव ने भी उसका अनुकरण किया। खिड़की के नीचे रस्सी की बनी हुई सीढ़ी लगी हुई थी। ज्यों ही ऋषभदेव ने उसपर पैर रखा, त्यों ही वह इधर उधर झूमने लगी। ब्राह्मण को गिरते देखकर गोविंदगुप्त ने उन्हें एक हाथ से उठा लिया और शीघ्रतापूर्वक वे नीचे उतर गए। अक्षयनाग की दूकान के पीछे आमों की एक बारी थी। रात होने के कारण उस बारी में बहुत अँधेरा था। गोविंदगुप्त निस्संकोच भाव से अपने पूर्वपरिचित मार्ग से आगे बढ़ने लगे, परंतु मुरारी ने उन्हें निषेध किया। उसने कहा—प्रभु ! आप आगे न बढ़ें। कुछ ही समय पूर्व इस मार्ग से कोई गया है।

गोविंदगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—तुमने कैसे जाना ?

मुरा०—संध्या समय मैं इस मार्ग में बहुत से उपलों की एक प्राचीर बना गया था। वह प्राचीर इस समय टूटी हुई है।

गो०—तुम कह सकते हो कि इस मार्ग से कितने आदमी गए हैं ?

मुरा०—प्राचीर केवल दो स्थानों से टूटी है।

गो०—क्या संध्या के उपरांत इस ओर कोई नहीं आता ?

मुरा०—अन्नयनाग की बारी में प्रेतों का उपद्रव होता है। इसी भय से नागरिक लोग संध्या के उपरांत इस ओर नहीं आते।

गो०—केवल एक मनुष्य के कारण भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं।

मुरा०—प्रभु! आपका जीवन बहुमूल्य है। मैं किसी गुप्त घातक के हाथों आपकी हत्या न होने दूँगा।

इतना कहकर मुरारी आगे बढ़ा। गोविंदगुप्त जब आगे बढ़ने लगे, तब उन्होंने देखा कि ऋषभदेव उनका कपड़ा अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़े हुए हैं। महाराजपुत्र ने मधुर स्वर से पूछा—क्या हुआ?

ऋ०—महाराज, लौट चलिए।

गो०—क्यों?

ऋ० मैं रामकवच नहीं लाया।

गो०—रामकवच क्या होगा?

ऋ०—उपदेवताओं के उपद्रव—

गो०—इस समय हम्हीं लोग उपदेवता हैं।

ऋ०—राम राम—

मुरारी ने हँसकर कहा—ब्राह्मण देवता, यदि तुम विलंब करोगे तो हम लोग तुम्हें यहीं छोड़ जायँगे।

विवश होकर ऋषभदेव ने चुपचाप उन लोगों के साथ चलना आरंभ किया। उस बारी में एक छोटा सा देवमंदिर था। सब लोगों ने उसी में प्रवेश किया। मुरारी ने मंदिर का द्वार बंद करके दीपक जलाया और मंदिर में पड़ा हुआ काठ कबाड़ हटा दिया। उस काठ कबाड़ के नीचे से एक सुरंग निकल आई। मुरारी ने हाथ में दीपक लेकर उसी सुरंग में प्रवेश किया। गोविंदगुप्त और ऋषभदेव भी उसके पीछे हो लिये। गोविंदगुप्त ने चलते समय सुरंग का द्वार फिर उसी प्रकार लकड़ियों से ढक दिया था। सुरंग की सीढ़ियों से होकर सब लोग नीचे उतरे। जिस स्थान पर सीढ़ियाँ समाप्त होती थीं, उस स्थान पर पत्थर का बना एक बड़ा कमरा था। सब लोगों के

उस कमरे में प्रवेश करते ही दीपक बुझ गया। ऋषभदेव चिल्लाना ही चाहते थे, परंतु अँधेरे में उनके मुँह पर किसी ने हाथ रखा और धीरे से कान में कहा—अगर तुम कुछ भी बोले तो, बस फिर मर ही जाओगे। मुरारी अँधेरे में आगे बढ़ा। ऋषभदेव को बीच में रखकर गोविंदगुप्त उसके पीछे पीछे चलने लगे। सहसा बहुत दूर पर प्रकाश की एक क्षीण रेखा दिखाई दी। उसे देखकर मुरारी खड़ा हो गया। गोविंदगुप्त ने पूछा—क्या हुआ?

मुरा०—न जाने कौन इस सुरंग में कोई प्रकाश लाया है।

गो०—इंद्रलेखा की दासी हो सकती है।

मुरा०—प्रभु, इस पाटलिपुत्र नगर में इंद्रलेखा के अतिरिक्त और कोई ऐसी स्त्री नहीं है, जो, रात के समय इस सुरंग में प्रवेश करने का साहस कर सके। आप यहीं ठहरें, तब तक मैं देख आता हूँ।

इतना कहकर मुरारी आगे बढ़ा। महाराजपुत्र अपने कपड़ों में से एक बड़ा कृपाण निकाल कर दीवार से पीठ लगाकर खड़े हो गए। क्षण ही भर के उपरांत दीपक बुझ गया और मुरारी ने लौटकर कहा—प्रभु! कुक्कुटाराम के नीचेवाली सीढ़ियों पर कोई दीपक रख गया था। वह दीपक बुझ गया। मुझे कोई मनुष्य दिखलाई नहीं पड़ा। आइए, आगे बढ़ें।

अब फिर तीनों व्यक्तियों ने चलना आरंभ किया और थोड़े ही समय में वे सामनेवाली सीढ़ियाँ चढ़ गए। वे सीढ़ियाँ पत्थर के बने एक बड़े चैत्य के गर्भ में समाप्त होती थीं। उस चैत्य में वेदी के ऊपर ताँबे की बनी बुद्धमूर्ति के सामने घी का दीपक जल रहा था जिसे मुरारी ने आगे बढ़कर बुझा दिया। उस चैत्यगर्भ से निकलकर ऋषभदेव ने देखा कि हम लोग विशाल कुक्कुटाराम के लंबे चौड़े आँगन में पहुँच गए हैं। आँगन के बीच में बहुत ऊँचा कुक्कुटविहार और उसके चारों ओर हजारों छोटे छोटे विहार थे। उन विहारों के चारों ओर परिक्रमा करने का मार्ग था और उस मार्ग के दूसरे ओर उद्यान था। सब लोग चैत्यगर्भ से निकलकर अँधेरे में एक वृक्ष के नीचे जा पहुँचे। विहार का आंगन उस समय निर्जन था। केवल मूल विहार के गर्भगृह में

एक बुड्ढे भिक्षु कुशासन पर बैठे हुए कोई ग्रंथ पढ़ रहे थे। महाराजपुत्र और उनके दोनों साथियों ने जिस समय चैत्यगर्भ से निकलकर उद्यान में प्रवेश किया, उसी समय एक भिक्षु ने विहार के गर्भगृह में प्रवेश करके बैठे हुए भिक्षु को प्रणाम किया। भिक्षु ने बिना सिर उठाए ही पूछा—आ गए?

दू० भि०—हाँ।

पह० भि०—कितने आदमी हैं।

दू० भि०—तीन।

पह० भि०—कहाँ हैं?

दू० भि०—मंजुश्री विहार के ईशान कोण में बेल के पेड़ के नीचे।

पह० भि०—उन लोगों पर दृष्टि रखी गई है न?

दू० भि०—हाँ।

पह० भि०—अच्छा तो संघाराम का द्वार बंद कर दो, मैं आता हूँ।

दूसरे भिक्षु के प्रणाम करके चले जाने पर पहले भिक्षु दीपक बुझाकर गर्भगृह से बाहर निकले। उसी समय एक और दीर्घाकार पुरुष चैत्यगर्भ से निकलकर चैत्य के पिछवाड़े जा छिपा। उसका सारा शरीर काले वस्त्रों से ढका हुआ था, अतः आगंतुकों अथवा संघाराम के निवासियों में से कोई उसे देख न सका था। मुरारी और ऋषभदेव को वहीं वृक्ष के नीचे छोड़कर गोविंदगुप्त उद्यान में जा पहुँचे। कुछ दूर बढ़ने पर उन्होंने वृक्षों के नीचे अँधेरे में देखा कि सफेद कपड़े पहने कोई मनुष्य खड़ा है। उन्हें देखते ही वह मनुष्य आगे बढ़ा। एक छोटे पुस्पवृक्ष के नीचे दोनों का सामना हुआ। ज्यों ही गोविंदगुप्त बेल के पेड़ के नीचे से चले, त्यों ही मुरारी ने ऋषभदेव से कहा—ब्राह्मण देवता, मैं तो अब जाता हूँ और तुम चुपचाप शांत होकर यहीं बैठे रहो। यदि तुम चिल्लाओगे तो फिर जीते न बचोगे।

ब्राह्मण ने कातर होकर कहा परंतु अकेले रहने पर भी तो मैं जीता न बचूँगा।

मुरारी—अच्छा, यदि तुम्हें मरना ही हो तो मर जाओ परंतु व्यर्थ बातें न करो। अब बातचीत का समय नहीं है।

इतना कहकर मुरारी साँप की तरह रेंगता हुआ अँधेरे में अदृश्य हो गया। ऋषभदेव मारे डर के पेड़ को कसकर पकड़े हुए वहीं बैठे रहे। कुछ दूर चलकर मुरारी जल्दी से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस पेड़ पर और तीन चार आदमी बैठे थे। उसने उन लोगों से धीरे से कहा कि समय हो गया।

मुरारी की बात सुनकर उन लोगों में से एक ने उल्लू का सा शब्द किया। उस समय उद्यान के वृक्षों पर से वहुत से निशाचर पक्षियों के शब्द सुनाई पड़े। साथ ही अनेक वृक्षों पर से सैकड़ों अस्त्रधारी मनुष्यों ने चारों ओर से गोविंदगुप्त और उनके साथी को घेर लिया। परंतु यह बात महाराजपुत्र अथवा उनके साथी को विदित न हुई। इतने में वह पहले का काले कपड़ोंवाला पुरुष भी चैत्य के पिछवाड़े से निकलकर इन्हीं लोगों में आ मिला। जो अस्त्रधारी वृक्षों पर से उतरे थे, वे भी सिर से पैर तक काले कपड़ों से ढके थे; अतः उन्हें कोई पहचान न सका।

सफेद कपड़ोंवाले मनुष्य ने गोविंदगुप्त के पास आकर पूछा—कौन ?

गो०—मंदमलयानिल।

मनुष्य—क्या सचमुच तुम्हीं हो ?

गो०—तुम कौन हो ?

मनुष्य—कुसुम सुरभि।

गो०—प्रमाण ?

सफेद वस्त्र पहने हुए कोई स्त्री थी। उसने कपड़ों में से सुंदर गोरा हाथ निकालकर सोने की एक बड़ी अँगूठी दिखलाई और पूछा—तुम्हारा प्रमाण ?

गो०—बीस वर्ष पहले जब मैं अंतिम बार इस स्थान पर आया था, उस समय कुसुम सुरभि की जगह फल्गुयश नट हाथ में तलवार लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

स्त्री—बस, यथेष्ट प्रमाण हो चुका। महाराजपुत्र मुझे क्षमा करें।

गो०—इंद्रलेखा, तुमनें मुझे क्यों बुलाया है ?

इंद्र०—बहुत दिनों से देखा नहीं था, इसलिये।

गो०—परंतु तुमने तो अपनी ही इच्छा से मुझे छोड़ा था।

इंद्रलेखा ने कुछ काँपते हुए स्वर से कहा—मुझसे अपराध तो हो गया, परंतु क्या वह क्षमा नहीं किया जा सकता ?

गो०—सुनो इंद्रलेखा, मैंने सुना है कि फल्गुयश ने तुम्हें नाट्यशास्त्र में पारंगत कर दिया है। तुम व्यर्थ रोने का उपक्रम करती हो। शीघ्र ही मुझे जालंधर लौट जाना पड़ेगा। अतः समय नष्ट न करो और बतला दो कि तुमने मुझे क्यों बुलाया है।

इंद्रलेखा ने अपने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—मैं सच कहती हूँ कि मैंने केवल आपको देखने के लिये ही इतना कष्ट दिया था। महाराजपुत्र, आप—इतने निष्ठुर—यदि—मुझसे अपराध—हुआ हो—तो मुझे क्षमा कीजिए—

गोविंदगुप्त ने हँसकर कहा—इंद्रलेखा, सचमुच तुम नाट्यशास्त्र में प्रवीण हो। बीस वर्ष के उपरांत मैं तो निष्ठुर हो ही जाऊँगा, बस यही स्त्री-जाति का धर्मशास्त्र है। तुम्हारे लिये मैंने राज्यसुख छोड़ दिया और प्रासाद की जगह कुटी तक में रहना चाहा। क्या तुम यह भूल गईं कि समुद्रगुप्त के पौत्र और चंद्रगुप्त के पुत्र ने एक गणिका की कन्या से विवाह करना चाहा था। परंतु वह गणिका की कन्या अपना गणिकावाला धर्म नहीं भूली। वह सम्राट्पुत्र को छोड़कर एक वेश्यापुत्र के साथ भाग गई। क्या तुम ये सब बातें भूल गईं ? तुम चाहे भूल गई हो, परंतु मैं यह नहीं भूला हूँ कि जिस दिन मैंने तुमसे अंतिम बार भेंट करने की प्रार्थना की थी, उस दिन इस कदम के वृक्ष के नीचे कुसुमसुरभि की जगह वेश्यापुत्र फल्गुयश तलवार लेकर मुझे गले लगाने आया था।

कुछ समय तक चुपचाप रोने के उपरांत अंत में इंद्रलेखा ने कहा—महाराजपुत्र, युवावस्था में मैंने जो अपराध किया था, उसका प्रायश्चित्त मैं अब तक करती हूँ; और जब तक जीती रहूँगी, तब तब करूँगी। मैंने अपनी इच्छा से राज्यसुख को जलांजलि दी है। आपने मेरी बहुत सी बातें मानी हैं। एक बात और मान लीजिए। यह मेरी अंतिम प्रार्थना है। मैं एक बार फिर उसी प्रकार आपका मुँह देखना चाहती हूँ।

इंद्रलेखा की बात सुनकर महाराजपुत्र काँप उठे। उस समय अच्छा अवसर देखकर इंद्रलेखा ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिए। गोविंदगुप्त फिर काँप उठे, परंतु उन्होंने अपने हाथ छुड़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यह देखकर इंद्रलेखा ने धीरे से उन्हें खींचकर गले लगा लिया। अब गोविंदगुप्त हटकर दूर जा खड़े हुए और बोले—बस इंद्रलेखा, अब नहीं।

इंद्रलेखा ने फिर पास आकर उनके दोनों हाथ पकड़ लिए और कहा—महाराजपुत्र, बस एक बार और। इसके उपरांत फिर मैं कभी आपसे कोई अनुरोध न करूँगी।

उस समय गोविंदगुप्त ने कुछ सँभलकर कहा—इंद्रलेखा, मैं तुम्हारी बात तो मान लूँगा, परंतु तुम्हें उसका मूल्य देना पड़ेगा।

इंद्रलेखा ने उत्सुक होकर पूछा—क्या मूल्य होगा? और फिर मेरे पास ऐसी कौन सी वस्तु है जो मैं आपको नहीं दे सकती?

गोविंदगुप्त ने कुछ मुस्कराकर कहा - एक बार पहले भी मैं तुम्हारी यही बात सुनकर और यही मुख देखकर सब कुछ भूल गया था। आज से बास वर्ष पहले मैंने उसका यथोचित प्रतिदान भी दिया था। आज से २५ वर्ष पहले मैंने तुम्हें पिताजी के नाम की जो अँगूठी दी थी, वही अँगूठी इस समय मेरा मूल्य है। यदि तुम वह अँगूठी मुझे लौटा दो तो मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा कर सकता हूँ।

अनामिका से अँगूठी उतारते उतारते इंद्रलेखा बोली—महाराजपुत्र, आप, इसी समय अँगूठी भी लीजिए और साथ ही मुझे भी। और कृपाकर अपने चरणों में मेरे इस कलुषित शरीर को आश्रय दीजिए।

गोविदगुप्त ने अँगूठी हाथ में ले ली। इंद्रलेखा ने पुनः उन्हें आलिंगन किया और साथ ही चटपट अपने कपड़ों में से छुरी निकालकर गोविंदगुप्त के गले पर चलाई। लोहे के जालवर्म्म में लगकर छुरी दो टुकड़े हो गई और गोविंदगुप्त हँसते हुए दूर जा खड़े हुए। सहसा वृक्षों की आड़ में से बहुत से अस्त्रधारी पुरुषों ने निकलकर महाराजपुत्र पर आक्रमण किया। उसी समय उद्यान में फिर उल्लू बोला। इतने में चुपचाप अपने सौ साथियों को लिए

हुए मुरारी ने वहाँ पहुँचकर गोविंदगुप्त पर आक्रमण करनेवाले अस्त्रधारियों को घेरकर पकड़ लिया। इंद्रलेखा उसी समय भाग खड़ी हुई।

गोविंदगुप्त, मुरारी और ऋषभदेव के पीछे पीछे काले कपड़ोंवाला जो पुरुष चैत्यगर्भ से निकला था, वह इंद्रलेखा को भागते देखकर उसीके पीछे दौड़ पड़ा। इंद्रलेखा ने उद्यान पार करके कुक्कुट महाविहार में प्रवेश किया। फाटक पर अंधेरे में एक दीर्घाकार भिक्षु उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे देखकर इंद्रलेखा ने कहा—भागो, भागो, सारा बना बनाया खेल बिगड़ गया।

भि०—क्या हुआ?

इंद्र०—जान पड़ता है कि महाप्रतीहार की सेना उद्यान में छिपी थी। उसने मेरे अनुचरों को बंदी कर लिया।

भि०—गोविंदगुप्त तो घायल हो गया न?

इंद्र—नहीं, वह जालवर्म्म पहनकर आया था।

भि०—कितने सैनिक थे?

इंद्र०—सौ से ऊपर।

भि०—अच्छा तो कोई चिंता नहीं। विहार में एक हजार से अधिक अस्त्रधारी भिक्षु हैं। वे सब शीघ्र ही उन लोगों को मार डालेंगे।

काले कपड़ेवाले पुरुष ने फाटक के खंभे की आड़ से ये सब बातें सुन लीं और वहाँ से कुछ दूर हटकर कपड़े में से एक वंशी निकालकर बजाई। उस वंशी की ध्वनि सुनकर विहार के बाहर से पुरुष फाटक तोड़कर हाथ में मशाल लिए आँगन में आ पहुँचे। वह शब्द सुनकर उद्यान में गोविंदगुप्त चौंक पड़े। जो सेना फाटक तोड़कर अंदर आई थी, उसके नायक ने काले कपड़ेवाले पुरुष को अभिवादन किया। इस पर उसने आज्ञा दी कि विहार के समस्त पुरुषों और स्त्रियों को पकड़ लो।

उस समय अनेक स्थानों पर छोटे मोटे युद्ध आरंभ हो गए। भिक्षुओं ने पहले से ही बहुत से अस्त्र एकत्र कर रखे थे। परंतु उन लोगों पर अचानक ही आक्रमण हुआ था, अतः वे लोग शिक्षित सेना के सामने न ठहर

सके ! बहुत से भिक्षु मार डाले गए और शेष भिक्षुओं ने आत्मसमर्पण कर दिया।

उद्यान में बेल के पेड़ के नीचे खड़े होकर गोविंदगुप्त ने मुरारी से पूछा—मुरारी, यह क्या हुआ ?

मुरा०—प्रभु, मैं तो कुछ भी न समझ सका।

दूसरे काले कपड़ेवाले पुरुष ने कहा—गोविंद, तुम चिंता न करो, मैं आ पहुँचा हूँ।

स्वर पहचानकर महाराजपुत्र चौंक पड़े और बोले—कौन ? पितृव्य !

पुरुष—हाँ।

उस समय गोविंदगुप्त, मुरारी और सब अनुचर लोग उद्यान से निकलकर दामोदर शर्मा के पास जा पहुँचे। महाराजपुत्र ने उन्हें प्रणाम करके पूछा—पितृव्य, यह क्या हुआ ?

दामो०—कहाँ क्या हुआ ?

गो०—आप यहाँ कैसे आए ?

दामो०—यदि मैं न आता, तो क्या तुम लोगों में से कोई जीता लौट सकता था ?

गो०—क्यों ?

दामो०—विहार में एक हजार से अधिक अस्त्रधारी भिक्षु तुम लोगों की हत्या करने के लिये प्रस्तुत थे।

गो०—क्यों ?

दामो०—कल सब बातें जान जाओगे।

गो०—इंद्रलेखा कहाँ है ?

दामो०—या तो मार डाली गई होगी या पकड़ ली गई होगी।

गो०—पितृव्य, आप किस मार्ग से आए ?

दामो०—जिस मार्ग से तुम लोग आए।

गो०—हैं ! आपने वह मार्ग कैसे जाना ?

दामो०—वत्स, तुम्हारे पिता के समय मुझे पाटलिपुत्र के बहुत से गुप्त मार्ग देखने पड़े थे।

गो०—वह क्यों।

दामो०—इसलिये कि समुद्रगुप्त के पौत्र और चंद्रगुप्त के पुत्र एक वेश्या की कन्या के साथ विवाह करने के लिये उद्यत थे।

गो०—तो क्या पिता जी ये सब बातें जानते थे?

दामो०—हाँ, सब जानते थे। जिस दिन इंद्रलेखा की जगह फल्गुयश हाथ में तलवार लेकर तुम्हें आलिंगन करने आया था, उस दिन भी तुम्हारे पिता की आज्ञा से मैं ही सुरंग से होकर विहार में आया था और यहीं बेल के वृक्ष के नीचे खड़ा था।

महाराजपुत्र की आँखों में आँसू भर आए। वे रोते हुए वृद्ध मंत्री के पैरों पर गिर पड़े।

उसी समय नायक ने आकर महामंत्री को प्रणाम किया और कहा—देव! सब काम हो गया।

दामो०—इंद्रलेखा और महाविहार स्वामी हरिबल दोनों पकड़े गए?

नायक—जी हाँ।

दामो०—अच्छा, उन लोगों को कृष्णगुप्त के पास भेज दो।

नायक—और भिक्षुओं को क्या छोड़ दूँ?

दामो०—नहीं। जो लोग अस्त्र धारण किए हुए थे, उन्हें बाँध लो और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें दंडनायक के सामने उपस्थित कर देना।

इतने में घोड़े पर चढ़ा हुआ एक व्यक्ति जल्दी से कुक्कुटविहार में आया और फाटक पर के सैनिकों से पूछने लगा—महामंत्री कहाँ हैं?

सैनिकों ने विहार के पास ही खड़े हुए दामोदर शर्मा की ओर संकेत कर दिया। वह आगंतुक उसी प्रकार घोड़ा बढ़ाता हुआ महामंत्री के पास जा पहुँचा और बोला—देव, इसी समय जालंधर से एक दूत बहुत ही बुरा समाचार लेकर आया है। महाराजाधिराज ने आपको और महाराजपुत्र गोविंदगुप्त को स्मरण किया है।

तुरंत ही महामंत्री दामोदर शर्म्मा और महाराजपुत्र गोबिंदगुप्त घोड़े पर चढ़कर संघाराम से चले गए।

मुरारी उस समय ऋषभदेव को ढूँढ़ने निकला। उसने देखा कि ऋषभदेव प्रायः अचेत होकर बेल के पेड़ के नीचे बैठे हैं। उसने पुकारा — 'ब्राह्मण देवता !'' परंतु कोई उत्तर नहीं मिला। मुरारी ने परीक्षा करके देखा कि ऋषभदेव अभी तक जीते हैं। इसपर उसने परिहास करने के लिये कहा—अच्छा, यदि तुम सोते हो तो सोए रहो, सबेरे आपही मार्ग ढूँढ़ते फिरोगे।

इतना सुनकर ऋषभदेव ने दोनों हाथों से मुरारी के पैर पकड़ लिए और कहा – मुरारी, तुम मेरे धर्म्मपिता हो। दोहाई है, इस वृद्ध ब्राह्मण को अकेले न छोड़ जाओ। मैं उपदेवताओं के डर से आँखें बंद किए बैठा हूँ।

मुरारी ने हँसकर कहा—अच्छा तो मैं नहीं जाऊँगा। परंतु यह तो बतलाओ कि तुम इस समय कहाँ जाओगे ?

ऋ०—प्रासाद में जाऊँगा, और कहाँ जाऊँगा। महाराजपुत्र कहाँ हैं ?

मुरा०—वे तो चले गए। अब तुम कैसे जाओगे ?

ऋ०—इसी कारण तो मैं तुम लोगों के साथ नहीं आता था। अब मैं करुणादेवी से कहकर कल प्रातःकाल ही यहाँ से चला जाऊँगा। मुरारी ! मैंने तुम्हें अपना पिता बनाया है। यदि तुम मुझे प्रासाद के अंतःपुर तक पहुँचा दो, तो मैं तुम्हारा बहुत उपकार मानूँगा।

मुरा० – मैं प्रासाद में प्रवेश नहीं कर सकता ; परंतु तुम्हें बाहरी फाटक तक पहुँचा दूँगा।

ऋ०—परंतु मैं मार्ग ही नहीं जानता।

मुरा०—मैं मार्ग बतला दूँगा।

ऋ०—परंतु मार्ग में अंधकार होगा।

मुरा०—नहीं, सब फाटकों पर प्रकाश है।

ऋ०—यदि मुझे भय लगा तो ?

मुरा०—तब तुम्हारा जाना हो चुका।

ऋ०—मुरारी, तुम मेरे धर्मपिता नहीं, पितामह हो। किसी प्रकार मेरी रक्षा करो। कल प्रातःकाल मैं अवश्य ही पाटलिपुत्र से चला जाऊँगा।

मुरा०—अच्छा तो चलो। मैं तो तुम्हारे साथ नहीं जा सकूँगा। परंतु हाँ, कोई आदमी साथ कर दूँगा।

———

पंद्रहवाँ परिच्छेद

साम्राज्य का अधिकरण

सोन नदी के तटपर विस्तृत उद्यान में आज बहुत बड़ा समारोह है। सम्राट् बहुत दिनों के उपरांत समुद्रगुप्त के उद्यान आवास में आए हैं। प्रतीहारों और रक्षकों से उद्यान चारों ओर से घिरा हुआ है। प्रत्येक फाटक पर बहुत से सवार और पैदल पंक्ति बाँधे खड़े हैं। बीच बीच में रथ आते हैं और स्वयं महाप्रतीहार कृष्णगुप्त उनके आरोहियों को उद्यान में ले जाते हैं। कोई रथ, हाथी अथवा घोड़ा फाटक के अंदर नहीं जाने पाता। दिन चढ़े प्रायः दो दंड बीते हैं। इतने में सोने का एक रथ, जिसमें सिंधु देश के चार घोड़े जुते थे, आकर फाटक के सामने खड़ा हुआ। महाप्रतीहार ने आरोही को अभिवादन करके मार्ग छोड़ दिया। सवारों और पैदल सैनिकों ने सामरिक प्रथा से अभिवादन किया। रथ उद्यान के अंदर चला गया। एक युवक सैनिक ने अपने साथी से पूछा—क्यों भाई, इस रथवाले यहाँ क्यों न उतरे?

साथी ने हँसकर पूछा—जानते हो, वे कौन हैं?

"नहीं।"

"महाराजाधिराज के छोटे भाई शकमंडलेश्वर महाराजपुत्र गोविंदगुप्त देव"।

"क्या और किसीका भी रथ अंदर जायगा?"

"हाँ, और तीन रथ सम्राट् के पास तक जा सकते हैं। युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त का, युवराज भट्टारकपादीय महामात्य दामोदर शर्म्मा का और

कुमारपादीय महाहस्त्यश्वनौबलाधिकृत अग्निगुप्त का रथ अथवा हाथी सम्राट् के पास तक जा सकता है।"

सैनिक की बात समाप्त होने से पहले ही एक छोटे सफेद घोड़े पर एक दीर्घाकार गोरे युवक फाटक पर आ पहुँचे। उनके पीछे दस पंक्तियों में सौ घुड़सवार थे। महाप्रतीहार ने पुनः अभिवादन किया। साथ ही फाटक के सवार और पैदल सैनिकों ने भी अभिवादन किया। एक सैनिक बोल उठा—"युवराज की जय हो"। उसके साथ ही समस्त सैनिकों ने भी जयध्वनि की। यह जयध्वनि सुनकर उद्यान के सामने के प्रतीहारों और रक्षकों ने भी जय ध्वनि की। युवराज ने फाटक पर रुककर तलवार निकालकर अभिवादन किया। तरुण सैनिक ने अपने साथी से कहा—जान पड़ता है कि ये युवराज हैं।

साथी सैनिक ने उत्तर दिया—हाँ, और इनके साथ जो सवार सैनिक देख रहे हो, वे इनकी शरीर रक्षक सेना के हैं। ये लोग मालव के रहनेवाले हैं। शक युद्ध में इन लोगों ने पराकाष्ठा की वीरता दिखलाकर सौराष्ट्र मंडल पर अधिकार किया था। ये लोग सदा युवराज स्कंदगुप्त के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहते हैं। फिर जब कभी युद्ध होगा, तब मालव के काले घोड़ोंवाले सवार साम्राज्य की सारी सेना के आगे रहेंगे। ये लोग साम्राज्य की घुड़-सवार सेना में सर्वश्रेष्ठ हैं।

देखते देखते एक और रथ आ पहुँचा। महाप्रतीहार और सैनिकों ने अभिवादन किया। उस रथ पर से भी एक युवक उतरे। तरुण सैनिक ने अपने साथी से पूछा—ये कौन हैं?

साथी ने उत्तर दिया—भाई, मैं तो इन्हें नहीं पहचानता। बात यह है कि आज का उद्यान विलास बिलकुल नए ढंग का है। सम्राट् जब उद्यान विलास में आया करते हैं, तब यहाँ युवती नर्तकियाँ आती हैं, सुंदर सुंदर गानेवाली आती हैं, सैकड़ों बाजे बजानेवाले आते हैं, पुर महिलाएँ आती हैं। सारा दिन आमोद प्रमोद में बीतता है। परंतु आज की नर्त्तकी दामोदर शर्म्मा हैं; और जान पड़ता है कि गायिका महाराजपुत्र और बाजा बजानेवाले अग्निगुप्त हैं।

सैनिक की बात सुनकर फाटक पर के समस्त सैनिक हँस पड़े। उस समय उसने पास ही खड़े हुए दूसरे सैनिक से पूछा—भाई, ये कौन आए हैं ?

दू० सै०—जान पड़ता है, ये गौड़ के बलाधिकृत भानुमित्र हैं।

पहले सैनिक ने कहा—सच ! तब तो ये बहुत ही असाधारण वीर हैं। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में इन्होंने अकेले एक गुल्मसेना लेकर समस्त शक राजाओं के विरुद्ध नगरहार की रक्षा की थी। ये युवराज के दाहिने हाथ हैं। महाराजाधिराज की पालिता कन्या करुणादेवी का विवाह इन्हीं के साथ हुआ है। ये गौड़ीय सेनापति एक न एक दिन युवराज भट्टारकपादीय महासेनापति होंगे।

इतने में एक बहुत बड़े हाथी पर वृद्ध महामंत्री फाटक पर आ पहुँचे। अभिवादन के उपरांत महाप्रतीहार उन्हें उद्यान में पहुँचा आए। अब उद्यान का फाटक बंद हो गया। उद्यान में संगमरमर के बने भवन में परमेश्वर परमभागवत परमभट्टारक महाराजाधिराज कुमारगुप्त देव सोने के सिंहासन पर बैठे थे। उनके सामने गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त और अग्निगुप्त बैठे थे। दामोदर शर्मा को देखकर सब लोग अपना अपना आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और उनके बैठने पर सब लोग फिर बैठ गए। महाप्रतीहार कृष्णगुप्त फाटक के पास हाथ में नंगी तलवार लेकर खड़े हो गए। मंत्रणा आरंभ हुई।

महाराजाधिराज ने कहा—पितृव्य, गोविंद इसी समय जालंधर के लिये प्रस्थान करेंगे। युद्ध आरंभ हो गया है। उनका जो कुछ वक्तव्य है, वह आप सब लोग सुन लें।

गो०—पितृव्य, वाह्लीक और कपिशा पर शत्रुओं का अधिकार हो गया है। गांधार और नगरहार से आगे दूत और व्यापारी लोग नहीं जाने पाते। शीघ्र ही पुरुषपुर और तक्षशिला पर आक्रमण होगा। शकमंडल की सीमा पर जो सेना है, वह बहुत ही थोड़ी है। यदि कम से कम पाँच लाख सैनिक न हुए तो उद्यान और सिंधु देश की रक्षा असंभव हो जायगी। यदि उस बर्बर जाति ने गिरिसंकट पार कर लिया, तो पंचनद की रक्षा के लिए पाँच

लाख की जगह दस लाख सैनिकों की आवश्यकता होगी। साम्राज्य में इस समय जहाँ जितनी शिक्षित सेना हो, वह सब तुरंत ही शतद्रु के तट पर पहुँच जानी चाहिए। पंचनद और मध्यदेश की सेना मेरे साथ ही जालंधर भेज दी जाय। सौराष्ट्र, सिंधु, आनर्त्त और मालव की सेना हरिगुप्त के साथ सप्त-सिंधु के मुहाने पर प्रतीक्षा करे। मागध और गौड़ीय सेना, जहाँ तक शीघ्र हो सके, महासेनापति के साथ जालंधर पहुँच जाय। सौराष्ट्र से चक्र-पालित, मालव से बंधुवर्म्मा, प्रतिष्ठान से तनुदत्त, पाटलिपुत्र से स्कंद और हर्ष तथा पुंड्रवर्द्धन से भानुमित्र मेरे साथ चलें। स्वयं पितृव्य, युद्ध के भांडागारा-धिकृत हों, महाभांडागाराधिकरण एक मास के अंदर एक करोड़ सुवर्ण जालंधर के भांडार में भेज दें और प्रति मास एक करोड़ सुवर्ण पाटलिपुत्र से पंचनद भेजा जाया करे। यदि ये सब बातें न हो सकेंगी तो फिर साम्राज्य की रक्षा असंभव हो जायगी।

दामो०—वत्स, विष्णुभद्र और बुद्धभद्र के आगमन से पहले हम लोगों ने हूण युद्ध का महत्व नहीं समझा था। तुम जो कुछ चाहते हो, वह सब हो जायगा। अग्निगुप्त से लेकर साम्राज्य के साधारण गौल्मिक तक तुम्हारी आज्ञा में रहेंगे। यदि आवश्यकता हुई तो मैं स्वयं पुरुषपुर जाऊँगा और महाराज स्थाण्वीश्वर में रहेंगे।

गो०—नहीं, आप लोगों को पाटलिपुत्र छोड़ने की आवश्यकता न होगी।

सोने में जला हुआ मिट्टी का एक बहुत बड़ा बरतन बहता हुआ चला आ रहा था। वह उद्यान के पास ही फाटक के सामने रुक गया और धीरे धीरे आकर किनारे पर लग गया। उसे देखकर महाप्रतीहार नदी में उतर पड़े। उद्यान की सीमा के बाहर एक छोटी नाव खड़ी थी। महाप्रतीहार के संकेत करने पर वह नाव संगमरमर के भवन के सामनेवाले संगमरमर के घाट पर आ पहुँची। कृष्णगुप्त ने किनारे खड़े होकर उस पात्र की ओर उँगली उठाई। तुरंत नाव पर से चार नाविक पानी में कूद पड़े और उस बरतन के नीचे से एक दुबले पतले गोरे युवक को निकाल लाये। महाप्रती-हार ने पूछा—कोई कह सकता है कि यह कौन व्यक्ति है?

एक नाविक बोल उठा—यह चंद्रसेन है।

महाप्रती०—चंद्रसेन कौन ?

नाविक—चंद्रलेखा का यार।

महाप्रतीहार के पुनः संकेत करने पर नाविक लोग चंद्रसेन के हाथ पैर बाँधकर और उसे नाव पर रखकर ले गए।

उस समय साम्राज्य की रक्षा की मंत्रणा समाप्त हो चुकी थी। दामोदर शर्म्मा सम्राट् की आज्ञा लिख चुके थे और सम्राट् उसपर हस्ताक्षर कर रहे थे। इतने में कृष्णगुप्त वहाँ आ पहुँचे। महामात्य ने संकेत से पूछा कि क्या हुआ। महाप्रतीहार ने होंठों पर उँगली रखकर मानों बतला दिया कि कोई गोपनीय समाचार है जो फिर निवेदन करूँगा। पत्र पर हस्ताक्षर करके सम्राट् उठ खड़े हुए और युवराज का हाथ पकड़कर अपने छोटे भाई के सामने जाकर कहने लगा—गोविंद, देखो स्कंद आजतक कभी युद्ध में नहीं नहीं गए हैं। इन्हें तुम सदा अपने पास ही रखना। मुझे स्पर्श करके इस बात की शपथ करो।

महाराजपुत्र ने मुस्कराकर कहा—आप इतना विचलित क्यों हो रहे हैं?

सम्राट् का गला रुँध गया। उन्होंने कहा—भाई, मुझे जान पड़ता है कि भारी विपत्ति आनेवाली है। तुम भी सावधान रहना और आत्मरक्षा की पूरी पूरी चेष्टा करना। फिर लौटकर पाटलिपुत्र आना—

सम्राट् का गला रुँध गया। उन्होंने अपने छोटे भाई और पुत्र को गले से लगा लिया। उस समय वहाँ जितने व्यक्ति उपस्थित थे, वे सभी विचलित हो गए।। वृद्ध, विज्ञ, बहुदर्शी और राष्ट्रनीति कुशल महामात्य की आँखों से भी आँसुओं की धारा बहने लगी। अग्निगुप्त मुँह फेरकर उत्तरीय से आँसू पोंछ रहे थे। इतने में भानुमित्र का हाथ पकड़कर सम्राट् ने कहा—गोविंद, करुणा और अरुणा मेरे लिये स्कंद के ही समान हैं। महानायक अग्निमित्र के पुत्र युवक होने पर भी युद्ध विद्या के पूरे पंडित हैं। उनमें सिंह के सामने बल है, परंतु उन्हें अपने जीवन का मोह नहीं है। करुणा के लिये उन्हें भी लौटा लाना। भाइयों, मैं बुड्ढा हो गया हूँ। अनेक बार अपनी मूर्खताओं के कारण मैंने तुम लोगों को कष्ट दिया है; तुम लोग मुझे क्षमा करना। मैं समझ रहा हूँ कि साम्राज्य के बहुत ही बुरे

दिन आ रहे हैं। भीषण युद्ध आर्यावर्त्त को ग्रसने के लिये आ रहा है। इसमें भी संदेह ही है कि जो लोग इस समय जा रहे हैं, वे लौटकर आवेंगे भी या नहीं—

फिर सम्राट् का गला भर आया। वे जल्दी से भवन के बाहर निकल कर रथ पर जा बैठे। रथ नगर की ओर चल पड़ा। कुमारगुप्त के चले जाने पर दामोदर शर्मा ने गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त और भानुमित्र को गले से लगाकर रुँधे हुए कंठ से कहा—गोविंद, मेरी समझ में नहीं आता कि आज मुझे क्या हो गया है। आज किसी को छोड़ने को जी ही नहीं चाहता। तुम सब लोग कहो कि हाँ, हम लोग पाटलिपुत्र लौट आवेंगे। मुझे स्पर्श करके शपथ करो। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि करालकाल भीषण रूप से मुँह खोलकर आर्यावर्त्त को ग्रसने के लिये आ रहा है। गोविंद, कल पाटलिपुत्र में अँधेरा छा जायगा। मैं किसको लेकर राजधानी में रहूँगा? तुम लोग कहो कि हम सब लोग कहो कि हम सब लोग फिर पाटलिपुत्र में आवेंगे। समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त का प्रासाद फिर तुम लोगों की हँसी से गूँज उठेगा।

महाराजपुत्र का भी जी भर आया। उन्होंने कहा—पितृव्य, आप यह क्या कर रहे हैं?

वृद्ध महामंत्री ने मुँह फेरकर कहा—क्या कहूँ, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। स्कंद! गोविंद! बतलाओ, तुम लोग लौट आओगे न? भानु! बेचारी करुणा का मुँह सूख जायगा। अंतःपुर में प्रवेश करने पर वधुएँ पूछेंगी कि मेरे पुत्र और जामाता कब लौटेंगे। उस समय मैं उन लोगों को क्या उत्तर दूँगा? स्कंद, जिस दिन तुम लौटकर यहाँ आओगे, उसी दिन मैं फिर तुम्हारे साथ ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में प्रवेश करूँगा, इससे पहले नहीं। गोविंद! जिस समय तुम आकर मेरी चिता बनाओगे, उसी समय मैं निश्चित होकर मर सकूँगा।

महाराजपुत्र और युवराज ने बड़ी कठिनता से वृद्ध महामंत्री को समझा बुझाकर और धैर्य्य दिलाकर घर भेजा। महामंत्री का हाथी जब उद्यान के

फाटक के बाहर निकल गया, तब महाराजपुत्र ने युवराज से कहा—स्कंद, हम लोगों को इसी समय यात्रा करनी पड़ेगी।

स्कंद—इसी समय ?

गो०—हाँ, इसी समय। महाराज और महामात्य बहुत ही अधीर हो रहे हैं। आज तक मैंने कभी उन लोगों को युद्ध के लिये यात्रा करते समय इस प्रकार आँसू बहाते नहीं देखा। आज संध्या को ही यहाँ से चल पड़ना चाहिए। अग्नि ! तुम प्रस्तुत हो जाओ।

अग्नि०—मैं सदा प्रस्तुत रहता हूँ।

गो०—भानु ! अब तुम भी लौटकर गौड़ नहीं जा सकते। यात्रा के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

भानु०—मैं तीसरे पहर तक प्रस्तुत हो जाऊँगा।

इसके उपरांत सब लोग उद्यान से निकलकर नगर की ओर चले गए।

अग्नि

पहला परिच्छेद

अग्निगुप्त और ज्योतिषी

दिन का दूसरा पहर बीत चुका है। पाटलिपुत्र नगर के लंबे चौड़े राजपथों पर सैकड़ों नागरिक इधर उधर आते जाते हैं। राजपथ के एक किनारे एक ज्योतिषी छाता लगाए, आसन बिछाए बैठा है। अपने भाग्य की बातें जानने के लिये बहुत से पुरुष और स्त्रियाँ उसे घेरे हैं। एक योद्धा गंगा स्नान करके देवदर्शन के लिये जा रहा था। मार्ग में भीड़ देखकर उसने किसी से उस भीड़ का कारण पूछा, और उससे कारण सुनकर उसी भीड़ में प्रवेश किया। ज्योतिषी उस समय एक सुंदर स्त्री का हाथ देख रहा था। उस सैनिक को देखते ही वह बोल उठा - तुम क्यों आए हो? मैं तुम्हारे भाग्य की बात नहीं बतला सकता।

सैनिक ने विस्मित होकर पूछा—क्यों, इसका क्या कारण है?

ज्यो०—अप्रियो बात नहीं कहनी चाहिए।

सै०—मैं तो योद्धा हूँ। लड़ना मरना ही मेरा काम है। मेरे लिये कोई बात प्रिय अथवा अप्रिय नहीं हो सकती।

ज्यो०—भाई, मैं हाथ देखकर भाग्य की बात बतलाता हूँ। मेरी बात का बुरा न मानना।

सै०—नहीं नहीं, जो कुछ तुम्हारी समझ में आवे, वही ठीक ठीक कह देना। यदि सच्ची बात अप्रिय भी हो तो उसके कहने में संकोच न करना।

ज्यो०—तुम्हें शीघ्र ही युद्ध में जाना पड़ेगा।

सै०—यह तो बड़े आनंद की बात है। बहुत दिनों से मेरी तलवार ने रक्तपान नहीं किया है।

ज्यो०—तुम्हें इसी समय युद्ध के लिये यात्रा करनी पड़ेगी।

सै०—इसी समय?

ज्यो०—हाँ, इसी समय।

सै०—मैं कब लौटूँगा ?

ज्यो०—अब तुम नहीं लौटोगे।

सैनिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह स्तंभित हो गया। यह देखकर ज्योतिषी ने कहा—भाई, इसीलिये मैंने कहा था कि मैं तुम्हारे भाग्य की बात नहीं बतलाऊँगा।

सैनिक ने मुस्कराकर कहा—नहीं नहीं, यह कोई बात नहीं है। अच्छा, तुम बतला सकते हो कि मैं कब मरूँगा ?

ज्यो०—अभी विलंब है।

सै०—कितना ?

ज्यो०—बीस वर्ष।

सैनिक ने ज्योतिषी को चाँदी का एक सिक्का दिया। परंतु ज्योतिषी ने उसे न लेकर कहा—भाई, गुरु की आज्ञा है कि तुम लोगों से धन न लिया जाय।

सैनिक भीड़ में से निकलकर बाहर आ गया। शीघ्र ही उसकी आँखों के सामने से सुंदर पाटलिपुत्र नगर और हरी भरी मातृभूमि का दृश्य हट गया और उसे चारों ओर लाली ही लाली दिखाई देने लगी। वह आश्रय ग्रहण करने के लिये पास ही की एक अट्टालिका की दीवार के पास जा खड़ा हुआ।

उसी समय राजमार्ग से होकर साँवले रंग का एक नाटा सवार जा रहा था। उस सैनिक को देखकर सवार ने अपना घोड़ा रोक दिया। सैनिक उसका परिचित था। सवार ने उसका नाम लेकर पुकारा; परंतु वह अपनी मृत्यु की चिंता के कारण दुःखी था, अतः उसका पुकारना न सुन सका। सवार ने घोड़े पर से उतरकर उसके कंधे पर हाथ रखा। सैनिक ने चौंककर मुँह फेरा और उसे देखते ही तलवार निकालकर अभिवादन किया। आगंतुक ने पूछा—इंद्रपालित! तुम्हें क्या हुआ है ?

सै०—देव, कुछ नहीं। मुझे इसी समय युद्ध के लिये यात्रा करनी पड़ेगी; अतः मैं देव दर्शन के लिये जा रहा हूँ।

सवार—यह तुमने कैसे जाना कि तुम्हें इसी समय युद्ध के लिये यात्रा करनी पड़ेगी ?

सै०—एक ज्योतिषी ने बतलाया है ।

सवार—वह ज्योतिषी कहाँ है ?

सै०—इसी भीड़ में बैठा है ।

सवार—उसने तुमसे और भी कुछ कहा है?

सै०—हाँ, उसने यह भी कहा है कि अब तुम कभी लौटकर पाटलिपुत्र न आओगे । इसी लिये मैं जी भरकर पाटलिपुत्र को देख रहा हूँ; क्योंकि फिर कभी मुझे देखना न मिलेगा ।

सवार—इंद्रपालित, तुम शांत होओ । ज्योतिषियों की गणना क्या सदा सत्य ही हुआ करती है ?

सै०—मैं यह तो नहीं जानता; परंतु देव, क्या सचमुच इसी समय युद्ध के लिये यात्रा करनी पड़ेगी ?

सवार—हाँ, यह बात तो ठीक है ।

सै०—तो फिर अब मैं पाटलिपुत्र नहीं लौटूँगा ।

सवार - इंद्रपालित, तुम तो योद्धा हो । तुम्हारे बाल बच्चे भी नहीं है । फिर तुम किसके लिये इतने व्याकुल हो रहे हो ?

सै०—देव, यदि वह इतना भी कह देता कि तुम एक बार—केवल एक बार—इस नगर में लौट आओगे, तो मैं कभी इतनी चिंता न करता ।

सवार—इंद्र, देश के लिये, धर्म के लिये, देवता के लिये, स्त्री के लिये और ब्राह्मण के लिये कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो प्राण दे सकते हैं ? जो इस प्रकार प्राण दे सकते हैं; वे मनुष्य नहीं, देवता हैं । मरना सब को पड़ता है । रोगी होकर शय्या पर पड़े पड़े, किसी आकस्मिक घटना अथवा भयंकर अभिमान के कारण अपने हाथों सभी लोग एक न एक दिन मरते हैं । परंतु तुम कह सकते हो कि कितने मनुष्य ऐसे हैं जो अपनी इच्छा से दूसरों के लिये प्राण दे सकते हैं ? तुम शांत होओ । हम लोग जिस युद्ध में जा रहे हैं, वैसा युद्ध शकों के आक्रमण के उपरांत आज तक आर्यावर्त्त में नहीं

हुआ। उस युद्ध में यह नश्वर शरीर त्यागना बड़े गौरव की बात है। चलो मैं भी उस ज्योतिषी के पास चलूँगा।

दोनों भीड़ चीरते हुए दैवज्ञ के पास पहुँचे। दैवज्ञ उन लोगों को देखकर बोल उठा—महासेनापति, आप जो कुछ पूछने आए हैं, उसका उत्तर इस भीड़ मे नहीं दिया जा सकता।

अग्निगुप्त विस्मित होकर पीछे हटे। इसपर ज्योतिषी ने सब पुरुषों और स्त्रियों को दूर हट जाने के लिये कहा। सब लोग डरकर भाग गए। उस समय ज्योतिषी ने महासेनापति से कहा—महाशय, आप कृतघ्न नहीं हैं। आप चंद्रगुप्त का ऋण अवश्य चुकावेंगे।

अग्नि०—चंद्रगुप्त का ऋण! आपने यह कैसे जाना कि मुझपर चंद्रगुप्त का ऋण है?

ज्यो० महानायक, क्या पढ़ा हुआ ग्रंथ पढ़ने में भी कभी किसीको कष्ट होता है?

अग्नि०—नहीं।

ज्यो०—तो फिर भाग्य का लेख तो मैंने हजारों बार पढ़ा है। आप वृद्ध सम्राट् और वृद्ध सचिव के आँसुओं को भूल जायँ। स्कंदगुप्त लौट आवेंगे, गोविंदगुप्त भी लौट आवेंगे, परंतु आप नहीं लौटेंगे।

अग्नि०—ब्राह्मण देवता, मुझे इस बात का तनिक भी दुःख नहीं है। परंतु आप इतना कह दीजिए कि मैं युद्ध-क्षेत्र में विजयी होकर मरूँगा—मातृभूमि की रक्षा करके मरूँगा। आजतक अग्निगुप्त ने देवताओं से इसके अतिरिक्त और कोई प्रार्थना नहीं की।

ज्यो०—ऐसा ही होगा। महानायक, आप धन्य हैं। आपके रक्त से कुमारगुप्त के पापों का प्रायश्चित्त हो जायगा। यह प्रायश्चित्त इसी बार होगा। परंतु दूसरी बार—

अग्नि०—दूसरी बार क्या? दूसरी बार के लिये समुद्रगुप्त के वंश में गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त, हर्षगुप्त आदि अनेक वीर अभी तक हैं। अपने प्राण देने के लिये कोई संकोच न करेगा।

ज्यो०—महासेनापति, आप शांत हों। हूणयुद्ध में धीरता की आवश्यकता है। बहुत से मनुष्यों के बलिदान का आयोजन हो चुका है। स्कंदगुप्त से कह दीजिएगा कि आर्यावर्त्त के सम्राट् जिस दिन पवित्र गंगा यमुना के संगम पर प्रतिष्ठान के प्राचीन युद्धक्षेत्र में मुट्ठी भर मागध सेना लेकर आत्मविसर्जन करेंगे, उसी दिन आर्यावर्त्त की रक्षा होगी।

अग्नि०—आचार्य, आप यह क्या कह रहे हैं?

ज्यो०—मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह आप नहीं समझेंगे।

अग्नि०—तो फिर कौन समझेगा?

ज्यो०—यशोधर्मदेव और बालादित्य समझेंगे।

अग्नि०—वे लोग कौन हैं?

ज्यो०—आर्यावर्त्त का परित्राण करनेवाले।

अग्नि०—जो हो, परंतु आर्यावर्त्त की रक्षा तो होगी न? बस मेरे लिये यही सबसे अधिक आनंद की बात है। गुप्त साम्राज्य और गुप्त वंश रसातल में चला जाय, हजारों स्कंदगुप्त और लाखों अग्निगुप्त युद्धक्षेत्र में मारे जाँय, इससे कोई हानि नहीं हो सकती। परंतु तीर्थों और देवताओं को, स्त्रियों और बालकों की रक्षा होनी चाहिए।

सहसा ज्योतिषी ने खड़े होकर वृद्ध सेनापति को गले से लगा लिया और कहा—महाबलाधिकृत, आप धन्य हैं। प्रत्येक युग और प्रत्येक कल्प में आपके समान सुयोग्य संतान मातृभूमि की रक्षा के हेतु आत्मविसर्जन करने के लिये प्रस्तुत हो। विधि का लिखा सदा अखंडनीय होता है—उसे कोई रोक नहीं सकता। परंतु फिर भी भविष्यत् अंधकारमय है। मेरी प्रार्थना है कि उसी अंधकारमय युग में आपके समान महापुरुष देखने को मिलें। महानायक, आप फिर आइएगा—देवताओं और ब्राह्मणों की, स्त्रियों और बालकों की रक्षा करने के लिये आप फिर आइएगा।

इतना कहकर ज्योतिषी रोने लगे और पागलों की तरह भाग खड़े हुए। अग्निगुप्त और इंद्रपालित कुछ समय तक स्तंभित होकर वहीं खड़े रहे। इतने में एक सैनिक ने आकर महासेनापति को अभिवादन किया और कहा—देव, दिन के तीसरे पहर का आरंभ हो गया।

अग्निगुप्त ने चौंककर कहा—इंद्रपालित, यात्रा का समय हो गया। सेनानिवास में दूत भेजकर कहला दो कि नगर की सारी घुड़सवार सेना आज ही रात को जालंधर के लिये प्रस्थान करेगी।

इंद्रपालित अभिवादन करके चला गया। समुद्रगुप्त के वंशधर, विशाल गुप्तसाम्राज्य के महाबलाधिकृत, युवराज भट्टारकपादीय महासेनापति अग्निगुप्त यात्रा के लिये प्रस्तुत होकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्त्री से विदा होने के लिये चले।

दूसरा परिच्छेद

भाग्यचक्र

दिन का दूसरा पहर आरंभ हो गया है। पाटलिपुत्र के प्रासाद के फाटकों पर मंगलवाद्य बजने लगे हैं। गोविंदमंदिर में करुणादेवी एकाग्र चित्त से इष्ट मंत्र का जप कर रही है। इतने के सहसा किसीने पीछे से उसे स्पर्श किया। करुणादेवी ने विस्मित होकर देखा कि पीछे स्वामी खड़े हैं। प्रियजन के दर्शन के कारण उसके लाल लाल होंठों पर मुस्कराहट दिखाई दी। करुणा ने कहा—मुझे तुमने क्यों छू दिया? अब मुझे फिर १००८ बार जाप करना पड़ेगा।

पहले तो करुणा को मुस्कराते देखकर भानुमित्र बहुत ही प्रसन्न हुआ करते थे, परंतु आज उनका भाव बहुत ही गंभीर था। आज उनके होंठों पर करुणादेवी की मुस्कराहट का प्रतिबिंब नहीं पड़ा था। यह देखकर करुणादेवी को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—क्या हुआ? आज तुम बोलते क्यों नहीं?

भानुमित्र ने मुँह फेरकर कहा—करुणा, आज मैं तुमसे विदा होने के लिये आया हूँ।

करुणा आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई और भानुमित्र के गले में बाँहें डालकर बोली—छिः, ऐसी बात तुम्हें मुँह से न निकालनी चाहिए। बतलाओ, क्या हुआ है ?

करुणा का सिर अपने कलेजे के पास खींचकर रुँधे हुए गले से भानुमित्र ने कहा करुणा, मैं झूठ नहीं कहता। सचमुच मैं तुमसे विदा होने के लिये आया हूँ—

इसके आगे भानुमित्र से बोला न गया। करुणा ने फिर पूछा—क्या हुआ है, बतलाते क्यों नहीं ? शीघ्र बतलाओ, मेरा जी घबरा रहा है।

भानुमित्र ने बड़े कष्ट से अपने आपको सँभालकर कहा—करुणा, मुझे इसी समय पंचनद जाना पड़ेगा।

करु०—क्यों ?

भानु०—पंचनद में युद्ध ठन गया है।

करु०—क्या तुम्हें छोड़कर साम्राज्य में और कोई सेनापति नहीं है ?

भानु०—स्वयं महाराजपुत्र गोविंदगुप्त, अग्निगुप्त, युवराज, कुमार हर्षगुप्त सभी लोग जायँगे।

करु०—बहुत अच्छी बात है। परंतु इसी समय क्यों जाना पड़ेगा ?

भानु०—हम लोगों को विदा करते समय महाराजाधिराज और महामंत्री बहुत ही विचलित हो गए थे। इसी कारण महाराजपुत्र की आज्ञा है कि आज संध्या से पहले ही सब लोग जालंधर के लिये प्रस्थान करें।

अपने पति के पास से कुछ हटकर करुणा उनके मुँह की ओर देखने लगी और हँसकर बोली—रसराज, मैं देखती हूँ कि पाटलिपुत्र में आकर तुमने नए ढंग की रसिकता सीखी है। पहले तुम यह बतलाओ कि जप के समय तुमने मुझे छूआ क्यो। नगर में आकर बहुत अच्छा अभिनय करना सीखा है।

भानुमित्र ने कातर स्वर से कहा—करुणा, गोविंददेव साक्षी हैं, मैं सच कहता हूँ कि मैं नहीं जानता कि फिर कब तुम्हारा यह मुखड़ा दिखाई देगा। मैं नहीं जानता कि फिर कब तुम्हारे फूलों के समान कोमल होंठों पर मुस्कराहट देखूँगा।

करुणा ने भानुमित्र के दोनों हाथ पकड़कर कहा—क्या सचमुच तुम्हें जाना पड़ेगा ? अथवा तुम कोई काव्य लिखनेवाले हो, जिसके लिये विरह का नांदीपाठ कर रहे हो ?

भानु०—करुणा, मैं सच कह रहा हूँ, अब समय नहीं है। यह देखो, फाटक पर दूसरे पहर का मंगलवाद्य बंद हो गया। चलो, प्रासाद को लौट चलें।

करु०—क्यों ?

भानु०—वहाँ तुम्हें एक बार जी भरकर देखूँगा।

करु०—मुझे तो तुम नित्य ही देखा करोगे।

भानु०—वह तो हृदय से न ? आँखों से तो नहीं न ?

करु०—नहीं नहीं, अपने इन्हीं विशाल नील नेत्रों की कृष्ण तारकाओं से।

भानु०—करुणा, हँसी रहने दो।

करु०—मैं हँसी नहीं करती। गोविंद की शपथ करके कहती हूँ।

भानु०—तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई।

करु०—हैं ! इतनी छोटी सी बात तुम नहीं समझ सके ? तो फिर तुम एक लाख सैनिकों का प्रबंध कैसे कर सकोगे ?

भानु०—तुम्हारी आज्ञा लेकर। करुणा, क्या तुम पागल हो गई हो ? बहुत विलंब हुआ। चलो, चलें।

करु०—किस बात के लिये विलंब हुआ ?

भानु०—तुम्हें गौड़ भेजने का प्रबंध करना पड़ेगा। मैंने ऋषभ को बुलवा भेजा है।

करु०—जब मैं गौड़ जाऊँगी, तब न तुम मेरे भेजने की व्यवस्था करोगे ?

भानु०—तो क्या तुम गौड़ नहीं जाओगी ?

करु०—नहीं।

भानु०—तो क्या पाटलिपुत्र में ही रहोगी ?

करु०—सो भी नहीं।

भानु०—तो क्या निकल जाओगी ?

करु०—हाँ।

भानु०—किसके साथ ?

करु०—तुम्हारे साथ।

इतना कहकर करुणा ने भानुमित्र का मुँह चूम लिया।

भानुमित्र ने लज्जित होकर कहा—करुणा, यह तुम क्या कर रही हो? लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?

करु०—यही कहेंगे कि भानुमित्र करुणा के यार हैं।

भानु०—करुणा, बहुत विलंब हो गया। चलो, चलें।

करु०—चलो, चलती हूँ ? मैं रथ पर जाऊँगी।

भानु०—कहाँ जाओगी ?

करु०—जालंधर।

भानु—तुम जालंधर क्यों जाओगी ?

करु०—तुम्हारे साथ।

भानु०—करुणा, क्या तुम पागल हो गई हो ?

करु०—क्या तुमने इस बात को आज जाना ?

भानु०—करुणा, इस समय हँसी रहने दो। मैं युद्ध पर जा रहा हूँ। तुम्हें अपने साथ कहाँ ले जाऊँगा ?

करु०—तो फिर मैं भी कहे देती हूँ कि यदि मैं न गई, तो फिर तुम भी न जा सकोगे।

भानु०—करुणा, मैं तो तुमसे विदा होने के लिये आया था। तुमने यह क्या विपद् खड़ी कर दी ?

करु०—यह विपद् नहीं, संपद् है। यदि तुम मुझे न देखोगे तो तुमसे एक क्षण भी न रहा जायगा। यदि तुम अकेले जाओगे तो मार्ग मे से ही लौट आओगे।

भानु०—मैं तो युद्ध पर जाऊँगा। तुम्हें ले चलकर कहाँ रखूँगा ?

करु०—वहीं, जहाँ तुम रहोगे।

भानु०—मैं तो छावनी में रहूँगा।

करु०—तो फिर मैं भी छावनी में रहूँगी।

भानु०—कुल वधुएँ भी कहीं छावनी में रह सकती हैं ?

करु०—अच्छा तो फिर नगर में रहूँगी। पंचनद क्या उजाड़ हो गया है ? नगरहार, पुरुषपुर, तक्षशिला, सिंहपुर और जालंधर ये सब कहाँ चले जायँगे ? देखो, पुरुष बहुत ही विश्वासघातक होते हैं। तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं। संभव है कि तुम मुझे यों ही छोड़कर भाग जाओ। मैं महादेवी के पास जाती हूँ।

इतना कहकर करुणादेवी चली गई। भानुमित्र कुछ समय तक किंकर्त्तव्यविमूढ होकर चुपचाप वहीं खड़े रहे। कुछ समय के उपरांत वे करुणा को ढूँढ़ने के लिये गोविंद मंदिर के आँगन से बाहर निकले। अंतःपुर में जाकर उन्होंने देखा कि पट्टमहादेवी के आवास के सामने ऋषभदेव खड़े हैं। उन्हें देखकर भानुमित्र ने पूछा—ऋषभ, तुम कब आए ?

ब्राह्मण ने बहुत दुःखी होकर कहा—बस दो ही दंड पहले। अब कहाँ चलना पड़ेगा ?

भानु०—मैं सोचता था कि तुम्हें गौड़ भेज दूँगा। परंतु करुणा ने मुझे बड़ी विपत्ति में डाल दिया है। वह किसी प्रकार गौड़ जाना ही नहीं चाहती।

ऋ०—तुम लोग तो गौड़ चले जाओगे। परंतु मैं नहीं जा सकूँगा।

भानु०—क्यों ऋषभ, तुम क्यों नहीं जा सकोगे ?

ऋ०—कापालिक ने कह दिया है कि देश लौटकर जाना मेरे भाग्य में नहीं बदा है। भानु, तुम जब देश जाना तब मेरा एक ऋण चुका देना।

भानु०—ऋषभ, क्या तुम पागल हो गए हो ?

ऋ०—मैं पागल नहीं हो गया हूँ। गौड़ की रोहिणी ग्वालिन से मैंने कहा था कि मैं तुम्हें दूधवाली एक गौ दूँगा। सो तुम देश जाकर उसे दूधवाली एक गौ दे देना। और मेरी जो कुछ थोड़ी बहुत संपत्ति है, वह या तो तुम ले लेना या देवसेवा में लगा देना।

भानु०—हैं ! यह तुम्हें क्या हो गया ? रोहिणी के कारण ही तो तुमने विवाह नहीं किया। तो फिर तुम अपनी संपत्ति भी उसीको क्यों नहीं दे देते ?

ऋ०—भाई, यह हँसी की बात नहीं है। जब मुझे लौटकर देश नहीं जाना है, तब फिर मुझे सब बातों की व्यवस्था कर देनी चाहिए। रोहिणी

मेरी कोई नहीं है। मैंने जो विवाह नहीं किया, वह एक तो तुम्हारी दुर्दशा देखकर; और दूसरे दांपत्य कलह के भय से। रोहिणी बहुत ही धर्मनिष्ठ है। वह अपनी गौ का दूध देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा में अर्पित करती है। देवता लोग तो दूध, दही और मक्खन के केवल दर्शन करते हैं, और मैं उन सब को चट कर जाता हूँ। कैसा मधुर संबंध है!

भानु०—इसीलिये तो मैं भी कहता हूँ।

ऋ०—हँसी रहने दो और यह बतलाओ कि अब कहाँ चलना होगा।

भानु०—महाराजाधिराज की आज्ञा है कि महाराजपुत्र और युवराज के साथ मैं आज ही पंचनद की सीमा पर युद्ध के लिये चला जाऊँ।

ऋ०—आज नहीं, कल जाना।

भानु०—कल क्यों? महाराजपुत्र ने तो कहा है कि आज ही सबको चलना पड़ेगा।

ऋ०—परन्तु कापालिक ने कहा है कि मैं कल दोपहर को जाऊँगा।

भानु०—कापालिक कौन?

ऋ०—मैं नहीं जानता।

भानु०—तुमने उसे कहाँ देखा था?

ऋ०—श्यामा मंदिर में। उसने कहा था कि मैं भी पंचनद जाऊँगा और फिर कभी लौटकर गौड़ न जा सकूँगा।

भानु०—वह कहाँ है?

ऋ०—मैं तो देख ही न सका कि श्यामा-मंदिर से निकलकर वह कहाँ अंतर्धान हो गया। उसने यह भी कहा था कि यदि तुम अपनी स्त्री को साथ लेकर पंचनद जाओगे, तो बड़ी विपत्ति आवेगी।

भानु०—विपत्ति तो आ ही गई। करुणा पागल हो गई है। वह मेरे साथ ही पंचनद जाना चाहती है।

ऋ०—उसे रोक दो, नहीं तो बड़ा अनर्थ होगा। तुम जानते हो, स्त्री की बुद्धि बहुत ही नाश करती है।

इतने में महादेवी के कमरे से अरुणा और स्कंदगुप्त दोनों हँसते हुए बाहर निकले। भानुमित्र और ऋषभदेव को देखकर युवराज ने कहा—भानु,

माता जी ने आज्ञा दे दी है। करुणा हम लोगों के साथ पंचनद जायगी। आज हम लोग नहीं जा सकेंगे। कल दोपहर को अच्छा मुहूर्त्त है। कल ही चलना होगा।

युवराज की बात सुनकर ऋषभदेव काँपते हुए वहीं बैठ गए और बोले—हे परमेश्वर, यह तूने क्या किया! मैंने बहुत से अपराध किए हैं। तू एक बार मुझे क्षमा कर। यदि मैं मर जाऊँ तो कोई हानि नहीं है। मैं लौटकर गौड़ पहुँचना भी नहीं चाहता। परंतु देव! ये लोग संसार के ऊँचे नीचे मार्गों पर चलने के अभ्यस्त नहीं हैं। इन लोगों के कोमल पैरों में काँटा भी न चुभने देना। तुम अनंत और असीम हो, और मैं बहुत ही छोटा हूँ। तुम्हारे अनंत चक्रों को कौन समझ सकता है। हे मधुसूदन, इन लोगों की रक्षा करो। मैं समझता हूँ कि भाग्य इन दोनों पतंगों को आग की ओर खींचे लिये जाता है। हे दयामय, दीनानाथ, दीनबंधु, रक्षा करो।

ब्राह्मण की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उनकी यह दशा देखकर करुणा, स्कंदगुप्त और भानुमित्र पत्थर की मूरत की तरह खड़े रह गए।

तीसरा परिच्छेद

लंबी यात्रा

संध्या हो गई है। पाटलिपुत्र नगर के एक बड़े राजमार्ग के ऊपर पत्थर का बना एक विशाल भवन दीपमालाओं से चमक रहा है। सेनापति देवधर के घर आज बहुत बड़ा उत्सव है। स्वयं देवधर फाटक पर खड़े होकर अतिथियों का आदरपूर्वक स्वागत कर रहे हैं। रथ पर रथ आकर फाटक के पास खड़े हो रहे हैं और योद्धाओं के वेश में अतिथि लोग फाटक में प्रवेश कर रहे हैं। फाटक के ऊपर मंगल वाद्य बज रहे हैं। सामने मार्ग में खड़े होकर सैकड़ों नागरिक वह उत्सव देख रहे हैं।

भवन के एक बहुत बड़े कमरे में अतिथि लोग एकत्र हो रहे हैं। चारों ओर सुगंधित दीपकों और फूल मालाओं की सुगंधि फैल रही है। सेवक लोग हाथ में पात्र और मद्य लेकर चारों ओर घूम रहे हैं। माध्वी और कादंबिनी का मानों सोता बह रहा है। कमरे के बीच में मद्य पीए हुए चार वेश्याएँ नाच रही हैं; और चंद्रमंडल की तरह उनको चारों ओर से घेरे हुए अनेक सुंदर वेश्याएँ बैठी हैं। वे सब वेश्याएँ कभी नाचकर और कभी गाकर देवधर के अतिथियों का मनोरंजन करती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे आधी रात बीत गई।

सेनापति देवधर उस समय भी फाटक पर खड़े अतिथियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब रात का दूसरा पहर बीत गया, तब नगर के फाटकों और मंदिरों के मंगल वाद्य बंद हो गए। उस समय दो रथ आकर देवधर के द्वार पर खड़े हुए। पहले रथ पर से महाराजपुत्र गोविंदगुप्त और महाबलाधिकृत अग्निगुप्त, और दूसरे रथ पर से युवराज स्कंदगुप्त और बलाधिकृत भानुमित्र उतरे। देवधर ने सम्राट्वंशीय अतिथियों को अभिवादन करके और भानु-मित्र को आलिंगन करके कहा—बहुत विलंब हो गया था, अतः मैं समझता था कि कदाचित् आप लोग न आ सकेंगे।

महाराजपुत्र ने हँसकर कहा - देवधर, यह कौन सी बात है! आज तुम्हारे यहाँ सैनिक उत्सव है। आज तो मैं हजार काम छोड़कर आता। कौन कह सकता है कि जो लोग युद्ध में जा रहें हैं, उनमें से कौन लौटेंगे और कौन नहीं।

सब लोगों ने नाचवाले कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही लोगों ने भीषण जयध्वनि की जिससे उस भवन की पत्थर की बनी दीवारें तक हिल गईं। जो लोग मद्य पीकर उन्मत्त और अर्द्धमत्त हो रहे थे, और जिन लोगों का मस्तिष्क ठिकाने था, उन सब सेनानायकों ने एक स्वर से चिल्लाकर कहा—"गोविंदगुप्त की जय! महाराजपुत्र की जय!" साथ ही सैंकड़ों तलवारें कोषों से निकलकर हजारों दीपशिखाओं के प्रकाश में चमकने लगीं। गोविंदगुप्त ने आधे मार्ग में रुककर कोष में से तलवार निकाली और

उष्णीष से स्पर्श कराके फिर उसे कोष में रख लिया। फिर दूसरी जयध्वनि से देवघर का भवन हिल गया। सब लोगों ने अग्निगुप्त और युवराज स्कंदगुप्त का नाम लेकर जयध्वनि की। अग्निगुप्त और स्कंदगुप्त ने यथोचित रीति से अभिवादन करके आसन ग्रहण किया। फिर नाच गाना आरंभ हुआ। फिर आसव, माध्वी और कादंब के सोते बहने लगे।

कोई दो दंड के उपरांत अग्निगुप्त अचानक आसन छोड़ककर उठ खड़े हुए। वृद्ध सेनापति ने कोष से तलवार निकाली और अपने सिर के सफेद बालों से उसे स्पर्श कराया। नाच गाना रुक गया। तलवार को फिर कोष में रखकर वृद्ध सेनापति ने कहा—भाइयों, मैं कल हूण-युद्ध में जाऊँगा। आज तक मैंने जो कुछ अपराध किए हों, उनके लिये मैं क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

उनकी बातें सुनकर सब लोग हँस पड़े। कुछ लोगों ने कहा—सेनापति महाशय, सैनिकों के लिये युद्ध में जाना कोई नई बात नहीं है। फिर आप क्षमा प्रार्थना क्यों करते हैं?

पुनः अभिवादन करके वृद्ध सेनापति ने कहा—भाइयो, चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त की आज्ञा से मैं बहुत से युद्धों में गया हूँ; परंतु कल जिस युद्ध में मैं जाऊँगा, उसके ढंग का युद्ध बहुत दिनों से आर्यावर्त्त अथवा दाक्षिणात्य में नहीं हुआ। हूण युद्ध से बहुत से योद्धा लौटेंगे। परंतु यह निश्चित है कि चंद्रगुप्त का यह पुराना सेनापति अब कभी लौटकर पाटलिपुत्र न आवेगा।

वृद्ध सेनापति की बात सुनकर सब सेनानायक चपलता छोड़कर एक पंक्ति में खड़े हो गए। अग्निगुप्त ने फिर कहा—भाइयो, मैंने भट्टारक समुद्रगुप्त के आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य की विजय की बहुत सी कहानियाँ सुनी हैं। चंद्रगुप्त का मालव और सौराष्ट्र जीतना देखा है। युद्ध करते करते ही मेरे बाल पके हैं। मैं आज साम्राज्य के सेनानायकों के सामने कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

अग्निगुप्त की बात सुनकर नाचने और गानेवाली स्त्रियाँ दूर हट गईं और मद्य के सब पात्र फेंक दिए गए। उस बड़े कमरे में बिलकुल सन्नाटा छा गया। अग्निगुप्त ने फिर कहना आरंभ किया—भाइयो, मैं बहुत दिनों से

सुनता आता हूँ कि समय समय पर मरुस्थल के जंगली निवासी पेट की ज्वाला शांत करने के लिये इसी हरी भरी आर्यभूमि पर आक्रमण करते हैं। यह पवित्र आर्य्यभूमि इसी प्रकार अनेक बार जंगली जातियों के द्वारा पद दलित हुई है। शकों, पारदों और पह्लवों ने इसी प्रकार आर्यावर्त्त पर अधिकार किया था। इसी कारण चंद्रगुप्त, बिंदुसार और अशोक के विशाल साम्राज्य मिट्टी में मिल गए थे। भाइयो, मैंने सुना है कि हूण लोग मरुस्थल के जंगली निवासी हैं। वे लोग आर्यावर्त्त पर आक्रमण कर रहे हैं। क्या समुद्रगुप्त का साम्राज्य इन जंगलियों के हाथों नष्ट हो जायगा? क्या दूसरी बार मगधवासी अपने देश आर्यावर्त्त की रक्षा से मुँह मोड़ लेंगे?

समस्त सेना नायक एक साथ बादल की तरह गरज उठे। सैकड़ों कंठों से एक साथ सुनाई पड़ा—"कभी नहीं।"

उस समय वृद्ध सेनापति के चेहरे पर प्रसन्नता झलकने लगी। उन्होंने कहा—भाइयो, मैं तुम लोगों से यही उत्तर सुनने के लिये यहाँ आया था। ईश्वर तुम लोगों का मंगल करे। भाइयो, गुप्त साम्राज्य बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है। उसकी सीमा चारों ओर समुद्र तक है। पाटलिपुत्र नगर बहुत ही सुंदर है। ऐसा सुंदर दूसरा नगर कहीं देखने में नहीं आता। ऐसे सुंदर नगर और ऐसे विस्तृत साम्राज्य को जंगलियों के हाथों से बचाना हम लोगों का परम कर्त्तव्य है। भाइयो, तुम लोग सचेत हो जाओ। इस समय जो भयंकर आग लग रही है, वह सहज में नहीं बुझेगी। यद्यपि मुझे इन आँखों से बहुत कम सूझता है, परंतु फिर भी परमेश्वर ने मुझे जो दिव्य नेत्र दिए हैं, उन नेत्रों से मैं देख रहा हूँ कि यह भीषण यज्ञ तभी समाप्त होगा, जब इसमें हजारों बड़े बड़े वीरों की आहुति दी जायगी। तुम लोग बीर हो, योद्धा हो और आत्मोत्सर्ग करने से डरनेवाले नहीं हो। परंतु हूण युद्ध बहुत दिनों तक चलेगा। भाइयो, देवताओं और ब्राह्मणों की, स्त्रियों और बालकों की रक्षा करने के लिये बहुत दिनों तक आत्म बलि देनी पड़ेगी। स्मरण रखो, यदि तुम इस सुंदर पाटलिपुत्र नगर को इसी प्रकार सुंदर रखना चाहते हो, तो तुम्हें पंचनद की सीमा की पहाड़ी नदियों और

उपत्यकाओं में मगध की सेना का रक्त बहाना पड़ेगा। यह रक्त बहुत दिनों तक बहता रहेगा; इस वास्ते भाइयो, तुम लोग घबराना नहीं। आज जहाँ मद्य की नदियाँ बह रही हैं, कल वहीं लहू की नदियाँ बहेंगी। इस वृद्ध की नसों में इस समय जो थोड़ा बहुत रक्त बह रहा है, वह समुद्रगुप्त के पोते की सेवा में ही लगेगा। परंतु यहाँ इसका आरंभ ही होगा। अग्निगुप्त के उपरांत गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त आदि रहेंगे। आर्यावर्त्त में नायकों का अभाव नहीं रहेगा। जब तक देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा के लिये माताएँ अपनी इच्छा से अपने पुत्रों को बलिदान चढ़ावेंगी, स्त्रियाँ हँसती हुई अपने पतियों को मरने के लिये भेजेंगी और देवताओं, ब्रह्मणों स्त्रियों और बालकों की रक्षा के लिये वृद्ध लोग काँपते हुए हाथों से तलवार चलावेंगे, तब तक आर्यावर्त्त रक्षित रहेगा। परंतु जिस दिन घर में ही फूट होगी, उस दिन चंद्रगुप्त, बिंदुसार और अशोक के साम्राज्यों की तरह गुप्त-साम्राज्य भी टुकड़े टुकड़े हो जायगा। यह बात भूल न जाना कि पुष्पमित्र ने मुट्ठी भर धूल के मुट्ठी भर सोना छोड़दिया था। आपस के झगड़ों के कारण ही बहुत दिनों से आर्यावर्त्त का सर्वनाश हो रहा है, इस बात को भूल न जाना। भाइयो, प्रार्थना करो और आशीर्वाद दो कि जिस दिन हूण युद्ध में विजय प्राप्त करके साम्राज्य की सेना लौटे और पाटलिपुत्र में प्रवेश करे, उस दिन गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त उस सेना के आगे आगे रहें। यदि ईश्वर की कृपा होगी तो तुम लोग वह विजय यात्रा देखोगे। हाँ, यह वृद्ध अग्निगुप्त उस समय न रहेगा। तुम लोग देखना; मैं तुम्हीं लोगों को देखकर स्वर्ग अथवा नरक मे तृप्त होऊँगा।

इतना कहकर सेनापति चुप हो गए। न तो किसीने कोई उत्तर दिया और न किसी ने जयध्वनि की। सब लोग पत्थर की मूरत की तरह चुपचाप खड़े रहे। कुछ समय के उपरांत एक दूसरे कमरे से एक एक करके सैकड़ों पुरुष वहाँ आ पहुँचे और अग्निगुप्त को अभिवादन करके कहने लगे —प्रभु, हम लोग पाटलि पुत्र के निवासी हैं हम लोग साम्राज्य की रक्षा के लिये आपके साथ हूण युद्ध में चलेंगे।

विस्मित होकर अग्निगुप्त ने पूछा—तुम लोग कौन हो?

उन लोगों ने उत्तर दिया—हम लोग आर्य्य देवधर के दास हैं।

विस्मित होकर अग्निगुप्त ने देवधर के मुँह की ओर देखा। देवधर ने कहा—महाबलाधिकृत, पिता जी ने इन लोगों को अवश्य मोल लिया था; परंतु ये लोग बाल्यावस्था से ही मेरे बड़े मित्र हैं। जो लोग लड़ना मरना जानते हों, वे दास नहीं हो सकते। भाइयो, अब तुम लोग दास नहीं हो, मैं तुम लोगों को दासत्व से मुक्त करता हूँ।

अब फिर सेनानायकों ने आकाशव्यापी जयध्वनि की। सैकड़ों खड्ग कोष से निकलकर योद्धाओं के उष्णीष चूमने लगे। देवधर ने कहा—भाइयो, तुम लोगों की इच्छा पूरी हो। परंतु तुम लोग दास हो। स्वाधीन सैनिक लोग तुम्हें अपने वर्ग में प्रवेश न करने देंगे। तुम लोग किस प्रकार युद्ध में संमिलित होगे? महाबलाधिकृत! आप इन लोगों की क्या व्यवस्था करेंगे?

अग्नि०—कोई चिंता की बात नहीं है। स्मरण नहीं आता कि इससे पहले और भी कभी किसी क्रीत दास ने साम्राज्य की सेना में प्रवेश करना चाहा हो।

अग्निगुप्त के पीछे से स्कंदगुप्त बोल उठे—आर्य्य, ये लोग अपनी इच्छा से युद्ध में जाना चाहते हैं। यदि कोई सेनानायक इन लोगों को ग्रहण न करेगा तो मैं स्वयं इन लोगों को ग्रहण कर लूँगा।

फिर भीषण जय ध्वनि से वह भवन हिल गया। नगर के फाटकों पर तीसरे पहर के मंगल-वाद्य बजने लगे। यह सुनकर गोविंदगुप्त आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और कहने लगे भाइयो, रात बीत चली है। हूण-युद्ध से जो लोग जीते लौटेंगे, वे फिर देवधर के घर पर मिलेंगे।

चौथा परिच्छेद

आग में ईंधन

संध्या के समय पाटलिपुत्र नगर का पत्थर का बना कारागार बहुत ही भीषण जान पड़ता है। उसी भीषण कारागार की अँधेरी कोठरी में एक अधेड़

स्त्री हाथ पर गाल रखे बैठी चिंता कर रही है। इतने में दूर से किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी, जिसे सुनकर वह स्त्री उठ खड़ी हुई। कोई क्षण ही भर के उपरांत कारागार का एक रक्षक लोहे के किवाड़ खोलकर हाथ में दीपक लिये हुए उस कोठरी में आया और एक खिड़की में वह दीपक रखकर उसने फिर किवाड़ बंद कर दिए। उस समय स्त्री ने उसके पास पहुँचकर बहुत धीरे से पूछा—चित्रनाथ, क्या हुआ?

चित्रनाथ ने और भी धीरे से कहा—देवी, समाचार बहुत शुभ है। मैं सीढ़ी ले आया हूँ। जिस समय नगर के फाटकों पर रात के दूसरे पहर के मंगल वाद्य बजने लगें, उस समय आप खिड़की से होकर निकल जाइएगा। चंद्रसेन नाव लेकर प्राचीर के नीचे आप की प्रतीक्षा करता रहेगा।

स्त्री ने कहा – तुम चिंता न करो। ज्यों ही मैं कारागार से बाहर पैर रखूँ, त्यों ही तुम भाग जाना। मैं कुछ दिनों तक यह नगर छोड़कर किसी दूसरे स्थान में निवास करूँगी। तुम आज प्रभात होने पर कपोतिक संघाराम में जाना। वहीं बुद्धदेव की मूर्ति के पीछे मुझसे भेंट होगी। मैं आज ही तुम्हें एक हजार सुवर्ण दीनार दूँगी और शेष चार हजार दीनार तुम्हें दो दिन में मिल जायँगे। ये दीनार तुम्हें कहाँ और कैसे मिलेंगे, यह मैं कपोतिक संघाराम में बतला दूँगी।

चित्र०—देवी, खिड़की से होकर आप बहुत सावधानी से उतरिएगा। खिड़की से सौ हाथ नीचे पानी है। मैं आपके लिये पुरुषों के कपड़े ले आया हूँ। अँधेरे में कपड़े बदलकर आप बहुत सावधानी से उतरिएगा।

इतना कहकर रक्षक ने पात्र में से खाद्य पदार्थ के बदले पुरुषों के पहनने के कपड़े और रस्सी की बनी एक बड़ी सीढ़ी निकालकर रख दी और वहाँ से जाना चाहा। उस समय स्त्री ने कहा—दामोदर शर्म्मा ने जिस समय मुझे पकड़ा था, उस समय महाविहारस्वामी हरिबल को भी पकड़ा था। तुम जानते हो कि वे कहाँ हैं?

चित्र०—नहीं, मैं तो नहीं जानता। परंतु आपकी कोठरी से सटी हुई कोठरी में एक बौद्ध भिक्षु हैं जो देखने में बहुत अच्छे जान पड़ते हैं।

स्त्री—क्या तुम्हीं उन्हें भोजन दिया करते हो।

चित्र—हाँ।

स्त्री—रात का भोजन दे आए हो ?

चित्र०—नहीं।

स्त्री—कब देने जाओगे ?

चित्र०—इसी समय।

स्त्री—उन्हें किसी प्रकार छुड़ा सकते हो ?

चित्र०—नहीं, उनका छूटना असंभव है। उनकी कोठरी चारों ओर से बंद है।

स्त्री—उन्हें मेरी कोठरी में ला सकते हो ?

चित्र०—ला तो सकता हूँ; परंतु पहले पहर की समाप्ति पर जिस समय काराध्यक्ष प्रत्येक कोठरी में बंदियों को देखने आवेंगे, उस समय उनके भागने की बात खुल जायगी।

रक्षक की बात सुनकर स्त्री चिंतित हुई। क्षण भर के उपरांत उसने रक्षक से कहा—क्यों जी, यदि महाविहारस्वामी की जगह किसी और रक्षक को उनकी कोठरी में बंद कर दिया जाय तो कैसा हो ?

रक्षक कुछ समय तक सिर झुकाकर सोचता रहा। अंत में उसने कहा—देवी, आप जो कुछ कहती हैं, वह संभव तो अवश्य है; परतु विहारस्वामी की कोठरी में जो रहेगा, वह कभी जीता नहीं बचेगा।

स्त्री—असंभव क्यों है; मैं व्यवस्था किए देती हूँ। तुम एक और रक्षक को मिला लो। यदि वह मेरे परामर्श के अनुसार चलेगा, तो उसका बाल भी बाँका न हो सकेगा। इस समय जो मेरी सहायता करेगा, उसे मैं दस हजार सुवर्ण दीनार दूँगी।

चित्र०—और मुझे !

स्त्री—तुम्हें तो मैं पाँच हजार सुवर्ण दीनार दूँगी ही; परंतु यदि तुम महाविहारस्वामी को भी छुड़ा दोगे तो और भी पाँच हजार दीनार पाओगे।

चित्र०—अच्छा तो आप ठहरें, मैं किसीको ठीक करने जाता हूँ।

इतना कहकर वह रक्षक हाथ में दीपक लेकर चला गया और कोई आज दंड में एक और रक्षक को अपने साथ लेकर लौट आया। स्त्री ने उससे कहा—यदि मैं तुम्हारी सहायता से महाविहारस्वामी हरिबल को छुड़ा सकूँगी, तो तुम्हें दस हजार सुवर्ण दीनार दूँगी।

रक्षक—यह मैं सुन चुका हूँ। आप बतलाइए कि मुझे क्या करना होगा।

स्त्री—तुम महाविहारस्वामी से कह देना कि वे तुम्हारी पगड़ी से तुम्हारे हाथ पैर और मुँह अच्छी तरह कसकर बाँध दें। इसके उपरांत वे मेरी कोठरी में चले आवेंगे और हम दोनों खिड़की से होकर भाग जायँगे। पहले पहर की समाप्ती पर जब काराध्यक्ष कोठरी में प्रश्न करते हुए आवेंगे, तब महाविहारस्वामी की कोठरी से अपने प्रश्न का कोई उत्तर न पाने पर वे तुम लोगों में से किसीको अपराधी न ठहरा सकेंगे।

इसपर चित्रनाथ ने कहा—देवी, जिस समय पहले पहर की समाप्ति पर काराध्यक्ष देखेंगे कि महाविहारस्वामी भाग गए, तब वे कारागार की प्रत्येक कोठरी ढूँढ़ेंगे। उस समय आप दोनों ही पकड़े जायँगे।

यह सुनकर स्त्री कुछ समय तक सिर झुकाकर सोचती रही। इसके उपरांत उसने कहा—तुम इसी समय लौटकर नगर में जाओ और चंद्रसेन से कहो कि वह शीघ्र ही नाव लेकर खिड़की के नीचे आवे। महाविहारस्वामी को मेरी कोठरी में लाकर अपने साथी को उनकी कोठरी में बंद कर जाओ।

इतने में दूसरे रक्षक ने पूछा—देवी, मेरा पुरस्कार कहाँ मिलेगा?

स्त्री—तुम छूटने पर कपोतिक संघाराम में महास्थविर राहुलभद्र से भेंट करना। मेरी यह अँगूठी ले लो। राहुलभद्र को यह अँगूठा दिखलाते ही तुम्हें दस हजार सुवर्ण दीनार मिल जायँगे।

दोनों रक्षक अभिवादन करके चले गए।

धीरे धीरे पाटिलपुत्र नगर में अंधकार हो गया। नगर में हजारों दीपक जलने लगे। केवल कारागार के आस पास घोर अंधकार रह गया। उस दिन अमावश्या थी। रात के पहले पहर महाविहारस्वामी हरिबल ने उस स्त्री की कोठरी में प्रवेश किया। दोनों खिड़की से होकर रस्सी की सीढ़ी के द्वारा

नीचे पहुँचे और गंगा में उतर गए। भादों का महीना था। गंगा चढ़ी हुई थी। उस समय सोन का जल नगर के बाहरी भाग में गंगा में मिलकर प्रबल वेग से समुद्र की ओर बहता था। उन दिनों पाटलिपुत्र के नीचे गंगा भी बहुत वेग से बहा करती थी। गंगा में एक छोटी नाव खड़ी थी जिस पर एक नाटा व्यक्ति रस्सी की सीढ़ी का नीचे वाला भाग पकड़े हुए खड़ा था। स्त्री और हरिबल को देखकर उसने धीरे से पूछा—कौन ? इंद्रलेखा ?

इंद्र०—हाँ। तुम कौन—चंद्रसेन ?

चंद्र०—हाँ। तुम्हारे साथ और कौन है ?

इंद्र०—महाविहारस्वामी हरिबल।

इंद्रलेखा और हरिबल दोनों नाव पर चढ़े। चंद्रसेन ने नाव खोल दी। थोड़े ही समय में बहाव के कारण वह नाव पाटलिपुत्र नगर के उपकंठ तक जा पहुँची। तीनों ने नाव पर से उतर कर नगर में प्रवेश किया। उस समय मार्ग में कोई आता जाता न था। चलते चलते इंद्रलेखा ने चंद्रसेन से पूछा—कुमारगुप्त कहाँ हैं ?

चंद्र०—स्थाण्वीश्वर में।

इंद्र०—और गोविंदगुप्त ?

चंद्र०—और सब लोग युद्ध में चले गए।

इंद्र०—वह स्थान कितनी दूर है ?

चंद्र०—बहुत दूर, वाह्लीक देश में।

इंद्र०—नगर में और कौन है ?

चंद्र—और कौन रहेगा ? वही हमारे पुराने मित्र कृष्णगुप्त हैं। इंद्रलेखा, तुमने उस बुड्ढे गीदड़ को नहीं पूछा ?

इंद्र०—किसे ?

चंद्र०—उसी दामोदर को।

इंद्र०—हाँ, वह कहाँ है ?

चंद्र०—पुरुषपुर में।

इंद्र०—अनंता कहाँ है ?

चंद्र०—उस बुड्ढे गीदड़ के अनुचर उसे भी पकड़ने आए थे। इस कारण मैंने उसको पहले ही बहुत दूर भेज दिया था।

इंद्र०—बहुत अच्छा किया। कहाँ भेजा है?

चंद्र०—वाराणसी में।

इंद्र०—चंद्र, तुम्हें हम लोगों को दो चार दिन नगर में ही छिपा रखना पड़ेगा। क्योंकि यदि हम लोग इसी समय नगर छोड़कर कहीं जायँगे, तो कृष्णगुप्त सहज में ही हम लोगों को फिर पकड़ लेगा।

चंद्र—कुक्कटाराम का गुप्तगृह कैसा स्थान है?

इंद्र०—चंद्र, क्या तुम पागल हो गए हो? पाटलिपुत्र का महाप्रतीहार क्या कोई मूर्ख अथवा अनजान है? नगर के समस्त गुप्तगृहों से वह परिचित है। दूसरे पहर में अब अधिक विलंब नहीं है। सभी प्रतीहार इस समय हम लोगों को ढूँढ़ने निकलेंगे। चंद्र, अब मुझे पुरुषों के कपड़े पहन लेने चाहिएँ।

चंद्र—तुम्हारे लिये यह कौन सी बड़ी बात है! लीलास्थल में तुम अनेक बार पुरुष बनी हो। तुम इस समय भी पुरुषों के वेश में बहुत अच्छी जान पड़ती हो।

इंद्र०—यह इन सब बातों का समय नहीं है। तुम किसी संन्यासी का वेश ला सकते हो?

चंद्र—अभी ला सकता हूँ। परंतु यदि तुम भिक्षु बन जाओ तो कैसा हो?

इंद्र०—कृष्णगुप्त ज्योंही यह सुनेगा कि महाविहारस्वामी हरिबल भाग गए, त्योंही नगर के समस्त भिक्षुओं को पकड़ लेगा। अतः मुझे भागवत संन्यासी बनना चाहिए। तुम गैरिक वस्त्र ला सकते हो?

चंद्र०—हाँ, अभी लाता हूँ। तुम लोग इसी स्थान में छिपे रहो।

नगर के उपकंठ में एक पुराने ताल के किनारे बहुत से बाँस दिखाई देते थे। चंद्रसेन उन्हीं बाँसों की ओर संकेत करके शीघ्रतापूर्वक नगर की ओर बढ़ा। हरिबल को लेकर इंद्रलेखा अँधेरे में उन्हीं बाँसों में जा छिपी। कुछ ही समय के उपरांत दूर से बहुत सी उल्काओं का प्रकाश दिखाई दिया। यह देखकर इंद्रलेखा ने महाविहारस्वामी से पूछा—तुम क्या समझते हो?

उस समय महाविहारस्वामी भय के मारे काँप रहे थे। उन्होंने काँपते हुए स्वर से कहा—इंद्रलेखा, अब मैं मरा। यह निश्चय ही महाप्रतीहार की सेना है जो हम लोगों को ढूँढ़ने के लिये निकली है।

इंद्र०—तुम्हें मरना हो तो मरो, परंतु मुझे अभी बहुत काम करना है। ठहरकर देखो तो सही कि ये लोग क्या करते हैं।

उल्काधारी लोग मार्ग के दोनों ओर ढूँढ़ रहे थे। आम और कटहल के उद्यान में वे एक एक वृक्ष बड़े ध्यान से देखते थे। यह देखकर इंद्रलेखा अपने साथ हरिबल को लेकर उस ताल के ठंढे जल में उतर पड़ी और सेवार से उसने अपना और महाविहारस्वामी का सिर ढक लिया। जब उसने देखा कि उल्काधारी लोग ताल के पास आ पहुँचे हैं, तब वह धीरे धीरे ताल के बीच में जा पहुँची। महाप्रतीहार के सैनिक ताल के पास आकर बड़ी सावधानी से बाँसों से इधर उधर ढूँढ़ने लगे। जिस स्थान पर पहले इंद्रलेखा और हरिबल खड़े थे, उस स्थान पर पहुँचकर एक प्रतीहार ने दूसरे से कहा—देखो यहाँ दो मनुष्य के पैरों के चिह्न हैं।

दूसरा प्रतिहार बोला—संभव है कोई स्त्री अभिसार के लिये आई हो।

पह० प्रती०—कहीं इंद्रलेखा ही तो नहीं थी?

दू० प्रती०—इंद्रलेखा कोई ऐसी वैसी स्त्री तो है ही नहीं। वह महाराजाधिराज कुमारगुप्त की सास है। वह क्या महाप्रतीहार के लिये इस जाड़े में इस पुराने ताल के पास आकर खड़ी होगी? वह तो इस समय चार घोड़ों के रथ पर मगध छोड़कर कहीं बाहर जा रही होगी।

पह० प्रती०—अरे उसे रथ कहाँ मिलेगा!

दू० प्रती०—अजी उसके लिये महाराधाधिराज रथ भेज सकते हैं।

प० प्रती०—तुम भी पाटलिपुत्र में व्यर्थ ही प्रतीहार बनने आए! महाराजाधिराज जिन दिनों नित्य संध्या को इंद्रलेखा के घर जाया करते थे, उन दिनों मैं महाप्रतीहार की आज्ञा से भेष बदलकर इंद्रलेखा के घर में जाकर छिप रहा करता था।

दू० प्रती०—मैंने तो सुना था कि इंद्रलेखा की कन्या महादेवी होगी।

पह० प्रती०—यदि महाराजपुत्र न आ जाते तो अब तक हो गई होती।

दू० प्रती०—परंतु इंद्रलेखा कारागार में क्यों गई ?

पह० प्रती०—महाराजपुत्र और महामंत्री के कारण।

दू० प्रती०—महाराजाधिराज की आज्ञा होते ही महाप्रतीहार उसे छोड़ देते। फिर वह भागी क्यो ?

पह० प्रती०—भाई, मैं तो यह समझता हूँ कि बिना महाराजाधिराज की सहायता के इंद्रलेखा कभी भाग ही नहीं सकती। मैं तो समझता हूँ कि महाराजाधिराज ने यह सोचा होगा कि यदि हम प्रकट रूप से इंद्रलेखा को छोड़ देने की आज्ञा देंगे, तो महामंत्री दुःखित होंगे। इसी कारण उन्होंने उसके भागने की व्यवस्था कर दी होगी।

दू० प्रती०—तो फिर हम लोग इतनी रात के समय इस पुराने ताल के किनारे जाड़े में क्यों व्यर्थ प्राण दें ?

पह० प्रती०—जाड़े में प्राण तो देने ही पड़ेंगे, क्योंकि अभी हम लोग लौटकर घर तो जा ही नहीं सकते। अभी तो हम लोगों को सारा नगर और उपनगर ढूँढ़ना पड़ेगा।

दू० प्रती०—संभव है कि इंद्रलेखा यहीं आकर खड़ी हुई हो।

पह० प्रती०—नहीं, यह असंभव है।

दू० प्रती०—अच्छा तो फिर चलो, चलें।

उल्काधारी सैनिक वहाँ से चले गए। धीरे धीरे उल्काओं का प्रकाश भी बहुत दूर निकल गया। उस समय ताल के किनारे के एक पेड़ पर से उल्लू का शब्द सुनाई दिया। इसके उत्तर में ताल के जल में से भी वैसा ही शब्द हुआ। उस समय चंद्रसेन ने आम के पेड़ पर से उतरकर और ताल के पास आकर पुकारा—इंद्रलेखा !

सेवार में से शब्द हुआ कौन ? चंद्रसेन ?

चंद्र०—हाँ, सब लोग चले गए।

इंद्रलेखा और हरिबल दोनों ताल में से निकल आए। चंद्रसेन जो गेरुए वस्त्र लाया था, उन्हीं को पहनकर वे तीनों नगर की ओर चल पड़े।

प्रभात के समय जटाजूटधारी तीन संन्यासी पाटलिपुत्र राजप्रसाद के वासुदेव मंदिरवाली अतिथिशाला में पहुँचे। पट्टमहादेवी उस समय वासुदेव की पूजा का आयोजन कर रही थीं। गेरुए वस्त्र पहने हुए अतिथियों को देखकर उन्होंने प्रणाम किया और उन्हें बैठने के लिए आसन दिए। एक तरुण संन्यासी ने तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देखा। आग जलने लगी।

पाँचवाँ परिच्छेद

आग में आहुति

बरफ से लदे हुए सफेद पहाड़ों से घिरी हुई एक छोटी उपत्यका है जिसके एक ओर एक बड़ी नदी बह रही है। नदी के एक ओर ऊँची पर्वत-माला और दूसरी ओर हरी-भरी चौरस भूमि है। एक तंग पहाड़ी मार्ग नदी के उत्तर ओर से आकर उसके तट पर समाप्त हुआ है। दक्षिण तीर से एक पथ आरंभ होता है, जो उपत्यका में से होता हुआ उसके दूसरे ओर पहाड़ों पर चला गया है। यही वाह्लीक नगर का मार्ग है। उत्तरवाली पर्वत-माला के पीछे मध्य एशिया की लंबी-चौड़ी मरुभूमि है। उस समय तक का सभ्य जगत यह नहीं जानता था कि इस मरुभूमि के उस ओर क्या है।

इस छोटी उपत्यका में कभी कोई नहीं रहता था। उसके दक्षिण ओर वाह्लीक की हरी-भरी समतल भूमि थी। मुसलमानों की विजय से पहले यही उपत्यका उत्तरापथ का द्वार थी। पारसिक, शक और हूण आदि जिन जातियों ने आर्यावर्त्त पर विजय प्राप्त की थी, वे इसी मार्ग से उत्तरापथ में आई थीं। बहुत प्राचीन काल से इस नदी के तट पर पत्थर का एक छोटा दुर्ग बना हुआ था। जिस समय उत्तरापथ में एकछत्र राजशक्ति दृढ़ आधार पर स्थापित थी, उस समय उत्तरापथ की सेना पाटलिपुत्र से आकर इसी नदी-तट और छोटे दुर्ग की रक्षा किया करती थी। जब उत्तरापथ की राजलक्ष्मी

चंचला हो गई, तब यह नदी तट अरक्षित रहने लगा। उस समय सैकड़ों हजारों भूखे मरुवासी इसी मार्ग से उर्वर उत्तरापथ में आकर लाखों स्त्रियों और पुरुषों का रक्त बहाया करते थे।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु के प्रभात के समय एक हजार सवार उसी छोटी उपत्यका में नदी के दक्षिण तटपर ठहरे हुए थे। नदी तट पर सैकड़ों अग्नि-कुंड बने हुए थे, जिनमें से हर एक के आस पास बहुत से सवार डेरा डाले पड़े थे, उन अग्निकुंडों के पीछे एक हजार सुसज्जित घोड़े खड़े थे। उन घोड़ों के पीछे एक नाटे वृद्ध योद्धा और एक युवक सेनापति पत्थर की चट्टान पर बैठे हुए थे।

जिस समय बालसूर्य्य की लाल लाल किरणें पहाड़ों की बरफीली चोटियों पर पड़कर उनकी रंगत सुनहली करने लगीं, उस समय नदी के उस पार टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी मार्ग से एक सवार आता हुआ दिखलाई दिया। सब से पहले अग्निकुंड के पास बैठे हुए एक सवार ने उसे देखा था। उसने सेनापति के पास आकर उन्हें वह आता हुआ सवार दिखलाया। वृद्ध और युवक सेना-पति आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। जब वह सवार पास आया तब दोनों सेनापतियों ने देखा कि वह भेड़ का चमड़ा ओढ़े हुए और एक काले घोड़े पर सवार है, और शीघ्रतापूर्वक नदी की ओर आ रहा है। वृद्ध सेनापति ने युवक सेनापति से कहा--भानु, यह बर्बर जान पड़ता है। परंतु सभी पर्वतों पर हम लोगों की सेना ठहरी हुई है और वक्षु के उस पार हूणों का पड़ाव है। ऐसी दशा में यह जंगली यहाँ तक कैसे आया?

भानु०--महानायक, यही बात तो मेरी समझ में भी नहीं आती कि यह क्योंकर वाह्लीक में पहुँचा। कहीं महाराजपुत्र ने हूणों से संधि करके कोई दूत तो नहीं भेजा?

महा०--क्या कहूँ, कुछ भी समझ में नहीं आता।

भानु०--देखिए, वह क्या समाचार लाता है।

उधर उस सवार ने जब देखा कि नदी के इस पार बहुत से सैनिक हैं, तब उसने घोड़े की चाल रोकी और तुरंत ही उसका मुँह फेरकर वह दूसरी ओर भागा। यह देखकर भानुमित्र ने कहा--महानायक, यह मित्र नहीं है।

उत्तर में महानायक अग्निगुप्त ने कहा—नहीं।

भानु०—तो फिर यह कौन है ?

अग्नि०—मैं तो समझता हूँ कि यह हूण है।

भानु० तो क्या युवराज और महाराजपुत्र पराजित हो गए ?

अग्नि०—भानु क्या तुम पाँच सौ सवार लेकर वक्षु तट तक जा सकते हो।

भानु०—जा सकता हूँ। परंतु एक बात है। यदि मैं पाँच सौ सवार अपने साथ ले जाऊँगा, तो यहाँ केवल पाँच ही सौ सैनिक बच रहेंगे। उस समय यदि हूणों ने नदी तट पर आक्रमण किया, तो क्या आप केवल पाँच सौ सैनिक लेकर वाह्लीका की रक्षा कर सकेंगे ?

अग्नि०—हाँ, मैं कर लूँगा। पास ही वाह्लीक नगर है वहाँ एक लाख सैनिक हैं। समाचार भेजते ही चक्रपालित एक प्रहर में दस हजार सवार भेज सकेंगे। वाह्लीका बहुत गहरी है और उसका बहाव भी बहुत तेज है। सुना है कि इसी स्थान पर यवनराज तुषास्फ ने एक बार एक हजार सैनिक लेकर सिल्यूकस के एक लाख सैनिकों को रोका था। भानु, वक्षु बहुत दूर है। यदि महाराजपुत्र हार गए होंगे तो बिना ५०० सैनिकों के न तो तुम आगे बढ़ सकोगे और न पीछे हट सकोगे। अतः तुम ५०० सैनिक लेकर इसी समय चले जाओ।

भानुमित्र ने वंशी बजाई। मुहूर्त्त भर में ५०० सवार वाह्लीका के बरफ के समान ठंडे जल में उतर पड़े और कुछ ही समय के उपरांत उन ५०० सवारों की पतली काली रेखा पहाड़ों में मिल गई।

वाह्लीक की रक्षा का यथेष्ट प्रबंध करके गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त ने एक लाख सैनिकों के साथ वक्षु तट पर पड़ाव डाला था। गोविंदगुप्त ने स्थिर किया था कि जब महानदी वक्षु की बरफ गल जायगी, तब हम हूण देश पर आक्रमण करेंगे; और उस समय अग्निगुप्त और भानुमित्र वाह्लीक की छावनी से पाँच हजार सैनिक लेकर आगे बढ़ेंगे। प्राचीन गुप्त साम्राज्य के वृद्ध सेनापति कुमारगुप्त की आज्ञा नहीं भूले थे। वे सदा १००० सैनिक

लेकर वाह्लीका नदी के तट पर उपस्थित रहते थे। एक मास पहले स्कंदगुप्त और गोविदगुप्त ने वत्तु तट की ओर प्रस्थान किया था। कोई दो सप्ताह से महाराजपुत्र के यहाँ से कोई दूत नहीं आया था। बृद्ध महाबलाधिकृत ने जिस दिन महाराजपुत्र के पास दूत भेजना निश्चित किया था, उसी दिन वाह्लीका नदी के उस पार वह हूण सैनिक दिखाई दिया था।

धीरे धीरे सूर्य की किरणों से पहाड़ की बरफीली चोटियाँ लाल हो गईं। वाह्लीका नदी के उस पार के पहाड़ी मार्ग उस लाल उपत्यका रूपी रमणी के गले में मोतियों की मालाओं के समान जान पड़ते थे। हरे भरे मैदान में ५०० सवार एक श्रेणी में पत्थर की बनी मूर्तियों की तरह चुपचाप खड़े थे। दिन प्रायः एक पहर बीत चला था। पर्वतों बनों और उपत्यका में से अंधकार अपना अंतिम आश्रयस्थान भी छोड़कर मानों सूर्यदेव से पराजित होकर निकल गया था। पाँच सौ सवारों के पीछे बृद्ध महाबलाधिकृत महानायक अग्निगुप्त लोहे का सफेद वर्म पहने हुए सफेद रंग के घोड़े पर बैठे थे। ठंढी पहाड़ी हवा के झकोरों से उनके पके हुए बाल शिरस्त्राण के पीछे की ओर लहरा रहे थे। इतने में सहसा पहाड़ की चोटी पर शंख बजा। साथ ही दूसरे पहाड़ की चोटी पर तुरही बजी। बृद्ध महाबलाधिकृत चौंक उठे।

पाँच सौ सवारों ने विस्मित होकर देखा कि बहुत दूर, पहाड़ की बर-फीली चोटियों पर काली चींटियों की तरह हजारों सैनिक भर गए हैं। महाबलाधिकृत ने शंख बजाया। पाँच सौ सैनिक उनकी ओर मुँह करके खड़े हो गए। उस समय वृद्ध महानायक ने रुँधे हुए गले से कहा—भाइयों, आज ही हम लोगों की परीक्षा का दिन है। चंद्रगुप्त के पुत्र और पौत्र मारे गए। यदि ऐसा न होता तो चींटियों की तरह ये लाखों हूण वत्तु नदी को पार करके कभी वाह्लीका नदी के तट पर नहीं आ सकते थे। हम लोगों का यह शरीर चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त का अन्न खाकर पुष्ट हुआ है। प्रथम चंद्रगुप्त का रक्त इस समय भी इस जीर्ण शरीर में बह रहा है। इस समय उसीकी परीक्षा होगी। भाइयो, तुम लोग मगधवासी हो, और

आज मगध की वीरता की परीक्षा का दिन है। पाँच सौ सवार चाहे पाँच लाख सवारों की गति रोक न सकें, तो भी वे उनके मार्ग में बाधक अवश्य हो सकते हैं। युग-युगांतर से वाह्लीक पवित्र आर्य्यभूमि है। बर्बरों के पैरों के स्पर्श से इसकी रक्षा होती आई है। सैंकड़ों वर्ष से वाह्लीका के जल में आर्य्यों का रक्त मिलता आया है। अतः यह नदी तट आर्यों का पवित्र क्षेत्र है। आज के शुभ दिन बालसूर्य्य की किरणों से पवित्र होनेवाले इस तीर्थ में हम लोगों की परीक्षा होगी। वीरो! इस परीक्षा का अंत नहीं है। साथ ही न तो कोई इसका फल है, न इसकी विजय है और न पराजय ही है। तुम लोगों में से जो वीर निष्काम भाव से पुरुषोत्तम के चरणकमलों में अपना सर्वस्व समर्पित करके पितृभूमि के लिये आत्मबलि देने को प्रस्तुत हों, वे मेरे साथ आगे बढ़ें। जिनकी माता हैं, जिनकी बहनें हैं, जिनकी कन्याएँ हैं, वे इस पवित्र क्षेत्र में पीठ न दिखलावें। माता का दूध पीकर जिनका शरीर परिपुष्ट हुआ है, वे भागकर कलंक के भागी न बनें। यही नदी तट उत्तरापथ में प्रवेश करने का द्वार है। मगधवासियों ने हजारों वर्ष तक इस द्वार की रक्षा की है और वे आज भी उसकी रक्षा करेंगे। मैंने स्वयं आर्य्य समुद्रगुप्त का गरुड़ध्वज धारण किया है। वाह्लीक के तट पर मेरी चिता बनेगी। भाइयो, मार्ग खुला है। जिन्हें अपने जीवन की ममता हो, वे लौटकर वाह्लीक नगर चले जायँ।

पाँचो सौ सवार चुपचाप वहीं खड़े रहे। उनमें से एक भी वाह्लीक के खुले हुए मार्ग की ओर नहीं बढ़ा। साहसा पाँच सौ तलवारें कोष से निकल आईं और शब्द करती हुईं लोहे के शिरस्त्राणों को स्पर्श करने लगीं। पाँच सौ कंठों से निकली हुई भीषण जयध्वनि ने पर्वतमाला को कँपा दिया। बहुत दूर पहाड़ पर जंगली हूणों ने वह जयध्वनि सुनकर अपने घोड़ों की गति रोक दी। वृद्ध महाबलाधिकृत की आँखों से दो बूँद आँसू निकल आए। उन्होंने फिर कहा—पुत्रो! समुद्रगुप्त से मुझे जो शिक्षा मिली थी, मैं निरंतर पचास वर्ष से वह शिक्षा मगधवासियों को देता आया हूँ। मैं देखता हूँ कि अभी तक लोग उसे भूले नहीं हैं। पर्वत पर से असंख्य हूण नदी तट की ओर आ रहे हैं। जब तक शरीर में रक्त बहेगा, जब तक

हाथों में हिलने की शक्ति रहेगी, तब तक मगधवासी उत्तरापथ के इस प्रवेशद्वार की रक्षा करेंगे। परंतु ५०० सैनिक पाँच लाख सैनिकों की गति नहीं रोक सकते। हम लोगों के पीछे वाह्लीक नगरी है जिसमें हजारों असहाय पुरुष और स्त्रियाँ हैं। उनमें छोटे छोटे बच्चे भी हैं, ब्राह्मण भी हैं और श्रमण भी हैं। उन लोगों की रक्षा करना हम लोगों का परम कर्त्तव्य है। पुत्रो! अग्निगुप्त का अनुरोध है कि एक व्यक्ति वाह्लीक लौट जायं।

फिर भी पाँच सौ सवार पहले की ही भाँति चुपचाप खड़े रहे। यह देखकर वृद्ध महाबलाधिकृत की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने फिर गद्गद स्वर से कहा—आर्य, तुम लोगों का काम यथार्थ है। तुम्हारी शिक्षा और तुम्हारा निकाला हुआ मार्ग मगधवासी अब तक नहीं भूले। पुत्रो, जिसकी अवस्था बहुत थोड़ी हो, जिसका विवाह हुए थोड़े ही दिन हुए हों, उसे वाह्लीक भेज दो।

एक गुल्मनायक एक युवक सैनिक को महाबलाधिकृत के सामने ले आया। वह सैनिक घोड़े पर से उतर पड़ा और वृद्ध के पैर पकड़कर रोने लगा। उसने रोते रोते कहा—पिता जी, मेरा शरीर माता के स्तन से पुष्ट हुआ है। गुप्तवंश के अन्न से मेरी कई पीढ़ियाँ पली हैं। मैं कौन मुँह लेकर वाह्लीक जाऊँगा?

अग्निगुप्त ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—पुत्र, सैनिक का कर्त्तव्य बहुत कठोर हुआ करता है। यह भी तुम्हारा कर्त्तव्य ही है। अतः तुम चले जाओ। यदि तुम कभी लौटकर पाटलिपुत्र पहुँचो, तो कुमारगुप्त से कह देना कि अग्निगुप्त ने उत्तरापथ के प्रवेश द्वार की रक्षा की थी।

वह सवार वाह्लीक की ओर चल पड़ा। अग्निगुप्त ने फिर शंख बजाया। एक कम पाँच सौ सवार वाह्लीका की ओर मुड़े और तुरंत उसके शीतल जल में कूद पड़े। उस समय हूणों की सेना बहुत पास आ गई थी। मुट्ठी भर शत्रु सेना को देखकर उसके सैनिक गरजने लगे। उनकी भीषण गरज से पर्वतमाला फिर काँप उठी। एक बार इसी भीषण गरज ने सुदूर पश्चिम के रोमक नगर को भी कँपा दिया था। मागध सेना ने वाह्लीका नदी के उस

पार पहुँचकर तंग पहाड़ी मार्ग को रोक दिया। उस मार्ग में पाँच से अधिक सवार एक साथ नहीं चल सकते थे। देखते देखते उस जंगली सेना ने आँधी की तरह मागध सैनिको पर आक्रमण किया। अग्निगुप्त के सैनिक लोहे की बनी दीवार की तरह अटल होकर खड़े रहे। पर्वत की सफेद बरफीली भूमि पर लहू की नदियाँ बहने लगीं। आर्य्य रक्त के साथ बर्बर रक्त ने मिलकर मानों वाह्लीका के चरणों में अपूर्व आलता लगाया। अग्निगुप्त सफेद घोड़े पर सवार और सफेद वर्म्म पहने हुए, हाथ में सोने का गरुड़ध्वज लिये सेना का परिचालन कर रहे थे। उस ध्वज में लगी हुई लंबी सफेद पताका ठंढी हवा में उड़ रही थी। मागध सैनिकों की क्षीण काली रेखा क्रमशः और भी अधिक क्षीण होती जाती थी। समुद्र की तरंगों की तरह असंख्य हूण उन लोगों पर आक्रमण कर रहे थे। प्रत्येक मागध सैनिक उत्तरापथ के प्रवश द्वार की रक्षा के लिये बहुत ही वीरतापूर्वक लड़कर प्राण देता था। सहसा आक्रमण का वेग बढ़ा। सैकड़ों की जगह हजारों हूण सवार उस तग पहाड़ी मार्ग में आ आकर मागध सैनिकों पर आक्रमण करने लगे। इस ओर अब एक सौ भी सवार नहीं बच रहे थे। यह देखकर अग्निगुप्त ने कहा—भाइयों, हम लोग अब अधिक समय तक इस स्थान की रक्षा नहीं कर सकेंगे। परंतु फिर भी आर्य समुद्रगुप्त के गरुड़ध्वज को बर्बरो के स्पर्श से कलंकित न होने देंगे।

इतना कहकर वृद्ध अग्निगुप्त ने वह गरुड़ध्वज टुकड़े टुकड़े करके एक गुल्मनायक के हाथ में दे दिया और पताका को अपनी छाती में बाँधकर बची हुई मागध सेना के साथ हूण सेना पर आक्रमण किया। कुछ समय के लिये हूण लोग हाथ मे परशु लेकर डटे रहे। उन्होंने बड़े आश्चर्य से वृद्ध अग्निगुप्त की ओर देखा और साथ ही भीषण युद्ध आरंभ किया। वह तग पहाड़ी मार्ग मनुष्यों और घोड़ों की लाशों से भर गया। अग्निगुप्त घोड़े पर से उतरकर रक्त और मांस से बनी हुई उसी प्राचीर पर जा खड़े हुए। उनकी रक्षा के लिये केवल चार सैनिकों ने उनका साथ दिया। सैकड़ों तीरों और भालों ने उन पाँचों वीरों को वीरगति प्राप्त करा दी। मागध मांस, मागध हड्डियों और मागध चर्बी से बनी हुई उस प्राचीर पर मागध वीर महाबला-

धिकृत महानायक अग्निगुप्त ने मागध साम्राज्य के प्रवेश द्वार की रक्षा के लिये प्राण दे दिए।

युद्ध तो समाप्त हो गया, परंतु विजेता हूण सेना ने तुरंत ही वहाँ से भागना आरंभ किया। उपत्यका के दक्षिण ओर से घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल की आँधी वाह्लीका की ओर आ रही थी। दूसरी ओर पहाड़ पर से भी उसी प्रकार की धूल उड़ती हुई आ रही थी। थोड़े ही समय में असंख्य सैनिकों ने आकर हजारों हूणों को मार डाला और हजारों बर्बरों ने अस्त्र रखकर आत्म रक्षा की। उस समय गुप्त साम्राय के हजारों घुड़सवार सैनिक मागध सैनिकों की लाशों के पहाड़ के चारों ओर आ खड़े हुए। उत्तर की ओर खड़े हुए प्रौढ़ योद्धा ने दूसरी ओर के एक युवक योद्धा से पूछा—चक्रपालित, इस समय इस स्थान की रक्षा कौन कर रहा था?

चक्रपालित ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—देव, स्वयं महानायक।

प्रौढ़—हैं! क्या केवल एक हजार सैनिक लेकर साम्राज्य के महाबलाधिकृत ने इस प्रांत की रक्षा की थी? चक्रपालित, क्या वाह्लीक में सेना नहीं थी? क्या तुम यह नहीं जानते थे कि अग्निगुप्त के बाहुबल पर ही कुमारगुप्त के विशाल साम्राज्य की रक्षा का भार था? बचे हुए लोग किधर गए?

चक्र०—महाराजपुत्र, जब तक एक व्यक्ति भी जीता था, तब तक इस स्थान पर शत्रु का अधिकार नहीं हो सका था।

सहसा एक गोरे युवक ने प्रौढ़ के सामने आकर सैनिक रीति से अभिवादन किया और कहा—पितृव्य, आप पादुका छोड़ दीजिए। आर्य समुद्रगुप्त की रणनीति में पीछे हटना नहीं लिखा है। हजारों युद्धों के शूर, उत्तरापथ और दक्षिणापथ के महाबलाधिकृत, आपके पितृव्य महानायक अग्निगुप्त वीर गति को प्रात हुए हैं। पितृव्य, आप घबरायँ नहीं। गुप्तवंश में आज तक कौन और कब युद्ध क्षेत्र में पीछे हटा है? आर्य अग्निगुप्त यहीं हैं।

प्रौढ़ ने ठंढ़ी साँस लेकर युवक को गले लगा लिया और कहा—स्कंद, सचमुच मैं घबरा गया था। जिस समय पिता और पितामह पीछे हट जाते थे, उस समय भी पितृव्य अग्निगुप्त कभी पीछे न हटते थे। तो भी जिनके

उँगली हिलाने से ही आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य काँप उठता था और जिनकी अधीनता में लाखों सैनिक इस पहाड़ी उपत्यका में आए हैं, उनके संबंध में यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि उन्होंने इस छोटी सी उपत्यका में एक छोटे युद्ध में एक हजार सैनिक लेकर प्राण दे दिए हों।

इतना सुनते ही मागध युवराज कूदकर लाशों के उस ढेर पर जा चढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि महावीर, महानायक अग्निगुप्त पताका को गले से लगाए हुए महानिद्रा में पड़े हैं। युवराज का धैर्य छूट गया। अग्निगुप्त के शरीर पर सैकड़ों घाव थे, परंतु फिर भी उनका चेहरा हँसता हुआ जान पड़ता था। उनकी यह दशा देखकर स्कंदगुप्त ने रोते रोते कहा—आर्य, आपके योग्य यही शय्या है। ईश्वर करे, आपका अनुकरण करके मैं भी ऐसी ही शय्या पर सोऊँ। आर्य, पाँच सौ सैनिकों को लेकर आपने अमर यश और अमर धाम अवश्य प्राप्त कर लिया। परंतु जिस आठ वर्ष के बालक को आपने तलवार पकड़ना सिखलाया था, उसकी बहुत दिनों की प्रतिज्ञा को आपने व्यर्थ कर दिया। आपकी रक्षा के लिये आपकी दी हुई तलवार शत्रुओं का रक्तपान न कर सकी।

इतना कहकर स्कंदगुप्त ने अग्निगुप्त का रक्त से भरा मृत शरीर गले से लगा लिया। यह देखकर गोविंदगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—स्कंद, तुम क्या कह रहे हो? पितृव्य कहाँ हैं?

युवराज ने आँसू भरी आँखें उठा कर कहा—पितृव्य, वे मेरी गोद में हैं।

लाशों के उसी ढेर पर खड़े होकर स्कंदगुप्त ने अग्निगुप्त का मृत शरीर उठाया गोविंदगुप्त ने तलवार निकालकर शिरस्त्राण से उसे स्पर्श कराया। उनके साथ ही लाखों तलवारें निकलकर मागध सैनिकों के शिरस्त्राण चूमने लगीं। इसके उपरांत गोविंदगुप्त घुटने टेककर और तलवार सामने रखकर बैठ गए। उनके साथ ही साथ लाखों मागध सैनिक भी उसी प्रकार महानायक के शव के सामने घुटने टेककर और सिर झुकाकर बैठ गए। मागध लोग उस समय भी प्राण देना जानते थे।

छठा परिच्छेद

भिक्षु-पर्वत

प्रातःकाल का समय है। श्यामामंदिर में खड़ी होकर पट्टमहादेवी दान कर रही हैं। हूण युद्ध में युवराज विजय प्राप्त की है और उनकी सेना ने वक्षु तट पर अधिकार किया है, इसी कारण महादेवी की आज्ञा से प्रासाद का कोषागार खोल दिया गया है। प्रासाद के तीसरे आँगन में महादंडनायक रामगुप्त दरिद्रों को अन्न, वस्त्र और धन बाँट रहे हैं। जो लोग कोई विशेष प्रार्थना करने के लिये पट्टमहादेवी के दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें रामगुप्त की आज्ञा से दंडधर लोग श्यामामंदिर में ले जाते हैं। मंदिर में महाप्रतीहार कृष्णगुप्त खड़े हैं। वे एक एक व्यक्ति को महादेवी के सामने उपस्थित करते हैं।

दान समाप्ति पर है। हजारों दीनों, दरिद्रों और अनाथों की कामनाएँ पूरी हो गई हैं। अब वे पट्टमहादेवी और युवराज भट्टारक को आशीर्वाद देते हुए अपने अपने घर जा रहे हैं। इतने में एक दंडधर ने तीन संन्यासियों के साथ श्यामामंदिर के आँगन में प्रवेश करके महाप्रतीहार से कहा—देव, ये तीनों संन्यासी एक साथ ही पट्टमहादेवी से भेंट करने की प्रार्थना करते हैं?

कृष्णगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—एक साथ ही क्यों?

एक संन्यासी ने उत्तर दिया—देव, हम लोगों का एक विशेष प्रयोजन है।

वृद्ध महाप्रतीहार ने तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। पट्टमहादेवी की आज्ञा थी कि आज जो मेरे दर्शनों की प्रार्थना करे, महाप्रतीहार उसे तुरंत ही श्यामामंदिर के आँगन में ले आवें। कृष्णगुप्त ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा, आइए।

उस समय पट्टमहादेवी और अरुणादेवी उच्च कुल की सैकड़ों स्त्रियों से घिरी हुई श्यामामंदिर में खड़ी थीं। कृष्णगुप्त ने नीचे की सीढ़ी पर खड़े

होकर उन्हें अभिवादन किया और कहा—महादेवी, तीन संन्यासी एक साथ ही आपके दर्शनों की प्रार्थना करते हैं।

महादेवी ने विस्मित होकर पूछा—तो उन्हें ले क्यों नहीं आए?

वृद्ध महाप्रतीहार लज्जित होकर चले गए। तुरंत ही तीनों संन्यासी वहाँ आ पहुँचे। महादेवी और अरुणादेवी ने उन लोगों को प्रणाम किया। तीनों में से एक संन्यासी ने, जिसकी अवस्था कुछ कम थी, कहा—महादेवी, हम लोग संन्यासी हैं, संसार छोड़ चुके हैं; अतः हम लोगों को अन्न, वस्त्र या धन रत्न आदि की आवश्यकता नहीं है। हम लोग सदा गुप्तकुल की मंगल कामना से होम किया करते हैं। गणित करके हम लोगो ने जाना है कि यह समय समुद्रगुप्त के वंश के लिये बहुत ही अशुभ है। ग्रहों का दोष निवारण करने के लिये एक नया यज्ञ करने की आवश्यकता है। उसी यज्ञ के लिये आपके सिर का एक बाल चाहिए।

महादेवी ने हँसते हुए कहा—देव, पति और पुत्र की मंगल कामना के लिये आर्य स्त्रियाँ अपना जीवन तक बड़े आनंद से दे देती हैं। एक बाल तो उनके लिये बहुत ही तुच्छ है।

इतना कहकर महादेवी ने अपने सिर का एक बाल उखाड़कर सन्यासी के हाथ में दे दिया। सहसा उस युवक संन्यासी की आँखें चमक उठीं। यह देखकर अरुणादेवी थर्रा गई। तीनों संन्यासी आशीर्वाद देकर चले गए। अब कृष्णगुप्त ने फिर आकर और सीढ़ी पर खड़े होकर अभिवादन किया। महादेवी ने हँसते हुए पूछा—क्या है?

महाप्रतीहार ने पुनः अभिवादन करके कहा—महादेवी, दान हो गया।

महा०—अच्छी बात है। कृष्ण, आज तुम, महादंडनायक, प्रासाद के सब द्वाररक्षक और दंडधर आदि मेरे अतिथि हैं।

कृष्णगुप्त ने तीसरी बार फिर अभिवादन किया। महादेवी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों, क्या है?

महाप्रतीहार ने गंभीरतापूर्वक कहा—देवी, मैं आपके पुत्र के समान हूँ। मेरी कई पीढ़ियाँ गुप्त राजवंश के अन्न से ही पली हैं। इस दास का अपराध क्षमा कीजिएगा।

महा०—क्यों, क्या हुआ ?

कृष्ण०—माता जी, चोर पकड़ते पकड़ते मेरे बाल पक गए। जान पड़ता है कि इन तीनों संन्यासियों को मैंने कहीं देखा है।

महा०—कृष्ण, आज ही स्कंद की विजय का समाचार आया है। स्वामी पुत्र और साम्राज्य की मंगल कामना के लिये मैंने जिस दान का अनुष्ठान किया है, उसमें यदि परम शत्रु भी कुछ माँगने के लिये आवे, तो कभी उसका बाल तक बाँका न होना चाहिए। कृष्ण, जिस प्रकार स्कंद मेरा पुत्र है, उसी प्रकार तुम भी मेरे पुत्र हो। मेरा अनुरोध है कि तुम उन लोगों से कुछ भी न बोलो।

कृष्ण०—महादेवी, आज यदि ये तीनों संन्यासी मेरी हत्या भी कर डालें, तो भी आपकी आज्ञा से कोई प्रतीहार अथवा द्वार रक्षक उनका अंग तक स्पर्श न करेगा। परंतु मेरी एक प्रार्थना और है।

महा० वह क्या ?

कृष्ण०—मैं यह जानना चाहता हूँ कि ये तीनों मिलकर आपसे क्या प्रार्थना करने आए थे !

महा०—ये तीनों संन्यासी गुप्तकुल का मंगल चाहनेवाले हैं। साम्राज्य की मंगल कामना के लिये वे एक यज्ञ करेंगे। उसी के लिये वे मेरे सिर का एक बाल माँगने आये थे, जो मैंने उन्हें दे दिया।

कृष्ण०—बाल ! आपके सिर का बाल ! भिक्षुनी ने तो कहा था कि आज यदि कोई आपका बाल छूएगा, तो साम्राज्य नष्ट हो जायगा !

महा०—नहीं, कृष्ण, भय की कोई बात नहीं है। एक बाल से कोई अमंगल नहीं हो सकता। मेरी आज्ञा है कि उन लोगों से तुम कुछ भी न बोलो।

वृद्ध महाप्रतीहार अभिवादन करके तुरंत ही श्याममंदिर से चले गए। दान हो चुकने के उपरांत वृद्ध महादंडनायक रामगुप्त प्रासाद के आँगन में पत्थर के बने एक फाटक की छाया में बैठे विश्राम कर रहे थे। उन्होंने वृद्ध महाप्रतीहार को नंगे पैर और नंगे सिर फाटक की ओर शीघ्रतापूर्वक जाते हुए देखकर पूछा—कहाँ जा रहे हो ?

कृष्णगुप्त ने उनकी ओर मुँह किए बिना ही कहा—पितृव्य, बड़ी भारी विपत्ति आई है। महापुरोहित को शीघ्र बुलवाइए।

राम०—क्यों?

परंतु महाप्रतीहार ने उनकी बात नहीं सुनी।

तीसरे फाटक पर रामगुप्त का सजा सजाया रथ खड़ा था। कृष्णगुप्त ने उसपर बैठकर सारथी को नगर की ओर चलने की आज्ञा दी। सारथी ने पहले तो उन्हें साधारण मनुष्य समझकर रुखाई से उतर जाने के लिए कहा, परंतु ज्योंही उसने साम्राज्य के महाप्रतीहार को पहचाना, त्योंही अभिवादन करके पूछा—देव, कहाँ चलना होगा?

कृष्ण०—नगर में, भिक्षु पर्वत पर।

अट्ठारह सौ वर्ष पहले आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य के एकमात्र अधीश्वर अशोक ने अपने संसारत्यागी प्रिय पुत्र के रहने के लिये पाटलिपुत्र नगर में एक कृत्रिम पर्वत बनवाया था। ईसवी सातवीं शताब्दी तक उस स्थान पर उस पर्वत के चिह्न थे। महादंडनायक के रथ पर चढ़कर कृष्णगुप्त अशोक के बनवाए हुए इसी पर्वत की ओर जा रहे थे। पाटलिपुत्र नगर में अशोक के संसार त्यागी पुत्र को लोग "भिक्षुकुमार" और उनके रहने के कृत्रिम पर्वत को 'भिक्षुपर्वत' कहते थे। अब तक पाटलिपुत्र के लोग 'भिखनाकुमार' और 'भिखना पहाड़ी'[१] को नहीं भूले हैं। रथ उस कृत्रिम पर्वत के नीचे जा पहुँचा। कृष्णगुप्त रथ पर से उतरकर शीघ्रतापूर्वक पर्वत की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। उस समय बहुत से बौद्ध पुरुष और स्त्रियाँ पर्वत पर से नीचे उतर रही थीं। वे सब लोग महाप्रतीहार को दोपहर के समय नंगे सिर और नंगे पैर भिक्षु पर्वत पर चढ़ते देखकर बहुत चकित हुए।

भिक्षु पर्वत के ऊपर पत्थर के बने एक संघाराम के खँड़हर में एक पागल भिक्षुणी रहा करती थी। जब संघाराम के गिर गया था, तब भिक्षु लोग उसे छोड़कर चले गए थे, और वह बहुत दिनों तक योंही पड़ा था। कोई पचास वर्ष पहले वह पगली आकर संघाराम की एक कोठरी में रही

---

१ बाँकीपुर में अब तक 'भिखना पहाड़ी' नाम का एक महल्ला है।
—अनुवादक

थी। पाटलिपुत्र के बौद्ध और हिंदू सभी नागरिक उसके भक्त तो कम थे, परंतु उससे डरते बहुत थे। वह बुढ़िया उँगलियों पर गिनकर भविष्य बतलाया करती थी। परंतु जो कुछ वह बतलाती थी, वह सदा अशुभ ही बतलाती थी। यदि उससे कोई शुभ बात पूछी जाती थी, तो वह कह देती थी कि मैं नहीं जानती। यदि कोई बार बार उससे पूछता, तो वह गालियाँ देती अथवा मार बैठती थी कृष्णगुप्त जिस समय संघाराम के खँड़हर में पहुँचे थे, उस समय वह भिक्षुणी एक पत्थर पर बैठी हुई कई गीदड़ों को कुछ खिला रही थी। उसने महाप्रतीहार को देखकर कर्कश स्वर से कहा—अरे तू फिर आ गया? मैंने तो कह दिया था न कि तेरे जैसे मूर्खों से समुद्रगुप्त के वंश का कुछ भी कल्याण न होगा!

वृद्ध महाप्रतीहार ने सिर झुकाकर कहा—देवी, आपकी बात बहुत ही ठीक है। तीन संन्यासी आकर महादेवी का एक बाल ले गए।

भिक्षुणी—तू मूर्ख है—मूर्ख है। तू पुरुष नहीं, स्त्री है। तू मनुष्य नहीं, बंदर है। जब महादेवी ने अपने सर्वनाश का मार्ग आप ही खोला था, तब तू क्या कर रहा था?

कृष्ण०—देवी, मैं उस समय समझ नहीं सका था। आपने कहा था आज यदि कोई महादेवी का बाल छूएगा तो साम्राज्य का नाश हो जायगा। इसीलिये मैंने किसी को महादेवी का अंग तक छूने नहीं दिया था।

भिक्षुणी—तू तो बंदर है। इसीलिये न तू पेड़ पर बैठा हुआ केला खा रहा था; और इंद्रलेखा आकर महादेवी का बाल ले गई।

कृष्ण०—इंद्रलेखा?

भिक्षुणी—हाँ हाँ, इंद्रलेखा, चंद्रसेन और हरिबल।

कृष्ण०—देवी, वे सब तो संन्यासी थे।

भिक्षुणी—हाँ हाँ, ऐसे संन्यासी वेश्याओं के निवासस्थान में बहुतेरे आते जाते हैं। हरिबल ने किसी समय प्रव्रज्या ग्रहण की थी। परंतु उसने एक भिक्षुणी को स्पर्श कर लिया था, जिसके कारण वह पतित हो गया था।

कृष्ण०—देवी, तो फिर अब क्या उपाय है?

भिक्षुणी—तू तो महादेवी से कह आया था न कि वह किसी को स्पर्श न करे ?

कृष्ण०—हाँ।

भिक्षुणी—अरे बंदर, तो क्या मैं झूठ कहती हूँ ? हरिबल, जिनरक्षित और नागार्जुन वाराणसी में महादेवी का बाल लेकर मारण यज्ञ करेंगे। उसी दिन पाटलिपुत्र में महादेवी की मृत्यु होगी, और तू बंदर प्रासाद में बैठकर केला खाता रहेगा।

कृष्ण०—देवी, तो फिर मुझे क्या करना चाहिए।

भिक्षुणी—कहा तो कि अब केला खाइयो।

कृष्ण०—तो क्या अब कोई उपाय नहीं है ?

भिक्षुणी—नहीं।

कृष्ण०—साम्राज्य की क्या दशा होगी ?

भिक्षुणी—बीस ही वर्ष में समुद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य बालू के ढेर की तरह उड़ जायगा। वेश्या की कन्या आर्यपट्ट पर बैठेगी। उस समय भी तू पेड़ पर बैठकर केला खाया कीजियो।

कृष्ण०—देवी, तो क्या मेरे पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं है ?

भिक्षुणी—है क्यों नहीं ! चंद्रगुप्त का पवित्र रक्त तेरे शरीर में बह रहा है। जिस दिन उत्तरापथ और दक्षिणापथ का परित्राण करनेवाले की रक्षा के लिये उस रक्त से कलंकित पाटलिपुत्र का राजपथ धुलेगा, उसी दिन युवराज भट्टारकपादीय महासाम्राज्य के महाप्रतीहार कृष्णगुप्त के महापातक का प्रायश्चित्त होगा।

कृष्ण०—देवी, वह दिन आवेगा ?

भिक्षुणी—अभी विलंब है। चंद्रगुप्त का पुत्र कुमारगुप्त वेश्या की कन्या के कलुषित पैरों के स्पर्श से पवित्र आर्यपट्ट कलंकित करेगा। हजारों मागध सैनिक और लाखों आर्य पुरुष तथा स्त्रियाँ अपने विमल रक्त की धारा से कलंक की वह कालिमा धोएँगी। जिस दिन वेश्या का नाती आर्यपट्ट पर पैर रखेगा, उसी दिन प्रकृत परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज के प्राण बचाने के लिये कृष्णगुप्त अपने महापातक का प्रायश्चित्त करेगा।

कृष्ण०—वेश्या की कन्या,—वेश्या का नाती! आर्यपट्ट पर अनंता का पुत्र बैठेगा? देवी, समुद्रगुप्त का सेनानायक वृद्ध कृष्णगुप्त क्या यही सब देखने के लिये जीता रहेगा?

भिक्षुणी—हाँ, तू भी रहेगा, गोविंदगुप्त भी रहेगा, दामोदर शर्मा भी रहेगा और रामगुप्त भी रहेगा। जिस दिन इंद्रलेखा की कन्या पट्टमहादेवी के आसन पर बैठेगी, उस दिन महाराजपुत्र महाकुमार गोविंदगुप्त, महाराजपुत्र युवराज स्कंदगुप्त, युवराज भट्टारकपादीय महामंत्री दामोदर शर्मा, युवराज भट्टारकपादीय महाप्रतीहार कृष्णगुप्त, कुमारपादीय महादंडनायक रामगुप्त, महाकुमार हर्षगुप्त और कुमारपादीय महाबलाधिकृत भानुमित्र आदि सब के सब उसके सामने सिर झुकावेंगे। युवराज भट्टारकपादीय महाबलाधिकृत अग्निगुप्त वाह्लीक के युद्धक्षेत्र में मारा गया। तू भाग जा।

वृद्ध महाप्रतीहार स्तंभित होकर पत्थर की मूरत की तरह खड़े रहे। यह देखकर पगली ने उनपर एक पत्थर खींच मारा। कृष्णगुप्त धीरे धीरे रथ की ओर बढ़े।

———

सातवाँ परिच्छेद

माता और पुत्र

जिस प्रकार प्रबल वायु के कारण घने, काले मेघ टुकड़े टुकड़े होकर इधर उधर छितरा जाते हैं, उसी प्रकार अग्निगुप्त और गोविंदगुप्त की रणनीतिकुशलता के कारण हूण सेना पराजित होकर इधर उधर भाग गई। बहुत से हूण सैनिकों को मागध सेना ने पकड़ भी लिया। वाह्लीका तट पर आर्यावर्त्त के प्रवेशद्वार की रक्षा करते समय महावीर महाबलाधिकृत अग्निगुप्त के प्राण दे देने पर मागध सेना ने समझा था कि यह महाबलि पाकर रणचंडी प्रसन्न हो गई है। उन्होंने यह समझा था कि अब हूण-सेना हार गई, युद्ध समाप्त हो गया और युवराज पाटलिपुत्र लौट चलेंगे। परंतु

रणनीति कुशल गोविंदगुप्त समझते थे कि हूणों के इसी आक्रमण से उनकी उद्दंडता का अंत नहीं हो गया। हूण लोग फिर आवेंगे और इसी नदी तट की रक्षा करने के लिये फिर दूसरे अग्निगुप्त की आवश्यकता होगी। अभी हूण सेना के लौटने में विलंब है। परंतु जब हूण सेना के नष्ट हो जाने पर भी, वक्षु के दोनों तटों पर मागध सेना को अधिकार हो जाने पर भी सेना में लौटने की आज्ञा नहीं सुनाई गई, तब सैनिक लोग बहुत ही क्षुब्ध हुए। गोविंदगुप्त की आज्ञा से युवराज स्कंदगुप्त केवल पाँच हजार सवारों के साथ अग्निगुप्त का भस्मावशेष लेकर पाटलिपुत्र की ओर चले।

वाह्लीक और कपिशा के शकमंडल को तंद्रा में मग्न देखकर वक्षु पार के हूणों ने समझा था कि सारा आर्यावर्त्त सहज में ही जीत लिया जायगा। जब हूण लोग देवपुत्र शाहानुशाही उपाधिधारी शक राजाओं पर आक्रमण करते थे, तब वे राजा लोग अपनी रक्षा का बिना कोई प्रयत्न किए ही केवल धन देकर हूण दलों के अधिपतियों को प्रसन्न कर लिया करते थे। हूण दलों के अधिपतियों ने कायर शक राजाओं पर अमानुषिक अत्याचार करके सारे वाह्लीक और कपिशा में उपद्रव मचा रखा था। जब उन लोगों का अत्याचार बहुत बढ़कर असह्य हो गया, तब शक राजाओं ने जालंधर के अग्निगुप्त से सहायता माँगी थी। हूण दलों के अधिपतियों ने समझा था कि शकराजाओं की सेना की तरह अग्निगुप्त और गोविंदगुप्त की सेनाएँ भी युद्ध क्षेत्र में हम लोगों को पीठ दिखलाकर भाग जायँगी। यही समझकर पाँच लाख हूणों ने वक्षु नदी पार करके उसके दक्षिण तट पर गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त की छावनी पर आक्रमण किया था। उन्होंने समझा था कि मागध सेना हम लोगों देखते ही भाग जायगी। परंतु जब वह सेना भागने की जगह युद्ध के लिये प्रस्तुत होकर खड़ी हो गई, तब हूण दलपतियों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। जब सुशिक्षित मागध सेना ने सहज में ही पाँच लाख हूण सवारों का प्रबल आक्रमण सह लिया, तब उन लोगों का आश्चर्य और भी बढ़ गया। और जब मागध सवारों ने हारी हुई हूण सेना का पीछा किया, तब उनके उस आश्चर्य का स्थान भय ने ले लिया। जब पराजित हूण सेना ने वक्षु तट पर पहुँचकर देखा कि स्कंदगुप्त के एक लाख सवारों ने

लौटने का मार्ग भी रोक रखा है. तब वे लोग घबराकर इधर उधर भागने लगे। वाह्लीका के तट पर उन्हीं पाँच लाख सैनिकों की गति रोकने में अग्निगुप्त ने आत्मविसर्जन किया था। भानुमित्र जिस मार्ग से होकर युवराज को ढूँढ़ने गए थे, हूण सेना उस मार्ग से नहीं आई थी। भानुमित्र ने तीन दिन के बाद वाह्लीका तट पर लौटकर सुना कि युद्ध समाप्त हो गया। महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने आज्ञा दे दी कि भानुमित्र भी युवराज के साथ पुरुषपुर लौट जायँ। वाह्लीक नगर में चक्रपालित को रखकर और सब लोग कपिशा लौट आए। अग्निगुप्त का भस्मावशेष लेकर भानुमित्र और स्कंदगुप्त कपिशा और नगरहार होते हुए पुरुषपुर पहुँचे। भानुमित्र को पुरुषपुर में छोड़कर स्कंदगुप्त पाटलिपुत्र की ओर बढ़े। मार्ग में हर एक गाँव और हर एक नगर में महोत्सव होने लगे महावीर अग्निगुप्त के भस्मावशेष और हूणों को परास्त करनेवाले युवराज की अभ्यर्थना करने के लिये आर्यावर्त्त के निवासी आपे से बाहर हो गए। तक्षशिला, जालंधर स्थाण्वीश्वर, मथुरा, कान्यकुब्ज और वाराणसी में युवराज ने बड़े समारोह से नगर प्रवेश किया। पाटलिपुत्र नगर में जैसा समारोह हुआ था, वैसा समारोह द्वितीय चंद्रगुप्त के मालव और सौराष्ट्र जीतने के उपरांत तब तक नहीं हुआ था। नगर के बाहर पाँच कोस तक नागरिकों ने विजय तोरण बनवाए थे और पाँच कोस का वह मार्ग बंदनवारो और मालाओं से सजाया गया था। नगर के प्रधान फाटक पर स्वयं सम्राट् अपने पुत्र की अभ्यर्थना के लिये खड़े थे। प्रासाद के फाटक पर पट्टमहादेवी ने सैकड़ों हजारों उच्च कुल की स्त्रियों के साथ अपने हूण विजयी पुत्र का स्वागत किया था। पहले गंगाद्वार पर अग्निगुप्त की अस्थियाँ गंगा में प्रवाह करके तब युवराज ने नगर में प्रवेश किया था। इसके उपरांत एक सप्ताह तक महानगर में अनेक प्रकार के उत्सव और समारोह हुए थे।

युवराज ने वर्षा और शरद् ऋतु पाटलिपुत्र में ही बिताई। इस बीच में महादेवी ने उनका विवाह कराने की बहुत कुछ चेष्टा की परंतु वृद्ध रामगुप्त ने विवाह के इस प्रस्ताव में बाधा देकर कहा कि जब तक हूणों का युद्ध समाप्त न हो जाय, तब तक योद्धा सेनापति का विवाह असंभव है। परंतु

जब महादेवी का आग्रह बहुत बढ़ गया, तब अंत में विवश होकर कुमारगुप्त इस बात पर सहमत हो गए कि वसंत ऋतु में युवराज का विवाह अरुणादेवी के साथ हो जाय। परंतु रामगुप्त की संमति से निश्चित हुआ कि यदि आगामी ग्रीष्म ऋतु में हूण लोग फिर युद्ध न छेड़ बैठें तो विवाह हो जाय। उस समय तक युवराज के सामने अरुणादेवी घूँघट नहीं डालती थी।

वसंत ऋतु के आरंभ में पाटलिपुत्र के राजप्रासाद में महादेवी ध्रुवस्वामिनी ने एक उद्यान उत्सव किया था जिसमें सारा उद्यान फूलों और मालावों आदि से सजाया गया था। उस दिन प्रभात के समय सूर्योदय से पहले कुमारी अरुणा उसी उद्यान में महादेवी की पूजा के लिये फूल तोड़ रही थी। उसके अनुपम रूप और लावण्य से वह मनोहर उद्यान मानों और भी उज्वल हो उठा था। अरुणा जवा के वृक्ष से लाल जवा तोड़ रही थी। इतने में सहसा मालती लता के पीछे किसी के पैरों की आहट हुई। अरुणा ने पीछे फिरकर देखा कि मालती की घनी लताओं में छिपे हुए युवराज उसकी ओर देख रहे हैं। उसका रजनीगंधा के समान शुभ्र मुखमंडल मारे लज्जा के लाल हो आया और उसने धीरे से घूँघट खींच लिया। उस समय स्कंदगुप्त ने लताओं में से निकलकर कहा—अरुणा, जरा एक बार फिर देखूँ तो सही।

अरुणा का घूँघट और भी बढ़ गया। युवराज कुछ भी निश्चय न कर सके कि अब मैं क्या करूँ अथवा क्या कहूँ। वे टक लगाकर अरुणा की ओर देखते रह गए। कुछ समय के उपरांत युवराज ने फिर कहा—अरुणा, मेरी एक बात मानोगी?

अरुणा का घूँघट और भी बढ़ गया। उसने बहुत धीरे से पूछा—क्या?

युवराज—मुझे रजनीगंधा की एक माला बना दोगी?

अरु०—बना दूँगी।

तब तक युवराज स्थिर होकर खड़े थे। अरुणा ने फिर कहा—आप यहाँ से हट जायँ, कोई आ न जाय।

युव०—तो इसमें हानि ही क्या है?

अरु०—छिः!

उसी समय फिर पीछे से किसी के आने की आहट सुनाई दी। अरुणा और भी अधिक लज्जित होकर पीछे हट खड़ी हुई। युवराज ने देखा कि एक दंडधर उनकी ओर आ रहा है। उन्होंने विरक्त होकर पूछा-क्या है ?

दंडधर ने अभिवादन करके कहा—युवराज भट्टारक की जय हो। हूण जाति फिर युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो रही है। कपिशा से महाराजपुत्र ने दूत भेजा है। आपको इसी समय यात्रा करनी पड़ेगी।

युव०—अच्छा चलो, आता हूँ।

दंडधर प्रस्थान करके चला गया। उसके दूर निकल जाने पर युवराज ने अरुणादेवी से कहा—अरुणा, लो अब मैं जाता हूँ। यदि मैं लौट आया तब तो फिर भेंट होगी ही, और नहीं तो नहीं। बस मैं फिर एक बार तुम्हारा मुँह देखना चाहता हूँ।

अरुणा के मुँह पर से घूँघट हट गया। युवराज ने देखा कि उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भरी हैं और उसके गुलाबी गालों पर से होकर आँसुओं की धारा बह रही है। युवराज ने फिर कहा—अरुणा, संभव है कि यही हम लोगों की अंतिम भेंट हो। एक बार मेरी ओर आँख उठाकर देखो।

अरुणा ने सिर उठाया। उसकी आँखों मे भरे हुए आँसू और भी वेग से बहने लगे। युवराज ने कहा—अरुणा, तुम रोओ मत। मेरी एक बात और है।

अरुणा ने रुँधे हुए गले से पूछा—वह क्या ?

युव०—तुम अपने हाथ की अँगुठी मेरी उँगली में पहना दो। यदि मैं मर—

अरुणा ने धीरे धीरे युवराज की ओर बढ़कर अपने हाथ से हीरे की एक अँगूठी उतारी और स्कंदगुप्त की उँगली में पहना दी। युवराज ने पूछा—अरुणा, क्या तुम मेरे लिये प्रतीक्षा करोगी ?

अरुणा के चेहरे का घूँघट और भी खसक गया। उसकी आँसुओं से भरी आँखें चमक उठीं। वह बोली-युवराज, जब मैंने आपका अंग छू लिया,

तब आप ही मेरे देवता हो गए। मैं इस लोक में और परलोक में सब जगह आपकी प्रतीक्षा करूँगी ?

युवराज धीरे धीरे टहलते हुए अंतःपुर की ओर बढ़े। जब वे दूर निकल गए और अरुणा की आँखों से ओझल हो गए, तब अरुणा मालती लता के कुंज में उस स्थान पर जा पहुँची जहाँ युवराज खड़े थे। पहले उसने वहाँ की धूल उठाकर सिर और कलेजे से लगाई और तब वह वहीं लेट गई।

दिन का दूसरा पहर बीत जाने पर प्रासाद और नगर के फाटकों पर मंगल-वाद्य बजने लगे। पाटलिपुत्र के नागरिक लोग इसका कारण न समझ सके और अपना अपना घर छोड़कर बाहर मार्गों में आ खड़े हुए। जो लोग प्रासाद के निकट ही रहते थे, उन्होंने देखा कि प्रासाद के तीसरे आँगन में मालव देश के पाँच हजार सवार यात्रा के लिये सजे सजाए खड़े हैं। जो नागरिक उन सवारों को पहचानते थे, वे कहते थे कि ये लोग युवराज के शरीररक्षक हैं। जब मंगल-वाद्य बराबर बजता ही रहा, तब दल के दल नागरिक प्रसाद के पास आ पहुँचे। धीरे धीरे प्रासाद के चारों ओर के राजपथों में बहुत भीड़ हो गई। जो लोग तीसरे फाटक के पास खड़े थे, उन्होंने औरों के मुँह से सुना कि युवराज इसी समय कपिशा के लिये प्रस्थान करेंगे। तुरंत ही यह समाचार प्रासाद के फाटक से लेकर नगर के फाटकों तक पहुँच गया। नगर के फाटक के पास एक विकलांग वृद्ध खड़ा था; वह सहसा जयध्वनि कर उठा। हूणों पर विजय प्राप्त करनेवाले स्कंदगुप्त उन दिनों पाटलिपुत्र के नागरिकों की आँखों की पुतली हो रहे थे। उस वृद्ध के क्षीण कंठ से निकली हुई जयध्वनि समाप्त होने के पहले ही और भी लोग घोर जयध्वनि करने लगे। लाखों कंठों से स्कंदगुप्त की जयध्वनि निकलने लगी। फाटक के पास राजमार्ग के एक ओर दो तीन भिक्षुक खड़े थे। उनमें से एक यह जयध्वनि सुनकर काँप उठा और ठंढी साँस लेकर अपने साथी से पूछने लगा—अब यह जयध्वनि और कितने दिनों तक होती रहेगी ?

दूसरे भिक्षु ने दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा—अधिक दिनों तक नहीं, छः महीने और ठहर जाओ।

प० भिक्षु०—छः महीने के बाद क्या होगा ?

दू० भि०—यही लोग स्कंदगुप्त के नाम पर थूकेंगे।

उस समय अंतःपुर में वासुदेव के मंदिर के सामने नगर के प्रतिष्ठित घरों की स्त्रियाँ वरण सामग्री लेकर युवराज की प्रतीक्षा कर रही थीं। थोड़ी ही देर में सम्राट् और युवराज ने अंतःपुर से निकलकर वासुदेव मंदिर के आँगन में प्रवेश किया। महादेवी उस समय मंदिर के गर्भगृह में ध्यान में मग्न बैठी थीं। एक दासी ने जाकर उन्हें सम्राट् और युवराज के आने की सूचना दी। महादेवी उठकर गर्भगृह से बाहर आईं। वरण आरंभ हुआ। पहले गुप्तवंश की समस्त पुरस्त्रियों ने वरण किया और तब महादेवी ने वरण-पात्र लेकर वरण आरंभ किया। सहसा उनका हाथ काँपने लगा और पात्र में से वरण सामग्री इधर उधर गिर पड़ी। सम्राट् ने चकित होकर पूछा—देवी, क्या हुआ ?

महादेवी ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया। दासियाँ दूसरी वरण-सामग्री ले आईं। वरण करने के उपरांत महादेवी ने पात्र दूर फेंक दिया और पुत्र को गले से लगा लिया।

कुमारगुप्त ने हँसकर कहा—महादेवी ! जब स्कंदगुप्त पहले हूण युद्ध के लिये जा रहे थे, तब तो तुम इतनी विचलित नहीं हुई थीं।

महादेवी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—प्रभु, कदाचित् अब फिर स्कंद का मुँह देखने को न मिले।

कुमार०—नहीं, यात्रा के समय अमंगल की बातें मुँह से न निकालो। तुम्हारा हूण विजयी पुत्र फिर हूणों को जीतकर लौट आवेगा।

महा०—महाराज, वासुदेव के आशीर्वाद से मेरा स्कंद सदा और सब जगह विजयी होगा। परंतु जब वह लौटेगा तब कदाचित् मैं इस संसार में न रहूँगी।

कुमार०—देवी, तुम गुप्तकुल की लक्ष्मी हो; तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

माता महादेवी और अरुणा उस समय आँखों में जल भरकर चिंता कर रही थीं और पाटलिपुत्र के लाखों नागरिक जयध्वनि कर रहे थे। ऐसे समय में परमेश्वर परमवैष्णव युवराजभट्टारक स्कंदगुप्तदेव ने दूसरे हूणयुद्ध के लिये प्रस्थान किया।

आठवाँ परिच्छेद

वशीकरण

अस्सी से वरुणा तक फैली हुई परम रमणीक वाराणसी नगरी के किनारे, एक रमणीक उद्यान में, फूले हुए अशोक वृक्ष के नीचे लाल कपड़े पहने हुए एक कापालिक संध्या समय होम का आयोजन कर रहा था। उसके पास एक अधेड़ सुंदरी बैठी थी जो उसकी सहायता कर रही थी। उस रमणीक उद्यान में एक सुंदर सरोवर था जिस पर संगमरमर की सीढ़ियाँ बनी थीं। उन्हीं सीढ़ियों पर बैठी हुई एक परम सुंदरी नहा रही थी। जान पड़ता था कि स्त्रियों के स्वाभाविक गुण लज्जा का वह युवती बहुत दिनों पहले ही परित्याग कर चुकी है। निस्संकोच भाव से उस युवती ने नंगे होकर स्नान किया, सीढ़ी पर खड़े होकर कपड़े बदले और वहीं दर्पण आदि लेकर वह अपने बाल सँवारने लगी।

इतने में रात हो गई। अमावस्या की अँधेरी रात में होमकुंड से निकलनेवाली ऊँची ऊँची लपटों के कारण अशोक वृक्ष चमकने लगा। उस तपे हुए अग्निकुंड के पास बैठा हुआ वह कापालिक निरंतर मंत्रपाठ कर रहा था, और बीच बीच में घी में डूबे हुए लाल जवा और बिल्व दल अग्निकुंड में छोड़ता जाता था। उधर बाल सँवारने के उपरांत वह युवती घाट की एक वेदी पर बैठकर मद्यपान कर रही थी। एक सेवक हाथ में उल्का लेकर उसके सामने खड़ा था। सहसा होमकुंड के पास बैठी हुई अधेड़ स्त्री ने पुकारा—अनंता।

युवती ने उत्तर दिया—आती हूँ।

जब वह युवती अग्निकुंड के पास पहुँच गई, तब कापालिक अपना आसन छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उसने काँच के एक पात्र में किसी लता का रस लेकर उसे मंत्र से अभिमंत्रित किया, और तब वह पात्र उस युवती के हाथ में दे दिया। युवती पहले से ही मद्य पीकर विह्वल हो रही थी। वह एक ही साँस में उसे पी गई। उस समय कापालिक ने अधेड़ स्त्री से कहा—जाओ, अब तुम्हारी कन्या का अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। इस समय से उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दो। वह जिस व्यक्ति की कामना करती है, ज्योंही वह व्यक्ति दिखलाई पड़े, त्योंही उसकी आँखों पर की पट्टी खोल देना। यह उसे देखते ही वश में कर लेगी।

कापालिक फिर बैठ गया। हवि पड़ने के कारण होमशिखा फिर उठ उठकर आकाश तक पहुँचने लगी। अधेड़ स्त्री ने रेशमी वस्त्र से युवती की आँखों पर पट्टी बाँध दी और हाथ पकड़कर उसे होमकुंड के पास बैठा दिया। फिर मंत्रपाठ आरंभ हुआ। घी में डूबे हुए लाल जवा और बिल्व-दल अग्निकुंड में पड़ने लगे। कोई आध दंड बीत जाने पर कापालिक फिर उठकर खड़ा हो गया और युवती के हाथ में एक अधजला लाल जवा देकर कहने लगा—तुम जिसकी कामना करती हो, वह जब तुम्हारे पास पहुँचे; तब यह अभिमंत्रित फूल उसके ऊपर फेंक देना।

इतना कहकर कापालिक फिर पूजा पर बैठ गया। वह अधेड़ स्त्री अपनी कन्या को साथ लेकर उद्यान के फाटक पर चली आई और अँधेरे में अश्वत्थ के एक बहुत बड़े वृक्ष के नीचे छिप गई।

वाराणसी के हजारों मंदिरों के फाटकों पर मंगल वाद्य बजने लगे। साथ ही अँधेरे राजमार्ग पर बहुत से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। वह शब्द सुनकर युवती का हाथ पकड़े हुए वह अधेड़ स्त्री राजमार्ग की ओर बढ़ी। देखते देखते सैकड़ों उल्काधारी सवार उद्यान के फाटक के सामने से से होकर निकल गए। उनके पीछे पीछे सैकड़ों हाथी और ऊँट भी धीरे धीरे पैर बढ़ाते हुए वाराणसी की ओर चले गए। इसके उपरांत सैकड़ों उल्काधारियों से घिरा हुआ एक बहुत बड़ा रथ दिखाई दिया। उसे देखते ही

अधेड़ स्त्री ने युवती की आँखों पर की पट्टी खोल दी। ठीक उसी समय वह रथ उद्यान के फाटक के सामने आ पहुँचा। युवती बिजली की तरह झपटकर रथ के सामने जा खड़ी हुई। सारथी ने विस्मित होकर चारों घोड़ों को रोक दिया।

वह रथ चंदन की लकड़ी का बना था और उसपर सोना मढ़ा हुआ था। उसपर एक अधेड़ बैठे थे। जिनके बाल पके हुए थे। उन्होंने सारथी से पूछा—क्या हुआ?

उनकी बात समाप्त होने के पहले ही वह युवती कूदकर रथ पर जा चढ़ी और उसने अधेड़ को गले से लगा लिया। चारों ओर से सैकड़ों रक्षक उसे रथ पर से उतारने के लिये आगे बढ़े; परंतु अधेड़ ने संकेत से उन लोगों को रोक दिया। हजारों उल्काओं के उज्ज्वल प्रकाश में, प्रशस्त राजपथ में खुले हुए रथ पर एक अपरिचित स्त्री को इस प्रकार का व्यवहार करते देखकर अधेड़ को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने युवती से पूछा तुम कौन हो?

स्त्री ने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा—मैं—आप मुझे नहीं पहचानते?

रात की ठंढी हवा के झकोरों से उस युवती के बाल उड़ उड़कर वृद्ध के मुँह पर पड़ रहे थे। स्त्री के शरीर का अंगराग, गंधलेप और बालों की सुगंधि धीरे धीरे वृद्ध को उन्मत्त कर रही थी। तो भी वृद्ध अपने आपको सँभालने की चेष्टा करते थे। विवेक बार बार वृद्ध के कानों में यही कहता था कि राजमार्ग पर, उज्ज्वल प्रकाश में, हजारों सेवकों के सामने युवती का यह व्यवहार ठीक नहीं है। परंतु वे यह भी समझते थे कि ऐसा कोमल स्पर्श, ऐसे मनोहर कटाक्ष, ऐसा भुवनमोहन रूप अनंता के अतिरिक्त और किसी का नहीं हो सकता। साथ ही तेल की ऐसी सुगंधि, अनंता के बालों के अतिरिक्त और किसी के बालों में से नहीं आ सकती। परंतु वे यह भी सोचते थे कि वाराणसी के मार्ग में अमावस्या की अँधेरी रात के पहले पहर के समय अनंता कैसे आ सकती है। उनके गले से लगी युवती ने फिर कहा—क्या आप सचमुच मुझे नहीं पहचानते? आप तो बड़े ही निठुर जान पड़ते हैं!

प्रौढ़ उस समय सोच रहे थे कि भ्रातृ भक्त गोविंदगुप्त ने एक बार कहा था कि यदि अब कभी तुम अनंता के जाल में फँसोगे, तो समुद्र से लेकर समुद्र तक फैला हुआ आर्य समुद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य देखते देखते नष्ट हो जायगा। इंद्रलेखा के फेर में पड़कर, अनंता की बातो में भूलकर वे एक दिन स्कंदगुप्त की माता को आर्यपट्ट पर से उतारना चाहते थे। पुरुषपुर से गोविंदगुप्त उनका यह मोह दूर करने के लिये पाटलिपुत्र आए थे। वृद्ध पितृव्य, गुप्त साम्राज्य के पूजनीय महामंत्री दामोदर शर्मा इसी चिंता में पागल हो गए थे। अनंता के लिये पाटलिपुत्र के उच्च कुल के और साम्राज्य के शुभचिंतक लोग बहुत व्याकुल हो रहे थे। फिर वही अनंता! वह यहाँ कैसे आ गई? उसे मेरे यहाँ आने का समाचार कैसे मिला?

सहसा वृद्ध के चेहरे पर पसीने की बूँदें हो आईं। परमेश्वर परम भट्टारक परमवैष्णव महाराजाधिराज ने सिर उठाकर देखा कि अनंता के चंद्रमा के समान खिले हुए मुखमंडल पर आँसुओं की धारा बह रही है। यह देखकर कुमारगुप्त की दृढ़ता जाती रही। उन्होने अपने बहुमूल्य रेशमी वस्त्र से अनंता की आँखें पोंछीं और कहा—छिः! अनंता, तुम रोओ मत। मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ।

मद्य से विह्वल और निर्लज्ज अनंता ने सब के सामने सम्राट् का मुँह चूम लिया। वृद्ध सम्राट् ने मारे लज्जा के सिर झुका लिया। लज्जित होकर सेवक लोग दूर हट गए। अनंता कहा—प्रतिज्ञा कीजिए कि अब आप मुझे नहीं छोड़ेंगे।

सम्राट् को फिर घोर चिंता ने आ घेरा। अनंता अप्सरा और देवताओं के भोग के योग्य थी। वैसा रूप संसार में और कहीं नहीं था। अनंता फिर सम्राट् के साथ पाटलिपुत्र जाना चाहती थी। क्या वह फिर पट्टमहादेवी बनना चाहती थी? क्या फिर वेश्या की कन्या के पैरों के स्पर्श से पवित्र आर्यपट्ट कलुषित होने के भय से गुप्त साम्राज्य के प्रतिष्ठित लोग त्रस्त होंगे? और महादेवी?—स्कंदगुप्त की माता? वे तो गुप्तकुल की लक्ष्मी हैं। यदि अनता फिर सम्राट् के साथ पाटलिपुत्र

चली गई, तो क्या फिर महादेवी को चिंतित होना पड़ेगा ? अपने पति को संतुष्ट करने के लिये सती महादेवी अपना सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत थीं। परंतु करुणा ने कहा था कि महादेवी श्यामा मंदिर में देवी की मूर्ति के साथ से खड्ग लेकर आत्महत्या करने पर उतारू हो गई थीं। क्या अनंता फिर आर्यपट्ट पर बैठना चाहेगी ? संभव है कि बैठना चाहे। और यह भी संभव है कि न बैठना चाहे। भला एक वृद्ध में ऐसी कौन सी आकर्षण शक्ति है जिसके कारण एक परम रूपवती युवती उसे अपना देवता और सर्वस्व मानने के लिये प्रस्तुत हो ? बस या तो उसे धन का लोभ हो सकता है और या राज्य का। पाटलिपुत्र में बहुत सी ऐसी वेश्याएँ हैं जो गुप्त साम्राज्य की पट्टमहादेवी से भी बढ़कर धनवान और संपन्न हैं। अब फिर वृद्ध सम्राट् के चेहरे पर पसीने की बूँदें हो आईं। उनका विवेक नष्ट हो गया। उन्होंने व्याकुल होकर कहा—अनंता, तुम रोओ मत। अब मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा।

अनंता के आँसू बंद हो गए। उस पापिनी ने निर्लज्ज होकर फिर वृद्ध सम्राट् का मुँह चूम लिया। सम्राट् की आज्ञा से रथ चलने लगा। समुद्रगुप्त के पौत्र, चंद्रगुप्त के पुत्र परमेश्वर परमभट्टारक परमवैष्णव महाराजाधिराज कुमारगुप्तदेव ने एक वेश्या की कन्या के साथ रथ पर बैठकर वाराणसी के अवमुक्त क्षेत्र में प्रवेश किया।

रथ चला गया, उल्काओं का प्रकाश दूर निकल गया और राजपथ में फिर अँधेरा छा गया। उस समय अश्वत्थ वृक्ष के नीचे से चलकर वह गेरुए वस्त्रवाली अधेड़ स्त्री उद्यान के फाटक के पास आई और पुकारने लगी—चंद्रसेन ! चंद्रसेन !! न जाने अभागा इस समय कहाँ चला गया।

चंद्रसेन ने वृक्ष पर से उत्तर दिया—मैं यहाँ आड़ में से तुम्हारी कन्या और जामाता का मिलन देख रहा था।

इंद्र०—अच्छा, नीचे उतर आओ।

चंद्र०—तुम घबराई हुई क्यों हो ?

इंद्र—कापालिक कहाँ गया ?

चंद्र०—वह तो पहले ही चला गया।

चंद्रसेन वृक्ष पर से उतर आया। उस समय इंद्रलेखा ने कहा—सब कुछ देख लिया न ? अब बतलाओ, किसकी बुद्धि बड़ी है। उस बूढ़े गीदड़ की या मेरी ?

चंद्र०—इंद्रलेखा, मैं तो बहुत दिनों से कहता आता हूँ कि यदि तुम पुरुष होतीं, तो कुमारगुप्त को कान पकड़कर आर्यपट्ट पर से उतार देतीं और साम्राज्य की अधीश्वरी बन जातीं।

इंद्र०—क्या कहूँ ! यदि मैं फल्गुयश के फेर में न पड़ जाती, तो अब तक कुमारगुप्त को कभी की सिंहासन पर से उतार देती।

चंद्र०—इसका क्या अर्थ ?

इंद्र०—इसका अर्थ है तुम्हारा सिर। तुम्हारे ऐसा मूर्ख काहे को कभी किसी ब्राह्मण के घर जन्मा होगा। यदि मैं महाराजपुत्र को अपने वश में कर लेती, तो अब तक कभी की पट्टमहादेवी बन चुकी होती।

चंद्र०—तो फिर मेरी क्या दशा होती ?

इंद्र०—तुम मद्य की दूकानों पर झाड़ू खाते फिरते !

चंद्रसेन हँस पड़ा। इंद्रलेखा ने फिर कहा—देखो, इस समय बहुत ही अच्छा अवसर है। वह बूढ़ा गीदड़ जालंधर में है; और गोविंदगुप्त तथा स्कंदगुप्त पुरुषपुर में हैं। अनंता पाटलिपुत्र जा रही है। अब उसकी गति रोकनेवाला कोई नहीं है।

चंद्र०—इंद्रलेखा, आज बड़े ही आनंद का दिन है। कल मैं कुमारगुप्त का ससुर बन जाऊँगा। आओ, आज हम लोग एक घड़ा कादंब पी डालें।

इंद्र०—दिन भर उपवास करने के कारण मेरा गला सूख रहा है। जाओ, कापालिक को बुला लाओ और भंडार से मद्य का एक कलश भी लेते आओ।

चंद्रसेन उद्यान में पहुँचकर इधर उधर ढूँढ़ने लगा, परंतु कहीं कापालिक न मिला। तब वह उद्यान की अट्टालिका में से कादंब का भरा हुआ मिट्टी का घड़ा ले आया और आकर इंद्रलेखा से कहने लगा—कापालिक कहीं नहीं मिला।

इंद्र०--वह कहाँ चला गया ?

चंद्र०—क्या जाने ।

इंद्र०—अभी तो उसका बहुत कुछ काम है। उसका मंत्रबल बहुत अधिक है। उसने बहुत सहज में वशीभूत करा दिया। अब कल मारण यज्ञ का अनुष्ठान होगा।

चंद्र०—अजी, वह कादंब के लोभ से तड़के ही आ पहुँचेगा।

अब उस अँधेरी रात में कुमारगुप्त की सास और ससुर दोनों मिलकर मद्य पीने लगे।

नवाँ परिच्छेद

बिदाई

वसंत ऋतु की पूर्णिमा की उज्वल चाँदनी में एक परम सुंदरी युवती बैठी हुई वीणा बजा रही है। पुरुषपुर नगर के सामने बड़े बड़े पर्वतों की चोटियाँ हेमंत ऋतु की बरफ के कारण चाँदनी में दर्पण की भाँति चमक रही हैं। नगर में संगमरमर के बने एक बड़े भवन के दूसरे खंड के अलिंद में बैठी वह सुंदरी वीणा बजा रही थी। सामने की वनस्पतिहीन अर्धचंद्राकार पर्वतमाला में उस वीणा की झंकार की प्रतिध्वनि होती थी। युवती के पास ही एक सुंदर युवक बैठे थे, जो टक लगाकर युवती के मुँह की ओर देख रहे थे।

सहाना बज रहा था। वीणा की मधुर ध्वनि मानों उस सुंदर चाँदनी में जीवन डाल रही थी। सहसा वीणा का बजना बंद हो गया। युवती ने तिरछी चितवन से देखकर कहा—अब मैं नहीं बजाऊँगी।

युवक ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

युवती—तुम तो सुनते ही नहीं हो।

युवक—नहीं, मैं तो सुन रहा हूँ।

युवती—क्या सुन रहे हो ?

युवक—तुम्हारी वीणा ।

युवती—भला बतलाओ तो मैं क्या बजाती थी ।

इतना कहकर युवती हँस पड़ी । उसके कोमल होठों से निकली हुई हँसी बीन की झंकार की तरह दूर की पर्वतमालाओं में गूँज उठी । उसने फिर कहा -- भला बतलाओ तो मैं क्या बजाती थी ।

युवक —भीमपलश्री ।

युवती —भीमपल श्री तुमने कहाँ सुनी थी ?

युवक—तुम्हीं से ।

युवती—क्या मेरे मुँह से भीमपलश्री बज रही थी ?

युवक—करुणा, तुम्हारा मुँह···

युवती—बस बस हो चुका, रहने दो । अब मेरे मुँह का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं ।

युवक—करुणा, क्या तुम भूल गईं ? गौड़ में इसी प्रकार एक बार पूर्णिमा के दिन ऐसी ही चाँदनी रात में उद्यान में सरोवर के घाट पर बैठकर इसी वीणा पर तुमने एक दिन भीमपलश्री बजाई थी ।

युवती—जाओ···

युवक—तुम्हें स्मरण है या नहीं ?

युवती—हाँ, है ।

युवक—उस दिन ऋषभ ने आकर विघ्न डाला था ।

अलिंद के कोने में से कोई बोल उठा—और आज वह फिर विघ्न डालने आ पहुँचा ।

युवती ने लज्जा के कारण सिर झुका लिया और मुँह पर घूँघट खींच लिया । युवक भी कुछ लज्जित होकर पीछे हट बैठे । ऋषभदेव ने अलिंद में प्रवेश करके कहा—देवी, आज तुम कैसी अच्छी वीणा बजा रही थीं । तुम्हारे हाथ की वीणा और रसोई दोनों बहुत मीठी होती हैं । परंतु इन कोमल हाथों के चपत मीठे होते हैं या नहीं, यह भानुमित्र ही बतला सकते हैं ।

युवती का वेणी बँधा हुआ सिर और भी झुक गया। भानुमित्र ने पूछा—ऋषभ, क्या तुम्हारी रोहिणी ग्वालिन के हाथ के चपत भी ऐसे ही मीठे होते हैं ?

ऋषभदेव ने हँसकर उत्तर दिया—भानु, मुझे अभी तक उसके हाथ का चपत खाने का तो अवसर नहीं मिला; परंतु मैं यह जानता हूँ कि उसके हाथ का दूध, दही और मक्खन इतना मीठा नहीं होता; क्योंकि भोजन के समय उनमें कुछ न कुछ शक्कर मिलानी पड़ती है। परंतु देवी के हाथ के व्यंजन तो मानों शक्कर ही होते हैं।

युवती ने सिर उठाकर कहा—तो क्या मैं व्यंजनों में गुड़ मिलाती हूँ ? जाओ, आज से मैं तुम्हें कभी रसोई बनाकर नहीं खिलाऊँगी।

ऋषभ—हैं हैं ! यह तुम क्या कह गईं ! भला तुमसे ऐसी बात कभी हो सकती है ! तुम्हारे मुख कमल की तरह तुम्हारे कर कमलों में भी मधु भरा है। यदि ऐसा न होता तो भानुमित्र कल गांधारी नर्तकी की खोज में क्यों जाते।

युवती ने कुछ क्रोध भरी दृष्टि से युवक की ओर देखा। युवक ने लज्जित होकर कहा—कल चक्रपालित के घर गांधार की एक नर्तकी आई थी। जान पड़ता है कि ऋषभदेव उसी को देखकर मोहित हो गए हैं।

युवती ने उस बात पर ध्यान न देकर पूछा—तो क्या उसीने भीमपलश्री बजाई थी ?

आपस में विवाद बढ़ता देखकर ऋषभदेव ने कहा—देवी, वह तो केवल दूध के लड्डू बजाती थी। अब तुम एक भीमपलश्री बजाओ; और मैं फिर एक बार गौड़ के मोदकों का ध्यान करूँ।

युवती—परंतु मैं तो रोहिणी नहीं हूँ।

ऋषभ—अब इन सब बातों को जाने दो।

इतना कहकर ऋषभदेव ने एक लंबी साँस ली। यह देखकर करुणा और भानुमित्र दोनों हँस पड़े। ब्राह्मण ने कहा—देवी, यह हँसने की बात नहीं है। रोहिणी के साथ मैं बहुत ही प्रेम करता था। अब तुम भीमपलश्री बजाओ।

करुणा ने वीणा उठा ली और चंपक के समान अपनी छोटी छोटी कोमल उँगलियों से शीघ्रतापूर्वक वीणा के तारों पर आघात करके स्वर लहरी उत्पन्न की। चाँदनी मानों और उज्वल हो उठी। रात के उस सन्नाटे के समय मानों सोया हुआ जगत फिर सहसा जाग उठा। कोई आध दंड तक बजने के उपरांत वीणा बंद हो गई। उस समय ऋषभदेव ने फिर गहरी साँस ली। यह देखकर भानुमित्र ने कहा—ऋषभ, क्या फिर तुम्हें रोहिणी ग्वालिन का ध्यान आ गया ?

ब्राह्मण ने फिर ठंढी साँस लेकर कहा—नहीं भाई, रोहिणी का ध्यान नहीं आया। गौड़ के उद्यान की सरोवर तटवाली उस रात की बात का ध्यान आ गया है। देवी, जब तुम गौड़ लौटना, तब फिर एक बार चाँदनी रात में सरोवर के स्वच्छ जल में आलता लगे दोनों पैर फैलाकर भानु को भीमपलश्री सुनाना।

भानु॰—उस समय मैं तुम्हें भी बुला लूँगा।

ऋषभ—मैं ! क्या मैं कभी गौड़ जा सकता हूँ ?

करुणा—सो क्यों ?

ऋषभ—कापालिक ने कहा है।

भानु॰—तो अब क्या तुम रोहिणी को कभी न देखोगे ?

ऋषभ—भानु, हँसी रहने दो। कापालिक ने कह दिया है कि तुम और करुणा तो दोनों गौड़ लौट जाओगे; परंतु मैं लौटकर गौड़ नहीं जाऊँगा।

इतने में अलिंद में आकर एक दासी ने कहा—देव, युवराज ने आपको स्मरण किया है।

भानुमित्र चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—युवराज !

दासी—हाँ, युवराज। वे पाटलिपुत्र से अभी आए हैं।

भानु॰—वे कहाँ हैं ?

दासी—फाटक के पास घोड़े पर।

भानुमित्र शीघ्रतापूर्वक अंतःपुर से बाहर निकले। उस समय करुणा ने ऋषभदेव से पूछा—क्यों ब्राह्मण देवता, कापालिक ने मेरे संबंध में भी कुछ कहा था ?

ऋषभ—हाँ, कहा था कि तुम फिर गौड़ लौटोगी।

करुणा—कब ?

ऋषभ—भानुमित्र शीघ्र ही लौटेंगे; परंतु तुम बहुत दिनों में लौटोगी।

करुणा—मैं बहुत दिनों में लौटूँगी ! तब तक मैं अकेली कहाँ रहूँगी ?

ऋषभ—यह तो कापालिक ने नहीं बतलाया था।

इतने में स्कंदगुप्त के साथ भानुमित्र ने अलिंद में प्रवेश किया। करुणा ने युवराज को प्रणाम किया। स्कंदगुप्त ने कहा—करुणा, अब हम लोग जाते हैं। फिर युद्ध आरंभ हो गया। भानु भी मेरे साथ ही जायँगे।

सहसा करुणा का हृदय काँप उठा। उसने सोचा कि कापालिक यह तो कह ही चुका है कि स्वामी शीघ्र ही गौड़ लौटेंगे; परंतु मेरे लौटने में अभी बहुत विलंब है। मेरे लौटने में विलंब क्यों होगा ? संभव है कि उन्हें राजकार्य के लिये युवराज के साथ पाटलिपुत्र जाना पड़े। परंतु नहीं, पाटलिपुत्र तो उनका देश नहीं है और न पाटलिपुत्र गौड़ ही है। तो फिर वे कहाँ जायँगे ? और मुझे कहाँ छोड़ जायँगे ? पुरुषपुर तो बहुत दूर है। मैं अकेली कहाँ रहूँगी और किसके पास रहूँगी ? मुझे कितने दिनों तक उनके दर्शन न होंगे ? केवल दिन भर में एक बार—महीने भर में एक बार—उनके दर्शन के लिये ही मैं पाटलिपुत्र, गौड़, प्रासाद और सर्वस्व छोड़कर विदेश में आई हूँ। अब मैं कहाँ जाऊँगी और अकेली कहाँ रहूँगी ? करुणा का कमल के समान खिला हुआ मुख मुरझा गया। उसके सारे शरीर में पसीना हो गया। उसे देखकर स्कंदगुप्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—करुणा, यह तुम्हें क्या हो गया ?

परंतु करुणा ने कोई उत्तर न दिया।

युवराज ने फिर पूछा—करुणा, तुम्हारा शरीर तो अच्छा है न ?

बड़े कष्ट से सूखे हुए कंठ से करुणा ने कहा—हाँ।

युवराज ने बात समझकर कहा—तुम भानु की यात्रा का प्रबंध करो। मैं एक आवश्यक कार्य्य के लिये नगर की ओर जाता हूँ।

स्कंदगुप्त इतना कहकर ऋषभ का हाथ पकड़े हुए अलिंद से बाहर निकल गए। उस समय करुणा ने भानुमित्र का हाथ पकड़कर कहा—देव,

बैठ जाओ। तुम्हें एक बार जी भरकर देख लूँ। फिर बहुत दिनों तक देखना नहीं मिलेगा।

भानुमित्र ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

करुणा—कापालिक ने कहा है ?

भानु०—क्या कहा है ?

करुणा—यही कहा है कि तुम तो शीघ्र देश लौट जाओगे; परंतु मेरे लौटने में अभी बहुत विलंब है।

भानु०—यदि केवल कापालिक की बातों पर विश्वास किया जाय, तो यह संसार चल ही नहीं सकता।

करुणा—देव, बहुत दिनों से मेरा हृदय यह बात कहता है कि तुम मुझे छोड़कर कहीं दूर चले जाओगे; और जब तुम मेरे पास आना चाहोगे तो आ न सकोगे। मैं तुम्हारे पास रहने पर भी तुम्हारे दर्शन न कर सकूँगी। तुमने एक दिन पूछा था कि मैं पाटलिपुत्र छोड़कर तुम्हारे साथ क्यों चली आई। उस दिन तो मैंने कुछ नहीं कहा था, पर आज कहती हूँ। अब बहुत दिनों तक मुझे तुम्हारे दर्शन न होंगे। कितने दिनों तक दर्शन नहीं होंगे, यह मैं नहीं जानती। मैं इसी भय से तुम्हारे साथ पुरुषपुर आई थी कि कहीं तुम्हें छोड़कर मुझे तुमसे दूर और अलग न रहना पड़े। हम लोग तो आज तक कभी अलग नहीं हुए। दस वर्ष के उपरांत आज सहसा किस प्रकार अलग रह सकेंगे ? आज मेरा मन कह रहा है कि तुम बहुत दूर जा रहे हो। तुम बहुत दिनों में लौटोगे; और जब लौटोगे, तब तुम्हारी करुणा यहाँ नहीं रहेगी। मैं जानती हूँ कि तुम लौटकर मुझे ढूँढ़ोगे। सदा मुझे जिस प्रकार पुकारा करते हो, उसी प्रकार पुकारोगे; परंतु कोई उत्तर न पाओगे। मैं जहाँ रहूँगी, वहीं से तुम्हारा पुकारना सुन लूँगी। तुम दुखी न होना। तुम योद्धा हो—वीर हो—इस दासी के लिये क्षत्रिय का धर्म न भूल जाना। देव, तुम्हारी करुणा मरेगी नहीं; वह बिना तुम्हें देखे मर ही न सकेगी। मैं जहाँ रहूँगी, वहाँ से तुम्हारे दर्शन करने आऊँगी और फिर तुम्हारी बातें सुनूँगी।

भानुमित्र की आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने करुणा को खींचकर गले से लगा लिया। इतने में अलिंद में पहुँचकर उसी दासी ने फिर कहा—देव, यात्रा का समय हो गया। युवराज ने आपको स्मरण किया है।

———

दसवाँ परिच्छेद

मारण

वाराणसी नगरी के उसी रमणीक उद्यान में, बेल के वृक्ष के नीचे कापालिक होम कर रहा है और अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर इंद्रलेखा और चंद्रसेन ध्यानपूर्वक उसके कृत्य देख रहे हैं। उस दिन भी अमावस्या ही थी। आकाश में मेघ छाए हुए थे। बीच बीच में बिजली चमककर उस घने अंधकार को दूर करने का प्रयत्न करती थी। बेल के वृक्ष के नीचे पाँच हाथ की वेदी पर अग्नि जल रही थी। कापालिक के दाहिने ओर घी का और बाएँ ओर मद्य का भरा कलश रखा था। उस अँधेरी रात में अँधेरे उद्यान में लाल वस्त्र पहने हुए और सुरा पीकर लाल लाल नेत्र किए हुए वह दुबला पतला और काला कापालिक प्रेत के समान जान पड़ता था।

रात का पहला पहर बीत जाने पर कापालिक ने पुकारा—इंद्रलेखा! यहाँ आओ।

जब इंद्रलेखा उस बेल के वृक्ष के नीचे पहुँची, तब कापालिक ने उससे पूछा—तुम्हारी कन्या का शत्रु कौन है?

इंद्र—एक स्त्री है।

का०—वह कौन है?

इंद्र०—मेरी कन्या जिसे चाहती है, उसकी स्त्री।

का०—वह क्या करती है?

इंद्र०—उसीके कारण मेरी कन्या का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता।

का०—उसके सिर का बाल लाई हो ?

इंद्र०—हाँ।

इंद्रलेखा ने अपने वस्त्र में से चाँदी की एक छोटी डिबिया निकाली और उसमें से एक लंबा बाल निकालकर कापालिक के हाथ में दिया। कापालिक ने उसे लेकर फिर पूछा—क्या वह स्त्री बहुत कलह करती है ?

इंद्रलेखा का हृदय काँप उठा। तब भी उसने अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिये झूठ मूठ कह दिया—हाँ।

का०—क्या उसका स्वभाव बहुत ही क्रूर है ?

इंद्र०—हाँ, बहुत अधिक।

का०—तुम सत्य कहती हो ? यदि तुम अग्नि देवता के सामने झूठ बोलोगी, तो तुम्हें सदा नरक भोगना पड़ेगा।

इंद्र०—हाँ, मैं सत्य कहती हूँ।

का०—यदि तुम झूठ बोलोगी, तो जीवित अवस्था में ही गीदड़ और कुत्ते तुम्हारे शरीर नोचेंगे।

इंद्र०—हाँ, मैं सत्य कहती हूँ।

का०—तुम अग्नि को स्पर्श करके कहो।

यद्यपि इंद्रलेखा का हृदय पत्थर का था, तो भी उस समय वह डर गई और उसका हाथ काँपने लगा। यह देखकर कापालिक ने फिर कहा—शपथ करो।

कापालिक के बादल की गरज के समान गंभीर स्वर से उद्यान काँप उठा। उसने फिर कहा—यदि तुम शपथ न करोगी, तो यह अग्नि बुझ जायगी।

उस समय फिर अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिये इंद्रलेखा ने बहुत साहस करके दाहिने हाथ से अग्निकुंड को स्पर्श किया यह देखकर कापालिक ने कहा—दाहिने हाथ से नहीं, बाएँ हाथ से।

इंद्रलेखा ने बाएँ हाथ से अग्निकुंड को स्पर्श करके कहा—मैं अग्नि देवता को स्पर्श करके कहती हूँ कि अनंता जिससे विवाह करना चाहती है, उसकी

धर्मपत्नी बहुत ही कलहप्रिय और क्रूर स्वभाव की है। वह अनंता की हत्या करना चाहती है।

कापालिक के ललाट पर जो रेखाएँ पड़ी थीं, वे जाती रहीं। इंद्रलेखा बेल के वृक्ष के नीचे से भागकर चंद्रसेन के पास चली गई। उधर वाराणसी नगरी के फाटकों और देव मंदिरों में रात के पहले पहर के मंगल वाद्य बजने लगे। इतने में एक दीर्घाकार पुरुष ने, जिनका सारा शरीर वस्त्र से ढँका हुआ था, उद्यान में प्रवेश करके मधुर स्वर से पुकारा—इंद्रलेखा!

झूठी शपथ करने के कारण इंद्रलेखा को जो घबराहट और भय हुआ था, उसे मिटाने के लिये वह उस समय तीव्र कादंब पी रही थी। वह चौंककर खड़ी हो गई और पूछने लगी—कौन?

चंद्रसेन भी उस समय बहुत भयभीत हो गया था। उसने इंद्रलेखा का आँचल खींचते हुए कहा—हैं! यह तुम क्या कर रही हो? यह या तो अवश्य ही कोई उपदेवता है या कृष्णगुप्त का दूत।

इंद्रलेखा की समझ मे कुछ भी न आया कि इस समय क्या करना चाहिए। वह चुपचाप खड़ी रही। उस व्यक्ति ने फिर मधुर स्वर से पुकारा—इंद्रलेखा!

चंद्रसेन ने तुरंत ही इस भय से इंद्रलेखा के मुँह पर हाथ रख दिया कि कहीं वह उत्तर न दे बैठे। उत्तर न पाकर उस व्यक्ति ने तीसरी बार फिर कहा—इंद्रलेखा, तुम डरो मत। मैं हरिबल हूँ।

अब चंद्रसेन का चित्त ठिकाने हुआ। उसने कहा—क्यों भाई, तुम सचमुच हरिबल ही हो न? और तो कोई नहीं हो न? जानते हो, हम लोग मनुष्य नहीं, प्रेत है। यदि तुम बौद्ध भिक्षु होगे, तब तो हम लोग तुम्हें छोड़ देंगे। और यदि कोई और हुए, तो तुम्हारा सिर काटकर खा जायँगे और शरीर पाटलिपुत्र में फेंक आवेंगे।

हरिबल ने हँसते हुए कहा—चंद्रसेन, तुम डरो मत। मैं कृष्णगुप्त का दूत नहीं हूँ।

चंद्र०—इसका प्रमाण?

हरि०—क्या तुम मेरा स्वर नहीं पहचानते ?

चंद्र०—मैंने कृष्णगुप्त के भी अनेक प्रकार के स्वर सुने हैं। क्या तुम और प्रमाण भी दे सकते हो ?

हरि०—हाँ, दे सकता हूँ। तुम्हें स्मरण होगा कि एक बार रात के समय हम लोग कृष्णगुप्त के भय से एक सरोवर में छिपे थे।

चंद्र०—वह सरोवर कहाँ था ?

हरि०—पाटलिपुत्र नगर के बाहर। वह बहुत बड़ा और पुराना सरोवर था, और उसका जल बहुत ही सुगंधित और बहुत ही ठंढा था।

चंद्रसेन ने हँसकर कहा—तब तो तुम ठीक ठीक हरिबल ही हो।

इतने में कापालिक ने पुकारा—इंद्रलेखा, यहाँ आओ। आहुति दी जाय।

जब इंद्रलेखा, चंद्रसेन और हरिबल अग्निकुंड के पास पहुँचे, तब कापालिक ने वह बाल घी में डुबाकर अग्निकुंड में फेंक दिया। सहसा बड़े वेग से बादल गरजने लगे और बिजली चमकने लगी। चारो ओर से प्रबल वायु आ आकर प्रलय की सूचना देने लगी। कापालिक ने कलश में से मद्य और घी अग्निकुंड में डाल दिया। आग की लपट एक बार आकाश छूने का प्रयत्न कर बुझ गई।

ठीक उसी समय चार घोड़ों का एक रथ पाटलिपुत्र नगर के पश्चिम फाटक पर पहुँचा। उसे देखकर द्वारपाल लोग संमानपूर्वक अभिवादन करने लग गए। रथ के पीछे पीछे एक और व्यक्ति घोड़े पर आ रहा था। जब रथ फाटक में से निकल गया, तब एक द्वारपाल ने उस व्यक्ति से न जाने क्या पूछा और तुरंत ही फाटक से एक घोड़ा लेकर वह शीघ्रतापूर्वक प्रासाद की ओर बढ़ा। रथ प्रासाद के तीसरे फाटक पर पहुँचने भी न पाया था कि वह द्वारपाल अंतःपुर के फाटक पर जा पहुँचा। वहाँ उसने एक दंडधर के हाथ में नीलमणिवाली एक अँगूठी दी। दंडधर वह अँगूठी लेकर अंतःपुर में चला गया।

श्याम मंदिर में आरती का सब प्रबंध हो चुका है। यद्यपि मंदिर में हजारों दीपक जल रहे हैं तो भी धूप के धूएँ के कारण चारों ओर अँधेरा सा छाया

हुआ है। पुरोहित जी आरती के लिये दीपमाला लेकर खड़े हैं। सहसा भीड़ चीरता हुआ एक दंडधर मंदिर में आया। उसने आते ही ध्यान मग्न पट्ट-महादेवी की गोद में अँगूठी फेंक दी। महादेवी ने चौंककर आँख खोलीं और देखा कि नीलमणिवाली अँगूठी सामने पड़ी है। उनका रंग पीला पड़ गया। वे उठकर प्रतिमा की ओर बढ़ीं। उनके पास ही अरुणा बैठी हुई थी। उसने पूछा—माता जी, क्या हुआ?

पालिता कन्या का स्वर पट्टमहादेवी के कानों तक नहीं पहुँचा। उन्हें प्रतिमा की ओर बढ़ते देखकर पुरोहित मार्ग में से हट गए। आस पास बैठी हुई भले घर की दूसरी स्त्रियाँ भी मारे डर के आसन छोड़कर उठ खड़ी हुईं। क्षण भर में मनुष्यों से भरे हुए उस मंदिर में श्मशान का सा सन्नाटा छा गया। सहसा मंदिर के बाहर से किसी स्त्री का शब्द सुनाई पड़ा। कोई स्त्री कह रही थी—देवी! देवी!—महाराजाधिराज—अनंता आई है।

सहसा प्रतिमा के हाथ का तीक्ष्ण धारावाला खड्ग निकल गया और साथ ही महादेवी का कटा हुआ सिर श्यामा देवी के पैरों पर जा पड़ा। संगमरमर पर रक्त की धारा बहने लगी। महादेवी ने अपने हाथ से आर्यपट्ट का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

— —

ग्यारहवाँ परिच्छेद

राजपथ

वृद्ध अक्षयनाग अपनी मद्य की दूकान के सामने बैठा हुआ ऊँघ रहा है। अभी तक मद्य-विक्रेताओं के स्थान में लोग नहीं आए हैं। पाटलिपुत्र के प्रशस्त राजपथ में सन्नाटा छाया हुआ है। यद्यपि संध्या हो गई है, तथापि विशाल नगरी में चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा है। स्थान स्थान पर नागरिक लोग एकत्र होकर धीरे धीरे बातचीत कर रहे हैं। सब के मुँह पर एक ही

बात है। सब यही कहते हैं कि अनंता आ गई है; पट्टमहादेवी ने आत्महत्या कर ली है, कल इंद्रलेखा आवेगी। जब रात का पहला पहर बीत गया, तब मच्छड़ों के मारे विकल होकर बुड्ढा अक्षयनाग अपनी दूकान पर से उठा और कुछ दूर चलकर राजपथ पर जा खड़ा हुआ। जिस स्थान पर दोनों पथ मिलते थे, उस स्थान पर बहुत से बुड्ढे खड़े थे। अक्षयनाग ने देखा कि वे सभी लोग मेरे परिचित हैं; अतः उसने उन लोगों के पास जाकर पूछा—क्यों जनार्दन, क्या इस वर्ष दो दिन शिव चतुर्दशी हुई है ?

जनार्दन ने मानों बहुत ही दुखी होकर कहा—अरे भाई, क्या पूछते हो ! कल इंद्रलेखा आवेगी और संभव है कि अनंता पट्टमहादेवी हो जाय। अब बहुतों के सिर कटेंगे। सब लोग इसी भय से विकल हो रहे हैं। इसी कारण आज कोई क्रय-विक्रय का नाम ही नहीं लेता।

अक्षय०—देखो जनार्दन, तुम लोग बड़ी भूल कर रहे हो। जब तक पितरों का दिया हुआ मस्तक कंधों पर लगा हुआ है, तब तक तो आनंद करो। अनंता फिर आई और पट्टमहादेवी स्वर्ग चली गईं। अतः जो कुछ होना होगा, वह तो होगा ही; तुम लोग; व्यर्थ दुखी क्यों होते हो ? चलो, चलकर आनंद करो। क्या दुःख करने से यह सिर कंधों के साथ लगा रह जायगा ?

जना०—यह सिर तो अवश्य कटेगा, परंतु फिर भी बालबच्चे हैं, घर बार हैं, व्यवसाय वाणिज्य है। क्या होगा, कुछ समझ में नहीं आता !

अक्षय०—सब कुछ ज्यों का त्यों रहेगा, पर कदाचित् तुम ही न रहोगे। व्यर्थ चिंता करने से कोई फल नहीं। सुनो, आज हमारी दूकान पर तुम सब लोगों को निमंत्रण है। तुम लोग मेरे साथ चलो।

जनार्दन और उसके साथी लोग अक्षयनाग के पीछे पीछे उसकी दूकान पर गए। बूढ़े अक्षयनाग ने अपने सेवकों को दूकान के सब दीपक जलाने की आज्ञा दी और गौड़ी, माध्वी, माधुक, कादंब आदि अनेक प्रकार की सुराएँ मँगवाईं। दूकान में मानों सुरा की नदी बहने लगी। सब लोगों की दुश्चिंताएँ दूर हुईं और वे लोग आपस में बातचीत करने लगे। उस समय

बूढ़े अक्षयनाग ने कुछ हँसकर कहा—भाइयो, आज मेरे लिये तो बड़ा ही शुभ दिन है। शीघ्र ही इंद्रलेखा की कन्यां पट्टमहादेवी होगी और चंद्रसेन या तो महाप्रतीहार या महामंत्री होगा। चंद्रसेन बहुत दिनों तक मेरी दूकान से बिना मूल्य दिए ही मद्य लिया करता था। इंद्रलेखा को भी मैंने एक हजार सुवर्ण दीनार से अधिक मूल्य की मदिरा उधार दी है। अतः कल से मेरे लिये शुभ दिन का आरंभ होगा। तुम सब लोग आनंद मंगल करो। मैं आज एक हजार कलश मद्य मुफ्त बाँटूँगा

यह सुनकर अक्षयनाग के अतिथि लोग जयध्वनि करने लगे। मद्य की नदियाँ बहने लगीं। कोलाहल सुनकर दल के दल नागरिक लोग वहाँ आने लगे। इसी प्रकार अक्षयनाग के अतिथियों की संख्या बढ़ने लगी। जब आधी रात बीत गई, तब अक्षयनाग ने कहा—भाइयो, अब मैं दूकान बंद करूँगा। नहीं तो कोई प्रतीहार आकर हम लोगों को वृद्ध रामगुप्त के पास ले जायगा।

परंतु उस समय तक सब लोग मद्य पीकर मत्त हो चुके थे। उन लोगों ने एक स्वर से कहा—नहीं, दूकान नहीं बंद हो सकती। यदि प्रतीहार आवेगा, तो हम लोग मिलकर उसे पीटेंगे। यदि वृद्ध रामगुप्त हम लोगों के विरुद्ध कोई काम करेगा, तो इंद्रलेखा आते ही उसे फाँसी दे देगी।

विवश होकर अक्षयनाग को अपनी दूकान खुली रखनी पड़ी। कोई आध दंड के उपरांत एक प्रतीहार आया। परंतु मत्त नागरिकों ने उसे मारकर भगा दिया।

जिस समय फाटकों पर मंगल वाद्य आरंभ हुए, उस समय मद्य विक्रेताओं का स्थान हजारों उल्काओं के उज्वल प्रकाश में चमकने लगा। हजारों सवारों से घिरा हुआ चार घोड़ोंवाला एक रथ अक्षयनाग की दूकान के सामने आ खड़ा हुआ। प्रकाश देखकर अक्षयनाग और उसके अतिथि लोग द्वार पर आ पहुँचे। उस समय रथ पर से एक गोरा युवक दो सवारों की सहायता से उतरा। उसने अक्षयनाग को देखते ही कहा—अक्षय, बड़ी प्यास लगी है।

अक्षयनाग और उनके सभी अतिथियों ने तीव्र कादंब का एक पात्र उसकी ओर बढ़ाया। उसने दो एक पात्र तो लेकर पी लिये और शेष पात्रों से अपने बहुमूल्य कौषेय वस्त्र सुगंधित कर लिये।

जब रात तीन पहर बीत गई, तब अक्षयनाग के अतिथ लोग अचेत होकर भूमि पर ही लेट गए। उस समय उस नए आए हुए अतिथि ने जनार्दन से कहा—जनार्दन, चलो प्रासाद में चले।

जनार्दन यद्यपि मत्त हो गया था, तो भी उसे कुछ कुछ ज्ञान था। उसने विस्मित होकर पूछा— क्यों भाई चंद्रसेन, प्रासाद में क्यों चलें?

चंद्र०— सोने।

जना०—यदि आज प्रासाद में चलकर सोएँगे, तो कल जीते भी बचेंगे?

चंद्र०—हम लोगों को मारनेवाला कौन है?

जना०—वही महाप्रतीहार।

चंद०—कल प्रातःकाल तो मैं उसे यों ही जलवा डालूँगा।

जना० और सम्राट्?

चंद्र०—वह तो मेरा कुत्ता हो रहा है।

जना०—कुछ समझ बूझकर बातें करो।

चंद्र०—सब समझ बूझ लिया है। आओ, चलें।

बहुत से लोग मत्त होने के कारण इन लोगों की बातचीत नहीं सुन सके थे। उनमें से कुछ लोगों ने लड़खड़ाते हुए स्वर से पूछा—क्यों भाई, तुम लोग कहाँ जाते हो?

चंद्र०—प्रासाद में।

जिन लोगों में चलने फिरने की थोड़ी, बहुत शक्ति बच रही थी, वे लोग काँपते हुए पैरों से उठ खड़े हुए और लड़खड़ाते हुए स्वर से कुछ लोग तो रथ पर और कुछ लोग पैदल समुद्रगुप्त के प्रासाद की ओर चले।

अनंता को पाटलिपुत्र नगर में पहुँचे आठ पहर बीत चुके हैं। परंतु अभी तक पट्टमहादेवी के मृत शरीर का अंतिम संस्कार नहीं हुआ। पाटलिपुत्र नगर, प्रासाद और अंतःपुर में सन्नाटा छाया हुआ है। अनंता के आने और पट्टमहादेवी के आत्महत्या करने के कारण, सब सेवक लोग डरकर भाग

गए थे। जिन लोगों ने पहले इंद्रलेखा के विरुद्ध कोई बात की थी, वे लोग अनंता के आने का समाचार सुनते ही नगर छोड़कर चले गए थे। महादेवी के मरने का समाचार सुनकर वृद्ध महादंडनायक रामगुप्त स्तंभित हो गए थे। वे दूसरे दिन तड़के ही प्रासाद में आए और संध्या तक प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहे। परंतु उन्हें सम्राट् के दर्शन ही न हुए। जब संध्या हो गई, तब वे बड़ी कठिनता से पट्टमहादेवी के शव के अंतिम संस्कार का प्रबंध करने लगे। प्रासाद का गंगा द्वार बंद था। जो दंडधर वह द्वार खोला करता था, वह कीलक (कुंजी) लेकर भाग गया था। अंतःपुर से तीनों फाटक पार करके राजपथ से होकर गंगा तट तक जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। रामगुप्त और उनके साथी लोग महादेवी का शव लेकर प्रासाद के तीसरे फाटक से निकल रहे थे। इतने में फाटक के पास ही सैकड़ों उल्काओं का प्रकाश दिखलाई दिया। वे लोग विस्मित और भयभीत होकर खड़े हो गए। प्रकाश शीघ्र ही फाटक के पास आ पहुँचा। चंद्रसेन और उसके साथी लोग विकट कोलाहल करते हुए पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के सामने आ पहुँचे। उन लोगों को देखकर शव ले जानेवाले लोग शव छोड़कर भाग गए। अकेले रामगुप्त उस अँधेरे में पट्टमहादेवी के शव के पास खड़े रहे।

उल्काधारी नगर के फाटक के पास आ पहुँचे। रामगुप्त उस समय तक फाटक के बीच में खड़े थे। एक सवार ने उनसे हट जाने के लिये कहा; परंतु वे चुपचाप शव के पास ही खड़े रहे। यह देखकर सवार ने उन्हें धक्का देना चाहा। उस समय एक और सवार ने सहसा अपने साथी का हाथ पकड़कर कहा—हैं! यह क्या कर रहे हो?

पहले सवार ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?

दू० स०—तुम पहचानते नहीं हो?

प० स०—नहीं।

दू० स०—यह महादंडनायक हैं।

प० स०—सच?

दू० स०—हाँ।

उस समय दोनों सवारों ने तलवार निकालकर कुमारपादीय वृद्ध महादंडनायक का अभिवादन किया। वृद्ध की आँखों से दो बूँद आँसू निकल आए। उनका गला रुँध गया। उन्होंने पूछा—तुम लोग कौन हो?

पहले सवार ने उत्तर दिया—हम लोग मुद्गगिरि गुल्म के सैनिक हैं।

राम०- यहाँ किसलिये आए हो?

सैनिक—प्रभु चंद्रसेन वाराणसी से आए हैं। हम लोग उन्हीं के साथ हैं।

राम०—किसकी आज्ञा से?

सैनिक—महाराजाधिराज की आज्ञा से।

राम०—भाइयों, तुम लोग गुप्त साम्राज्य के सैनिक हो। वंशानुक्रम से समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त और कुमारगुप्त के अन्न से पलते आए हो। तुम्हारे सामनेचंद्र गुप्त की वधू, कुमारगुप्त की पत्नी, स्कंदगुप्त की माता और साम्राज्य की पट्टमहादेवी का मृत शरीर साधारण स्त्रियों के मृत शरीर की भाँति पड़ा है। देखो, इंद्रलेखा का यार कहीं इसकी अप्रतिष्ठा न कर बैठे। इस समय इस वृद्ध रामगुप्त के अतिरिक्त इस विशाल गुप्त साम्राज्य में और कोई नहीं है जो स्वर्गीया पट्टमहादेवी के शव के पास खड़ा रह सके।

इतना कहते कहते वृद्ध रामगुप्त का गला भर आया। दोनों सवार तलवार निकालकर पट्टमहादेवी के मृत शरीर के पास खड़े हो गए। धीरे धीरे एक हजार उल्काधारी सवार फाटक के दोनों ओर पंक्ति बाँधकर खड़े हो गए। सब ने मधुर स्वर से स्कंदगुप्त और पट्टमहादेवी का नाम लिया। बहुत से वृद्ध सैनिको की आँखों से आँसू बहने लगे। वे लोग साम्राज्य की पट्टमहादेवी को पहचानते थे। इतने में चंद्रसेन का रथ फाटक के सामने आ पहुँचा। सहसा फाटक के पास की एक अँधेरी कोठरी में से वर्म्म पहने हुए एक दीर्घाकार पुरुष निकल आए और रथ के सामने खड़े होकर सारथी से पूछने लगे—यह किसका रथ है? और कहाँ जायगा?

सारथी ने मारे डर के काँपते हुए कहा—यह प्रभु चंद्रसेन का रथ है, और प्रासाद में जायगा।

इसपर उस वर्म्मधारी पुरुष ने कहा—युवराज भट्टारकपादीय और कुमारपादीय व्यक्तियों के अतिरिक्त और कोई रथ पर चढ़कर प्रासाद में प्रवेश नहीं कर सकता। सारथी, तुम तो साम्राज्य के सेवक हो। क्या तुम प्रासाद की यह रीति नहीं जानते?

सारथी ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। उस समय मत्त चंद्रसेन ने पूछा—तुम कौन हो?

वर्म्म पहने हुए पुरुष ने कोई उत्तर न देकर अपने सिर से शिरस्त्राण उतार लिया। उस समय एक हजार सवारों ने एक स्वर से जयध्वनि की। रामगुप्त ने उन्हें गले लगाकर पूछा—कृष्णगुप्त, तुम कहाँ गए थे?

महाप्रती०—प्रभु, मैं अपने कार्य से गया था।

इतने में चंद्रसेन ने अधीर होकर रथ पर से ही कहा— मार्ग छोड़ दो। नहीं तो सूली पर चढ़ा दिए जाओगे।

कृष्णगुप्त ने हँसकर कहा—चंद्रसेन, सूली का प्रबंध कल आकर करना। इस समय लौट जाओ।

चंद्र०—क्यों!

कृष्ण०—देखो, सामने यह पट्टमहादेवी का मृत शरीर पड़ा है। तुम ब्राह्मण संतान हो। क्या आर्य धर्म भूल गए?

चंद्र०—यह बुड्ढी मरी, भारी हत्या टली। इसे घसीटकर खाई में फेंक दो।

यह सुनकर सब सवार मारे क्रोध के गरजने लगे। सारथी रथ छोड़कर भाग गया। चंद्रसेन और उसके साथियों की बड़ी दुर्दशा हुई। अंत में सैनिकों ने चंद्रसेन को खाई में फेंक दिया। उसकी यह दुर्दशा देखकर उसके और सब साथी भाग गए।

उस समय मुद्‌गगिरि गुल्म के एक हजार सैनिक पट्टमहादेवी का मृत शरीर लेकर गंगा तट की ओर चले।

बारहवाँ परिच्छेद

सभा स्थल

दूसरे दिन प्रातःकाल न तो पाटलिपुत्र के नागरिकों ने अपने अपने घर के द्वार ही खोले और न वणिक लोग हाटों आदि में बेचने के लिये द्रव्य ही लेकर बैठे। प्रभात के समय मंदिरों और विहारों में आरती के जो शंख और घंटे बजते थे, वे भी उस दिन नहीं बजे। सारी रात राजपथ पर दुःखित मागध सेना पट्टमहादेवी और स्कंदगुप्त की जयध्वनि करती हुई घूमती रही। रात समाप्त होने पर सैनिकों ने पट्टमहादेवी की चिता बुझाई, उसकी राख सब ने अपने सारे शरीर में लगाई और तब वे प्रासाद के के तीसरे फाटक पर आ पहुँचे।

उस दिन फाटकों पर पहले पहर के मंगल वाद्य कुछ समय तक बजकर रुक गए; परंतु फिर भी सभामंडप में कोई न आया। मंडप में न तो महाराज थे, न प्रजा थी, न सभासद थे और न विचारार्थी ही थे। उस विस्तृत सुनसान महामंडप में द्वारपाल और दंडधर लोग विस्मित होकर खड़े थे। मंडप बनने के समय से लेकर आज तक किसी ने पाटलिपुत्र में गुप्त साम्राज्य के धर्माधिकरण में ऐसा सन्नाटा नहीं देखा था। देखते देखते दूसरा पहर भी बीत गया। इतने में फिर मंगल वाद्य बजने लगे और हाथीदाँत की पालकी पर युवती पट्टमहादेवी के साथ वृद्ध महाराजाधिराज मंडप के द्वार पर पहुँचे। वृद्ध कुमारगुप्त एक बहुत ही पुरानी प्रथा का व्यतिक्रम देखकर बहुत ही विस्मित हुए; क्योंकि आज सम्राट् और पट्टमहादेवी की अभ्यर्थना के लिये साम्राज्य के महाप्रतीहार हाथ में नंगी तलवार लिए मंडप के द्वार पर नहीं खड़े थे। बहुत दिनों से वृद्ध सम्राट् एक ही समय पर, एक ही स्थान पर और एक ही व्यक्ति के अभिवादन के अभ्यस्त हो गए थे। आज मंडप के द्वार पर अपने पुराने परिचित महाप्रतीहार को न पाकर सम्राट् ने पूछा—कृष्णगुप्त कहाँ है?

उत्तर में पट्टमहादेवी ने कहा—मैं क्या जानूँ? आप किससे पूछ रहे हैं?

कुमारगुप्त ने बहुत ही विस्मित होकर चारों ओर देखा। उस समय फाटक पर, अलिंद में अथवा आँगन में और कोई नहीं था। थोड़ी दूर पर केवल एक दंडधर एक द्वारपाल से बातें कर रहा था। सम्राट् के बुलाने पर वह पास आ पहुँचा। कुमारगुप्त ने उससे पूछा—कृष्णगुप्त कहाँ हैं?

दंडधर ने अभिवादन करके कहा—देव, यह दास नहीं जानता। जान पड़ता है कि आर्यपुत्र नगर में नहीं हैं।

कुमार०—वे कहाँ गए हैं?

दंड०—मैं नहीं कह सकता।

कुमार०—फाटक पर कोई प्रतीहार क्यों नहीं है?

दंड०—देव, यह भी मैं नहीं कह सकता।

सभामंडप में दोनों ओर पंक्तियों में सुखासन बिछे हुए थे; परंतु मंडप में एक भी मनुष्य नहीं था। नवीन सम्राज्ञी के साथ प्राचीन सम्राट् आर्यपट्ट की ओर बढ़े। दंडधर और द्वारपाल लोग आर्यपट्ट के दोनों ओर पंक्ति बाँधकर खड़े हो गए। उस दिन, उस शून्य सभामंडप में कुमारगुप्त की द्वितीय पट्टमहादेवी ने पवित्र आर्यपट्ट पर पदार्पण किया। उस समय न तो नागरिकों ने जयध्वनि की, न शंख बजे और न कुल महिलाओं ने मंगल-गीत गाए। केवल एक वृद्ध द्वारपाल की आँखों से दो बूँद आँसू निकले थे। उस द्वारपाल ने प्रथम पट्टमहादेवी को आर्यपट्ट पर बैठते देखा था।

उस शून्य सभामंडप में बहुत समय तक चुपचाप बैठने के कारण नई पट्टमहादेवी घबरा गई। उसने आर्यपट्ट पर बैठे बैठे एक दंडधर से पूछा—पिता जी कहाँ हैं?

वह दंडधर नई पट्टमहादेवी के वंश से परिचित नहीं था। उसने चकित होकर पूछा—आपके पिता जी?

पट्ट०—हाँ।

दंड—मैं तो उन्हें नहीं पहचानता।

पट्ट०—क्या तुम चंद्रसेन शर्म्मा को नहीं पहचानते?

दंड०—उन्हें तो पहचानता हूँ। परंतु······

पट्ट०—वे कहाँ हैं ?

दंड०—अंतःपुर में।

पट्ट०—क्या वे अभी तक सोकर नहीं उठे ?

दंड०—नहीं।

कुमारगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—देवी, क्या चंद्रसेन अंतःपुर में हैं ?

पट्टमहादेवी ने उत्तर दिया—हाँ, वे और कहाँ जायँगे ?

कुमार०—चंद्रसेन अंतःपुर में कहाँ हैं ?

पट्ट०—ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में।

कुमार०—वहाँ तो अरुणा है !

पट्ट०—तो इससे क्या होता है ? पिता जी कोई बाघ तो हैं ही नहीं। कल रात को महादंडनायक रामगुप्त और महाप्रतीहार कृष्णगुप्त ने उनका बहुत अपमान किया था और उन्हें मारा पीटा भी था। यदि इसी समय उन दोनों को दंड न दिया जायगा, तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।

कुमार०—कृष्णगुप्त तो नगर में ही नहीं थे। हाँ, रामगुप्त थे। वे कहाँ हैं ?

पट्ट०—वे दोनों ही थे। दंडधरों को आज्ञा दीजिए कि वे दोनों को पकड़ लावें।

यह सुनकर बूढ़ा दंडधर काँपने लगा। उसने बहुत धीरे से कहा—देव, कुमारपादीय महानायक महादंडनायक रामगुप्त और गुप्त-कुल-चूड़ामणि महानायक महाप्रतीहार कृष्णगुप्त को बंदी करना साधारण दंडधर का काम नहीं है। आर्य समुद्रगुप्त की प्राचीन रीति के अनुसार साम्राज्य के महानायक को एक महानायक के अतिरिक्त और कोई नहीं पकड़ सकता।

कुमार०—तो क्या आज कोई महानायक सभा में उपस्थित नहीं है ?

दंड—देव, आज सभा में कोई अभिजात कुल उपस्थित नहीं है।

पट्ट०—कोई चिंता नहीं। सम्राट् जिसे आज्ञा दें, वही उस आज्ञा का पालन कर सकता है।

कुमार०—देवी, यदि साम्राज्य की प्राचीन रीति के विरुद्ध कोई कार्य किया जायगा, तो प्रजा असंतुष्ट हो जायगी।

पट्ट०—प्रजा को असंतुष्ट होने से क्या होता है? यदि आप अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम ही नहीं कर सकते, तो फिर आप सम्राट् किस बात के हैं?

कुमार०—इस समय राजनगर में रामगुप्त और कृष्णगुप्त के अतिरिक्त और कोई महानायक उपस्थित नहीं है। अतः तुम्हारी बात मानने के लिये मैं स्वयं जाकर उन लोगों को बंदी कर लाऊँगा।

उसी समय सभामंडप के फाटक पर गेरुए वस्त्र पहने हुए एक वृद्ध कहीं से आ पहुँचा था। वह बोल उठा—महाराजाधिराज, वृद्ध रामगुप्त विद्रोही नहीं। कृष्णगुप्त भी साम्राज्य के पुराने सेवक हैं। वे लोग अपनी इच्छा से परमेश्वर परमभट्टारक परमवैष्णव महाराजाधिराज के धर्माधिकरण में उपस्थित हुए हैं।

इतने में वृद्ध महादंडनायक और वर्म्म पहने हुए महाप्रतीहार सिंहासन के पास पहुँचकर सम्राट् को अभिवादन करके खड़े हो गए। मारे संकोच के वृद्ध सम्राट् का सिर झुक गया।

रामगुप्त ने कहा—महाराजाधिराज, स्वर्गीय महाराज चंद्रगुप्त ने मुझे महामुद्रा प्रदान करके साम्राज्य का प्रधान दंडनायक बनाया था। मैंने बहुत दिनों तक साम्राज्य की सेवा की। परंतु अब तक जिस प्रकार सेवा की है, भविष्य में उस प्रकार सेवा होना संभव नहीं है। आप राजा हैं और मैं प्रजा हूँ। परंतु फिर भी मैं आपका पितृव्य हूँ; क्योंकि चंद्रगुप्त मेरे प्रपितामह थे। जिस दिन महादेवी ध्रुवस्वामिनी ने यह संसार छोड़कर स्वर्गारोहण किया था, उस दिन आप को और गोविंदगुप्त को लेकर मैंने गंगा-द्वारवाले मार्ग से उनकी गंगा यात्रा की व्यवस्था की थी। परंतु अब वह दिन नहीं रह गया है। कल पाटलिपुत्र नगर में कोई ऐसा नहीं था, जो चंद्रगुप्त की वधू, कुमारगुप्त की पत्नी, और स्कंदगुप्त की माता के शरीर त्याग करने पर उनका शव ले जाता। बड़े कष्ट से मैंने कुछ शव उठानेवाले एकत्र किए थे और पुरानी प्रथा के अनुसार मैं उनका शव लेकर गंगा तट की ओर जा रहा

था। गंगाद्वार बंद था; इस कारण मैं बड़े फाटक से होकर गंगातट की ओर जाता था। इसी पाटलिपुत्र नगर मे, चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त के प्रासाद् के फाटक पर वेश्या के यार, मद्यप सामान्य ब्राह्मण ने कहा था कि बुड्ढी का शव खाई में फेंक दो। मैं अब बुड्ढा हो गया हूँ। मेरे लिये अब दंड धारण करना असंभव हो गया है। अब आप अपनी मुद्रा ले लीजिए। मैं वाराणसी जाता हूँ।

इतना कहकर वृद्ध रामगुप्त ने सम्राट् के पैरों के पास महामुद्रा रख दी और पुनः अभिवादन किया। उस समय कृष्णगुप्त ने आर्यपट्ट के सामने खड़े होकर तलवार निकाली और शिरस्त्राण से उसे स्पर्श कराके अभिवादन करते हुए कहा—महाराजाधिराज, स्वर्गीया पट्टमहादेवी को उत्तरापथ और दक्षिणापथ में सब लोग माता के समान मानते थे। पाटलिपुत्र नगर के राजप्रासाद के फाटक पर, कारागार के बंदी एक साधारण कीड़े मकोड़े ने उन पट्टमहादेवी के मृत शरीर का अपमान किया था। इसी कारण मैंने उसे खाई मे फेंक दिया था। मुद्ग गिरि गुल्म के एक हजार सैनिक इस बात के साक्षी हैं—आज एक वेश्या की कन्या आर्यपट्ट पर बैठी है। उसकी माता का यार अपमानित हुआ है। इसी कारण वह आर्यपट्ट पर बैठकर पवित्र गुप्त साम्राज्य के धर्माधिकरण में मेरे विरुद्ध अभियोग चलाता है। देव! इस नए राज्य में प्रथम चंद्रगुप्त का कोई वंशज अपने सम्मान और वंश की मर्यादा की रक्षा करता हुआ कोई काम नहीं कर सकता। राज-प्रासाद में मैंने बहुत दिनो तक सेवा की है; परंतु इस नए राज्य में मेरे लिये रहना अथवा सेवा करना असंभव है। आगे चलकर महाराजाधिराज फिर जिस समय मुझे स्मरण करेंगे, उस समय मैं आकर उपस्थित हो जाऊँगा।

इतना कहकर महाप्रतीहार ने अपना कटिबंध और तलवार आर्यपट्ट के सामने रख दी। इसके उपरांत मुद्गगिरि गुल्म के एक हजार सैनिक एक एक करके आर्यपट्ट के सामने आते गए और अभिवादन करके महाप्रतीहार की तलवार के ऊपर तलवार और वर्म्म रखते हुए रामगुप्त और कृष्णगुप्त के

पीछे पीछे सभामंडप से निकलते गए। उस निर्जन सभामंडप में द्वारपालों और दंडधरों से घिरे हुए पुराने सम्राट् अपने साथ नई महादेवी को लिए हुए बैठे रह गए।

तेरहवाँ परिच्छेद

असहाया

संगमरमर के बने हुए झरोखों में से दिन के दूसरे पहर के सूर्य्य का तीव्र प्रकाश आ आकर दर्पण के समान चमकते हुए संगमरमर के तल पर पड़ता है, और वहाँ से दीवारों और छत पर अपनी परछाईं डालता है। कमरे मे हाथीदाँत का बना एक पलंग बिछा है, जिसपर सोने, चाँदी और मोतियों का काम बना है। धूप आकर उस पलंग पर पड़ रही है। पलंग पर एक गोरा युवक सोया हुआ है। वह युवक काहे को है, युवा अवस्था की अंतिम सीमा तक पहुँचा हुआ अधेड़ ही है। उसके सिर के बहुत से बाल पक गये हैं। अवस्था अधिक होने के कारण उसके माथे में भी बल पड़ गए हैं। वह ब्राह्मण है, क्योंकि उसके प्रशस्त वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत पड़ा है। यद्यपि वह ब्राह्मण है, तो भी उसे देखकर भक्ति की जगह घृणा उत्पन्न होती है। उसके मुँह के चारों ओर बहुत सी मक्खियाँ उड़ रहीं हैं, जिनके उपद्रव के कारण उसके सोने में बाधा पड़ती है।

दूसरा पहर बीत जाने पर एक दंडधर ने बहुत धीरे धीरे उस कमरे में प्रवेश करके पुकारा—"प्रभु"। प्रभु उस समय गहरी नींद में अचेत पड़े थे। दंडधर का मधुर शब्द उनकी कादंब की गहरी मादकता दूर न कर सका। कुछ समय तक ठहरकर दंडधर चला गया और आध दंड के उपरात उसने फिर आकर पुकारा—"प्रभु!" परंतु उस समय भी उसका शब्द प्रभु के कादंब से रुँधे हुए कानों में न पहुँच सका। साहस करके दंडधर पलंग के पास पहुँचा और मद्यप के पैर हिलाकर पुकारने लगा—"प्रभु!" इस बार मद्यप चौंककर उठ बैठा और पूछने लगा—कौन है रे?

दंडधर मारे डर के दूर हट गया और धीरे से बोला—प्रभु, मैं प्रासाद का दंडधर हूँ। महाराजाधिराज ने आपको स्मरण किया है।

मद्यप—क्यों ?

दंड०—यह तो मैं नहीं जानता।

मद्यप—तो फिर हम भी नहीं जा सकते।

जब दंडधर कमरे से चला गया, तब युवक ने फिर पुकारा—अरे, सुन जा।

दंडधर ने फिर कमरे में आकर पूछा—प्रभु, क्या आज्ञा है ?

युवक—तू कादंब ला सकता है ?

दंड०—देखिए, प्रयत्न करता हूँ।

इतना कहकर दंडधर चला गया और कुछ ही समय में चमड़े का बना एक मद्य पात्र ले आया। युवक ने उससे कहा—अब तू जा, और कुमारगुप्त से कह दे कि हमारा शरीर अच्छा नहीं है। हम कल या परसों सभा में आवेंगे।

दंडधर अभिवादन करके चला गया। उस समय प्यासे मद्यप ने चमड़े के पात्र में से भर पेट मद्य पान किया। उस तीव्र मद्य के प्रभाव से उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई और उसका सिर घूमने लगा। वह काँपते हुए पैरों से कमरे में से निकलकर अलिंद में पहुँचा। पट्टमहादेवी की मृत्यु के पहले जिस अलिंद में प्रभात से लेकर आधी रात तक इतनी चहल पहल और भीड़ भाड़ रहती थी, वह अलिंद इस समय निर्जन था। गुप्त-कुल-लक्ष्मी के प्रासाद छोड़ने के समय ही गुप्तवंशीय सम्राट् के आत्मीय स्वजन और बंधु बांधव सब प्रासाद छोड़कर चले गए थे। युवक डगमगाता हुआ अलिंद के एक कोने में जा खड़ा हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने जो कुछ देखा, उससे उसका सिर और भी घूमने लगा।

अलिंद के कोने में संगमरमर की दीवार पर एक योद्धा का चित्र लटक रहा था। उस चित्र में वर्म्म पहने हुए एक योद्धा पर्वत के ऊपर, लाशों के ढेर के सामने एक वृद्ध का मृत शरीर कंधे पर लिए खड़ा था। उस चित्र के सामने एक अनुपम सुंदरी बैठी हुई पूजा कर रही थी। वह सुंदरी

अभी स्नान करके आई थी। उसके शरीर पर अलंकार तो नहीं थे, परंतु वस्त्र बहुमूल्य थे। उसके भौंरे के समान काले और लंबे गीले बाल इधर उधर भूमि पर बिखरे हुए थे। योद्धा के चित्र के पास ही एक और अधूरा चित्र था, जिसमें मालती की लताओं के पास किसी पुरुष के दोनों पैर बने हुए दिखाई देते थे। वह सुंदरी देवादिदेव महादेव के उद्देश्य से चंदन में लिपटे हुए जो फूल चढ़ा रही थीं, वे सब फूल उसी अधूरे चित्र में बने हुए दोनों पैरों पर पड़ रहे थे। इस दर्शन दुर्लभ सुंदरी को देखकर वह युवक अलिंद में ठिठककर खड़ा हो गया। उस सुंदरी की सुंदर कांति ने युवक के कादंब उन्मत्त नेत्रों को क्षण भर के लिये अंधा कर दिया। उसका सिर घूमने लगा और सहारे के लिये उसने दीवार पकड़ ली।

वह सुंदरी अलिंद में आए हुए युवक के पैरों की आहट नहीं सुन सकी थी। जब युवक का चित्त कुछ ठिकाने हुआ, तब वह उस कमरे के एकमात्र द्वार पर जा खड़ा हुआ। जब उसकी छाया योद्धा के चित्र पर पड़ी, तब वह सुंदरी चौंक पड़ी। उसने सिर उठाकर देखा कि द्वार पर एक अपरिचित पुरुष खड़ा है। उस एकांत स्थान में सहसा एक अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति को देखकर युवती काँप उठी। उसने डरते हुए पूछा—तुम कौन हो ?

युवक ने लड़खड़ाते हुए स्वर से कहा— सुंदरी, तुम डरो मत। मैं चंद्रसेन हूँ।

युवती ने फिर पूछा—तुम अंतःपुर में किस प्रकार आ पहुँचे।

चंद्रसेन ने उत्तर दिया—रथ पर चढ़कर फाटक से होता हुआ यहाँ आया हूँ। अब यह प्रासाद मेरा ही हो गया है न !

सुंदरी—तो क्या पिताजी इस संसार में नहीं हैं ?

चंद्र०—तुम्हारे पिता कौन ? वही कुमारगुप्त न ? वे भी इस समय मेरे ही हो रहे हैं। मैं उनका ससुर हूँ। समझ गईं न ?

सुंदरी—तो क्या आप नई पट्टमहादेवी के पिता हैं ?

चंद्र०—हाँ, एक प्रकार से पिता ही हूँ। परंतु इन सब बातों को जाने दो और मेरी एक बात सुनो। मैंने तुम्हारे जैसी सुंदरी आज तक कभी नहीं देखी।

चंद्रसेन की यह बात सुनकर युवती का सारा शरीर काँपने लगा। वह आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई। यह देखकर मद्यप चंद्रसेन ने कहा—सुनो, तुम क्रोध न करो। मैं तुमसे रस की बातें करने आया हूँ। तुम मुझे बुड्ढा मत समझो। आजकल जैसा मेरा भाग्य उदय हुआ है, उसे देखकर तो नगर की सैकड़ों सुंदरियाँ मुझसे मिलना चाहती हैं।

सुंदरी अपने स्थान से हटकर कमरे के एक कोने में चली गई। चंद्रसेन ने फिर कहा—क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ? जूही, मल्लिका या मालती ? क्योंकि ऐसे रूप के लिये और कोई नाम तो हो ही नहीं सकता।

अब युवती दीवार की ओर मुँह करके खड़ी हो गई। इसपर चंद्रसेन ने डगमगाते हुए पैरों से आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। युवती ने बड़े ही कातर स्वर से पुकारा—"पिता जी !" पालिता कन्या के कातर कंठ से निकली हुई वह पुकार उस सूने प्रासाद के प्रत्येक कमरे में गूँज गई, परंतु फिर भी युवती अनंता के रूप सागर में डूबे हुए वृद्ध सम्राट् के कानों तक न पहुँच सकी। चंद्रसेन ने बलपूर्वक युवती का हाथ खींचते हुए कहा—तुम व्यर्थ क्रोध क्यों करती हो ? तुम मेरे पास बैठो। मुझसे बातें करो। मैं तुम्हें फूलों के बढ़िया बढ़िया गहने बनवा दूँगा।

उस समय युवती ने और कोई उपाय न देखकर बहुत ही कातर स्वर से कहा—देव ! आप मेरे पिता के समान हैं। मेरा हाथ छोड़ दीजिए।

चंदसेन ने हँसकर कहा—भला यह भी कभी हो सकता है ? आज तो मैं तुम्हारा फूलों के समान अंग स्पर्श करके धन्य हुआ हूँ। अब तुम मुझे इस सुख से वंचित क्यों करती हो ?

युवती अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा करने लगी और रोती हुई बोली—देव ! मैं आपकी कन्या के समान हूँ। आप मेरा हाथ छोड़ दीजिए।

चंद्रसेन ने विकट रूप से हँसकर कहा—तुम व्यर्थ इस प्रकार के संबंध क्यों जोड़ती हो ? इन बातों को जाने दो। लो, मैं तुम्हारा हाथ छोड़ देता हूँ।

इतना कहकर चंदसेन ने युवती का हाथ तो छोड़ दिया, परंतु आँचल

पकड़ लिया। उसके गीले बालों पर से वस्त्र हट गया। उसका खुला हुआ मुख देखकर चंद्रसेन का चित्त और भी चंचल हो गया। वह कहने लगा—ऐसे रूप पर तो देवता, गंधर्व और किन्नर तक मुग्ध हो जायँ। फिर भला यह चंद्रसेन किस गिनती में है।

युवती ने उस समय अपना वस्त्र कसकर पकड़ लिया और चिल्ला चिल्लाकर पुकारना आरंभ किया—पिता जी! पिता जी! आकर मुझे बचाइए।

चंद्रसेन ने हँसकर कहा—छिः, तुम रस की बातें तो कुछ भी नहीं जानती।

युवती—पिता जी! पिता जी!

चंद्र०—अब पिता जी में तुम्हारे बचाने की शक्ति थोड़े ही है। जब अनंता आज्ञा देगी, तब न वे तुम्हें बचाने आवेंगे!

युवती की पुकार उस सूने प्रासाद के हर एक कमरे और अलिंद में गूँज गई, परंतु फिर भी कोई उसकी रक्षा करने न आया। चंद्रसेन ने फिर उसका आँचल खींचा, जिससे उसकी पीठ पर का वस्त्र हट गया। युवती दोनों हाथों से अपनी छाती पर का वस्त्र पकड़कर बैठ गई और कातर स्वर से पुकारने लगी— पिता जी! पिता जी! मुझे बचाइए। युवराज—

योद्धा के चित्र के नीचे लोहे की एक भारी गदा रखी थी। सहसा युवती की दृष्टि उस पर जा पड़ी। उसने झपटकर वह गदा उठा ली; परंतु चंद्रसेन ने फिर भी उसका आँचल न छोड़ा। इसपर युवती ने वह गदा उसके मस्तक पर मारी। वह अचेत होकर गिर पड़ा और युवती कमरे से निकलकर भाग गई।

युवती उस निर्जन अंतःपुर के बड़े बड़े अलिंदों और सैकड़ों कमरों को पार करती हुई प्रासाद के बाहर पहले आँगन में आ पहुँची। वह स्थान भी निर्जन था। फाटक पर उसे कोई प्रतीहार भी नहीं मिला। वह बढ़ती हुई तीसरे और बाहरी फाटक पर जा पहुँची। फाटक के पास ही खाई के किनारे बेल के एक वृक्ष के नीचे एक वृद्ध संन्यासी बैठे थे। युवती उन वृद्ध के पैरों पर गिरकर मूर्छित हो गई। जब वृद्ध ने उसे सचेत किया, तब उसने अपनी

सारी दशा उन्हें कह सुनाई। इसपर संन्यासी ने कहा—पुत्री, अब तुम्हारा पाटलिपुत्र में रहना ठीक नहीं है। क्या तुम किसी दूसरे देश को जा सकती हो ?

युवती ने कहा—आप मेरे पिता हैं। आप मुझे जो कुछ आज्ञा देंगे, मैं वही करूँगी।

संन्यासी—अच्छा, तो तुम यह नगर छोड़ दो। तुम्हारे यह बहुमूल्य वस्त्र देखकर लोग तुम पर संदेह करेंगे। अतः तुम यह वस्त्र उतार दो और गेरुए वस्त्र पहन लो।

युवती वहाँ से कुछ दूर चली गई। वृक्ष की ओट में जाकर उसने अपने बहुमूल्य वस्त्र उतार दिए और संन्यासी के दिए हुए गेरुए वस्त्र पहन लिए। संन्यासी ने अपने हाथ से उसके सिर के बाल मूँड़ दिए। गेरुए वस्त्र पहनकर और सिर मुँड़ाकर परमेश्वर परमभट्टारक परमवैष्णव महाराजाधिराज कुमारगुप्त की पालिता कन्या और युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त की भावी पत्नी एक साधारण भिखारिणी की भाँति पाटलिपुत्र नगर छोड़कर चल पड़ी।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

नीलमणि

वर्षा ऋतु का प्रायः अंत हो गया है। पर्वत मालाओं के शिखरों का तुषारमय उष्णीष धुल गया है। हेमंत ऋतु का आगमन होना ही चाहता है। दूसरे हूण युद्ध का अंत हो चुका है। वाह्लीक और कपिशा की पहाड़ी नदियों और घाटियों में से होकर आर्य मागधों और अनार्य हूणों के रक्त की धारा बह चुकी है। हूण दल पतियों ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि मगध सरीखे गरम देशों के निवासी इन बरफीली पहाड़ी घाटियों

में इतने अधिक समय तक रह सकेंगे। जब पहले हूणयुद्ध के उपरांत साम्राज्य की सेना विजय प्राप्त करके मगध लौट गई थी, तब हूण सैनिकों ने सहज में ही वाह्लीक, कपिशा, गांधार और उद्याम को लूटने के विचार से दूसरी बार वक्षु नदी पार की थी। परंतु प्रत्येक गिरिसंकट, प्रत्येक उपत्यका और प्रत्येक पहाड़ी नदी के तट पर विफल मनोरथ होकर हूण जाति ने समझ लिया कि मागध सेना अभी लौटकर मगध नहीं गई।

गोविंदगुप्त बड़े ही कौशल से धीरे धीरे हूण सैनिकों को चारों ओर से घेरते थे। वे समझते थे कि यदि एक पक्ष का समय और बीत जायगा, तो हूण सेना विवश होकर आत्म समर्पण कर देगी। पट्टमहादेवी की मृत्यु के प्रायः दो मास के उपरांत एक दिन संध्या के समय महाराजपुत्र गोविंदगुप्त अपने शिविर के सामने, वाह्लीका नदी के गीले बालू पर बहुत से शक राजाओं से घिरे बैठे हुए थे। हूण सेना को प्रायः पराजित देखकर कायर शक राजा लोग निस्संकोच भाव से महाराजपुत्र के शिविर में आए थे। जिस समय युद्ध का आरंभ हुआ था, उस समय ये राजा लोग निर्लज्जों की भाँति अपना अपना राज्य और राजधानी छोड़कर अपनी रक्षा के लिये भागकर पहाड़ों पर चले गए थे। उस समय गोविंद-गुप्त ने कहा था कि जब साम्राज्य की सेना विजय प्राप्त कर लेगी, तब लूट में मिला हुआ द्रव्य माँगने के लिये ये लोग फिर आ पहुँचेंगे।

उस दिन प्रातःकाल स्कंदगुप्त, भानुमित्र, चक्रपालित, बंधुवर्म्मा और इंद्रपालित ने बहुत दूर की एक पहाड़ी घाटी तक हूण सेना का पीछा किया था। संध्या के समय गोविंदगुप्त अँधेरे में नदी किनारे उन लोगों की प्रतीक्षा में बैठे थे और उन्हीं कायर शक राजाओं से बातचीत कर रहे थे। वहाँ से कुछ दूर पर हजारों अग्निकुंड जल रहे थे, जिनके पास थके हुए मागध सैनिक अपना भोजन बनाने में लगे थे। सहसा अँधेरे में नदी तट पर घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। इसके कुछ ही समय के उपरांत एक दंडधर ने महाराजपुत्र को अभिवादन करके कहा—भट्टारक, मगध से एक सवार आया है। वह अपना परिचय नहीं

देना चाहता । केवल इतना कहना है कि मैं मंदमलयानिल से मिलना चाहता हूँ ।

महाराजपुत्र ने चौंककर कहा - उसे शीघ्र ले आओ ।

दंडधर अभिवादन करके चला गया । इसके उपरांत महाराजपुत्र ने शक राजाओं को विदा कर दिया और वे अकेले नदीतट पर बैठे हुए उत्सुक भाव से उस आगंतुक के आने की प्रतीक्षा करने लगे । कोई क्षण ही भर के उपरांत दंडधर उस आगंतुक को लेकर वहाँ आ पहुँचा । उस आगंतुक ने महाराजपुत्र को अभिवादन करके उनके हाथ में अँगूठी दी । अँधेरे में उस अँगूठी का रंग देखकर गोविंदगुप्त के रोंगटे खड़े हो गए । उन्होंने पूछा—तुम कौन हो ?

आगंतुक ने उत्तर दिया—मैं पाटलिपुत्र नगर का प्रतीहार हूँ ।

गोविंद०—किसलिये आए हो ?

प्रती०—आपको यह अँगूठी देने के लिये ।

गोविंद०—किसकी आज्ञा से ?

प्रती०—महानायक महाप्रतीहार कृष्णगुप्तदेव की आज्ञा से ।

गोविंद०—अँगूठी तुमने और किसीको दिखलाई थी ?

प्रती०—महाप्रतीहार की आज्ञा से मैंने दूसरी अँगूठी पट्टमहादेवी को दे दी थी और तीसरी अँगूठी पुरुषपुर में महामंत्री दामोदर शर्म्मा को दे आया हूँ ।

गोविंद०- और अँगूठियाँ क्या हुईं ?

प्रती०—महाप्रतीहार की आज्ञा से गंगा जी में फेंक दी ।

प्रतीहार की बात सुनकर महाराजपुत्र का सारा शरीर काँप उठा । उनका गला भर आया । उन्होंने कहा—देवी, क्या तुम इस संसार में नहीं हो ? क्या तुमने सचमुच श्यामा मंदिर में अपने आपको बलि चढ़ा दिया ? दूत, तुमने इस अँगूठी का रंग देखा था ?

प्रती०—देव, महाप्रतीहार की आज्ञा थी कि इस अँगूठी को न देखना ।

गोविंदगुप्त ने विकृत कंठ से पुकारा—कोई है ? शीघ्र उल्का लाओ !

महाराजपुत्र का यह कंठस्वर सुनकर सैकड़ों युद्धों में लड़े हुए वीर भी काँप गए। तुरंत कई उल्काधारी वहाँ आ पहुँचे। काँपते हुए हाथों से महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने अँगूठी की मणि को देखा। उनका शरीर शिथिल हो गया। अँगूठी हाथ से गिर पड़ी और हजारों युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले कठोर शक मंडल के एक मात्र अधीश्वर परमेश्वर परमवैष्णव परमभट्टारक महाराजपुत्र गोविंदगुप्त नीलमणि देखते ही वाह्लीका नदी के गीले बालू पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

जिस समय महाराजपुत्र फिर सचेत हुए, उस समय वाह्लीका नदी के उस पार हजारों उल्काओं का प्रकाश दिखाई देने लगा। लोग समाचार लाए कि युवराज युद्ध में विजय प्राप्त करके लौट रहे हैं। गोविंदगुप्त ने घोड़ा और वर्म्म लाने की आज्ञा देकर मुरारी को बुलाया। मुरारी के आने के पहले ही युवराज ने पहुँचकर अपने पितृव्य के चरण छूए। महाराजपुत्र ने खड़े होकर अपने हृया—विजयी भतीजे को गले लगाया। उसी समय स्कंदगुप्त के गालों पर दो बूँद आँसू आ पड़े। युवराज ने चौंककर महाराजपुत्र की ओर देखा। उस समय उनकी आँखों में आँसू बह रहे थे। स्कंदगुप्त ने चौंककर पूछा—पितृव्य, आपकी आँखों में यह आँसू क्यों हैं?

रुँधे हुए कंठ से गोविंदगुप्त ने कहा—पुत्र, तुम घबराना नहीं। मैं इसी समय पाटलिपुत्र जाऊँगा।

स्कंद०—क्यों?

गोविंद०—राज्य का एक बहुत ही आवश्यक कार्य है। बस, इससे अधिक और कोई बात न पूछना। हम लोगों में परस्पर जो रक्त-संबंध है, उसे क्षण भर के लिये भूल जाओ। इस समय मैं सेनापति हूँ और तुम सैनिक हो। मैं जो कुछ आज्ञा देता हूँ, केवल उसी का अक्षरशः पालन करो। बस, और कोई बात न करो।

स्कंदगुप्त बहुत विस्मित होकर महाराजपुत्र के मुँह की ओर देखने लगे। गोविंदगुप्त ने फिर कहना आरंभ किया—पुत्र, मैं राजकार्य के लिये पाटलि-

पुत्र जा रहा हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि कब लौटूँगा। अतः इस समय से तुम्हीं मागध सेना के सेनापति हो। यह स्मरण रखना कि लाखों पुरुषों और स्त्रियों का धन, जीवन और मान तुम्हारे बाहु-बल पर, तुम्हारी मानसिक शक्ति पर और तुम्हारे धैर्य पर निर्भर करता है। अब आत्माभिमान भूल जाओ और अहंकार छोड़ दो। अब यही समझ लो कि तुम आर्यावर्त के प्रवेशद्वार के एक साधारण प्रतीहार मात्र हो। राज्य रसातल में चला जाय, मगध समुद्र में डूब जाय, अपने-पराए पृथ्वी में समा जायँ, परंतु फिर भी प्राण रहते, शरीर में शक्ति रहते, कभी इस प्रवेशद्वार से न हटना।

अब तक जिन आँसुओं को महाराजपुत्र बड़ी कठिनता से रोके हुए थे, उन आँसुओं ने आँखों में भरकर उनकी देखने की शक्ति रोक दी। अंधों की तरह टटोलते हुए आगे बढ़कर उन्होंने स्कंदगुप्त को कसकर गले से लगा लिया और बड़ी ही कठिनता से रुँधे हुए कंठ से कहा—पुत्र, मेरा एक अनुरोध और है। तुम कभी मगध न लौटना; कभी किसीकी आज्ञा अथवा अनुरोध से मगध की सीमा में पैर न रखना। मुझे स्पर्श करके इस बात की शपथ करो।

युवराज ने मंत्र मुग्ध की भाँति कहा—तात, शपथ की क्या आवश्यकता है? क्या आपकी केवल आज्ञा ही यथेष्ट नहीं है?

गोविंद०—नहीं स्कंद, मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम मुझे स्पर्श करके इस बात की शपथ करो।

स्कंद—अच्छा तो लीजिए, मैं शपथ करता हूँ। जब तक आप आज्ञा न देंगे, तब तक पिता जी की भी आज्ञा पाने पर मैं मगध की सीमा में पैर न रखूँगा।

उस समय युवराज को छोड़कर गोविंदगुप्त ने कोष से तलवार निकाली और गंभीर स्वर से युवराज के भानुमित्र आदि साथियों से कहा—पुत्रो, मेरे अनुरोध से तुम लोगों को भी एक एक शपथ करनी होगी। तलवार निकालो।

भानुमित्र, हर्षगुप्त, बंधुवर्मा, चक्रपालित, देवधर और इंद्रपालित ने अपनी अपनी तलवार निकालकर दाहिने हाथ में ली। गोविंदगुप्त ने कहा—पुत्रो, शपथ करो कि जब तक शरीर में शक्ति रहेगी, तब तक आर्या-

वर्त्त के एकमात्र आधार स्कंदगुप्त की रक्षा करेंगे; जब तक चेतना रहेगी, तब तक उनका साथ न छोड़ेंगे; और जब तक शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा, तब तक आर्यावर्त्त के इस प्रवेश द्वार से न हटेंगे।

नंगी तलवारों ने शिरस्त्राण को स्पर्श किया। उनके अभिवादन के उत्तर में महाराजपुत्र की तलवार ने भी शिरस्त्राण को स्पर्श किया। उन्होंने काँपते हुए स्वर से कहा—पुत्रो, अब मैं तुम लोगों से विदा होना चाहता हूँ। मैं इस समय पाटलिपुत्र जा रहा हूँ। जब मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा, तभी मैं लौटूँगा; और नहीं तो नहीं। आर्यावर्त का भविष्य अंधकारमय है। सामने मगध की अग्नि परीक्षा है। पुत्रों, शिष्यों, मगध का नाम रखना और आर्यावर्त्त की रक्षा करना। बस, इस वृद्ध का यही अंतिम अनुरोध है। अग्निगुप्त ने आत्मबलिदान दिया है। भविष्य में सैकड़ों अग्निगुप्तों की आवश्यकता होगी। इसके लिए तुम लोग प्रस्तुत रहना। घबरा न जाना, स्कंद को न छोड़ देना और मगध में पैर न रखना। भगवान् चक्रधर तुम लोगों का मंगल करेंगे।

कोई आध दंड के उपरांत घोड़े पर चढ़कर गोविंदगुप्त मुरारी के साथ शिविर से चले गए। छावनी की अंतिम सीमा पर बिदा होते समय देवधर ने पूछा—देव, क्या हुआ?

गोविंदगुप्त ने उन्हें नीलमणिवाली अँगूठी दिखाकर कहा—देवधर, गुप्तवंश की उज्ज्वल कीर्ति में कलंक की नीलिमा लग गई है। यदि संभव हुआ, तो मैं उसे दूर करूँगा; और नहीं तो। एक समुद्र से दूसरे समुद तक फैले हुए आर्यावर्त्त की भूमि मागध सेना के रक्त से रँग दूँगा।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

दूत

पुरुषपुर नगर के कनिष्क चैत्य की सीमा पर एक छोटी नदी के किनारे बैठे हुए एक दीर्घाकार ब्राह्मण संध्या-वंदन कर रहे हैं। उनके ललाट पर

गहरी चिंता की रेखाएँ हैं और देखने में वे बहुत ही दुखी जान पड़ते हैं। बीच बीच में संध्या वंदन भूलकर वे बोल उठते हैं—क्या यह भी संभव है ? चंद्रगुप्त के पुत्र मालव और सौराष्ट्र को जीतनेवाले कुमारगुप्त क्या अपनी इच्छा से अपने देश- अपने धर्म और अपनी जाति का सर्वनाश करेंगे ? भगवन् ! कौन कह सकता है कि तुमने आर्यावर्त्त के भाग्य में क्या लिख रखा है !

संध्या हो चली, तो भी संध्या-वंदन पूरा न हुआ। कनिष्क चैत्य अंधकार से घिर गया। चैत्य और विहार में घी के सैकड़ों छोटे छोटे दीपक जलने लगे। आरती के शंख और घंटे बजने लगे, परंतु फिर भी ब्राह्मण का संध्या वंदन समाप्त न हुआ। वे सहसा बोल उठे—माता, क्या तुम्हें इतनी अधिक भूख लगी है ? वत्तु से लेकर सिंधु तट तक मागध सेना का रक्त बहा; परंतु फिर भी क्या रणचंडी की रक्त पीने की इच्छा पूरी नहीं हुई ? नए मागध साम्राज्य की आयु अभी पूरे सौ वर्ष की भी नहीं हुई। माता ! क्या इतने में ही तुमने संहार मूर्ति धारण कर ली ?

ब्राह्मण ने शांत होकर फिर आचमन किया और असमाप्त संध्या वंदन फिर आरंभ किया। क्षण ही भर के उपरांत वे फिर बोल उठे—यह सब झूठी बात है। उस बौद्ध पाखंडी हरिबल ने मुझे छलने के लिए ही अँगूठी भेजी है।

सहसा पीछे से किसी ने कहा—नहीं, यह झूठ नहीं है; यह ध्रुव सत्य है।

ब्राह्मण काँप उठे और घबराकर बोले--नहीं नहीं, यह झूठ है, अवश्य झूठ है। चाहे जो हो, तुम यही कहो कि यह समाचार झूठ है। यह बौद्धों का रचा हुआ कुचक्र है। यह न कहना कि चंद्रगुप्त के पुत्र और समुद्रगुप्त के पौत्र ने इंद्रलेखा की कन्या अनंता के साथ विवाह कर लिया है। यह न कहना कि चंद्रगुप्त की वधू, कुमारगुप्त की धर्मपत्नी और स्कंदगुप्त की माता अब इस संसार में नहीं है। तुम चाहे शत्रु हो चाहे मित्र, ब्रह्महत्या न करना ।

अँधेरे में से निकलकर किसी नाटे मनुष्य ने ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखा। व्याकुल ब्राह्मण आशीर्वाद देना भूल गए और पूछ बैठे—तुम कौन हो ?

उत्तर मिला—पितृव्य, क्या आपने मुझे नहीं पहचाना ?

ब्राह्मण—कौन, कृष्ण। तुम पुरुषपुर कैसे आए ?

कृष्ण०—देव ! अब मगध मंडल में कृष्ण के लिये स्थान नहीं है।

ब्राह्मण—तो क्या सब बातें सच हैं।

कृष्ण०—जी हाँ, सब सच हैं।

ब्राह्मण—और महादेवी ?

कृष्ण०—गुप्त कुल की वधू का जो कर्त्तव्य था, उसका उन्होंने पालन किया। गुप्तकुल की मर्यादा की रक्षा हो गई। आर्य समुद्रगुप्त की राष्ट्रनीति में उलटफेर नहीं हुआ। एक महादेवी के जीवित रहते दूसरी महादेवी मागध साम्राज्य के आर्यपट्ट पर नहीं बैठी।

वृद्ध ब्राह्मण माता का नाम लेते हुए सहसा गीले बालू पर बैठ गए। कोई आध दंड इसी प्रकार बीत गया। इसके उपरांत कुछ शांत होकर दामोदर शर्मा ने पूछा—कृष्ण, क्या मेरी आज्ञा का पालन हुआ था ?

कृष्ण०—जी हाँ, पूर्ण रूप से हुआ था। ज्योंही महाराजाधिराज ने अनंता के साथ पाटलिपुत्र नगर में प्रवेश किया था, त्यों ही एक प्रतीहार घोड़े पर चढ़कर फाटक से अंतःपुर जा पहुँचा। वहाँ उसने पट्टमहादेवी के हाथ में नीलमणिवाली अँगूठी दे दी। इसके उपरांत वह तुरंत नगर छोड़कर आपके और महाराजपुत्र के पास गांधार चला गया।

दामो०—कृष्ण, अँगूठी तो मिल गई थी; परंतु फिर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ था कि मगध के आर्यपट्ट पर वेश्या की कन्या बैठ गई होगी। महादेवी कहाँ हैं ?

कृष्णगुप्त ने तारों भरे आकाश की ओर देखकर कहा—स्वर्ग में।

दामो०—कब ?

कृष्ण०—देव, स्वयं श्यामा ने माता को ग्रहण कर लिया।

दामो०--क्या नगर में कोई नहीं था ?

कृष्ण०— बृद्ध रामगुप्त थे। मैं अपने कार्य से गया था। दूसरे दिन आकर मैंने सुना कि माता का मृत शरीर अभी तक श्यामा मंदिर में पड़ा है। प्रासाद में अब कोई नहीं है, नगर नरक के समान हो रहा है और महाराजाधिराज अनंता के हाथ की कठपुतली बन गए हैं।

दामो०—तुम पुरुषपुर क्यों चले आए ?

कृष्ण०—प्रभु, मैं अपनी इच्छा से नहीं आया। मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मगध मंडल की कौन कहे, सारे गुप्तसाम्राज्य में मेरे लिए स्थान नहीं है ?

दामो०—यह क्यों ?

कृष्ण०—तात, मैंने सोचा था--परंतु नहीं, मैं पाप की बात मुँह से नहीं कहूँगा।

दामो०—कृष्ण, अब से आर्य्यावर्त में जो पाप था, वह पुण्य हो गया और जो पुण्य था वह पाप हो गया।

कृष्ण०—अच्छा तो फिर सुनिए। उस दिन पाटलिपुत्र नगर में ऐसा कोई नहीं था जो महादेवी के शव की रक्षा करता। आठ पहर के उपरांत वृद्ध महादंडनायक रामगुप्त ने बड़ी कठिनता से उनकी अंत्येष्टिक्रिया का उद्योग किया था। यह समाचार पाकर मैं शव उठा ले चलने की आशा से अकेला ही तीसरे फाटक पर प्रतीक्षा कर रहा था। गंगा द्वार बंद था। द्वारपाल लोग भाग गए थे। इसी कारण रामगुप्त अपने साथियों सहित पट्टमहादेवी का शव लेकर फाटक से होते हुए गंगा द्वार की ओर जा रहे थे। जब वे लोग तीसरे फाटक पर पहुँचे—

दामो०—क्यों, रुक क्यों गए ?

कृष्ण०—उस समय इंद्रलेखा का यार अपने अनुचरों के साथ प्रासाद में रात बिताने के लिये आ रहा था। देव, पाटलिपुत्र नगर में प्रासाद के फाटक पर मेरे और रामगुप्त के सामने वेश्या के उपपति मद्यप चंद्रसेन ने स्कंदगुप्त की माता की रथी रोकी थी।

दामो०—हाँ! तब तो फिर सभी कुछ संभव है।

कृष्ण०—केवल इतना ही नहीं, मेरे सामने, रामगुप्त के सामने और एक हजार मागध सवारों के सामने उस विष्ठा के कीड़े चंद्रसेन ने कहा था कि बुड्ढी का शव खाईं में फेंक दो।

दामो०—ठीक, बहुत ठीक! सबका अहंकार तोड़नेवाले परमेश्वर! इतने दिनों पर आज तूने मेरा अहंकार भी तोड़ दिया। मैं निश्चिंत होकर गांधार में सीमांत की रक्षा करने लिये आया था; परंतु मुझे यह स्मरण नहीं था कि मैं घास पात की कुटी में अग्निकुंड जलता हुआ छोड़ आया हूँ। लोग कहते थे कि मैं कौटिल्य की नीति का अच्छा ज्ञाता हूँ। परंतु हे विधाता! क्या तुम्हारी कुटिल नीति कभी मनुष्य की समझ में आ सकती है? मैंने बड़ी भारी शिक्षा पाई है। मेरा अहंकार टूट गया। परंतु देव! किस पाप के कारण सौ वर्ष के अंदर ही समुद्रगुप्त का साम्राज्य नष्ट हो गया?

दोनों व्यक्ति कुछ समय तक उसी अँधेरे में खड़े रहे। इसके उपरांत महामंत्री सहसा बोल उठे—कृष्ण, तुमने यह नहीं बतलाया कि तुम मगध छोड़कर क्यों चले आए।

कृष्ण०—देव, दूसरे दिन प्रातःकाल चंद्रगुप्त के पुत्र ने सूने सभामंडप में द्वारपालों और दंडधरों से घिरकर इंद्रलेखा की जारज कन्या को आर्य्यपट्ट पर बैठाया था।

दामो०—बहुत अच्छे!

कृष्ण०—आर्यपट्ट पर बैठते ही नई पट्टमहादेवी ने साम्राज्य के धर्म्माधिकरण में महाराजाधिराज के सामने इस कारण मेरे विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया था कि मैंने उसकी माता के यार को अपमानित किया था। यही बात अपने कानों से सुनकर मैंने समझ लिया था कि मेरे लिये अब साम्राज्य का प्रतीहार बना रहना संभव नहीं है।

दामो०—तुमने अच्छा ही किया। परंतु अब तुम कहाँ जाओगे?

कृष्ण०—यमपुर।

दामो०—बहुत अच्छा स्थान है। किस मार्ग से जाओगे?

कृष्ण०— हूण युद्धवाले मार्ग से।

दामो०—और यदि पाटलिपुत्र में फिर महाप्रतीहार की आवश्यकता हुई तो—

कृष्ण०—लौटा आऊँगा।

दामो०—कब?

कृष्ण०—जब स्कंदगुप्त लौटेंगे।

दामो०—बहुत ठीक। इस समय तुम कहाँ जाओगे?

कृष्ण०—स्कंदगुप्त के पास।

दामो०—मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम विजय प्राप्त करो।

कृष्ण०—नहीं तात, दूसरा आशीर्वाद दीजिए।

दामो०—वह कौन सा?

कृष्ण०—आशीर्वाद दीजिए कि मुझे फिर मगध न लौटना पड़े।

दामो०—नहीं कृष्ण, तुम्हें लौटना पड़ेगा। मैं जाता हूँ।

कृष्ण०—कहाँ?

दामो०—पाटलिपुत्र।

कृष्ण०—पाटलिपुत्र तो नरक हो रहा है।

दामो०—कृष्ण, मेरे लिये नरक ही सबसे बढ़कर सुंदर, मनोहर और शीतल स्थान है।

कृष्ण०—वहाँ आप क्या देखने जायँगे?

दामो०—जो घर मैंने अपने हाथ से बनाया था, उसीके जलते हुए अंगारे।

अंगार

पहला परिच्छेद

पुरस्कार

प्रभात के समय वाह्लीक नगर के प्राकार के बाहर, वाह्लीका नदी के तट पर, एक वृक्ष के नीचे युवराज भट्टारक अपने मित्रों के साथ बातचीत कर रहें हैं। युवावस्था में दुश्चिंता सहसा किसीको नहीं घेरती। इसी कारण गोविंदगुप्त के वाह्लीक से चले जाने और पाटलिपुत्र से कोई समाचार न आने पर भी युवराज और उनके संगी साथी अधिक समय तक चिंतित न रह सके। युवक युवराज और उनके साथी लोग निश्चिंत भाव से बातचीत कर रहें थे। नदी तट से एक अधेड़ भिक्षुक धीरे धीरे उन लोगों की ओर बढ़ रहा था, परंतु उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था। भिक्षुक धीरे धीरे उन लोगों के पास आकर मागधी भाषा में बोला—परमेश्वर आप लोगों का कल्याण करे। मुझे कुछ भिक्षा मिले।

युवराज और उनके संगी साथी चौंककर देखने लगे कि सामने भस्म लगाए एक बहुत ही हट्टा कट्टा भिक्षुक खड़ा है। स्कंदगुप्त ने उससे पूछा—क्या तुम मगध के रहनेवाले हो ?

भिक्षुक—हाँ प्रभु।

स्कंद०—तुम वाह्लीक कैसे आए ?

भिक्षुक—मैं भीख माँगने के लिये देशविदेश घूमा ही करता हूँ।

स्कंध०—तुम्हें मगध छोड़े कितने दिन हुए ?

भिक्षुक—तीन मास-नहीं, तीन वर्ष हुए।

स्कंद—अब कहाँ जाओगे ?

भिक्षुक—जहाँ भिक्षा मिले।

स्कंद०—तुम कौन जाति हो ?

भिक्षुक—क्षत्रिय।

स्कंद०—क्षत्रिय होकर शरीर में बल रहते भीख क्यों माँगते फिरते हो ?

भिक्षुक—क्या करूँ, पेट पालने के लिये भीख माँगनी पड़ती है ।

स्कंद०—तुम अस्त्र चलाना जानते हो ?

भिक्षुक—जी हाँ, जानता हूँ ।

स्कंद०—साम्राज्य के सेनादल में प्रवेश करोगे ?

आनंद के मारे भिक्षुक का चेहरा चमकने लगा। उसने हँसते हुए कहा—इसी समय ।

युवराज ने चक्रपालित के कंधे पर से धनुष लेकर भिक्षुक के हाथ में दे दिया। उसने अनायास ही बाएँ हाथ से उसे पकड़ लिया। युवराज ने यह देखकर कहा—उस पार एक बगला बैठा है। उसे मार सकते हो ?

भिक्षुक ने चक्रपालित से तीर लेकर पाँच सौ हाथ की दूरी पर बैठे हुए बगले का सिर काट दिया। यह देखकर स्कंदगुप्त ने कहा—बस, अब अस्त्र चलाने में तुम्हारी परीक्षा की आवश्यकता नहीं। तुम घोड़े पर चढ़ना जानते हो ?

भिक्षुक—जी हाँ, जानता हूँ ।

स्कंद—आज से मैं तुम्हें अपना शरीर रक्षक नियत करता हूँ ।

भिक्षुक ने लाठी अपने माथे से स्पर्श कराके सामरिक रीति से अभिवादन किया। यह देखकर भानुमित्र ने विस्मित होकर पूछा—क्या तुम पहले सैनिक थे ?

भिक्षुक—जी हाँ ।

भानु०—कहाँ ?

भिक्षुक—अपने देश में, पाटलिपुत्रिक नवें गुल्म में ।

भानु०—छोड़ा क्यों था ?

भिक्षुक—कुछ दिनों तक घर पर ही रहने के लिये ।

इतने में नदी तट पर किसी के आने की आहट सुनाई दी। सब लोगों ने देखा कि एक दंडधर चाँदी के बने हुए एक पात्र में कोई भारी पदार्थ लेकर आ रहा है। दंडधर ने पास आकर युवराज से कहा—देव, पाटलिपुत्र

से परमभट्टारक परमेश्वर परमवैष्णव महाराजाधिराज का महामुद्रांकित पत्र आपके पास आया है।

दंडधर की बात समाप्त होने से पहले ही युवराज और उनके साथियों ने अपना अपना आसन छोड़ दिया और उठकर नंगी तलवार को मस्तक से स्पर्श कराया। उस समय दंडधर ने तख्ती में बँधा हुआ और कौषेय वस्त्रसे लपेटा हुआ एक पत्र युवराज के हाथ में दे दिया। युवराज ने उसे खोलकर पढ़ना आरंभ किया। मागध महानायक लोग हाथ में नंगी तलवार लेकर पत्थर की मूरत की तरह खड़े रहे। वह पत्र बहुत बड़ा था। उसे पढ़ते पढ़ते स्कंदगुप्त का मुँह सहसा पीला पड़ गया और तुरंत ही मारे क्रोध के लाल हो आया। उनके साथी लोग बहुत ही उत्सुकता से उनके भावों का यह परिवर्तन देख रहे थे। पत्र पढ़ चुकने पर युवराज ने उसे उष्णीष से स्पर्श कराके भानुमित्र के हाथ में दे दिया और दंडधर से पूछा—मेरी तलवार कौन लेगा ?

दंडधर विस्मित होकर युवराज के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा—देव, मैं तो आपका दास हूँ।

पत्र पढ़ते पढ़ते भानुमित्र की आँखें भी लाल हो आईं। मारे क्रोध के उनके मुँह से बात न निकलती थी। उन्होंने बड़ी कठिनता से कहा—युवराज भट्टारक—पदच्युत—और वंदी—महाराजाधिराज के ससुर—चंद्रसेन—हूणयुद्ध के महासेनापति—युवराज—यह पत्र—झूठा है—महामुद्रा—बनावटी है।

मागध सेनापति लोग भानुमित्र के पास आकर एकाग्रचित्त से वह पत्र पढ़ने लगे। मारे क्रोध के उन लोगों की आँखें भी लाल हो गईं। उसी समय नंगी तलवारों की झनकार होने लगी। यह देखकर युवराज ने कहा—भाइयो, तुम लोग शांत हो। यह महामुद्रा बनावटी नहीं है। मगध में परिवर्तन हुआ है। महाराजाधिराज ने इंद्रलेखा की कन्या के साथ विवाह किया है। अतः परमवैष्णवी परमभट्टारिका पट्टमहादेवी स्वर्ग सिधारी हैं। महाराजाधिराज की आज्ञा से मैं बंदी हुआ हूँ। तुम लोगों में से कोई

आकर मेरी तलवार ले लो। इस समय मेरी माता नहीं है। मैं वाह्लीका में स्नान करके प्रेतपिंड दूँगा।

युवराज ने कटिबंध और तलवार हाथ में ले ली, परंतु कोई उन्हें लेने के लिये आगे न बढ़ा। उस समय युवराज ने बहुत ही गंभीर स्वर से कहा—आप सब सेनानायक साम्राज्य के सेवक हैं और मैं सम्राट का प्रतिनिधि हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि आप लोग मेरी तलवार लेकर मुझे बंदी करें। भानुमित्र, तुम आगे बढ़ो।

काँपते हुए पैरों से भानुमित्र के आगे बढ़ने पर युवराज ने कहा—मेरी तलवार ले लो।

भानुमित्र का गला भर आया। उन्होंने कहा—युवराज! क्या अब मैं ही इस काम के लिये रह गया हूँ?

युवराज—हाँ, भानुमित्र इस योग्य तुम्हीं हो। साम्राज्य के कार्य में न तो स्नेह के लिए स्थान है, न प्रीति के लिये और न ममता के लिये। महाराजाधिराज की आज्ञा का अवश्य पालन होगा। मेरी तलवार ले लो।

विवश होकर भानुमित्र ने युवराज के हाथ से तलवार ले ली और मस्तक से स्पर्श कराके दंडधर के हाथ में दे दी। उसी समय भानुमित्र ने अपनी तलवार निकालकर घुटने से दबाकर दो टुकड़े कर डाली और टूटी हुई तलवार फेंककर दंडधर से कहा—दंडधर, पाटलिपुत्र के दूत से कह दो कि गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्र विद्रोही हो गए हैं। वे युवराज भट्टारक तलवार लेने में समर्थ नहीं हैं।

साथ ही हर्षगुप्त, चक्रपालित, हरिगुप्त और बंधुवर्मा ने भी अपनी अपनी तलवार उसी प्रकार तोड़कर फेंक दी। स्कंदगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—आप लोगों ने यह क्या किया?

कुमार हर्षगुप्त ने हँसते हुए उत्तर दिया—आर्य्य, केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है।

स्कंद०—हर्ष, हम लोग इस समय उत्तरापथ के प्रवेश द्वार पर हैं। क्या तुम पितृव्य की आज्ञा भूल गए? महाराजाधिराज ने मुझे तो बंदी करने की आज्ञा दी है; परंतु तुम लोग अपना कर्तव्य क्यों भूल रहे हो?

भानु०—कर्त्तव्य का जैसा ज्ञान आपको है, वैसा हम लोगों को नहीं है। हम लोगों ने जो कुछ अपना कर्त्तव्य समझा, वही किया।

हर्ष०—आर्य, हम लोग साम्राज्य के सेवक हैं और महाराजाधिराज के दास हैं। परंतु हम लोग भी गुप्तवंश के हैं—मैं भी चंद्रगुप्त का पौत्र हूँ। मैं कौन मुँह लेकर शिरस्त्राण से तलवार स्पर्श कराके इंद्रलेखा के यार को अभिवादन करूँगा?

हरि०—युवराज, गुप्तवंश का कोई व्यक्ति वेश्या की कन्या को पवित्र आर्यपट्ट पर बैठे हुए न देख सकेगा; और न वेश्या के उपपति की अधीनता में अस्त्र ही धारण कर सकेगा।

वंधु०—युवराज, पाटलिपुत्र में वेश्या की कन्या आर्यपट्ट पर बैठ सकती है, परंतु मालव में यह कदापि संभव नहीं है। उज्जयिनी या दशपुरवाले कभी इंद्रलेखा की कन्या को अभिवादन न करेंगे।

चक्र०—युवराज, मैं पुरुषानुक्रम से गुप्तवंश की सेवा में हूँ; परंतु वेश्या की कन्या की सेवा आनर्त अथवा सौराष्ट्र में संभव नहीं है।

स्कंद०—भाइयो, ये सब बातें ठीक हैं; परंतु फिर भी आप लोग महाराजपुत्र का उपदेश न भूल जायँ। आप लोग क्षण भर के लिये मगध को भूल जाइए। छोटा मगध देश उत्तरापथ को देखते हुए कुछ भी नहीं है। आर्य्यावर्त्त के निवासियों ने हम लोगों को पितृभूमि की द्वाररक्षा के लिये नियुक्त किया है। अतः आप लोग इस प्रवेश द्वार से न हटें और अभिमान में आकर अपना कर्तव्य न छोड़ बैठें। यदि आप लोग अस्त्र रख देंगे, तो फिर उत्तरापथ वा दक्षिणापथ में ऐसा कौन रह जायगा जो वाह्लीका के तट पर आकर उत्तरापथ के प्रवेश द्वार की रक्षा करेगा?

भानु०—क्यों, वह चंद्रसेन कहाँ चला जायगा। जिन्होंने आपको बंदी करने की आज्ञा दी है और चंद्रसेन को महासेनापति बनाया है, उन्हीं की इच्छा पूरी होने दीजिए।

स्कंद०—भानु, यह बात तुम्हारे कहने के योग्य नहीं है। पिताजी बहुत वृद्ध हो गए हैं। यदि उनकी बुद्धि में विकार हो गया हो, यदि मंत्रणा के

अभाव के कारण साम्राज्य का दंड अनुचित मार्ग में चलने लगा हो, तो क्या तुम लोग, क्रोध, क्षोभ और अभिमान के कारण अस्त्र छोड़कर दूर खड़े हो जाओगे और जंगली हूण लोग इस पवित्र आर्यभूमि को पददलित कर डालेंगे ?

सहसा बुड्ढे भिक्षुक ने युवराज को गले से लगा लिया और कहा—पुत्र, बहुत दिनों से ऐसी बात सुनने में नहीं आई थी। इस समय चंद्रगुप्त नहीं हैं, ध्रुवस्वामिनी नहीं हैं और अग्निगुप्त भी नहीं हैं। बहुत दिनों से मगधवासियों ने ऐसी बात नहीं सुनी। जो कुछ तुमने अभी कहा है, वही एक बार फिर कहो। पुत्रो, सुनो, मेरा जन्म भी गुप्तवंश में ही हुआ है: मैं भी क्रोध, क्षोभ और अभिमान के कारण पाटलिपुत्र छोड़कर चला आया हूँ। कुमारगुप्त तो पागल हो गए हैं, परंतु गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त अभी तक जीवित हैं। आर्यावर्त्त की रक्षा होगी और हूणों के पैरों के स्पर्श से उत्तरापथ कलंकित न होगा। मगध को लोग भूल जायँ, मगध वेश्याओं और नटों का रंगमंच हो जाय, कुमारगुप्त रसातल को चले जायँ, परंतु फिर भी इस प्रवेशद्वार की रक्षा अवश्य की जायगी। अपने वंश के गौरव और आत्माभिमान का ध्यान चाहे न रहे, परंतु स्त्रियों और बालकों की रक्षा अवश्य करनी पड़ेगी। देवताओं और ब्राह्मणों की रक्षा अवश्य की जायगी। पुत्रो, युद्ध करते करते ही मेरे बाल पके हैं, फिर भी अपमान और अभिमान ने मुझे अपने कर्त्तव्य से हटा दिया था; परंतु इस समय स्कंद की बातों ने मुझे फिर अपने कर्तव्य पथ पर लगा दिया।

स्कंदगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—तुम—आप कौन हैं ?

वृद्ध भिक्षुक ने कुछ मुस्कराकर कहा—स्कंद, तुमने मुझे नहीं पहचाना ?

उस समय उसी दंडधर ने हाथ जोड़कर कहा—प्रभु, मैंने पहचान लिया। आपके सामने कुमारपादीय महानायक कृष्णगुप्तदेव खड़े हैं।

इतना सुनते ही सब लोगों ने वृद्ध महाप्रतीहार के चरण छूए। कृष्णगुप्त ने कहा—स्कंद, यह शोक करने का समय नहीं है। महादेवी ने यह संसार छोड़ दिया है। मैं पहले ही गंगातट पर उनका प्रेतपिंड अर्पित कर आया हूँ।

तुम स्नान करके शुद्ध हो जाओ और शोक करना छोड़ दो। मैं हूणों के रक्त से पट्टमहादेवी का तर्पण करने के लिये वाह्लीक आया हूँ। भीषण अत्याचार के कारण गुप्तकुल की लक्ष्मी विचलित हो रही है। तुम गुप्तकुल के सूर्य हो। उस लक्ष्मी को पुनः सिंहासन पर बैठाने के योग्य आर्य्यावर्त में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

स्कंदगुप्त और मागध सेनापति लोग चुपचाप आँसू पोंछते हुए वाह्लीका के जल में उतर पड़े।

दूसरा परिच्छेद

वज्र

महाप्रतीहार कृष्णगुप्त जिस दिन वाह्लीक में पहुँचे, उसके प्रायः दो मास के उपरांत एक दिन प्रातःकाल के समय पाटलिपुत्र के द्वारपाल और दंडधर सभा मंडप में वीणा की झनकार सुनकर बहुत ही विस्मित हुए। उन्होंने डरते हुए मंडप में प्रवेश करके देखा कि सिंहासन के सामने, उसके चारों ओर और मंडप के प्रत्येक सुखासन पर एक एक सुंदर वीणा रखी है; और आर्यपट्ट के दाहिने ओर मत्स्य देश के संगमरमर की बनी वेदी पर बैठे हुए एक ब्राह्मण वीणा बजाने में मग्न हैं। स्वर्गीया पट्टमहादेवी की मृत्यु के समय से अब तक पाटलिपुत्र के राजप्रासाद में बहुत से परिवर्तन हुए थे। पुराने सेवक लोग इस भय से अपना कार्य छोड़कर राजधानी से चले गए थे कि कहीं हमारी अप्रतिष्ठा न हो जाय, अथवा हम पर कोई विपत्ति न आ जाय। परंतु दो चार पुराने द्वारपाल और दंडधर लोग उस समय तक भी अपने पुराने प्रभु अपने पुराने प्रभु की ममता न छोड़ सके थे। उन लोगों ने वृद्ध ब्राह्मण को पहचान लिया और संमानपूर्वक अभिवादन किया। नए दंडधरों और द्वारपालों ने जब वृद्ध ब्राह्मण के

संबंध में उन लोगों से पूछा, तब उन्होंने बहुत धीरे से कह दिया कि ये युवराज भट्टारकपादीय महामंडलेश्वर महानायक महामंत्री दामोदर शर्म्मा हैं।

दिन का पहला पहर बीत गया, परंतु फिर भी सभामंडप में कोई न आया। यह देखकर वृद्ध महामंत्री बहुत ही विस्मित हुए। वे नहीं जानते थे कि पाटलिपुत्र के सभामंडप में अब आर्य समुद्रगुप्त की नीति की रक्षा नहीं होती। सम्राट् बहुत विलंब से सोकर उठते थे, अतः दोपहर से पहले सभा में न आ सकते थे। सम्राट् का चित्त और शरीर ठिकाने न रहने के कारण दिन में केवल एक ही दंड तक सभा का अधिवेशन हुआ करता था। ज्यों ज्यों दिन बीतने लगा, त्यों त्यों वृद्ध महामंत्री का आश्चर्य भी बढ़ने लगा। परंतु फिर भी सभामंडप में कोई न आया। वृद्ध महामंत्री और कोई उपाय न देखकर बार बार वीणा बजाते थे। बीच बीच में चिंता के कारण वे घबरा भी जाते थे। वृद्ध दामोदर शर्म्मा देखते थे कि यत्न न होने के कारण आर्यपट्ट का सुंदर चमकीला संगमरमर मैला हो गया है। दीवारों के झरोखों में कबूतरों ने घर बना लिये हैं। आर्यपट्ट का चँदवा बहुत दिनों से साफ नहीं हुआ और उसमें लगे हुए मोतियों के गुच्छे मैले हो रहे हैं। मंडप के क्षेत्र में रखे हुए चंदन के बने सुखासन यत्न के अभाव के कारण नष्ट हो रहे हैं और अलिंद में रखे हुए राजवंशियों के बैठने के हाथीदाँत के विचित्र आसन टेढ़े मेढ़े हो गए हैं। देखते देखते वृद्ध महामंत्री ने ठंढी साँस लेकर कहा—माता! मैंने यह तो समझ लिया था कि तुम विचलित हो गई हो, परंतु मैंने यह नहीं जाना था कि तुम इसका परित्याग ही कर चुकी हो।

इतने में प्रासाद और नगर के फाटकों पर दूसरे पहर के मंगल वाद्य बजने लगे। सभामंडप में दो चार नए सभासद आने लगे। वे लोग सत्तर वर्ष के एक बुड्ढे को आर्यपट्ट के पास बैठकर वीणा बजाते हुए देखकर बहुत ही विस्मित हुए। न तो वृद्ध ही उन्हें पहचानते थे और न वे ही वृद्ध को जानते थे। कोई आध दंड के उपरांत सोने की पालकी पर

एक दुबला पतला गोरा युवक मंडप में आया। उसे देखकर सभासद लोग उठ खड़े हुए। वृद्ध बड़े आश्चर्य से उसकी ओर देखते रह गए। युवक की आँखें मद्य के कारण लाल हो रही थीं। उसने मंडप में प्रवेश करके उन्हीं लाल लाल आँखों से देखा कि उसके आसन पर एक वीणा रखी हुई है। वह मारे क्रोध के चिल्ला उठा। कई दंडधर और द्वारपाल डर के मारे दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। युवक ने पूछा—यह वीणा क्यों लाए हो ?

दंडधरों और द्वारपालों ने कहा—प्रभु, हम लोग तो नहीं जानते।

युवक—तो फिर कौन लाया ?

दंड०—प्रभु, हम लोग नहीं जानते।

वेदी पर से दामोदर शर्मा बोल उठे—भइया, तुम बिगड़ते क्यों हो, मैं लाया हूँ। मैं बहुत सा धन व्यय करके और बहुत कष्ट से इतनी वीणाएँ वाराणसी से लाया हूँ।

युवक—तुम कौन हो ?

दामो०—मैं—आगंतुक हूँ।

युवक—तुम प्रासाद में क्यों आए ?

दामो०—कुछ काम है।

युवक—तो महामंत्री की वेदी पर क्यों बैठ गए ?

दामो०—भइया, अभ्यास के कारण। दो तीन पीढ़ी का अभ्यास ठहरा, वह छूट नहीं सकता। तुम कौन हो ?

युवक—मैं तुम्हारा बाप हूँ।

दामो०—बहुत ठीक, पिता जी ! मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। मेरा अपराध क्षमा करना। ये वीणाएँ मैं तुम्हारे लिये उपहार स्वरूप लाया हूँ। इन्हें ग्रहण करके मुझे कृतज्ञ करो।

युवक—तुमने कैसे जाना कि मैं वीणा बजाया करता हूँ।

दामो०—मेरा तुम्हारा संबंध जो इतना पास का ठहरा।

युवक—इसके लिये तुम्हें सूली पर चढ़ना पड़ेगा।

दामो०—तुम दंड का आज्ञापत्र लिखा मँगाओ। मैं उसपर हस्ताक्षर कर दूँगा।

युवक—तुम हस्ताक्षर करनेवाले कौन होते हो ?

दामो०—मैंने तो कहा न कि अभ्यास के कारण। कई पीढ़ियों से जो अभ्यास पड़ा है, वह सहज में नहीं छूट सकता। अब यह बतलाओ कि तुम कौन हो।

युवक--तुम पूछनेवाले कौन ?

दामो०--मैं--मेरा नाम है दामोदर और मेरे पिता का नाम है संकर्षण। यही मेरी जीविका है। क्यों भाई, तुमने भी कभी मेरा नाम सुना था ?

महामंत्री का नाम सुनकर युवक ठिठक गया और कुछ ठहरकर बोला--तुम…आप…महामंत्री…

दामो०--हाँ भइया, मैं अभी तक मंत्री हूँ, और कब तक मंत्री रहूँगा, इसका कोई निश्चय नहीं है।

युवक--आ-आ-आ-आप-क-क-क-कब आए ?

दामो०—बस इसी समय चला आ रहा हूँ। अभी तक मैं घर भी नहीं गया। परंतु भइया, मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं यह भूल गया था कि तुम लोग यह नहीं चाहते कि मैं लौटकर यहाँ आऊँ। तुम कौन हो ?

युवक—मैं साम्राज्य का महाप्रतीहार हूँ।

दामो०—तुम्हारा नाम क्या है ?

युवक—शिवनंदी।

दामो०—क्यों भइया, तुम पहले वीणा कहाँ बजाया करते थे ?

युवक ने लज्जा के मारे सिर झुका लिया। दामोदर शर्म्मा ने फिर पूछा—इंद्रलेखा के घर पर ?

युवक ने धीरे से कहा—हाँ।

दामो०—इंद्रलेखा तुम्हारी कौन होती है ?

युवक—वह मेरी माता है।

दामो०—बहुत ठीक, तुम्हारे पिता कौन हैं ? फल्गुयश नट या चंद्रसेन ?

युवक—फल्गुयश मेरे पिता थे।

दामो०—क्यों जी शिवनंदी, तुम जानते हो कि तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है?

शिव०—हाँ, जानता हूँ।

दामो०—तुम यह जानते हो कि मैं साम्राज्य का युवराज भट्टारकपादीय महानायक हूँ?

शिव०—मैं भी तो महानायक हूँ।

दामो०—बहुत ठीक, मैं देखता हूँ कि साम्राज्य में बहुत उन्नति हुई है। परंतु मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। मैं तुम्हारा प्रभु हूँ। क्या तुम्हें यह भी बतलाया गया था कि प्रभु को अभिवादन करना होता है?

लज्जा के कारण युवक का चेहरा लाल हो आया। उसने कमर पर हाथ रखकर देखा कि न तो कटिबंध है और न तलवार। उसने सिर झुकाकर महामंत्री से कहा—प्रभु, मैं भूल से तलवार घर ही पर छोड़ आया हूँ।

महामंत्री ठठाकर हँस पड़े जिससे सारा सभामंडप गूँज उठा। दामोदर शर्मा ने कहा—शिवनंदी, तुम कृष्णगुप्त के बहुत ही उपयुक्त उत्तराधिकारी हो। फल्गुयश नगर में क्षौरकार था। तुम अपनी तलवार का व्यवहार अपने पैतृक व्यवसाय में करना। साम्राज्य के कार्य के लिये अब महाप्रतीहार को तलवार रखने की आवश्यकता न होगी।

उसी समय फाटक पर तुरही बजने का शब्द हुआ। सम्राट् नई पट्टमहादेवी के साथ एक पालकी पर बैठे हुए मंडप के फाटक तक आ पहुँचे थे। सभासद लोग उठ खड़े हुए। फाटक पर मंगल ध्वनि हुई। बैतालिकों ने स्तोत्र पढ़े और सम्राट् तथा महादेवी ने मंडप में प्रवेश किया। दामोदर शर्मा ने वेदी के ऊपर खड़े होकर कहा—महाराजाधिराज, स्वागत।

परमेश्वर परममाहेश्वर परमवैष्णव महाराजाधिराज परमभट्टारक कुमार गुप्त पर मानों सहसा वज्र गिरा। सभासद लोग विस्मित हो गए और पट्टमहादेवी सम्राट् के मुँह की ओर देखने लगी। उस समय वृद्ध सम्राट

का रंग पीला पड़ रहा था। दामोदर शर्मा ने फिर कहा—महाराजाधिराज मैं बहुत दिनों पर लौटा हूँ। आप आगे आइए, गुप्तवंश का यह पुराना सेवक पुरानी प्रथा के अनुसार अभिवादन करेगा।

अनंता उस समय सम्राट् का हाथ पकड़कर उन्हें आर्यपट्ट के पास ले आई। महामंत्री तब तक वेदी पर ही खड़े थे। आर्यपट्ट पर वीणा रखी देखकर महादेवी ने बहुत ही कर्कश स्वर से पूछा—यह यहाँ कौन लाया?

महामंत्री ने गंभीर स्वर से कहा—इस समय एक ओर तो वाह्लीका तट पर भाई, पुत्र, भतीजे, आत्मीय, जाति के और लाखों देशवासी अपने देश और धर्म के लिये आत्मबलि दे रहे हैं; और इधर समुद्रगुप्त के वंशज, चंद्रगुप्त के पुत्र हमारे सम्राट् मगध के प्राचीन आर्यपट्ट को रंगशाला में परिणत करके अभिनय कर रहे हैं। उनके इस कृत्य से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और यही कारण है कि मैं यह उपहार लेकर आया हूँ। इससे आप लोगों को विस्मित न होना चाहिए।

वृद्ध सम्राट् का मस्तक और भी झुक गया। दामोदर शर्मा ने फिर कहा—महाराजाधिराज, आप मेरे लिये केवल सम्राट् ही नहीं हैं, बल्कि मेरी बाल्यावस्था के मित्र के पुत्र भी हैं। बचपन में आप मेरी गोद में पले हैं। आपके इस समय के आचरण से मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। आर्यावर्त्त के प्रवेश द्वार पर, मगध से सैकड़ों योजन की दूरी पर गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त, अग्निमित्र आदि भीषण शत्रुओं से देश की रक्षा कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर आपने प्राचीन मगध के प्राचीन आर्यपट्ट पर जो अभिनय किया है, वह संसार में अतुलनीय और अनुपम है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आप सुखी हों।

वृद्ध सम्राट् कुछ भी न बोले। सभामंडप में सन्नाटा छाया हुआ था। द्वार पर एक अधेड़ सुंदरी खड़ी क्रोध और भय के मारे काँप रही थी। उसे देखकर दामोदर शर्मा ने कहा—इंद्रलेखा! यहाँ आओ। तुम्हारी जीत हुई और मैं हार गया। इस समय सम्राट् भी तुम्हारे हैं और साम्राज्य भी तुम्हारा ही है। तुम आकर सम्राट के सिर पर बैठो। वहाँ द्वार पर क्यों खड़ी हो?

इंद्रलेखा उस समय की दामोदर शर्मा की तीव्र दृष्टि न सह सकी और भाग गई। उस समय अनंता बोल उठी—जान पड़ता है कि तुम दामोदर शर्मा हो !

दामोदर शर्मा ने बहुत ही शांतिपूर्वक कहा—हाँ।

अनंता—तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ?

दामो०—हाँ ! तुम फल्गुयश की कन्या और सम्राट् की पत्नी हो।

अनंता—तुम जानते हो कि मैं पट्टमहादेवी हूँ ?

दामो०—यह असंभव है।

अनंता—क्यों ?

दामो०—यदि वेश्या की कन्या पट्ट पर जा बैठे, तो वह पट्टमहादेवी नहीं हो सकती।

अनंता—क्या कहा ?

दामो०—यदि समुद्रगुप्त का कोई वंशज प्राचीन रीति को भूलकर, किसी वेश्या की कन्या को आर्यपट्ट पर बैठावे, तो वह जारजा कभी इस पवित्र प्राचीन महासाम्राज्य की पट्टमहादेवी नहीं हो सकती।

अनंता—इस समय तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। महाराजाधिराज जो चाहें सो कर सकते हैं। क्या तुम मृत्यु से नहीं डरते ?

दामो०—यदि मैं मृत्यु से डरता होता, तो कभी लौटकर पाटलिपुत्र न आता।

अनंता—तुमने मुझे अभिवादन क्यों नहीं किया ?

दामो०—मैं तुम्हारे स्वामी को अभिवादन कर सकता हूँ। परंतु जो मस्तक ध्रुवस्वामिनी और स्कंदगुप्त की माता के सामने झुका हो, वह फल्गुयश की कन्या के सामने नहीं झुक सकता।

अनंता—तुम ब्राह्मण हो, इससे तुम्हारा वध नहीं हो सकता। परंतु फिर भी तुम्हें अपनी इस धृष्टता के लिये जन्म भर पछताना पड़ेगा।

दामो०—मैं तो अब मृत्यु के समीप आ पहुँचा। मुझे पछतावा केवल

इसी बात का है कि मैं सम्राट् को अकेले ही मगध में छोड़ गया था। इसके अतिरिक्त मेरे लिये पछतावे की और कोई बात नहीं हो सकती।

अनंता—तो क्या मुझे अभिवादन नहीं करोगे?

दामो०—नहीं।

अनंता—क्यों?

दामो०—इसलिये कि तुम अभिवादन करने के योग्य नहीं हो। आज तक युवराज भट्टारकपादीय महानायक महामंत्री ने किसी जारजा वेश्या कन्या को अभिवादन नहीं किया। अतः वह आज भी ऐसा न करेगा।

अनंता—शिवनंदी, इस वृद्ध को वंदी कर लो।

शिवनंदी काँपते हुए पैरों से आगे बढ़ा। जब वह महामंत्री की वेदी के पास पहुँचा, तब दामोदर शर्म्मा ने डपटकर कहा—ओ क्षौरकार के पुत्र, सावधान!

अपमान, अभिमान, क्रोध और क्षोभ के मारे जल भुनकर अनंता बोली—शिवनंदी, इसे तुरंत पकड़ ले। नहीं तो तू भी शूली पर चढ़ा दिया जायगा।

शिवनंदी ने ज्योंही आगे बढ़कर दामोदर शर्म्मा का हाथ पकड़ना चाहा, त्योंही उन्होंने उसे कसकर एक लात मारी जिससे वह वहीं गिर पड़ा। दामोदर शर्म्मा ने हँसते हुए कहा—अनता! तुम्हारे राज्य का महाप्रतीहार, तुम्हारा महानायक चंद्रगुप्त के सखा पर हाथ नहीं उठा सकता।

अनंतादेवी चिल्लाकर बोल उठी—कोई है? तुरंत इसे पकड़ो!

कई नए द्वारपाल और दंडधर आगे बढ़े। उस समय दामोदर शर्मा ने सम्राट् से पूछा—महाराजाधिराज! क्या आप मुझे वंदी करना चाहते हैं?

वृद्ध सम्राट् सिर झुकाए चुपचाप बैठे रहे। यह देखकर अनंता आपे से बाहर हो गई और कहने लगी—तुरंत बतलाओ, क्या कहते हो?

सम्राट् उस समय भी चुप थे। अनंता ने फिर कहा—जो कुछ कहना हो सो कहो, नहीं तो मैं अभी आत्महत्या करती हूँ।

यह सुनते ही कुमारगुप्त घबराकर आर्यपट्ट पर से उठ खड़े हुए। पट्टमहादेवी ने फिर भी उन्हें चुप देखकर अधीर होकर पूछा—क्या तुम कुछ भी न बोलोगे।

विवश होकर सम्राट् ने बहुत धीरे से कहा—देव! पट्टमहादेवी की आज्ञा से आप वंदी हुए हैं।

सहसा मंडप के फाटक पर सैंकड़ों घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई पड़ा। साथ ही एक दीर्घाकार योद्धा एक घोड़े पर से कूदकर मंडप में आ पहुँचे। उन्होंने सम्राट् की अंतिम बात सुन ली थी। उन्होंने बादल की तरह गरजकर पूछा—चंद्रगुप्त के साम्राज्य में दामोदर शर्म्मा को कौन वंदी करता है?

वृद्ध महामंत्री ने बालकों की तरह हाथ फैलाकर रोते हुए कहा—कौन! गोविंद!

———

तीसरा परिच्छेद

दावानल

जिस सम्राट् का दूत पाटलिपुत्र से युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त को वंदी करने की आज्ञा लेकर वाह्लीक पहुँचा था, उसी दिन हूण युद्ध के नए बनाए हुए सेनापति चंद्रसेन लंबी यात्रा समाप्त करके उद्यान देश की सीमा पर बसे हुए नगरहार नामक नगर में पहुँचे थे। यद्यपि नई पट्टमहादेवी अनंतादेवी की बहुत ही कड़ी आज्ञा थी, तो भी चंदसेन दूसरे ही दिन नगरहार से आगे बढ़ने के लिये प्रस्तुत न थे उन्हें कभी घोड़ेपर चढ़ने का अभ्यास तो था नहीं, इससे वे मार्ग में बहुत थक गए थे। इसी कारण उन्होंने एक सप्ताह तक उद्यान देश की राजधानी नगरहार में विश्राम किया। इसके

उपरांत वे पालकी पर चढ़कर एक पत्त का मार्ग एक मास में चलकर वाह्लीक नगर पहुँचे ।

चंद्रसेन के आने का समाचार सुनकर स्कंदगुप्त की आज्ञा से भानुमित्र और चक्रपालित ने वाह्लीक से पाँच कोस आगे बढ़कर उनकी अभ्यर्थना की थी। नए सेनापति ने वाह्लीक नगर में किसी से भेंट नहीं की। वे एक सप्ताह तक वाह्लीक के राजा के प्रासाद में विश्राम करते रहे। विश्राम के उपरांत जिस दिन नए महाबलाधिकृत छावनी में आए, उस दिन युवराज स्कंदगुप्त और उनके साथियों ने उनसे भेंट की। कृष्णगुप्त के परामर्श से युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त के पदच्युत और वंदी होने का समाचार छावनी में किसी पर प्रकट नहीं किया गया था। सब सैनिक यही जानते थे कि महाराजपुत्र की अनुपस्थिति में युवराज ही हम लोगों के सेनापति हैं।

छावनी में पहुँचकर नए सेनापति ने एक पहरेवाले से पूछा—स्कंदगुप्त कहाँ हैं ?

साम्राज्य के युवराज भट्टारक का नाम सुनकर पहरेवाले को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—क्या आप युवराज भट्टारक को पूछते हैं ? वे अपने वस्त्रावास में हैं ।

चंद्र०—वस्त्रावास में हैं ! कारागार में नहीं गए ?

पहरेवाले ने चंद्रसेन को पागल समझा। उसने हँसकर पूछा—क्यों भाई, तुम कहाँ से आते हो ? बातचीत से तो तुम मगध के रहनेवाले जान पड़ते हो। पर क्या तुमने मनुष्य की मर्यादा का ध्यान रखकर बातचीत करना नहीं सीखा है ? युवराज भट्टारक इस समय महाराजपुत्र की अनुपस्थिति में साम्राज्य की सेना के महाबलाधिकृत हैं। वे भला कारागार में क्यों जाने लगे ?

चंद्र०—तो क्या अभी तक पाटलिपुत्र से कोई दूत नहीं आया ?

पहरे०—एक मास पहले एक दूत आया तो था; परंतु इससे युवराज कारागार में क्यों जाने लगे ?

चंद्र०—सम्राट् की आज्ञा से ।

पहरे०—सम्राट् की आज्ञा से ?

चंद्र०—मैं तुम्हारे साथ बकबक करने यहाँ नहीं आया हूँ। स्कंदगुप्त जहाँ हो, मुझे उनके पास ले चलो।

आगंतुक को इस प्रकार दो बार युवराज का नाम लेते सुनकर पहरे वाला बिगड़ खड़ा हुआ और कहने लगा—क्यों जी, तुम कुछ भी शिष्टाचार नहीं जानते ? दो बार तो तुम युवराज का नाम ले चुके; परंतु अब यदि तीसरी बार ऐसा करोगे, तो पीटे जाओगे।

नए सेनापति ने और भी बिगड़कर पूछा—तुम जानते हो कि मै कौन हूँ ?

सैनिक ने कहा—तुम चाहे जो हो, परंतु यदि तीसरी बार तुम इस प्रकार कुमार का नाम लोगे, तो तुम्हारी हड्डी पसली चूर कर दूँगा।

चंद्र०—तुम यह नहीं जानते हो कि तुम किससे बातें कर रहे हो। इसी कारण मैं तुम्हें क्षमा किए देता हूँ। मैं हूण युद्ध का नया बलाधिकृत हूँ।

यह सुनकर सैनिक ठठाकर हँस पड़ा और कहने लगा—क्या तुम कल रात को मद्य की कुछ अधिक मात्रा चढ़ा गए थे ? यद्यपि महाबलाधिकृत अग्निगुप्त वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं और महाराजपुत्र पाटलिपुत्र गए हैं, तथापि युवराज भट्टारक यहीं उपस्थित हैं। उनके साथ गौड़ के भानुमित्र, सौराष्ट्र के चक्रपालित, मालव के बंधुवर्मा, हरिगुप्त, भास्करगुप्त, आदित्यवर्मा कुमार हर्षगुप्त आदि सभी लोग हैं। इतने लोगों के रहते हुए तुम कहाँ से बलाधिकृत होकर आ गए ?

चंद्र०—तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ?

सैनिक—मैंने सब समझ लिया। अब तुम्हारे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

चंद्र०—तुम जानते हो कि मैं महाराजाधिराज का ससुर हूँ ?

सै०—तब तो तुम मेरे भी ससुर हुए। क्यों ससुर जी, इस कपड़े में भी कुछ छिपाकर लाए हो ? तीन दंड से परिश्रम करने के कारण मेरा गला सूख रहा है।

इतने में गौल्मिक वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर चंद्रसेन ने पूछा—तुम कौन हो ?

गौल्मिक विस्मित होकर चंद्रसेन के मुँह की ओर देखने लगे। चंद्रसेन उत्तर न पाकर बहुत क्रुद्ध हुए और गँवारू भाषा में पूछने लगे—क्यों रे! तू कौन है ?

गौल्मिक ने उपेक्षा दिखाते हुए कहा—मैं चाहे कोई होऊँ, इससे तुम्हें क्या प्रयोजन ? (सैनिक की ओर देखकर) यह कौन है ?

सैनिक—प्रभु ! यह अवश्य ही कोई पागल है। बात बात पर युवराज भट्टारक का नाम लेता है; और जब कुछ पूछो, तब कहता है कि मैं नया बलाधिकृत हूँ।

गौल्मिक ने और भी अधिक विस्मित होकर पूछा—क्यों भाई, तुम कौन हो ? और यहाँ छावनी में क्या करने आए हो ?

चंद्र०—मैं हूण युद्ध का नया महाबलाधिकृत हूँ। मेरा नाम चंद्रसेन है।

गौ०—तब युवराज भट्टारक क्या करेंगे ?

चंद्र०—अनंता की आज्ञा से स्कंदगुप्त और गोविंदगुप्त पदच्युत हुए हैं और मैं हूणयुद्ध का महासेनापति बनाया गया हूँ।

गौ०—देखो, शिष्टों की सी बातें करो। यदि तुम महाराजपुत्र और युवराज भट्टारक का इस प्रकार नाम लोगे, तो साम्राज्य के सैनिक इसे सहन न कर सकेंगे। यदि तुम महाबलाधिकृत बनाए गए हो, तब तो तुम्हारे पास आर्यपट्ट भी अवश्य ही होगा।

चंद्रसेन ने अपने वस्त्रों में से सुनहला आर्यपट्ट निकाला। गौल्मिक और सैनिक ने उसे देखकर तलवार निकाली और सैनिक रीति से अभिवादन किया। इसके उपरांत गौल्मिक ने पूछा—क्या आप सचमुच महाबलाधिकृत बनाए गए हैं ?

चंद्रसेन ने मटककर कहा—और नहीं तो क्या तुमसे हँसी करने के लिये पाटलिपुत्र से चलकर वाह्लीक आया हूँ ?

गौ०—आप कहाँ जायँगे।

चंद्र०—स्कंदगुप्त कहाँ हैं ?

गौ०—शिविर में।

चंद्र०—उन्हें कारागार में क्यों नहीं रखा ?

गौ०—कारागार में ! किसे ?

चंद्र०—स्कंदगुप्त को, और किसे ? सम्राट् ने उन्हें बंदी करने की आज्ञा दी है।

गौ०—वंदी करने की ?

चंद्र०—हाँ।

गौ०—उन्हें कौन वंदी करेगा ?

चंद्र०—तुम्हीं लोग।

गौ०—उत्तरापथ अथवा दक्षिणापथ में कोई ऐसा नहीं है, जो युवराज भट्टारक को वंदी कर सके।

चंद०—क्यों ?

गौ०—जो कुछ मैं जानता था, वह मैंने कह दिया। अब कृपाकर यह बतलावें कि आप कहाँ जायँगे।

चंद्र०—स्कंद के शिविर में।

आगे आगे गौल्मिक और पीछे पीछे चंद्रसेन स्कंगुप्त के वस्त्रावास की ओर चले। उस समय गौड़ और मगध के सैकड़ों सैनिकों ने आकर उस सैनिक को चारों ओर से घेर लिया। देखते देखते सारे शिविर में बिजली की तरह यह समाचार फैल गया कि सम्राट् की आज्ञा से युवराज पदच्युत किए गए हैं। उन्हें वंदी करने की आज्ञा निकली है और पाटलिपुत्र से एक पागल हूण युद्ध का महासेनापति बनकर आया है। युवराज और सैनिकों का बहुत से युद्धों में साथ रह चुका था। वे मगध और गौड़ के सैनिकों की आँखों के तारे हो रहे थे। वे बड़े ही सर्वप्रिय, सज्जन और मधुरभाषी थे। उनके पदच्युत और वंदी होने का समाचार सुनकर क्रोध और क्षोभ के मारे साम्राज्य के सब सैनिक पागल हो गए। सब लोग यही कहते थे कि जिन्होंने अपने शरीर का रक्त बहाकर उत्तरापथ के प्रवेश-

द्वार की रक्षा की है, जो अग्निगुप्तके साथी हैं और जो सदा से साम्राज्य की सेना का परिचालन करते आए हैं, उनकी जगह पर और कौन हूण युद्ध का महासेनापति होगा? सब लोग यह भी पूछते थे कि युवराज भट्टारक किस अपराध के कारण पकड़े जाते हैं? बिना किसी के कहे, और बिना किसी की आज्ञा पाए पाँच लाख सवारों और पैदल सैनिकों ने अपने अपने अस्त्र आदि लेकर युवराज का शिविर,चारों ओर से घेर लिया।

जिस समय गौल्मिक के साथ चंद्रसेन ने युवराज के वस्त्रावास में प्रवेश किया, उस समय स्कंदगुप्त साम्राज्य के नायकों के साथ बैठकर चिंतित भाव से किसी विषय पर विचार कर रहे थे। गौल्मिक ने वस्त्रावास में प्रवेश करके अभिवादन किया और कहा—देव, नए महासेनापति आए हैं।

युवराज ने सिर उठाकर पूछा—कौन, चंद्रसेन?

गौ०—जी हाँ।

युवराज—ले आओ।

तुरंत ही चंद्रसेन ने गौल्मिक के साथ वस्त्रावास में प्रवेश किया। उन्हें देखकर सब लोग उठ खड़े हुए। चंद्रसेन नें आते ही पूछा—स्कंदगुप्त कौन है?

युव०—(आगे बढ़कर) मैं हूँ।

चंद्र०—तुम कारागार में क्यों नहीं गए?

युव०—मुझे कोई आज्ञा नहीं मिली थी।

चंद्र०—तुम पदच्युत हुए हो।

युव०—यह मैं सुन चुका हूँ।

चंद्र०—तुम वंदी हो।

युव०—अच्छी बात है। कहाँ जाऊँ?

चंद्र०—अभी कारागार में जाओ, फिर देखा जायगा। कोई है? इन्हें वंदी करो।

चंद्रसेन की आज्ञा सुनकर भानुमित्र ने पूछा—क्या आप मगध से नई सेना लाए हैं

चंद्रसेन ने विस्मित होकर पूछा—क्यों?

भानु०—यहाँ जितने लोग हैं, उनमें से कोई युवराज को वंदी नहीं कर सकता।

चंद्र०—क्यों ?

भानु०—यह तो लोगों से ही पूछिए।

चंद्र०—क्या सम्राट् के आज्ञा देने पर भी नहीं ?

भानु०—नहीं; बल्कि सम्राट के स्वयं आने पर भी नहीं।

चंद्र०—यह तो विद्रोह है।

भामु०—यदि यही विद्रोह है, तो फिर समझ लीजिए कि साम्राज्य की सारी सेना विद्रोही है।

चंद्र०—तो क्या आप लोग इन्हें वंदी न करेंगे ?

भानु०—यदि युवराज भट्टारक की आज्ञा हो, तब तो हम लोग आपको इसी समय वंदी कर सकते हैं। परंतु आपकी आज्ञा से युवराज को कौन कहे, हम एक चींटी तक को नहीं छू सकते।

चंद्र०—आप जानते हैं कि मैं महाबलाधिकृत हूँ ?

भानु०—हम सब लोग यह बात जानते हैं। परंतु फिर भी हम लोग आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये बाध्य नहीं हैं।

चंद्र०—क्यों ?

भानु०—जिस दिन युवराज भट्टारक के पदच्युत होने की आज्ञा आई थी, उसी दिन हम लोगों ने अपना अपना पद त्याग दिया था।

चंद्र०—सब लोगों ने ?

भानु०—हाँ, सब लोगों ने।

चंद्र०—तो फिर युद्ध कौन करेगा ?

भानु०—यह तो आप ही जानें।

चंद्र०—अनंता की आज्ञा है कि स्कंदगुप्त अवश्य वंदी किए जायँ।

भानु०—यदि आप कर सकें, तो कीजिए।

चंद्र०—अच्छा तो फिर मैं ही वंदी करूँगा।

इतना कहकर चंद्रसेन ने युवराज के सिर पर से बहुमूल्य उष्णीष खोलकर उसी से उन्हें बाँधना आरंभ किया। बाँधते समय मगध नायकों

की तलवार की झनकार सुनाई पड़ी। परंतु युवराज के संकेत करने पर सब लोग चुपचाप खड़े रहे। युवराज को बाँध चुकने पर चंद्रसेन ने पूछा—कारागार कहाँ है ?

युवराज ने उत्तर दिया—चलिए, मैं आपको मार्ग दिखाता चलता हूँ।

सहसा भानुमित्र बोल उठे—चंद्रसेन, युवराज की आज्ञा से हम लोगों ने तो तुम्हें क्षमा कर दिया; परंतु बाहर साम्राज्य के पाँच लाख सैनिक खड़े हैं। अतः मैं फिर तुम्हें सावधान कर देता हूँ।

चंद्रसेन ने भानुमित्र की इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया और वे युवराज को पकड़े हुए शिविर से बाहर निकले। वस्त्रावास के चारों ओर साम्राज्य के पाँच लाख सैनिक खड़े थे। वे युवराज को बँधे हुए देखकर गरज उठे। बहुत से सैनिकों ने आगे बढ़कर चंद्रसेन को चारों ओर से घेर लिया। परंतु युवराज ने बहुत ही शांत भाव से उन लोगों से चुपचाप रहने का अनुरोध किया। मागध सेना दुखी होकर चंद्रसेन का बहता हुआ लहू देखने से वंचित रह गई। अपनी इच्छा से सारे सैनिकों और नायकों से घिरे हुए युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने वाह्लीक नगर के पत्थर के बने कारागार में प्रवेश किया।

चौथा परिच्छेद

बंधन से छुटकारा

दिन का दूसरा पहर बीत गया है, परंतु फिर भी पुरुषपुर नगर के राजपथों में कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। चार दिन हुए, नगरहार के पहाड़ी मार्गों से व्यापारी लोग नहीं आते जाते। कपिशा और वाह्लीक पर हूणों का अधिकार हो गया है। नए बलाधिकृत चंद्रसेन से कुछ करते धरते नहीं बनता। महाराजपुत्र पाटलिपुत्र में हैं। युवराज कहाँ हैं, यह

कोई नहीं जानता। पुरुषपुर के असहाय निवासी निराश होकर नगर से भाग रहे हैं। पुरुषपुर में पाटलिपुत्र के एक हजार पैदल सैनिक तो हैं, परंतु उनका कोई नायक नहीं है। विषयपति मद्य से मत्त हैं। नागरिकों को केवल कनिष्क चैत्य के संघस्थविर का ही भरोसा है।

दोपहर के समय गिरिसंकट के सामने कुछ धूल उड़ती हुई दिखाई दी। बुद्धभद्र की आज्ञा से नगर के सब द्वार बंद कर दिए गए और नागरिक लोग अपने अपने इष्ट देवता का स्मरण करने लगे। गिरिसंकट में मेघ पर मेघ उठने लगे। पश्चिम ओर धूल उड़ उड़कर आकाश तक पहुँचने लगी। बिना नाकवाले और नाटे सैकड़ों हजारों हूण सवारों ने पुरुषपुर नगर को चारों ओर से घेर लिया। मरने के लिये प्रस्तुत होकर एक हजार मागध सैनिक अस्त्र लिए हुए प्राकार पर जा खड़े हुए। लाखों आदमियों के साथ एक हजार सैनिक नहीं लड़ सकते। मागध वीरों ने कोई दो दंड तक प्राकार की रक्षा की। इसके उपरांत चारों ओर से हजारों हूण नगर में घुस आए।

नगर के पूर्व ओर एक निर्जन अट्टालिका में करुणादेवी और ऋषभदेव रहा करते थे। विपत्ति की सूचना पाकर प्रतीहार, पहरेवाले, दंडधर, दास और दासियाँ आदि सभी भाग गई थीं। हूण सेना ने जिस समय नगर पर अधिकार किया, उस समय अट्टालिका में करुणा और ऋषभ के अतिरिक्त और कोई नहीं था। देखते देखते हूण लोग अट्टालिका के पास आ पहुँचे। उनका गरजना सुनकर ऋषभदेव ने पूछा—क्यों देवी, अब तुम क्या करोगी?

करुणा ने सूखे हुए कंठ से उत्तर दिया—भला मैं क्या करूँगी!

ऋषभ०—देवी, यों तो अवस्था में मैं तुम्हारे पिता के समान हूँ; परंतु तुमने माता पिता के समान मेरा पालन किया है। यद्यपि तुम मेरे सखा और मित्र की पत्नी हो; परंतु फिर भी मैं तुम्हें मन में माता के समान ही समझता हूँ। आज अंतिम दिन है। अब तक मैं तुम्हें "देवी" ही कहा

करता था; परंतु आज से मैं तुम्हें माता कहकर पुकारूँगा। माता! मैं ज्ञान रहते अपनी आँखों से तुम्हारी किसी प्रकार की दुर्दशा न देख सकूँगा। आज तक कभी किसी पुत्र से अपनी माता की दुर्दशा देखी गई है?

करुणा—क्यों ब्राह्मण देवता, आज तुम्हारा भय कहाँ चला गया?

ऋषभ०—मैं स्वयं नहीं जानता; परंतु आज इतना अवश्य है कि और कोई बात मेरे मन में आती ही नहीं। माता! अब यह बतलाओ कि तुम क्या करोगी। तुम युवती भी हो और रूपवती भी। जंगलियों के हाथों तुम्हारी दुर्दशा की सीमा न रह जायगी। तुम क्षत्रिय कुल की वधू हो। सदा की प्रथा के अनुसार अपने स्वामी के कुल की मर्यादा की रक्षा करो।

करुणा—ऋषभ, मैं अभी मरूँगी नहीं।

ऋषभ०—भला यह कौन सी बात है! तुम मेरी माता और भानुमित्र की पत्नी हो। तुम्हें मरने का भय क्यों होने लगा?

करुणा—ऋषभ! जो बात तुम सोचते हो, वास्तव में वह नहीं है। मैं कभी मरने से नहीं डरती। अभी तो मैं मरूँगी नहीं। हाँ, यदि मुझे मरना होगा तो जब वे आवेंगे, और मैं फिर उनके दर्शन कर लूँगी, तब उनकी गोद में सिर रखकर आनंदपूर्वक मरूँगी।

ऋषभ०—तो क्या तुम हूणों का अत्याचार सह लोगी?

करुणा—बड़े आनंद से।

ऋषभ०—अपने धर्म की रक्षा कर सकोगी?

करुणा—तुम विश्वास रखो, संसार में कोई ऐसा नहीं है, जो करुणा के शरीर को स्पर्श तक कर सके।

इतने में हूणों ने पहुँचकर अट्टालिका को चारों ओर से घेर लिया। काठ का द्वार टूट गया और देखते देखते सैकड़ों हूण घर में घुस आए। वे एक कमरे में करुणा को देखकर मारे प्रसन्नता के चिल्ला उठे। एक व्यक्ति कमरे में घुसकर करुणा की ओर बढ़ा। उस समय वे पेटू गौड़ीय ब्राह्मण, जो किसी समय भूत प्रेत का नाम सुनकर मारे भय के आँखें बंद कर लिया करते थे, सहसा आपे से बाहर हो गए और उन्होंने

अनायास ही उस हूण को गर्दन पकड़कर दूर ढकेल दिया। अब और आठ-दस हूण कमरे में घुस आए। करुणा की रक्षा करने में निरस्त्र ऋषभदेव को बहुत से घाव लगे। उनका दाहिना हाथ कंधे पर से उखड़ गया, पैर में एक शूल भी बिंध गया और अंत में एक गदा लगने के कारण वे अचेत होकर गिर पड़े। उस समय हूण लोग करुणा का हाथ पकड़कर उसे ले चले। चलते समय सूखे नेत्रों और सूखे कंठ से करुणादेवी ने कहा—भइया, तुम लोगों ने मित्र वंश का अन्न ऋण चुका दिया!

उस समय नगर पर हूणों का अधिकार हो चुका था। नागरिक लोग स्थान स्थान पर मारे जा रहे थे और बुड्ढे तथा बालक दग्ध किए जा रहे थे। रूपवती युवतियाँ बाँध बाँधकर राजमार्गों पर लाई जा रही थीं। जिन लोगों ने करुणा को पकड़ा था, वे भी उसे उसी स्थान पर ले आए। कुछ क्षणों के उपरांत हूणों के एक नायक ने उन अभागी स्त्रियों को एक पंक्ति में खड़ा किया। जो स्त्रियाँ कम रूपवती थीं, वे तो सैनिकों के लिए छोड़ दी गईं, और जो अधिक सुंदरी थीं, वे नायकों के लिये रख ली गईं। इसके अतिरिक्त पचीस स्त्रियाँ ऐसी चुनी गईं जो सब से अधिक रूपवती थीं। वे सब हूणों के राजा के लिये रख छोड़ी गईं।

जलते हुए पुरुषपुर नगर के ठीक बीच में एक बड़े मैदान में हूणों के राजा विश्राम कर रहे थे। चारों ओर आग की लपटें उठ-उठकर आकाश तक पहुँच रही थीं। मैदान के चारों ओर लूट में मिली हुई वस्तुओं के ढेर लगे थे। हूणों के राजा स्त्रियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में वह नायक स्त्रियों को राजा के सामने ले आया। राजा ने एक एक करके उन सब की परीक्षा करने के उपरांत करुणादेवी के अंग पर हाथ रखा। उस जंगली के स्पर्श से करुणा काँप उठी। राजा ने उसका वस्त्र पकड़कर खींचा, जिससे उसका घूँघट खुल गया। वह अपनी छाती पर का आँचल दोनों हाथों से कसकर पकड़े रही। राजा के पास ही एक निरस्त्र बुड्ढा हूण खड़ा था। राजा के दूसरी बार आँचल खींचने पर करुणा ठठाकर हँस पड़ी। इसपर वह बुड्ढा हूण आगे बढ़ा। तीसरी बार आँचल खींचने पर करुणा के सिर के बाल खुल गए। उसके सामने से आँचल हट गया।

साथ ही साथ चारों ओर आग की लपटें दूनी हो गईं। फिर दूसरी बार करुणा के विकट हास्य से प्राचीन पुरुषपुर का ध्वंसावशेष गूँज उठा। राजा स्तंभित होकर खड़ा हो गया। सहसा ऊपर की ओर हाथ उठाकर करुणा कहने लगी—मैं अब तक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। अब तुम आ गए। चलो, चलें।

करुणा की यह बात सुनकर राजा मारे डर के दस हाथ पीछे हट गया। उस समय वही बुड्ढा हूण फिर धीरे धीरे आगे बढ़ा। फिर करुणा की विकट हँसी के कारण पुरुषपुर के अंगारे काँपने लगे। आग की लपटें दूने वेग से आकाश छूने लगीं और भय तथा आश्चर्य के मारे वह बुड्ढा हूण अधनंगी युवती के पैरों पर गिर पड़ा। सहसा हूण भाषा में शब्द हुआ—"माता"। वहाँ से कुछ दूर पर राजा खड़ा था। उसने भी घुटने टेककर डरते हुए कहा—"माता"। चारों ओर हूणों के प्रधान और नायक लोग घुटने टेककर माता का नाम जपने लगे। उस बुड्ढे हूण ने धीरे-धीरे करुणा की छाती पर से हटा हुआ वस्त्र फिर ज्यों का त्यों कर दिया और लूटे हुए पदार्थों के ढेर में से एक बहुमूल्य वस्त्र लाकर वहीं बिछा दिया। क्रोध के कारण करुणा की जो आँखें जलने लगी थीं, वे माता का नाम सुनकर धीरे धीरे ठिकाने आ गईं। करुणा उसी बिछे हुए वस्त्र पर बैठ गई।

सारे विजयी हूण सैनिकों में बिजली की भाँति यह समाचार फैल गया कि माता आई हैं। हूण सैनिकों के दल के दल माता के दर्शनों के लिए आने लगे; और दूर ही से देवी के दर्शन करके माता का नाम उच्चारण करते हुए आकाश गुँजाने लगे। पुरुषपुर के जो निवासी अब तक मारे जाने से बचे हुए थे, उनकी रक्षा हो गई।

रात का तीसरा पहर बीत जाने पर एक गंजा, हथकटा और लहू-लुहान बुड्ढा नगर के मार्गों में किसी को ढूँढता फिरता था। पुरुषपुर के नागरिक मार डाले गए थे और उनकी स्त्रियाँ, कन्याएँ, माताएँ और बहनें रोती फिरती थीं। बुड्ढा ध्यानपूर्वक एक एक करके सब का मुँह

देखता फिरता था; परंतु जिसको वह ढूँढ़ रहा था, उसको नहीं पाता था। वह धीरे धीरे नगर का राजपथ छोड़कर बीचवाले मैदान में आ पहुँचा। उस समय हूण सैनिक सोए हुए थे। भय के कारण और नगरवासी वहाँ नहीं आते थे। वृद्ध ने देखा कि अँधेरे में मैदान के बीच में एक बहुमूल्य वस्त्र पर एक अधनंगी युवती बैठी हुई है। वृद्ध ने दूर से ही पूछा—कौन ?

उत्तर मिला—मैं हूँ, माता।

स्त्री का स्वर सुनकर वृद्ध के रोंगटे खड़े हो गए। वह "माता! माता!" चिल्लाता हुआ युवती की ओर बढ़ा। युवती के पास ही वह बुड्ढा हूण बैठा था। उसने भारतीय भाषा में पूछा—कौन ?

वृद्ध बिना कोई उत्तर दिए, युवती के पैरों पर गिर पड़ा।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

संघाराम में राष्ट्रनीति

नई पट्टमहादेवी अनंता जब प्राचीन गुप्त-साम्राज्य के और भी प्राचीन आर्यपट्ट पर बैठी, तब पाटलिपुत्र नगर का प्राचीन कपोतिक संघाराम सहसा समृद्ध हो गया; और उसके अधेड़ महाविहारस्वामी मानों सहसा फिर से युवावस्था में आ गए। जिस समय प्राचीन साम्राज्य के पुराने राजपुरुष लोग दूसरे दूसरे देशों में थे, जिस समय मगध के सैनिक और सेनापति लोग सीमा प्रांत में थे, उस समय वह पुराना कपोतिक संघाराम, जिसे लोग बहुत दिनों से छोड़ चुके थे, सहसा फिर से सुशोभित हो गया। अब महाविहार में नित्य महोत्सव होने लगे। परंतु इससे पाटलिपुत्र के निवासी विस्मित नहीं हुए। इसका कारण यह था कि उस समय तक उनका विस्मय अपनी सीमा से भी आगे बढ़ गया था।

प्राचीन कपोतिक संघाराम के सैकड़ों हजारों चैत्यों और बुद्ध बोधिसत्व मंदिरों में दंड दंड पर पूजा और पहर पहर पर आरती होने लगी। विशाल महाविहार में सदा उपासकों और उपासिकाओं का कोलाहल मचा रहता था। चारों ओर फूल, चंदन और सुगंधित धूप, दीप आदि ही दिखाई देते थे। रात के समय भी वहाँ उपासकों और उपासिकाओं की कमी नहीं रहती थी। संघाराम के चारों फाटक दिन रात खुले रहते थे। जिस दिन पाटलिपुत्र के प्राचीन सभामंडप में वृद्ध महामंत्री दामोदर शर्म्मा ने वीणा बजाई थी, उसी दिन आधी रात के समय मंजुश्री विहार में आरती हो रही थी। वह छोटा सा विहार उपासकों और उपासिकाओं से भरा हुआ था। महाविहारस्वामी हाथ में गंध दीप और वज्र घंटा लिए हुए मंजुघोष की आरती में लगे हुए थे। सोने के नए बने हुए सिंहासन पर ब्रह्मशिला की बनी हुई उज्ज्वल मूर्ति सैकड़ों दीपकों के प्रकाश में हँसती हुई जान पड़ती थी। आरती समाप्त होने पर उपासकों ने पत्तों में लपेटी हुई फूल-मालाएँ महाविहारस्वामी के हाथ में दीं। चाँदी की चमकती हुई मुद्राएँ दक्षिणा स्वरूप लेकर हरिबल चंदन में बसाई हुई कुंद की मालाएँ मंजुश्री के चरणों में रख रहे थे। सबके अंत में एक घूँघटवाली उपासिका ने वट के पत्तों में लपेटी हुई कुंद की जगह करवीर की माला महाविहारस्वामी के हाथ में दी। माला लेते ही हरिबल चौंक पड़े। उस सफेद करवीर की माला में लाल करवीर का भी एक छोटा फूल था। हरिबल ने उपासिका के मुँह की ओर देखा। उसने अपने वस्त्रों में से मूँगे से जड़ी सोने की एक अँगूठी निकालकर महाविहारस्वामी को दी। हरिबल घबराए हुए मंजुश्री विहार से निकलकर कपोतिक संघाराम के तीसरे खंड पर जा पहुँचे। वह घूँघटवाली स्त्री भी उनके पीछे पीछे थी। तीसरे खंड की एक कोठरी में पहुँचकर हरिबल ने द्वार बंद कर दिया। स्त्री ने घूँघट हटाकर उन्हें लिपटा लिया। अधेड़ महाविहारस्वामी ने हँसते हुए पूछा—क्यों, बात क्या है? क्या अभी तक अभिसार की इच्छा बनी हुई है?

स्त्री ने घबराहट से कहा—हरिबल, यह परिहास का समय नहीं है। बस, अब सर्वनाश हुआ चाहता है।

हरि०—क्यों ? इंद्रलेखा, तुम्हारा सर्वनाश कैसा ? साम्राज्य तुम्हारे हाथों में है और सम्राट् तुम्हारी कन्या के पैरों पर लोटते हैं। फिर भला तुम्हारा सर्वनाश कौन कर सकता है ?

इंद्र०—जो कर सकता है, वह आ गया।

हरि०—कौन, दामोदर ?

इंद्र०—हाँ।

हरि०—जिस बुड्ढे साँप के दाँत तोड़ दिए गए हों, वह काट तो सकता है, परंतु उससे तुम्हारी कोई हानि नहीं हो सकती।

इंद्र०—साथ ही एक और भी आया है।

हरि०—वह कौन ? गोविंद ?

इंद—हाँ, पर यह सब सुनकर भी तुम क्योंकर निश्चिंत बैठे हो ?

हरि०—तुम व्यर्थ की आशंका कर रही हो। जब तक अनंता का यौवन है, रूप है, नयनों का कटाक्ष है, भावभंगी है, तब तक तुम्हारे लिये चिंता की कोई बात नहीं है। और अनंता की युवावस्था ढलने से बहुत पहले ही कुमारगुप्त चिता पर पहुँच जायँगे। साम्राज्य में चंद्रगुप्त के छोटे पुत्र कुमारगुप्त की बराबरी का और गोविंदगुप्त के समान बुद्धिमान और कोई है या नहीं, इसमें संदेह ही है। परंतु शकमंडलेश्वर गोविंदगुप्त कितने दिनों तक पाटलिपुत्र में रहेंगे ? ज्योंही गोविंदगुप्त आँखों की ओट होंगे, त्योंही कुमारगुप्त उनकी सब बातें भूल जायँगे। उस समय अनंता का तीव्र कटाक्ष ही समुद्र तक और हिमालय से कुमारिका तक विस्तृत गुप्तसाम्राज्य का राज्य करेगा।

इंद्र०—कदाचित् तुम यह नहीं जानते कि बात कहाँ तक बढ़ गई है।

हरि०—क्यों क्या हुआ है ?

इंद्र०—उस दिन प्रातःकाल की सभा में जो कुछ हुआ था, वह तुमने सुना है ?

हरि०—हाँ, सब सुना है। परंतु एक बात है। अनंता अभी बालिका है। उसे जिस पद पर हम लोगों ने बैठाया है, उस पद के उपयुक्त शिक्षा

उसे नहीं मिली है। अतः बहुत सावधानी से उसकी देख रेख होनी चाहिए। यदि सहसा कोई नई बात की जायगी तो साम्राज्य में विद्रोह खड़ा हो जायगा। अतः पुरानी बातों में बहुत धीरे धीरे परिवर्तन करना चाहिए।

इंद्र०—क्या करूँ, सबसे बड़ी कठिनता तो यह है कि राजकुल के अथवा दूसरे उच्च कुल के लोगों में से कोई अनंता को पट्टमहादेवी मानना नहीं चाहता। और जब उसे कोई अभिवादन नहीं करता, तब वह आपे से बाहर हो जाती है।

हरि०—उसे समझा दो कि सब कुछ चुपचाप सह लिया करे। राष्ट्रनीति का पथ सुगम नहीं है। उसे धीरे धीरे सब काम करना सिखलाओ, नहीं तो सचमुच सर्वनाश हो जायगा।

इंद्र०—प्रासाद में जो कुछ हुआ है, वह तुमने सुना है?

हरि०—यही न कि गोविंद ने आकर दामोदर को मुक्त कर दिया है?

इंद्र०—केवल इतना ही नहीं, और भी बहुत सी बातें हुई हैं।

हरि०—वह क्या क्या?

इंद्र०—वह बुड्ढा गोविंद को देखकर रोने लगा। उसने यह स्वीकार करा लिया है कि अब राजकार्य में कोई हस्तक्षेप न करेगा। अब वह बुड्ढा गीदड़ दामोदर जो कुछ करेगा, वही होगा। बुड्ढा अनंता के साथ ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में रहा करेगा और दोनों समय दो मुट्ठी अन्न पावेगा। इसके अतिरिक्त वह कुछ चाहता ही नहीं।

हरि०—यह तो और भी अच्छा है।

इंद्र०—हैं! यह तुम कैसी बातें कर रहे हो? क्या तुम पागल हो गए हो?

हरि०—क्यों?

इंद्र०—यदि वह बुड्ढा गीदड़ ही राज्य का शासन करेगा, तो फिर हम लोग क्या करेंगे? बुड्ढे बंदर के गले में बढ़िया मोतियों का हार क्या इसीलिये पहनाया गया है?

हरि०—अब अनंता क्या कर रही है?

इंद्र०— उसने अंगराग और खाना पीना आदि सब कुछ छोड़ दिया है, और खाट पर पड़ गई है। भूखों रहने के कारण मेरा सोने का कमल सूख गया है।

हरि०—उससे कह दो कि शांत रहे। गोविंद के जाते ही फिर सब कुछ हम्हीं लोगों के हाथ में आ जायगा। इस समय सब काम धीरे धीरे करना चाहिए। व्यर्थ घबराने से हम लोगों का अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। जो लोग इस समय अनंता को अभिवादन करना नहीं चाहते, वे आगे चलकर पाटलिपुत्र की गलियों में भीख माँगेंगे। बिना वैष्णव राजवंश का नाश किए मैं शात नहीं हो सकता। स्कंदगुप्त वंदी हो गया न?

इंद्र०—भाई के अनुरोध से बुड्ढे ने अपनी वह आज्ञा भी लौटा ली है। हरि०—तो फिर उसमें बात ही क्या है। दो दिन में फिर एक नई आज्ञा हो जायगी।

इंद्र०—गोविंद इस समय युद्ध की चिंता से व्याकुल हो रहा है।

हरि०—क्यों?

इंद्र०—हूण जाति बहुत ही प्रबल हो गई है।

हरि०—यह तो और भी अच्छी बात है।

इंद्र०—अच्छी बात कैसे है? यदि शत्रु का नाश न किया जायगा, तो फिर साम्राज्य का ही नाश हो जायगा न।

हरि०—हुआ करे। इससे तो हम लोगों का लाभ ही होगा।

इंद्र०—तुम कैसी बातें करते हो? यदि साम्राज्य ही चला जायगा, तो फिर हम लोग शासन किसका करेंगे?

हरि०—मगध का।

इंद्र०—मगध तो छोटा सा देश है।

हरि०—फिर भी हमारे तुम्हारे लिये यथेष्ट ही है। हमारे लिये तो जैसे हूण शत्रु हैं, वैसे ही गोविंद, दामोदर, स्कंद और वैष्णव कुल के दूसरे लोग भी शत्रु हैं। एक शत्रु को नष्ट करने में दूसरे शत्रु का नाश हो, और चाहे साम्राज्य रसातल को चला जाय, हमारे लिये तो यदि केवल मगध का ही राज्य बच जायगा, तो भी यथेष्ट ही होगा।

इंद्र०—तो क्या जगद्विख्यात् प्राचीन गुप्तसाम्राज्य इसी प्रकार नष्ट कर दिया जायगा ?

हरि०—इसमें हानि ही क्या है ?

इंद्र—गुप्तवंश तो अनंता का श्वसुर-वंश ठहरा न।

हरि०—तुम्हें ऐसी ममता कब से हो गई ? क्या मंदमलयानिल का आकर्षण बढ़ गया ?

इंद्र०—लोग क्या कहेंगे ?

हरि०—इसकी चिंता छोड़ दो। जिस प्रकार फल्गुयश के मरने पर तुम्हें चंद्रसेन मिल गया था, उसी प्रकार बुड्ढे के मरने पर अनंता के लिये नया श्वसुरवंश भी मिल जायगा।

इंद्र०—मैं जो कुछ कर चुकी, वह तो कर ही चुकी; परंतु अब मैं चाहती हूँ कि अनंता को तो ऐसा न करना पड़े।

हरि०—इस पातिव्रत का आरंभ तो बहुत ही मंगलमय हुआ है।

इंद्र०—जो कुछ हुआ है, वह तो तुम्हारे ही कारण हुआ है। जिस दिन मैं प्रासाद में नाचने गई थी, उस दिन तुम्हारे ही कहने से न अनंता को भी अपने साथ लेती गई थी ?

हरि०—यदि तुम मेरी बात न मानतीं, तो क्या इतने दिनों तक अनंता आर्य्यावर्त्त म बैठी रह सकती थी ? देखो इंद्रलेखा, पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, सब कुछ मनुष्यो का ही बनाया हुआ है। हम लोग भी तो मनुष्य ही हैं न। तो फिर हम लोग भी नए विचार क्यों न करें ? हम लोगों का पाप नया है, पुण्य नया है, धर्म नया है, और अधर्म भी नया है। उत्तरापथ और दक्षिणापथ में सद्धर्म फिर से स्थापित करने के लिये मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसके लिये त्रिकाल में त्रिभुवन मेरा यश गावेगा।

इंद्र०—देखो हरिबल, मैं एक साधारण वेश्या हूँ। मैंने बहुत पाप किए हैं और बहुत से महापातकी भी देखे हैं। परंतु तुम्हारे ऐसा देशद्रोही, धर्मद्रोही और महापातकी मैंने आज तक कभी नहीं देखा। त्रिकाल में त्रिभुवन तुम्हारा यश नहीं गावेगा; वह तो सदा तुम्हारे नाम पर थूकेगा।

तुम केवल अपने स्वार्थ के लिये ऐसा विशाल आर्यावर्त्त देश, ऐसा विस्तृत गुप्त साम्राज्य, ऐसी पवित्र पितृभूमि जंगली हूणों के हाथों में दे देना चाहते हो। तुम्हारा ठिकाना तो नरक में भी न लगेगा।

हरि०—इंद्रलेखा, तुम बिगड़ क्यों गईं? क्रोध जाने दो, और मैं जो कुछ कहता हूँ वह सुनो।

इंद्र०—क्या कहते हो, कहो?

हरि०—मैं बहुत कुछ सोच विचार चुका हूँ, परंतु कुछ होता दिखाई नहीं देता। अनंता को आर्यपट्ट पर बैठाकर गुप्तसाम्राज्य का भली भाँति शासन करना संभव नहीं है। जब तक समुद्रगुप्त का साम्राज्य नष्ट न होगा, जब तक वैष्णव राजवंश का नाश न होगा, तब तक सद्धर्म का फिर से उद्धार भी नहीं होगा। अनंता अधिक समय तक उस आर्यपट्ट पर न ठहर सकेगी।

इंद्र०—क्यों?

हरि०—यह सब बातें तुम नहीं समझ सकोगी।

इंद्र०—समझ क्यों न सकूँगी! तुम बतलाओ तो।

हरि०—उसमें बहुत सी बातें हैं। बुड्ढे के मर जाने पर भी यदि स्कंध जीता रहा, तो वह अनंता, को शासन न करने देगा। प्राचीन राजवंश के सभी लोग स्कंद की ही सहायता करेंगे। क्योंकि उन लोगों ने जिस नीति की दीक्षा पाई है, स्कंदगुप्त को भी उसी नीति की दीक्षा मिली है। इसी राष्ट्रनीति की सहायता से समुद्रगुप्त ने सद्धर्म महासंघ और बौद्ध राज्य का नाश करके नया साम्राज्य स्थापित किया था। जब तक इस वैष्णव साम्राज्य, वैष्णव राजवंश और समुद्रगुप्त की राष्ट्रनीति का जड़ मूल से नाश न किया जायगा, तब तक न तो सद्धर्म का उद्धार ही हो सकेगा और न आर्य्यावर्त्त में बौद्ध साम्राज्य ही स्थापित हो सकेगा। अनंता का पुत्र सद्धर्मी होगा, और वही मगध का राजा होगा। परंतु साम्राज्य बनाने में बहुत समय लगेगा। इंद्रलेखा, जिस साम्राज्य को बनाने में सौ वर्ष लग चुके हैं, वह पलक

मारते मिट्टी में मिल सकता है। परंतु उसे फिर से बनाने में और सौ वर्ष लग जायँगे। अतः तुम जाओ और अनंता को समझा दो कि सब काम बहुत ही सावधानी से करे। नहीं तो भारी विपत्ति आ पड़ेगी। क्यों जी, क्या आज रात भर तुम संघाराम में ही रहोगी ?

इंद्र०—युवावस्था कब की बीत चुकी, परंतु पाप की ओर से तुम्हारी बुद्धि अभी तक नहीं हटी। बुड्ढे हो गए हो, अंत समय आ चला है, चार दिन में चिता पर जा पड़ोगे। अब तो पाप-कर्म की चिंता छोड़ दो।

हरि०—शरीर का यौवन चला गया है तो क्या हुआ, परंतु मन का यौवन तो अभी तक नहीं गया। पाप पुण्य की बातें तो मैं तुम्हें पहले ही बतला चुका हूँ। अपना पाप और अपना पुण्य अपनी आवश्यकता के अनुसार मैं अपने मन में ही बना लेता हूँ। चंद्रसेन तो शकमंडल में है। यदि आज तुम संघाराम में ही रात भर रह जाओ, तो इसमें तुम्हारी क्या हानि है ?

इंद्र०—तुम शीघ्र मरो और चिता पर पहुँचो। मेरी ऐसी वासनाएँ बहुत दिनों पहले ही नष्ट हो चुकी हैं। मेरे शरीर और मन दोनों का यौवन बीत चुका है।

हरि०—तो क्या केवल चंद्रसेन को ही देखकर सोलह वर्ष की अवस्था लौट आती है ?

इंद्र०—तुम मर जाओ। तुम्हारे मुँह में आग लगे।

इतना कहकर चालीस वर्ष की वह प्रौढ़ा, युवती की भाँति अंग मटकाती और मुसकराती हुई, कोठरी से निकलकर चली गई।

छठा परिच्छेद

हाहाकार

जिस समय युवती पट्टमहादेवी को पाकर वृद्ध सम्राट् कुमारगुप्त ने अपने आपको विलास के समुद्र में डाल दिया था, जिस समय पाटलिपुत्र

के प्राचीन राजप्रासाद में नित्य महोत्सव हुआ करते थे, जिस समय प्रासाद के संगमरमर के कमरों में कादंब और गौड़ीय मद्य की नदियाँ बहा करती थीं, उस समय प्राचीन गुप्त साम्राज्य के पश्चिम प्रांत में जन्म से ही सुख में पले हुए और सदा आनंद करनेवाले पचीस वर्ष के एक युवक आर्य्यावर्त्त के उद्धार के लिये कमर कसकर तैयार हो रहे थे। जिस समय नई पट्टमहादेवी अनंता ने वृद्ध महामंत्री दामोदर शर्मा को दंड की आज्ञा सुनाई थी, उसी समय वे युवक भूखे प्यासे और धूल में लिपटे हुए, दुर्बल घोड़े पर चढ़कर पुरुषपुर के आस पास पहाड़ियों पर घूम रहे थे और उत्सुक नेत्रों से चारों ओर देख रहे थे। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहाँ तक केवल खंडहर और राख के ढेर दिखाई देते थे। गांधार और उद्यान की सुप्रसिद्ध हरी भरी और उपजाऊ भूमि की जगह युवक को केवल भीषण मरुभूमि ही दिखाई पड़ती थी। सामने पुरुषपुर नगर का पत्थर का बना हुआ राख से ढका निर्ज्जन परकोटा था। युवक टक लगाए, राख के उन्हीं ढेरों की ओर देख रहे थे। इतने में उनके पीछे से एक दुबले पतले घोड़े पर सवार उन्हीं के समवयस्क एक और युवक ने आकर उनके कंधे पर हाथ रखा और पूछा—भइया, क्या देख रहे हैं?

पहले युवक चौंक पड़े और दूसरे युवक की ओर देखकर बोले—कौन? हर्ष! बहुत दिनों के उपरांत पुरुषपुर नगर देख रहा था।

हर्ष०—क्या देखा?

युवक—मैंने जो कुछ अपने मन सोचा था, वही देखा।

हर्ष०—क्यों भइया, अब भानु को किस प्रकार समझावेंगे?

युवक—भाई, जिसका काम सदा युद्ध करना ही हो, उसे कोई कैसे समझा बुझा सकता है? क्षत्रिय लोग सब प्रकार के शोक और दुःख सहने का अभ्यास करके तब योद्धा बनते हैं। तलवार ही क्षत्रिय के लिये पिता, भाई, माता, बहन और कन्या है। क्षत्रिय के लिये केवल तलवार ही स्त्री है और तलवार ही देवता है। भानुमित्र वीर हैं। उन्होंने सैकड़ों युद्धों में असाधारण वीरता दिखलाई है। उन्हें अधिक समझाने—

सहसा युवक का गला भर आया। उनके पीले पड़े हुए गालों पर दो बूँद आँसू टपक पड़े। यह देखकर हर्षगुप्त ने कहा—युवराज, जब आप ही रोने लग गए, तब तो भानु और न जाने क्या करेंगे।

रुँधे हुए गले से युवराज ने कहा—भाई, माता जी करुणा का बहुत ही आदर करती थीं। कौन जानता था कि वह इस प्रकार हम लोगों के हाथों से निकल जायगी।

हर्ष०—तो क्यों भइया, क्या अब यही समझ लिया जाय कि करुणा अब इस संसार में नहीं है।

स्कंद०—भाई, अभी तक तुम बालक हो। तुम क्या जानो कि करुणा क्षत्रिय की कन्या और क्षत्रिय की स्त्री थी। वह प्राण देना जानती थी।

हर्ष०—परंतु यह तो बहुत ही अच्छी बात है कि वह हूणों के हाथों में नहीं पड़ी और स्वयं ही मर गई।

स्कंद०—तो क्या तुम यह समझते थे कि हूणों ने उसे पकड़ लिया?

हर्ष०—हाँ।

स्कंद०— नहीं, स्वप्न में भी ऐसा विचार न करना। मैंने स्वयं उसे अस्त्र चलाना सिखलाया था। वह अपनी रक्षा करना भी जानती है और मरना भी।

सहसा पहाड़ के नीचे एक छोटे पहाड़ी मार्ग पर घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। हर्षगुप्त ने चौंककर कहा—भइया भानु—

हर्षगुप्त की बात सुनकर युवराज के मुँह का रंग बदल गया। उन्होंने काँपते हुए स्वर से पूछा—क्यों हर्ष, सेनादल कहाँ है?

हर्ष०—वह तो पहाड़ी मार्ग में चला गया।

स्कंद०— तुम शीघ्र जाओ और जाकर चक्रपालित तथा बंधुवर्मा से कह दो कि वे मालव और सौराष्ट्र के सवारों को लेकर चटपट पुरुषपुर में प्रवेश करें।

हर्ष०—आप कहाँ जायँगे?

स्कंद०—मैं भानु को अकेले शत्रुओं के हाथ में नहीं जाने दूँगा।

बात समाप्त होने के पहले ही युवराज ने अपना घोड़ा बढ़ाया। यह देखकर कुमार हर्षगुप्त उनके पास चले गए और बोले—भइया, आप क्षण भर ठहरें; अभी सब सवार—

युवराज ने विरक्त होकर कहा—भाई, अब मुझे न रोको। बहुत दिनों से भानु के मुझ पर अनेक ऐसे ऋण हैं जिन्हें मैं आज तक चुका नहीं सका था। आज ईश्वर ने मुझे उन ऋणों का एक कण चुकाने का अवसर दिया है। तुम मेरे कारण विलंब न करो और तुरंत मालव तथा सौराष्ट्र के सैनिकों को लेकर पुरुषपुर के फाटक पर आओ।

हर्ष०—आर्य, आप इतना तो समझ लें कि यदि कहीं आप पर कोई विपत्ति आई, तो सर्वनाश ही हो जायगा।

स्कंद०—भाई, तुम तो दूत के मुँह से सुन ही चुके हो कि मगध-साम्राज्य में अब स्कंदगुप्त की कोई आवश्यकता नहीं है। तो फिर सर्वनाश किसका होगा? व्यर्थ बातें करके समय नष्ट न करो और जहाँ तक शीघ्र हो सके. पुरुषपुर के फाटक पर आओ। यदि मुहूर्त भर का भी विलंब हुआ, तो तुम्हें भानु के अथवा मेरे शरीर का कहीं चिह्न भी न मिलेगा।

इतना कहकर युवराज शीघ्रतापूर्वक भानुमित्र के पीछे बढ़े। हर्षगुप्त ने एक मुहूर्त भर ठहरकर धीरे से कहा—देव! यदि आप आर्यपट्ट पर बैठेंगे, तब तो मगधसाम्राज्य की रक्षा हो जायगी; और नहीं तो स्वयं वासुदेव के चक्र धारण करने पर भी आर्य्यावर्त्त की रक्षा न होगी।

इतजा कहकर कुमार हर्षगुप्त पहाड़ पर से उतरे और गिरिसंकट की ओर बढ़े।

युवराज स्कंदगुप्त कोई आधे दंड में ही गिरिसंकट से पुरुषपुर के पश्चिम फाटक पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने घोड़े की रास छोड़ दी और एक हाथ में नंगी तलवार और दूसरे हाथ में एक बड़ा भाला ले लिया। सीखा हुआ घोड़ा पत्थर के मार्ग पर से होता हुआ उस विशाल फाटक में घुसा। स्कंदगुप्त ने विस्मित होकर देखा कि फाटक, राजमार्ग और अट्टालिकाएँ आदि सभी निर्जन हैं। फाटक के अधजले किवाड़ वहीं पड़े थे। प्राकार

और फाटक के पास सैकड़ों मृत शरीर इधर उधर पड़े थे, जिन्हें कुत्ते और गीदड़ निश्चिंत होकर खा रहे थे। भीषण युद्ध के सभी चिह्न वहाँ वर्तमान थे। हाँ, नगर में विजयी सैनिकों के उपस्थित होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता था। युवराज की समझ में न आया कि अब क्या किया जाय। वे कुछ समय तक फाटक के पास ही घोड़े को रोककर खड़े रहे। परंतु जब उन्होंने देखा कि कोई तृण आता जाता नहीं है, तब उन्होंने फिर अपना घोड़ा बढ़ाया। घोड़ा करुणा के निवास-स्थान की ओर बढ़ा। जिस अट्टालिका में करुणादेवी और ऋषभदेव रहते थे, उसके चारों ओर के उद्यान में बहुत से घोड़ों और मनुष्यों के पैरों का चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहा था। इतना ही नहीं, वह सारा उद्यान नष्ट भ्रष्ट भी हो गया था। उसी स्थान पर भानुमित्र का घोड़ा निश्चिंत भाव से घूम रहा था। यह देखकर अट्टालिका से कोई पचीस पग दूर ही युवराज अपने घोड़े पर से उतर पड़े। बहुत ही व्याकुल होकर उन्होंने चिल्लाकर पुकारा "भानु"। पुरुषपुर नगर के पत्थर के बने प्राकार में गूँजकर उनकी वह पुकार फिर उसी उद्यान में लौट आई। उस समय स्कंदगुप्त ने भाला फेंक दिया और हाथ में केवल तलवार लेकर पागलों की भाँति उस निर्जन अट्टालिका में प्रवेश किया। तीसरे खंड पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि अलिंद में वर्म पहने हुए भानुमित्र पत्थर की मूरत की भाँति निश्चल खड़े हैं। उन्होंने फिर व्याकुल होकर पुकारा—"भानु"। परंतु फिर भी गौड़ीय महाबलाधिकृत के कानों में उनका शब्द न पहुँचा। स्कंदगुप्त ने आगे बढ़कर भानुमित्र के कंधे पर हाथ रखा। मानों पत्थर की मूरत हिली। युवराज ने अपने मित्र को गले लगाकर पूछा—भानु, करुणा कहाँ है?

सहसा उस पत्थर की मूरत के हाथ की तलवार कोष से निकली और शब्द करती हुई लोहे के शिरस्त्राण से जा मिली। इसके उपरांत तलवार का सिरा कमरे में सूखे हुए लहू की धार की ओर बढ़ा। अब मानों पत्थर की मूरत बोलने लगी। भानुमित्र ने कहा—बस, देखिए यही है। यही सूखा हुआ लहू कल उसके शरीर की नस नस में दौड़ रहा था।

पत्थर की मूरत फिर हिली। सैकड़ों युद्धों में बहुत ही वीरतापूर्वक

लड़नेवाले योद्धा भानुमित्र का शरीर एक कोमलांगी के कोमल अंग का बहा हुआ लहू देखकर मूर्छित हो गया और मानों आप से आप भूमि पर गिर पड़ा। उस समय स्कंदगुप्त ने यह समझकर कि यह लहू करुणा का ही है, आँसू भरी आँखों से उसकी ओर देखा। युवराज सोच रहे थे कि जो करुणा बाल्यावस्था से ही बड़े सुख और लाड़ प्यार से पली थी, उसने अपने कोमल शरीर पर अस्त्रों का आघात किस प्रकार सहा होगा। मृत्यु की कठोर मूर्त्ति को उसने किस प्रकार गले लगाया होगा।

जब भानुमित्र के मूर्छित होकर गिरने के कारण शब्द हुआ, तब युवराज चौंक पड़े। स्कंदगुप्त ने तुरंत ही अचेत भानुमित्र का मस्तक अपनी गोद में ले लिया और रोते रोते कहा—भानु! क्या यही सब दिखलाने के लिये मैं तुम्हें पुरुषपुर लौटा लाया था? करुणा के मर जाने पर अब तुम और कितने दिनों तक जीवित रह सकोगे। अब तो हूण युद्ध में तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है।

स्कंदगुप्त ने भानुमित्र का शिरस्त्राण और अंगरक्ष खोल दिया। कोई क्षण भर में भानुमित्र सचेत हुए, और तुरंत उठ बैठे। युवराज ने पूछा—भानु, तुम्हारा चित्त कुछ ठिकाने हुआ?

सहसा उनकी ओर देखकर भानुमित्र ने पूछा—युवराज, आप कब आए? करुणा कहाँ गई?

युवराज ने धीरे धीरे अपने मित्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा भाई, परमेश्वर ने ही हम लोगों को करुणा दी थी और परमेश्वर ने ही फिर उसे ले लिया। तुम क्षत्रिय हो, वीर हो, योद्धा हो, शोक छोड़ दो। क्षत्रिय की कन्या और क्षत्रिय की पत्नी ने अपने धर्म की रक्षा के लिये अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया। करुणा के अतुलनीय रूप का चिह्न अब संगमरमर पर का यह सूखा हुआ रक्त ही रक्त है।

सहसा भानुमित्र ठठाकर हँस पड़े। उनकी उस भीषण हँसी से वह सूनी अट्टालिका काँप उठी। उस हँसी की और भी भीषण प्रतिध्वनि क्षण ही भर में

पत्थर के बने नगर प्राकार में घूमकर लौट आई। उन्होंनें कहा—युवराज, कदाचित् आप में बुद्धि नहीं है। क्या आप समझते हैं कि करुणा मर गई?

स्कंद०—भाई, करुणा मगध साम्राज्य की पट्टमहादेवी पाली हुई कन्या थी। जंगली हूणों का कलुति हाथ कभी उसके सुंदर और पवित्र शरीर को स्पर्श नहीं कर सकता।

भानुमित्र के ठहाके से फिर वह अट्टालिका काँप उठी। उन्होंने कहा—भूलते हैं, युवराज आप भूलते हैं। करुणा कभी मर नहीं सकती। मैं आपको स्पर्श करके शपथपूर्वक कहता हूँ, झूठ नहीं कहता। करुणा अभी तक मरी नहीं है। वह मर नहीं सकती।

स्कंद०—भाई, तुम शांत हो। अपने चित्तको स्थिर करो। देखो, सामने विपत्तियों का पहाड़ है। हम लोगों को इसका परिशोध लेना पड़ेगा। युद्ध में कुलवधू मारी गई है। वह असहाय और अस्त्रहीन स्त्री जंगलियों के अस्त्रों से मारी गई है। राज्य रसातल को चला जाय, राष्ट्रनीति समुद्र में डूब जाय, परंतु इसका परिशोध अवश्य होगा। सुनो—

भानु०—युवराज, आप पागल हो रहे हैं। करुणा कभी मर ही नहीं सकती। इसी अलिंद में चंद्रमा की सुंदर चाँदनी में उसने मुझे स्पर्श करके शपथपूर्वक कहा था कि मैं मरूँगी नहीं। चाहे जहाँ रहूँ और चाहे जब संभव हो, फिर लौट आऊँगी। युवराज, करुणा छिपी हुई है। वह जान बूझकर किसी दूसरे कमरे में किवाड़ की आड़ में अथवा झरोखे में छिप गई है। अभी यह अट्टालिका उसकी मधुर हँसी से गूँज उठेगी। करुणा! करुणा!

कातर कंठ की वह पुकार नगर प्राकार में गूँजकर फिर लौट आई। परंतु झरोखे अथवा किवाड़ की ओट में से कोमल हँसी नहीं सुनाई पड़ी; पत्थर की छत पर कोमल पैरों की आहट नहीं सुनाई पड़ी; और किसीके चंचल पैरों के घुँघरुओं की झनकार भी नहीं हुई। भानुमित्र कातर स्वर से बार बार करुणा को पुकारते रहे। उनकी पुकार हूणों के शिविर में अचेत पड़ी हुई करुणा के कानों तक पहुँची या नहीं, यह बात अंतर्यामी ही जानता है।

सहसा भानुमित्र उठकर पास ही की एक कोठरी में चले गए। उन्होंने समझा था कि किवाड़ की आड़ में उस चंपक वर्णों का आँचल शीघ्रता से एक ओर हट गया। एक एक करके भानुमित्र ने उस निर्जन अट्टालिका में चारों ओर करुणा की छायामूर्ति को पागलों की तरह ढूँढ़ना आरंभ किया। जब स्कंदगुप्त ने देखा कि वे किसी प्रकार शांत ही नहीं होते हैं, तब वे भी दुःखित होकर उनके पीछे हो लिये। उसी समय सैकड़ों थके हुए मागध सैनिक अट्टालिका के सामने एकत्र हो रहे थे। उनके वर्मों और अस्त्रों आदि की झनकार को पागल भानुमित्र भ्रम से करुणा के नूपुर और किंकिणी की झनकार समझ रहे थे। अट्टालिका के द्वार पर बंधुवर्मा, चक्रपालित और कुमार हर्षगुप्त घोड़ों पर से उतर रहे थे। उनके उतरने के समय लोहे के वर्म में तलवार टकराने के कारण जो शब्द होता था, वह भानुमित्र को करुणा के शरीर के गहनों की झनकार के समान जान पड़ता था। उन्होंने तुरंत दूसरे खंड की एक दूसरी कोठरी में घुसते हुए कहा—बस करुणा, अब तुम नहीं जा सकती। अब की मैंने तुम्हें पकड़ लिया। करुणा—करुणा—

उस समय अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की किरणे मागध सैनिकों के वर्म पर पड़कर चमक रही थीं। यह देखकर भानुमित्र क्षण भर के लिये स्थिर होकर खड़े हो गए। गौड़ीय महाबलाधिकृत की यह दशा देखकर मागध सैनिकों ने सिर झुका लिया। उन लोगों ने भानुमित्र को बहुत ही कातर स्वर से करुणा को पुकारते हुए सुना था। उनमें से बहुत से लोग सम्राट् की पाली हुई कन्या और महावीर गौड़ीय महाबलाधिकृत की स्त्री करुणा को जानते और पहचानते थे। वे लोग यह भी जानते थे कि करुणा केवल इसी कारण अपनी इच्छा से पाटलिपुत्र छोड़कर पुरुषपुर आई थी कि उसे अपने स्वामी का विरह न सहना पड़े। पुरुषपुर नगर की दुर्दशा देखकर ही वे लोग भानुमित्र के चित्त की अवस्था समझ गए थे। जो सैनिक अपने घर पर अपने पुत्र या कन्या को छोड़ आए थे, उन्होंने चुपचाप अपनी आँखों से दो बूँद आँसू बहाए; और जो लोग युवक थे, उन्होंने हुंकार किया। सहसा एक युवक ने तलवार निकालकर शिरस्त्राण से उसका स्पर्श कराया। उसके साथ ही सैकड़ों तलवारें कोष से निकल पड़ीं। थके हुए मागध सैनिकों ने

आँखों में आँसू भरकर उस वीर पत्नी की पवित्र स्मृति में शिरस्त्राण से तल-वार स्पर्श कराके अभिवादन किया। यह देखकर बंधुवर्मा, हर्षगुप्त और चक्रपालित ने भी सैनिक प्रथा के अनुसार अभिवादन किया। इतने में स्कंदगुप्त भानुमित्र के पीछे जा खड़े हुए। मागध सैनिकों को शोक से विचलित और उत्तेजित देखकर वे भी उत्तेजित हो उठे। स्कंदगुप्त को कोष से तलवार निकालते देखकर भानुमित्र का मानों ध्यान छूट गया। उन्होंने युवराज का हाथ पकड़कर रुँधे हुए गले से कहा—नहीं! नहीं! युवराज, आप किसको अभिवादन करते हैं? करुणा—वह तो मरी ही नहीं—मैं झूठ नहीं कहता—युवराज—आप मेरे बचपन के मित्र हैं—वह कभी मर ही नहीं सकती। उसने मुझे स्पर्श करके शपथ की थी। वह कभी झूठ नहीं बोलती—नहीं नहीं, युवराज—आप उसके बड़े भाई हैं—आप करुणा का बुरा न चेतिए—वह मरी नहीं—न शोक कीजिए न दुःख कीजिए—वह फिर आवेगी—वह बिना मुझे देखे नहीं मरेगी—उसने कहा था कि मैं मर ही नहीं सकूँगी। नहीं नहीं—आप नहीं—और चाहे जो कुछ हो—परंतु—करुणा—फिर करुणा—करुणा, तुम क्यों छिपी हो—

युवराज स्कंदगुप्त ने एक हाथ से कसकर पागल भानुमित्र के दोनों हाथ पकड़े और दूसरे हाथ से तलवार निकालकर उसे शिरस्त्राण से स्पर्श कराया। भानुमित्र आँखें फाड़कर उनकी ओर देखने लगे और चिल्लाकर बोल उठे—तो क्या युवराज—आप भी—सचमुच यही समझते हैं—तब तो फिर —करुणा—करुणा—

भानुमित्र का अचेत शरीर फिर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा।

———

सातवाँ परिच्छेद

उद्देश्य

उजड़े हुए और शत्रुविहीन पुरुषपुर नगर पर सहज में ही अधिकार करके युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने अपने मन में यह सोचा था कि अब हम

तुरत ही अत्याचारी हूण सैनिकों का पीछा करेंगे। परंतु भानुमित्र की दशा देखकर उनकी वह आशा जाती रही। यद्यपि भानुमित्र पागल नहीं हुए थे, परंतु फिर भी लोग उन्हें पागल ही समझते थे। करुणा और ऋषभदेव जिस घर में रहते थे, उस घर की एक कोठरी में रक्त के चिह्न देखकर भानुमित्र के अतिरिक्त और सभी लोगों ने यह निश्चित किया था कि करुणा ने हूणों से अपना धर्म बचाने के लिये या तो आत्महत्या कर ली है, या हूणों ने ही उसे मार डाला है। भानुमित्र को कोई इस बात का विश्वास न दिला सका कि करुणादेवी मर गई। अतः सब लोगों ने यही निश्चित किया कि शोक के कारण गौड़ीय महाबलाधिकृत के मस्तिष्क में विकार आ गया है। दो दिन सब लोगों को पुरुषपुर में ही बीत गए। इन दो दिनों में युवराज भट्टारक के पास बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ आईं जिनके पति, पिता अथवा पुत्र मारे गए थे। वे स्त्रियाँ उन्हें हूणों की विजय के संबंध की बहुत सी बातें बतलाती थीं। परंतु एक बात ऐसी थी जो सभी स्त्रियों ने एक स्वर से कही थी। वह बात यह थी कि हूणों की एक देवी ने हम सब लोगों को छुड़ाया। हूणों की देवी की बात सुनकर स्कंदगुप्त और मागध सेनापति लोग बहुत विस्मित हुए। परंतु जीवित देवी की समस्या किसीकी समझ में नहीं आई।

तीसरे दिन कपिशा, गंधार और उद्यान के बचे हुए मागध सैनिक पुरुषपुर में आए और उनके आने पर युवराज भट्टारक तक्षशिला की ओर चलने के लिये प्रस्तुत हुए। चलने के समय पुरुषपुर नगर की एक स्त्री, जिसका पति और पुत्र दोनों मारे गये थे, भोजपत्र पर लिखा हुआ एक पत्र बंधुवर्म्मा के पास लाई, जिसे पढ़कर वे बहुत ही विस्मित हुए। उन्होंने वह पत्र युवराज के पास भेज दिया, पत्र पढ़कर युवराज भी बहुत ही विस्मित और स्तंभित हुए। उस पत्र में लिखा था—

"शांडिल्य गोत्रीय शांडिल्यासितदैवल प्रवर सामवेदीय कौथुमशाखाध्यायी पौंड्रवर्द्धन भुक्ति के गौड़ नगर निवासी पवित्र समुद्र से समुद्र तक विस्तृत आर्य गुप्त साम्राज्य के गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्रदेव के बाल्यसखा ऋषभदेव शर्म्मा द्वारा लिखित। गंधार मंडल के अंतर्गत गंधार

भुक्ति के पुरुषपुर नगर में मार्गशीर्ष की शुक्ला सप्तमी तिथि को मेरी माता के समान पूजनीया परमेश्वर परमभट्टारक परमवैष्णव महाराजाधिराज कुमारगुप्तदेव की पाली हुई कन्या और कुमारपादीय गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्रदेव की धर्मपत्नी करुणादेवी हूणों के हाथ पड़ गई। ब्राह्मण की आज्ञा से आर्य्यावर्त्त के निवासी भागवत मात्र इस पत्र को लेकर पढ़ें; और यदि कभी मागध सेना अथवा कोई मगधवासी पुरुषपुर नगर में आवे, तो उसे यह पत्र दे दें। वासुदेव ने मेरा भय दूर कर दिया है और मेरे हृदय में शक्ति का संचार किया है। मैं करुणादेवी को बचाने लगा था। इसी कारण मैं हूणों के हाथों आहत हो गया। जब तक मेरे शरीर में शक्ति रहेगी, तब तक मैं अपनी माता के समान करुणा को ढूँढ़ता रहूँगा। ज्योतिषी ने गणना करके कहा था कि मैं कभी लौटकर गौड़ देश में न जाऊँगा। गौड़ नगर में रोहिणी नाम की गोप कन्या दूध दही और मक्खन आदि देकर मेरी सेवा किया करती थी। मैं अपना गौड़ नगरवाला घर, घर के सब पदार्थ और दोनों गौएँ उसीको दे देता हूँ। ब्राह्मण की यह आज्ञा पुरुषपुर से गौड़ तक प्रचारित हो।"

पत्र पढ़कर युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त एक दो दंड तक स्तंभित होकर चुपचाप बैठे रहे। अंत में उन्होंने बंधुवर्म्मा से पूछा—क्यों भाई, यह पत्र तुमने कहाँ पाया था?

बंधु०—इसी नगर की एक बुड्ढी मेरे पास ले आई थी।

स्कंद०—वह कहाँ है?

बंधु०—इसी नगर में है।

स्कंद०—उसे ले आओ।

बंधुवर्मा अभिवादन करके चले गए और कोई आधे ही दंड में उस विधवा को अपने साथ लेकर लौट आए। पुरुषपुर नगर की जिस अट्टालिका में करुणादेवी और ऋषभदेव रहा करते थे, युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त भी भानुमित्र के साथ उसी अट्टालिका में रहते थे। बुड्ढी ने आकर युवराज को अभिवादन किया। स्कंदगुप्त ने उससे पूछा—तुमने यह पत्र कहाँ पाया था?

बुड्ढी—इसी अट्टालिका में।

स्कंद०—इस अट्टालिका में किस स्थान पर ?

बु०—दूसरे खंड की एक कोठरी में।

स्कंद—तुम यहाँ क्या करने आई थी ?

बु०—हूणों के आने से पहले इस अट्टालिका में जो देवी रहा करती थीं, उन्हीं के परिचारकों ने मुझे झाड़ू देने के काम पर नियुक्त किया था।

स्कंद०—तुमने यह पत्र कब पाया था ?

बु०—जिस दिन हूण सेना इस नगर से चली गई थी, उसी दिन।

स्कंद०—उस दिन तुम यहाँ क्या करने आई थीं ?

बु०—उन्हीं देवी को ढूँढ़ने।

स्कंद०—यहाँ आकर तुमने क्या देखा ?

बु०—मैंने देखा कि अट्टालिका में कोई नहीं है और यहाँ का धन और रत्न आदि सब हूण लोग लूट ले गए हैं। दूसरे खंड की एक कोटरी में बहे हुए रक्त के चिह्न थे और पास ही यह पत्र पड़ा हुआ था।

स्कंद०—इस अट्टालिका में जो देवी रहा करती थीं, क्या हूणों ने उन्हें मार डाला था ?

बु०—नहीं।

अकस्मात् युवराज के रोएँ खड़े हो गए। बंधुवर्म्मा की भी वही दशा हुई। हर्षगुप्त की तलवार की झनकार सुनाई पड़ी। स्कंदगुप्त ने फिर पूछा—तुम कह सकती हो कि वह देवी इसी समय कहाँ हैं ?

सहसा वह बुड्ढी युवराज के पैरों पर गिर पड़ी और रोते रोते कहने लगी—देव, आप मुझे क्षमा करें। मैं एक मूढ़ स्त्री हूँ और वे देवी थीं। अपने इस पापी मुँह से मैं देवी की बात नहीं कह सकती।

स्कंद०—माता, वह देवी नहीं, तुम्हारी तरह स्त्री ही थीं और संबंध में मेरी बहन होती थीं। तुम निर्भय होकर उनकी सब बातें कहो।

बु०—वे कभी स्त्री नहीं थीं। देवताओं ने विपत्ति से उनकी रक्षा की थी। हूणों के राज पुरोहित ने उनके देवियों के लक्षण पहचान लिये थे।

स्कंद०—तो क्या सचमुच करुणा अभी तक जीती है ?

बु०—देव, हूणों को उनका बाल तक बाँका करने का साहस नहीं हुआ।

स्कंद०—हूण जिस समय इस घर में आए थे, उस समय तुम कहाँ थीं ?

बु०—मैं एक दूसरे स्थान पर छिप गई थी। मैं यह नहीं जानती कि हूण लोग कब इस घर में आए थे।

स्कंद०—तब तुमने यह कैसे जाना कि देवी की रक्षा हो गई ?

०—मैंने पीछे से देखा था।

स्कंद०—क्या देखा था ?

बु०—देव, मैं अपने पापी मुँह से वह बात कैसे कहूँ !

स्कंद०—तुम डरो मत। ठीक ठीक सब बातें कह दो। वह देवी नहीं थी. मेरी धर्म की बहन थी।

बु०—देव मैं बहुत ही दरिद्र—

युवराज ने अपने वस्त्रों में से एक मुट्ठी सुवर्ण दीनार निकाले और बुड्ढी को दिखलाकर कहा—यदि तुम सब बातें ठीक ठीक बतला दोगी, तो तुम्हें पुरस्कार मिलेगा।

आशा से अधिक पुरस्कार मिलता देखकर बुड्ढी का भय जाता रहा। उसने कहा—देव, मैं एक साथ ही सब बातें नहीं बतला सकूँगी। आप एक एक करके मुझसे सब बातें पूछिए। मैं उन सबका उत्तर देती जाऊँगी।

स्कंद०—जब हूणों ने इस नगर पर अधिकार कर लिया था, उसके उपरात तुमने करुणा को कब देखा था ?

बु०—जिस समय हूण लोग लूट मार करने के उपरांत स्त्रियों को पकड़कर ले जा रहे थे, उस समय मैंने उन्हें देखा था।

स्कंद०—तो क्या हूणों ने करुणा को पकड़ लिया था ?

बु०—देव, करुणा कौन ? मैं तो उसे नहीं जानती।

स्कंद०—जो देवी इस अट्टालिका में रहती थीं, उन्हीं का नाम करुणा था।

बु०—हाँ, उन्हें हूण पकड़ ले गए थे।

हर्षगुप्त मारे क्रोध के पागल होकर चिल्ला उठे—यह असंभव है।

स्कंद०—भाई, तुम शांत हो। आज इंद्रलेखा वेश्या की कन्या आर्यपट्ट की अधीश्वरी है। आजकल उत्तरापथ और दक्षिणापथ में सभी कुछ संभव है।

हर्ष०—करुणा, महादेवी जिस करुणा का इतना आदर करती थीं, उसी करुणा का साधारण दासियों की भाँति जंगलियों के द्वारा इतना अपमान हुआ? असह्य—इसका प्रतिशोध—अवश्य—

स्कंद०—भाई, तुम शांत हो। अभी सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि वह अभागिनी अभी तक सचमुच जीती है या नहीं। माता, क्या तुमने सचमुच यह देखा था कि करुणा को हूण लोग पकड़े लिये जा रहे हैं?

बु० हाँ देव, सचमुच हूण लोग उन्हें पकड़े लिये जा रहे थे।

स्कंद०—तब फिर क्या हुआ?

बु०—नगर की सभी रूपवती युवतियाँ हूणों के राजा की आज्ञा से नगर के बीचवाले मैदान में लाई गईं। हूण सैनिकों ने उन सबको आपस में बाँट लिया और वह देवी हूणों के राजा की सेवा के लिये छोड़ दी गई।

स्कंद०—माता, अब तुम और क्या सुनाओगी! सम्राट की कन्या जंगलियों के हाथ की मोल ली हुई दासी हो गई! माता जी की आँखों की पुतली को हूणों ने इस प्रकार छूकर कलंकित किया! ठहर जाओ। यह सब सुनकर मेरा हृदय बहुत ही क्षुब्ध हो गया है। ठहरो ठहरो—क्षण भर ठहरो—मैं सब कुछ सुनूँगा और तुम्हें पुरस्कार भी दूँगा—तुम डरना नहीं—परंतु थोड़ा ठहर जाओ—

[illegible]—देव, आप विचलित न हों। देवी कुशलपूर्वक हैं।

हर्ष०—क्या कहा?

बु०—आर्य, देवी सचमुच कुशलपूर्वक हैं।

हर्ष०—बड़ी ही विकट समस्या है।

बंधु०—मैं देखता हूँ कि आप दोनों ही घबरा गए हैं। आप लोग पहले

शांत होकर सब बातें सुन लीजिए, तब फिर जो कुछ उचित समझिएगा, वह कीजिएगा।

स्कंद०—अच्छा, तो फिर क्या हुआ ?

बु०—रात के दूसरे पहर जिस समय हूण सैनिकों ने नगर में आग लगाई, उस समय हूणों के राजा ने देवी का अंग स्पर्श करने की चेष्टा की थी। जब राजा ने उनका आँचल खींचा, तब उन्होंने अकस्मात् आकाश की ओर हाथ उठाकर मानों किसी को बुलाया। तुरंत ही मानों किसी दैवी शक्ति ने आकर हूणों के राजा को दस हाथ दूर फेंक दिया। साथ ही चारों ओर दूने वेग से आग की लपटें उठने लगीं। हूणों के बुड्ढे पुरोहित ने भक्ति भाव से देवी को माता कहकर पुकारा। उस समय देवी की आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगीं। यह देखकर हूणों का राजा भय के मारे बीस हाथ पीछे हट गया और घुटने टेककर उन्हें 'माता' 'माता' कहकर पुकारने लगा।

हर्ष०—क्या कहा ? 'माता' 'माता' !

स्कंद०—तुम उस समय कहाँ थी ?

बु०—देव, मेरी युवती नतनी को हूण लोग पकड़कर ले गये थे। जीवन की ममता छोड़कर मैं नगर के बीचवाले मैदान में गई थी और वहीं लताओं में छिपकर उसे छुड़ाने की चेष्टा कर रही थी। इसके उपरांत मैंने देखा कि हूणों के नायक लोग देवी की वह ज्वालामयी दृष्टि न सह सकने के कारण आ आकर उन्हें माता के नाम से संबोधन करने लगे। हूणों के बुड्ढे पुरोहित ने कहा था कि हम लोग पुरुष परंपरा से देवी के अवतार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तब से देवी को हूण लोग अपनी देवी मानने लगे।

स्कंद०—क्या तुम्हारी नतनी को उन लोगों ने छोड़ दिया ?

बु०—देवी की आज्ञा से पुरुषपुर नगर की सभी स्त्रियाँ छोड़ दी गईं।

बंधु०—इस समय देवी कहाँ हैं ?

बु०—हूणों के राजा देवी को सोने के रथ पर चढ़ाकर पुष्प, चंदन आदि से उनकी पूजा करते हुए उन्हें तक्षशिला ले गए।

स्कंद०—तो क्या सचमुच करुणा अभी तक नहीं मरी ?

सहसा युवराज के पीछे की एक कोठरी का द्वार खुला और किसी ने

आवेश के कारण रुँधे हुए कंठ से कहा—नहीं, वह जीती है। मैंने झूठ नहीं कहा था। युवराज, उसने कहा था कि मैं नहीं मरूँगी—मर ही नहीं सकूँगी—चाहे जब हो और जहाँ से हो, मैं अवश्य लौट आऊँगी। चलिए, अब पुरुषपुर में रहने की आवश्यकता नहीं है। तक्षशिला या जालंधर जहाँ करुणा हो, वहीं हम लोग चलेंगे।

युवराज ने मंत्रमुग्ध की भाँति खड़े होकर कहा—चलो।

आठवाँ परिच्छेद

क्षमा

संध्या के समय विपाशा नदी के तट पर वृक्षों के नीचे बैठी हुई एक बहुत ही सुंदर युवती चंद्रमा की छिटकी हुई चाँदनी में नदी की लहरें देख रही थी। उसके पास ही एक साँवला नाटा बुड्ढा खड़ा था, जो बार बार उसके मुँह की ओर देखकर ठंढी साँसें लेता था। विपाशा नदी के पूर्व तट पर एक छोटे गाँव के खंडहरों में बहुत से छोटे छोटे अग्निकुंड जल रहे थे। रात के घने अंधकार को भेदकर बहुत से मनुष्यों का स्वर विपाशा नदी के उस शांत तट को कँपा रहा था। जिस वृक्ष के नीचे वह युवती बैठी थी, वह अश्वत्थ का एक पुराना वृक्ष था, जिसके नीचे चार विदेशी शस्त्रधारी सैनिक विश्राम कर रहे थे। विपाशा के रेतीले तट पर सौ सौ हाथ के अंतर पर शस्त्रधारी सैनिक खड़े थे। दूर से यही जान पड़ता था कि विपाशा के तट पर कोई बड़ी छावनी पड़ी हुई है। बहुत समय तक चुपचाप रहने के उपरांत अंत में बुड्ढे ने युवती से पूछा—तो क्या अभी तक कुछ भी तुम्हारी समझ में नहीं आया?

युवती ने हँसकर उत्तर दिया—नहीं, कुछ भी नहीं?

वृद्ध—तो क्या एक बार भी तुम्हें भानु का ध्यान नहीं आया?

युवती—कौन भानु ?

वृद्ध—तो क्या तुम गौड़ का वह प्रासाद, उपनगर का उद्यान और भानु का वह प्रेम सब कुछ भूल गईं ?

युवती—भाई, तुम यह क्या कह रहे हो ? मैंने तो ये सब बातें कभी सुनी ही नहीं।

वृद्ध—हे मधुसूदन, तुमने यह क्या किया ! एक बार तो तुमने विपत्ति के समय इस दरिद्र की कातर पुकार सुन ली थी। विपत्ति से रक्षा करके फिर तुमने यह कैसी वैष्णवी माया फैलाई ! नारायण ! मुझे बल दो और मेरा उद्धार करो। मेरा चित्त बहुत ही दुर्बल है। हृदय भी दुर्बल है और यह शरीर क्षणभगुर है। वासुदेव ! दीनानाथ ! इस दीन का उद्धार करो।

युवती—भाई, तुम किसे पुकार रहे हो ? उस पुरोहित को ? वह तो अभी आरती करके गया है। भोग के समय फिर आ जायगा।

वृद्ध—हे गोविंद ! तुमने यह कैसी माया फैला रखी है ! विश्वंभर ! मैं लौट कर गौड़ जाना नहीं चाहता; सुख नहीं चाहता; संपति नहीं चाहता; केवल यही चाहता हूँ कि इस मूढ़ बालिका को शीघ्र ही इस के विरह से व्याकुल स्वामी के पास पहुँचा दो।

युवती—गोविंद कौन ?

वृद्ध—वही जिन्होंने यह पृथ्वी बनाई है और जो सृष्टि की स्थिति और लय के एक मात्र कारण हैं।

युवती—तुम इतनी बातें कह गए। मैं कैसे समझती ?

वृद्ध—माता, तुम पहले अपना चित्त शांत करो, तब सब बातें तुम्हारी समझ में आ जायँगी।

युवती—क्यों भाई, तुम्हारे गोविंद देखने में कैसे हैं ?

वृद्ध—वे बहुत रूपों में रहते हैं—

युवती—देखो, बहुत सी बाते न कहने लग जाना; नहीं तो मैं कुछ भी न समझ सकूँगी।

वृद्ध— हे मधुसूदन ! हे नारायण ! इस अनाथ और आश्रयहीन बालिका पर कृपादृष्टि करो ।

युवती—क्यों भाई, क्या तुम्हारे गोविंद का और कोई नाम नहीं है ?

वृद्ध—है क्यों नहीं । गोपाल, कृष्ण आदि बहुत से नाम हैं । उनके नामों का क्या कोई अंत है ?

युवती—तो अब तक तुमने यह नाम क्यों नहीं बतलाया था ? गोपाल देखने में कैसे हैं ?

वृद्ध— कल जिस बालक को तुमने छुड़वाया था, ठीक उसी की तरह ।

युवती—वह तो बहुत ही सुंदर था । उसकी आँखों में जल देखकर मेरी आँखों में भी जल भर आया था । तुम्हारे वासुदेव आदि नाम तो अच्छे नहीं हैं, पर 'गोपाल' नाम बहुत बढ़िया है ।

वृद्ध—सचमुच गोपाल बहुत सुंदर है । उस बहुरूपी नारायण का जो रूप तुम्हें अच्छा लगे, उसी का ध्यान करो । इस अपार विपत्ति सागर से मधुसूदन के अतिरिक्त और कोई नहीं छुड़ा सकता ।

युवती—मधुसूदन क्या करेंगे ?

वृद्ध—जिस दिन उनकी दया हो जायगी, उसी दिन वे तुम्हें भानुमित्र के पास पहुँचा देंगे ।

युवती—भानुमित्र कौन ? मैं उनके पास नहीं जाऊँगी ।

वृद्ध—तुम और सब चिंताएँ छोड़ दो । केवल गोपाल का ध्यान करो ।

युवती—कैसे ध्यान करूँ ?

वृद्ध—बस, उसी कलवाले बालक का ध्यान करो ।

युवती—तुम्हारी तरह केवल आँखें बंद कर लेने से ही कोई बात मेरे ध्यान में नहीं आ सकती ।

वृद्ध—अच्छा, फिर जिस प्रकार ध्यान में आवे, उसी प्रकार चिंता करो ।

युवती—तुम जानते हो कि मुझे इस समय क्या जान पड़ता है ?

वृद्ध—क्या ?

युवती—यही जान पड़ता है कि चारों ओर से मुझे बहुत से लोग बुला रहे हैं और धीरे धीरे मेरे पास आ रहे हैं। परंतु जब मैं चाहती हूँ, तब उन लोगों से बहुत दूर भाग जाता हूँ। क्यों भाई, तुम जानते हो कि वे लोग कौन हैं ?

वृद्ध—नारायण ! इस अनाथ की दुश्चिंता दूर करो। इस चंचल मति बालिका का चंचल चित्त तुम्हारे चरणों में पहुँच-कर शांत हो। हाँ, बतलाओ तो सही कि गोपाल कैसे हैं।

युवती—अभी तुमने कहा था न कि वही कलवाले बालक के समान।

वृद्ध—बतलाओ तो, उसका मुँह कैसा सुंदर था।

युवती—बहुत ही सुंदर; परंतु उसकी दोनों आँखों में आँसू भरे थे।

वृद्ध—गोपाल का हृदय बहुत ही कोमल है। वे दीन-दुनियों को देखकर बहुत ही शीघ्र दुःखी हो जाते और उनपर दया करते हैं। संसार में दीन दुखियों को देखकर उनके बड़े बड़े नेत्रों में जल भर आता है।

युवती—परंतु यह तो बतलाओ कि यदि वे दूसरों का ही दुःख दूर करते हैं, तो फिर स्वयं क्यों दुःख पाते हैं।

वृद्ध—यह तो अपने अपने कर्म का फल है।

युवती—फिर तुम लगे ऐसी वैसी बातें करने। अच्छा, अब तुम सो जाओ। मैं गोपाल का ध्यान करती हूँ।

उसी समय विपाशा नदी के पश्चिम तटवाले जंगल में अँधेरे में सोलह वाहक एक बहुमूल्य पालकी लिये हुए शीघ्रतापूर्वक चले आ रहे थे। नदी के पास पहुँचकर जब उन लोगों ने उसके दूसरे पार हूणों की छावनी का कोलाहल सुना, तब वे वहीं रुक गए। जो पालकी में बैठे हुए थे, उन्होंने वाहकों से पूछा—क्यों, क्या हुआ ? रुक क्यों गये ?

एक वाहक ने उत्तर दिया—प्रभु, जान पड़ता है कि हम लोग मार्ग भूलकर बहुत दूर उत्तर की ओर चले आए हैं। अँधेरे में यह नहीं जान पड़ता कि हम लोग कहाँ जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर कुछ कोलाहल सुनाई पड़ता है। आज और आगे बढ़ना ठीक नहीं है।

आरोही—क्या तुम्हारी बातों में आकर मैं फिर हूणों के हाथों में पड़ूँ ? यदि कुछ करना होगा, तो इंद्रलेखा आप ही आकर कर लेगी। मेरे किए यह सब नहीं हो सकता।

वाहक—प्रभु, यदि आज की रात इसी वन में ठहर जाते, तो बहुत अच्छा होता।

आरोही—चलो चलो, नहीं तो अभी उतरकर सब को काट डालूँगा।

विवश होकर वाहक लोग फिर आगे बढ़े और कोई आध दंड में विपाशा के तट पर हूणों की छावनी के ठीक सामने आ पहुँचे। वहीं बालू पर रुककर वाहकों ने फिर कहा—प्रभु, अब इस समय और आगे बढ़ना ठीक नहीं है। जान पड़ता है कि उस पार हूण लोग डेरा डाले पड़े हैं।

आरोही तुम्हारा सिर ! हम लोग शतद्रु के तट पर आ पहुँचे हैं। उस पार जालंधर नगर है।

वाहक—प्रभु, यह तो विपाशा जान पड़ती है। शतद्रु नदी तो बहुत गहरी है।

आरोही—चलो चलो, नहीं तो तुम लोगों की अच्छी तरह दंड दूँगा।

आरोही की बात समाप्त होने से पहले ही सैकड़ों नाटे सवारों ने आकर पालकी को घेर लिया। उन लोगों के आने की आहट सुनकर अंदर से आरोही ने कहा—तुम लोग कौन हो ? मैं साम्राज्य का महाबलाधिकृत कुमारपादीय भट्टारक चंद्रसेन हूँ।

एक सवार ने टूटी फूटी भारतीय भाषा में कहा—मैं तुम्हीं से भेंट करने के लिये आ रहा था।

इतने में दूसरे सवार ने चंद्रसेन के सिर के बाल पकड़कर उसे पालकी से बाहर खींचा और नीचे फेंक दिया। इसके उपरांत सब ने मिलकर उसके शरीर के बढ़िया बढ़िया जड़ाऊ गहने और अंत में पहनने के वस्त्र तक छीन लिये। अब चंद्रसेन रो रोकर कहने लगा—अरे इंद्रलेखा ! अब तो मैं मरा—बिना मौत मरा—अरे मैं राजा नहीं होना चाहता।

इतने में एक सवार ने उसकी पीठ पर कसकर एक लात मारी और इस प्रकार उसे चुप कराया।

उस समय विपाशा के तट पर हूणों के राजा एक छोटे वस्त्रावास में विश्राम कर रहे थे। सवार लोग चंद्रसेन को नंगा करके उसी वस्त्रावास के सामने ले आए। हूणों के राजा वस्त्रावास के द्वार पर आ खड़े हुए। सवारों ने हूण भाषा में कहा—महाराज, यह व्यक्ति शत्रु पक्ष का सेनापति है।

सवारों की बात सुनकर हूणों के राजा हँस पड़े। उन्होंने भारतीय भाषा में चंद्रसेन से पूछा—क्या तुम महाराजपुत्र गोविंदगुप्त हो? परंतु गोविंदगुप्त तो नाटे नहीं हैं। मैंने वक्षु तट पर उन्हें देखा था। वे तो मनुष्य थे, तुम्हारे जैसे बंदर नहीं थे।

चंद्रसेन ने काँपते हुए कहा—नहीं।

राजा—तो क्या तुम युवराज स्कंदगुप्त हो?

चंद्र०—नहीं।

राजा—तो क्या तुम गौड़ के भानुमित्र हो?

चंद्र—नहीं।

राजा—तो फिर तुम कौन हो?

चंद्र०—मैं-मैं च-च-चंद्रसेन हूँ।

राजा—यह कोई भारी ठग जाना पड़ता है।

चंद्र—अरे बाप रे, मैं ठग नहीं हूँ।

राजा—तू तो अपने आपको गुप्त साम्राज्य का महाबलाधिकृत बतलाता था न?

चंद्र—नहीं, मैंने यह कभी नहीं कहा था।

इतने में एक सवार बोल उठा—महाराज, इसने पालकी के अंदर से कहा था कि मैं कुमारपादीय भट्टारक महाबलाधिकृत हूँ।

राजा—क्यों रे, तू झूठ बोलता है?

चंद्र०—नहीं—नहीं—हाँ—हाँ—

राजा—तो फिर तू महाबलाधिकृत कैसे बन गया?

चंद्र—नहीं, नहीं, मैं अपने आप नहीं बना था। मैं क्या अपने मन से पाटलिपुत्र से आया था?

राजा—तो फिर तुझे किसने महाबलाधिकृत बनाया था ?

चंद्र०—इंद्रलेखा ने। उसकी बड़ी इच्छा थी कि जब बुड्ढा मर जाय, तब मुझे अपने साथ लेकर आर्यपट्ट पर बैठे। अरे इंद्रलेखा! क्या तेरे मन में यही था ?

राजा—इंद्रलेखा कौन ?

चंद्र—कुमारगुप्त की सास।

राजा—और तेरी कौन ?

चंद्र०—मेरी-मेरी-कोई नहीं।

राजा—तो उसने तुझे महाबलाधिकृत क्यों बनाया ?

चंद्र०—यह-यह-तो वही जाने।

राजा—अच्छा तो तू जानता है कि महाराजपुत्र गोविंदगुप्त कहाँ हैं।

चंद्र०—पाटलिपुत्र गए हैं।

राजा—कपिशा में कौन सेनापति था ?

चंद्र०—म-म-म-मैं।

राजा—युवराज स्कंदगुप्त कहाँ हैं ?

चंद्र०—वाह्लीक के कारागार में।

राजा—कारागार में ? वह किसलिये ?

चंद्र०—म--म—म-मेरी आज्ञा से।

राजा—गौड़ के भानुमित्र कहाँ हैं ?

चंद्र०—स्कद के पास कारागार में।

राजा—हम लोग तो यह बात पहले ही समझ गए थे कि जो लोग वाह्लीका अथवा वक्षु के तट पर मागध सेना का संचालन करते थे, वे लोग इस पार वाह्लीक, कपिशा अथवा गंधार में नहीं थे। जिस समय हम लोगों ने कपिशा पर आक्रमण किया था, उस समय तू कहाँ था ?

चंद्र०—सिंधु देश में।

राजा—कपिशा में कौन सेनापति था ?

चंद्र०—कोई नहीं।

राजा—तो फिर तू युद्धक्षेत्र में क्या करने आया था?

चंद्र०—इंद्रलेखा के कहने से स्कंदगुप्त को कारागार में भेजने।

राजा—अब युद्ध कौन करेगा?

चंद्र०—मैं क्या जानूँ। लड़ाई भिड़ाई करना मेरा काम नहीं है। और फिर जिस देश में गौड़ी न मिले, उस देश में मैं कब ठहर सकता हूँ!

राजा ने सवारों को आज्ञा दी कि इसे देवी के पास ले जाओ, और जो कुछ वे आज्ञा दें, वही करो।

ऋषभदेव उस समय नदी तट पर सोए हुए थे और करुणा अपनी चिंता में मग्न थी। सवारों ने वहाँ पहुँचकर दूर से ही उन्हें प्रणाम किया। एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर ऋषभदेव के शरीर पर हाथ रखा। ऋषभ चौंककर उठ बैठे। उस समय करुणा ने अपनी आँखें बंद कर लीं। दूत सवारों ने कहा—माता, यह व्यक्ति कहता है कि मैं गुप्त साम्राज्य का प्रधान सेनापति हूँ।

ऋषभदेव ने पास पहुँचकर उल्का के प्रकाश में चंद्रसेन को भली भाँति देखकर कहा—यह झूठ बोलता है।

सवारों ने कहा—महाराज की आज्ञा है कि माता जी इसके लिये जो दंड उचित समझें, वह दें।

ऋषभदेव ने करुणा के मुँह की ओर देखा। करुणा ने पूछा—क्यों भाई, यह क्या कहता है?

ऋषभ०—यह बड़ा भारी ठग है। झूठा परिचय देता है। महाराज ने दंड देने के लिये इसे तुम्हारे पास भेजा है।

करुणा—इसे क्या दंड मिलना चाहिए?

ऋषभ०—प्राण दंड अथवा तुषानल।

करुणा—छिः, गोपाल रोने लगेंगे। इसे छोड़ दो।

नवाँ परिच्छेद

हरकारा

वर्षा ऋतु में भागीरथी नदी का जल बहुत बढ़ गया है। उसके सब तट भर गए हैं। पाटलिपुत्र नगर की विशाल प्रासाद सीमा में केवल ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में सैकड़ों उल्काएँ और हजारों दीपक जल रहे हैं; और सब स्थानों मे घोर अंधकार छाया हुआ है। चंद्रदेव विंध्यपर्वत की ओर आ गए हैं। परंतु फिर भी अस्त होते हुए सूर्य की किरणों के कारण अभी तक पश्चिम आकाश का रंग लाल ही है। यद्यपि प्राचीन गुप्त साम्राज्य अब नष्ट ही होने को है, परंतु उसकी पिछली कीर्ति अभी तक अपनी शोभा दिखला रही है। उस दिन प्राचीन गुप्त साम्राज्य की राजधानी उस पुराने पाटलिपुत्र नगर को देखकर कोई स्वप्न में भी इस बात का विचार नहीं कर सकता था कि समुद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य का अंतिम समय अब पास आ पहुँचा है। बुड्ढे सम्राट् युवती पट्टमहादेवी को लेकर दिन रात आनंद मंगल और महोत्सव में गले गले तक डूबे रहते थे। महाराजपुत्र महामंत्री को फिर उनके पद पर प्रतिष्ठित करके पंचनद चले गए थे। वृद्ध महामंत्री प्राचीन साम्राज्य की अवस्था देखकर स्तंभित हो रहे थे। उस समय वेश्या इंद्रलेखा और बौद्ध महास्थविर हरिबल ही साम्राज्य की पुरानी नाव के कर्णधार हो रहे थे।

ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद में अनेक प्रकार के दीपक जल रहे थे। उसी प्रासाद के सामने एक अलिंद में संगमरमर के खंभे के सामने एक दीर्घाकार वृद्ध चिंतित भाव से खड़े थे। प्रासाद के विस्तृत आँगन में एक बहुमूल्य चंद्रातप के नीचे सैकड़ों युवती स्त्रियाँ नाच रही थीं। उनके चंचल पैरों के घुँघरू वीणा और मुरली की लय पर बोल रहे थे। परंतु उनका शब्द वृद्ध के कानों तक नहीं पहुँचता था। आँगन के चारों ओर के अलिंद दर्शकों और श्रोताओं से भरे हुए थे। असंख्य सखियों से घिरी हुई युवती पट्टमहादेवी के पास अनेक प्रकार के रंग बिरंगे बहुमूल्य वस्त्र पहने और

युवकों का सा ठाठ बनाए वृद्ध सम्राट् कुमारगुप्त बैठे थे। जिस समय पश्चिम आकाश पर रात्रि का अधिकार हुआ, जिस समय अभिसारिका के आँचल में बँधे हुए जड़ाऊ गहनों की भाँति आकाश में सैकड़ों हजारों तारे चमकने लगे, उस समय एक दीर्घाकार युवक गंगा तट पर वृद्ध के पास जा खड़ा हुआ। वृद्ध के चिंतास्रोत में बाधा पड़ी। उन्होंने सिर उठाया। युवक ने धीरे से कहा—प्रभु, संवाद आया है।

वृद्ध ने गंगा की ओर देखकर कहा—ले आओ।

युवक तुरंत वहाँ से चला गया। वृद्ध ध्रुवस्वामिनी के प्रासाद से धीरे-धीरे चलकर एक अँधेरी कोठरी में पहुँचे। कोई क्षण ही भर के उपरांत वही युवक एक दूसरे मार्ग से उस कोठरी में आ पहुँचा। वृद्ध ने पूछा—क्या समाचार है?

युवक ने धीरे से कहा—अँगूठी।

वृद्ध—किसने भेजी है?

युवक—महाप्रतीहार ने।

वृद्ध—कौन महाप्रतीहार, नए या पुराने?

युवक—देव, यहाँ तो लोग कृष्णगुप्त के अतिरिक्त और किसी महाप्रतीहार को नहीं जानते।

वृद्ध—समाचार कौन लाया है?

युवक—एक मागध सैनिक!

वृद्ध—उसे ले आओ।

युवक उस कोठरी से निकल गया और तुरंत ही एक वर्मधारी सैनिक को अपने साथ लेकर लौट आया। सैनिक ने आकर वृद्ध को अभिवादन किया। वृद्ध ने उससे पूछा—तुम कहाँ से आते हो?

सै०—सिंधु देश से।

वृद्ध—क्या तुम सौराष्ट्र के रहनेवाले हो?

सै०—देव, मैं मागध हूँ। मेरा निवास इसी पाटलिपुत्र नगर में है।

वृद्ध—तुम सिंधु देश में क्या करने गए थे? और कृष्णगुप्त कहाँ हैं?

सै०--मैं कपिशा से भागकर सिंधु देश गया था। महाप्रतीहार मरुभूमि पार करके सिंधु से मालव की ओर गए हैं।

वृद्ध--सिंधु से भागकर मालव गए? युवक, क्या मैं इस योग्य हूँ कि तुम मुझसे परिहास करो? तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ?

सै०—देव, पाटलिपुत्र में ही मेरा जन्म हुआ है। पुरुषानुक्रम से साम्राज्य के अन्न से मेरा पालन होता आया है। मैं जन्म से आपको आर्य-पट्ट के दाहिने ओर देखता आया हूँ। भला मैं आपसे परिहास कर सकता हूँ? मैं आपसे सत्य कहता हूँ। जो बात असंभव थी, वही संभव हो गई। वाह्लीक और कपिशा में साम्राज्य की सेना हार गई।

वृद्ध—हार गई! स्कदगुप्त कहाँ हैं?

सै०—कपिशा के कारागार में।

वृद्ध—सैनिक, क्या तुम पागल हो गए हो? महाराजपुत्र युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त, और कपिशा के कारागार में!

सै०—देव, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य है। नए महाबलाधिकृत चंद्रसेन ने वाह्लीक पहुँचते ही युवराज को कारागार में बंद करा दिया था।

वृद्ध—हर्षगुप्त, भानुमित्र, बंधुवर्मा आदि सब लोग कहाँ थे?

सै०—वे लोग अपना अपना पद छोड़कर अपनी इच्छा से युवराज के साथ कारागार में गए थे। यही समाचार सुनकर हूण सैनिकों ने टिड्डी दल की भाँति वाह्लीक और कपिशा पर आक्रमण किया था। उनके वाह्लीक नगर पर अधिकार करने से पहले ही, नए महाबलाधिकृत चंद्रसेन भाग गए थे।

वृद्ध—स्कंदगुप्त कहाँ है?

सै०—यह मैं नहीं कह सकता।

वृद्ध—स्कंदगुप्त को छोड़कर कृष्णगुप्त सिंधु देश क्यों चले गए?

सै०—वाह्लीक और कपिशा पर अधिकार करने के उपरांत हूण सेना ने उद्यान और गंधार पर आक्रमण किया था। महाप्रतीहार ने साम्राज्य की छत्रभंग सेनाओं को एकत्र करके हूणों को रोकने की चेष्टा की थी। परंतु वे हार गए और उन्हें विवश होकर सिंधु देश में पहुँचकर आश्रय लेना पड़ा।

वृद्ध—तुम जानते हो कि हूण लोग कहाँ तक आ गए हैं ?

सै०—सुना है कि वे लोग पुरुषपुर और तक्षशिला पर अधिकार कर चुके हैं।

वृद्ध—पुरुषपुर ! हे नारायण ? करुणा भी तो वहीं थी !

सै०—देव, महाप्रतीहार ने कहा है कि बड़ी भारी विपत्ति आना चाहती है। यदि शीघ्र ही उपाय न किया जायगा, तो बहुत बड़ा अनर्थ होगा।

वृद्ध—अनर्थ तो हो ही चुका। और सेनापति लोग कहाँ हैं ?

सै०—देव, मैं निश्चय तो नहीं कह सकता; परंतु जान पड़ता है कि वे लोग युवराज के साथ कपिशा के कारागार में हैं।

वृद्ध—कृष्णगुप्त ने तुम्हें कोई निदर्शन दिया था ?

सै०—जी हाँ।

इतना कहकर सैनिक ने अपने वस्त्र में से एक अँगूठी निकाली और वृद्ध के हाथ में दे दी। वृद्ध ने अँगूठी लेकर युवक को उल्का लाने की आज्ञा दी। उल्का आने पर उसके उज्जवल प्रकाश में अँगूठी देखकर वे काँप उठे। उनके दाहिने हाथ में वह नीलमणिवाली सोने की अँगूठी उल्का के प्रकाश में चमक उठी। उसी समय कोठरी के बाहर किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। युवक ने तुरंत बाहर निकलकर देखा कि कोई दीर्घाकार मनुष्य, जिसका सारा शरीर कपड़े से ढका था, कुछ दूर पर अँधेरे में अदृश्य हो गया। प्राचीन साम्राज्य के वृद्ध महामंत्री उस समय सिर पर हाथ रखे कोठरी में धूल पर बैठे हुए थे।

उसी रात को तीसरे पहर के अंतिम भाग में कपोतिक संघाराम के महाविहार में महाविहार स्वामी मगध मंडल के संघस्थविर का पट्ट पाकर भविष्य की चिंता कर रहे थे। महाविहार में उस समय और कोई नहीं था। उसके प्रशस्त गर्भगृह के एक कोने में घी का एक बड़ा दीपक जल रहा था, जिसके कारण अंधकार दूर न होकर उल्टे और भी बढ़ता हुआ जान पड़ता था। अकस्मात् गर्भगृह के खुले हुए द्वार पर एक दीर्घाकार मनुष्य की मूर्त्ति

दिखलाई दी। नए संघस्थविर काँप उठे। यह देखकर आगंतुक ने हँसते हुए अपने सिर पर से कपड़ा हटा दिया। उस समय संघस्थविर हरिबल ने हँसते हुए कहा—इंद्रलेखा! आज तुम्हारे चरणों के स्पर्श से यह महाविहार पवित्र हो गया।

उस अधेड़ सुंदरी ने अपनी हँसी से गर्भगृह को गुँजाते हुए कहा—भला पहचान तो लिया। पहले तुमने क्या समझा था कि मैं कोई प्रेतनी हूँ?

हरि०—नहीं नहीं, मैं तो आँखें बंद करके तुम्हारे सुंदर रूप का ध्यान कर रहा था।

इंद्र०—तो फिर काँपने क्यों लग गए थे?

हरि०—मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मैंने तुम्हें स्पर्श किया है।

इंद्र०—तुम्हारी यह रसिकता कब छूटेगी?

हरि०—जब तक तुम्हारे रूप, रंग, और रस का ध्यान करता रहूँगा, तब तक तो नहीं छूट सकती।

इंद्र०—लो, मैं आज एक बहुत ही शुभ समाचार लाई हूँ। बतलाओ, क्या पुरस्कार देते हो।

हरि०—इंद्रलेखा, मैं अपना शरीर, मन, प्राण सभी कुछ तो तुम्हारे चरणों में समर्पित कर चुका हूँ। फिर मेरे पास और रखा ही क्या है, जो मैं तुम्हें दूँगा?

इंद्र०—जो मैं माँगूँगी, वह दोगे?

हरि०—हाँ, दूँगा।

इंद्र०—बहुत ही शुभ समाचार है। स्कंदगुप्त हूणों के हाथ पड़कर बंदी हो गए हैं। हर्षगुप्त, भानुमित्र और बंधुवर्म्मा आदि भी अपनी इच्छा से स्कंदगुप्त के साथ बंदी हुए हैं और हूण सेना ने वाह्लीक, कपिशा और गंधार पर अधिकार कर लिया है।

हरि०—कैसा सुंदर और शुभ समाचार है ! इसके लिये तो तुम्हें कुछ विशेष पुरस्कार देने को जी चाहता है।

इंद्र०—मैं विशेष पुरस्कार नहीं चाहती। मैं जो कुछ मागूँगी, वह लूँगी।

हरि०—हाँ हाँ, आओ लो।

इंद्र०—अब तुम यहीं पड़े पड़े मरो। रात बीत चली। मैं प्रासाद में जाती हूँ।

———

दसवाँ परिच्छेद

शतद्रुतट

संध्या से कुछ पहले शतद्रु के विस्तृत तट पर हजारों सवार युद्ध के वेष से सुसज्जित होकर प्रतीक्षा कर रहे थे। उन लोगों के सामने पास ही बालू में आठ वर्म्मधारी सवार नाटे युवक को घेरे खड़े थे। युवक भी घोड़े पर ही बैठा था। परंतु उसका सिर नंगा था और उसका लोहे का भारी शिरस्त्राण घोड़े की पीठ पर बँधा था। युवक के मस्तक के लंबे लंबे घुँघुराले बाल संध्या की वायु के ठंढे झकोरों से मस्तक के इधर उधर हिल रहे थे। युवक का मुख बहुत प्रसन्न जान पड़ता था। दोनों आँखें चमक रही थीं और कोमल होंठों पर मुस्कराहट आ रही थी। विशाल गुप्त साम्राज्य के भावी अधीश्वर युवराज भट्टारक परमवैष्णव युवराज स्कंदगुप्तदेव एक हाथ में लंबी तलवार और दूसरे हाथ में सोने का एक भारी दंड लिए मालव के राजा बंधुवर्म्मा को आज्ञा दे रहे थे। उनके सामने एक घोड़े पर भानुमित्र पत्थर की प्रतिमा की भाँति चुपचाप बैठे हुए थे। हर्षगुप्त, बंधुवर्म्मा और चक्रपालित आदि सेनापति बड़े ध्यान से युवराज की बातें सुन रहे थे।

युवराज कह रहे थे—भाइयो, जो लोग लौट जाना चाहते हों, जिनके स्त्री पुत्र हो, और जिन्हें उनका मुँह देखने की वासना हो, उन लोगों को लौट जाने दो। तुम लोग राजपुत्र हो, मेरे साथ रहने के कारण तुमको बहुत से कष्ट सहने पड़े हैं। बहुत दिनों से तुमने मालव की हरी भरी भूमि नहीं देखी है। तुम भी लौट जाओ।

बंधुवर्म्मा ने हँसते हुए पूछा—युवराज हम लोग तो लौटकर अपने देश को चले जायँगे। परंतु आप कहाँ जायँगे ?

युवराज—भाई, तुम यदि यही देखना चाहते हो कि मैं कहाँ जाऊँगा, तो तुम शतद्रु तट पर कुछ दूर हटकर खड़े हो जाओ और देखो। फिर यहाँ लौटने पर तुम्हें जो कुछ मिले, उसे तुम उठाकर शतद्रु में फेंक देना।

बंधु०—यह क्यों ?

युवराज—भाई, जिस बात की मुझे कभी शिक्षा नहीं मिली थी, जो मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था, भाग्यचक्र में पड़कर मुझे वही करना पड़ा। मैं बहुत दूर तक पीछे हट आया हूँ। अब मुझसे और पीछे नहीं हटा जाता। आज मैंने यही सोचा है कि इस अभाग्य का उपहास करूँगा और अपने भाग्य की परीक्षा करूँगा।

बंधु०—युवराज, आपका अभिप्राय मेरी समझ में नहीं आया।

स्कंद०—मैं जो कुछ कहता हूँ, वह शांत होकर सुनो। मैं पागल नहीं हो गया हूँ। वाह्लीक से भागकर मैं कपिशा आया था; और अब कपिशा से भागकर शतद्रुतट तक आना पड़ा है। आज मैंने निश्चय किया है कि पुण्यतोया शतद्रु के तट पर अपने भाग्य की परीक्षा करूँगा।

बंधु०—युवराज, फिर भी आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई।

स्कंद—आज रात को हूणों के राजा यहाँ आवेंगे। मैंने निश्चय किया है कि आज मैं अपने बाहुबल की परीक्षा करूँगा।

बंधु०—तब तो फिर सब चौपट ही हो जायगा। आप जानते हैं कि हम लोगों के साथ कितनी सेना है ?

स्कंद०—मैं जानता हूँ, बारह हजार भी न होगी।

बंधु०—मुझे तो दस हजार होने में भी संदेह है।

स्कंद०—तो फिर हानि ही क्या है?

बंधु०—तो क्या आप यही दस हजार सैनिक लेकर एक लाख सैनिकों के विरुद्ध खड़े होंगे?

स्कंद०—तुम गुप्त वंश के प्राचीन इतिहास का स्मरण करो। क्या आज तक कभी दस हजार सैनिकों ने एक लाख सैनिकों से युद्ध नहीं किया? स्मरण करो, हमारे केवल दस हजार सैनिकों ने शक सेना की गति रोकी थी। अब तुम लोग लौट जाओ; परंतु मैं नहीं लौट सकता। मेरे लिये न तो लौटने का स्थान है और न आश्रय। परंतु तुम लोगों के लिये तो सभी कुछ है।

बंधु०—युवराज, आपके पिता हैं, आपका राज्य है, आपकी राजधानी है, आपका देश है, आपके देशवासी हैं। सभी कुछ तो आपका—

स्कंद०—भाई, ये सब झूठी बातें हैं। पिता जी मुझसे विमुख हो गए हैं, माता स्वर्ग चली गईं, विमाता मेरे विनाश की चिंता में हैं, और भाग्य निर्दय हो रहा है। आज मगध में, आर्यावर्त्त में, सारे भारतवर्ष में मेरे लिये न तो कोई स्थान है और न आश्रय।

बंधु०—युवराज, आप इन सब बातों को जाने दीजिए। कोई और बात छेड़िए।

स्कंद०—भाई सुनो, तुम दुखी मत हो। मेरे लिये और कोई गति ही नहीं है। इसीलिये आज मैं अपने भाग्य का उपहास करूँगा—विधना की गति में परिवर्तन करने का प्रयत्न करूँगा, चाहे उसमें मेरे प्राण ही क्यों न चले जायँ। इतना तो होगा कि आर्यावर्त्त के निवासी लोग किसी दिन शतद्रु तट के युद्ध की बात स्मरण करेंगे। इतना तो होगा कि कोई सहृदय मगधवासी गुप्त कुल के एक मातृहीन, बंधुहीन और आश्रयहीन राजकुमार की बातें स्मरण करके दो बूँद आँसू बहावेगा। उसके वही आँसू सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी परलोक में मेरी आत्मा को संतुष्ट करेंगे। तुम लोग लौट जाओ। इस स्थान पर जो युद्ध होगा, उसमें से कोई लौटकर नहीं जा सकेगा। इसलिये जो लोग लौटना चाहते हों, उन्हें पहले से ही लौटा दो।

बंधु०—युवराज, आप यह क्या कह रहे हैं! हम लोग क्यों लौट जायँ? आप तो आर्यावर्त्त की रक्षा के लिये अकेले दस हजार सैनिक लेकर लाखों शुत्रुओं से लड़ना चाहते हैं, और हम लौट जायँ? क्या आप यह समझते हैं कि लौट जाने पर मालव की स्त्रियाँ पुष्प और चंदन लेकर हम लोगों का स्वागत करेंगी? वे तो हम लोगों के सिर में सेंदुर डालकर हमें अंतःपुर मे बैठा देंगी। युवराज, आप यह स्मरण रखें कि हम कई व्यक्तियों के भाग्य एक साथ ही बँधे हैं। यदि परीक्षा होगी, तो सभी के भाग्य की होगी। अभाग्य का उपहास होगा, तो वह उपहास सभी के भाग्यदेवता के चरणों तक पहुँचेगा। युवराज, और जो कोई लौटना चाहे, लौट जाय, परंतु मालववालों में से कोई नहीं लौटेगा।

सहसा किसी के ठठाकर हँसने से वह सारा स्थान काँप उठा। साथ ही और सातों व्यक्ति बोल उठे—जो जाना चाहता हो, वह चला जाय।

दूर नदी तट पर खड़े हुए हजारों सवारों ने यह बात सुन ली। दस हजार युवक सैनिकों की हँसी से सब दिशाएँ गूँज उठीं। उन सबने भी चिल्लाकर कहा - युद्ध में पीछे नहीं हटना होगा। अभी जो जाना चाहता हो, वह चला जाय।

युवराज की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने रुँधे हुए कंठ से कहा—तुम सब लोगों का घर-बार है, बाल बच्चे हैं। तुम लोग क्यों व्यर्थ मेरे साथ रहकर अपने प्राण देते हो?

फिर सब लोगों के हँसने से शतद्रु का तट काँपने लगा। सब सेनापतियों ने एक स्वर से कहा—हम लोग जिस काम के लिये आए हैं, वही करेंगे। आपके साथ मरने आए हैं, सों मरेंगे।

दूर खड़े हुए हजारों सवारों ने भी यह बात सुन ली और चिल्लाकर कहा—हम लोग जिस काम के लिये आए हैं, वही करेंगे। आपके साथ मरने आए हैं, सो मरेंगे।

प्रायः आधी रात के समय शतद्रु तट के अंधकार में सहसा हजारों उल्काएँ जलने लगीं। हजारों सवार विकट रूप से चिल्लाते हुए शीघ्रता से

शतद्रु की ओर बढ़ने लगे। शतद्रु से प्रायः एक हजार हाथ की दूरी पर सहसा उन लोगों की गति रुक गई और चिल्लाना बंद हो गया। सुशिक्षित सैनिक मुहूर्त भर में युद्ध के लिये प्रस्तुत होकर खड़े हो गए। उनके सामने हजारों बरछों और बड़े बड़े भालों की बनी हुई दीवार आ गई, जिसके कारण नदी तट का मार्ग रुक गया था। बहुत दिनों के उपरांत हूण सैनिक अपने मार्ग में बाधा देखकर क्षण भर के लिये स्तंभित हो गए। परंतु क्षण ही भर के उपरांत उनकी बुद्धि फिर ठिकाने आ गई और उन्होंने भालों तथा मनुष्यों की बनी हुई दीवारों पर आक्रमण किया। उस भीषण आक्रमण से भी वह दीवार नहीं हिली। हजारों घायल बंदी छोड़कर हूण सैनिक पीछे हट गए। उस समय अँधेरे में दाहिनी और बाईं ओर से भालों और बरछों से बनी हुई दो और दीवारों ने भीषण रूप से हूण सेना पर आक्रमण किया। हूण लोग वह आक्रमण न सह सके। जिसे जिधर मार्ग मिला, वह उधर ही भाग निकला। अँधेरे में से निकलकर सवारों के दो दलों ने कोई एक कोस तक उन भागते हुए हूणों का पीछा किया। उन हूणों के पीछे और भी असंख्य पैदल तथा सवार हूण आ रहे थे। वे लोग अपने ही दल के लोगों को देखकर रुक गए। जो सैनिक उन हूणों का पीछा कर रहे थे, वे लौटकर शतद्रु तट पर अपने व्यूह में आ गए। व्यूह के आगे एक युवक योद्धा खड़े थे। एक दूसरे योद्धा ने उससे पूछा—क्यों हर्ष, क्या समाचार है?

हर्ष०—आर्य! बहुत ही शुभ समाचार है।

योद्धा—परंतु अभी तो और हूण सैनिक आवेंगे।

हर्ष०—तो इससे हानि ही क्या है? अभी तो हम लोगों के केवल दस बारह सैनिक मारे गए हैं।

उस समय स्कंदगुप्त की आज्ञा से सवारों को लेकर दाहिनी ओर भानुमित्र और बंधुवर्म्मा, बाईं ओर आदित्यवर्म्मा और चक्रपालित, और पैदल सैनिकों को लेकर दाहिनी ओर देवधर और बाईं ओर विष्णुगुप्त अँधेरे में छिप गए। चलते समय युवराज ने हर्षगुप्त से कहा—भाई, अब मैं तो जाता हूँ। अब तुरंत ही हूण सेना हमारे व्यूह पर आक्रमण करेगी।

आर्य समुद्रगुप्त की रणनीति की तीन बातें स्मरण रखना। एक तो लौटना मत, दूसरे रात को जंगलियों से युद्ध करते समय पीछे न हटना, और तीसरे शरीर में बल रहते अस्त्र न रखना।

कुमार हर्षगुप्त ने अभिवादन करके कहा—तात, ये सब बातें मुझे स्मरण हैं व्यूह कभी पीछे न हटेगा; और जब तक शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा, तब तक मागध सेना हाथ से अस्त्र न रखेगी।

स्कंद०—भाई, अभी तुम बालक हो। स्मरण रखना कि गोविंदगुप्त तुम्हारे पिता और चंद्रगुप्त तुम्हारे पितामह हैं। गुप्त वंश की उज्वल कीर्ति सदा निर्मल रखना; मेरे गरुड़ध्वज की रक्षा करना; और यदि कोई इस युद्ध से—

हर्ष०—तात, आप विश्वास रखें, कोई पीछे न हटेगा।

स्कंद०—जाओ, मैं आशीर्वाद देता हूँ–हाथ में तलवार रहते तुम प्राण दो।

इतना कहकर स्कंदगुप्त अँधेरे में अदृश्य हो गए। कोई आधे दंड के उपरांत हजारों उल्काओं के प्रकाश में असंख्य हूणों ने व्यूह पर आक्रमण किया। उस समय दाहिनी और बाईं ओर से साम्राज्य के पैदलों ने भी उनपर आक्रमण किया। देखते देखते सारी उल्काएँ बुझ गईं। अँधेरे में शत्रु और मित्र का भेद न रह गया। साम्राज्य के सेनापतियों का नाम ले लेकर जयध्वनि होने लगी। चारों ओर से सुनाई पड़ने लगा—'युवराज स्कंदगुप्त की जय," "कुमार हर्षगुप्त की जय," "बंधुवर्म्मा की जय," "चक्रपालित की जय" आदि। हूणों की विशाल सेना के पैर उखड़ चले। साम्राज्य के दस हजार सैनिकों का आक्रमण लाखों हूण सैनिक न सह सके। हजारो हूणों को घायल और बंदी छोड़कर हूणों के राजा खिंखिल शतद्रु तट से भाग गए। उस युद्ध के बहुत समय के उपरांत तक पंचनद और मालव के वृद्ध हूण लोग शतद्रु तट के उस रातवाले युद्ध का स्मरण करके मारे भय के काँप उठा करते थे। गौड़, मगध, मालव और सौराष्ट्र के वृद्ध सैनिक लोग अपने पुत्रों और पौत्रों से बड़े अभिमान के साथ इस युद्ध की बातें किया करते थे; अपनी छाती फुलाकर उसपर आघात के चिह्न दिखलाते थे; और आर्यावर्त्त के देवताओं तथा ब्राह्मणों, स्त्रियों तथा

बालकों के रक्षक स्कंदगुप्त का नाम ले लेकर आँसू बहाया करते थे। गुप्त साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर उत्तरा पथ और दक्षिणापथ में वृद्ध सैनिकों के आँसू ही आर्य स्कंदगुप्त की स्मृति के एक मात्र चिह्न थे।

जिस समय पूर्वी आकाश में प्रकाश दिखाई देने लगा, उस समय दस हजार सैनिकों में से केवल दो ही हजार सैनिक बच रहे थे। सहसा शतद्रु के पूर्वीय तट पर बहुत सी उल्काओं का प्रकाश दिखाई दिया। स्कंदगुप्त ने शंख बजाया। रथी; सवार और पैदल सब एक स्थान पर एकत्र हुए। युवराज ने कहा—भाइयो! तुम लोगो ने आज संभव कर दिखलाया। दस हजार सैनिकों ने एक लाख सैनिकों को मार भगाया। हूण लोग हार गए, खिखिल भाग गया, परंतु युद्ध का अभी तक अंत नहीं हुआ। भाइयों! उस पार नई हूण सेना आई है। अब हम लोगों के पास केवल दो हजार सैनिक बच रहे हैं। अब तुम लोग मरने के लिये प्रस्तुत हो जाओ। अपने अपने इष्ट देवता का नाम स्मरण कर लो। अंतिम बार सूर्यदेव के दर्शन कर लो। और अब भी यदि लौट जाना चाहते हो, तो लौट जाओ।

हथकटे बंधुवर्म्मा ने बाएँ हाथ से अभिवादन करके कहा - क्या आप हम लोगों का उपहास कर रहे हैं? कल संध्या को आपकी आज्ञा से दस हजार सैनिक मरने के लिये प्रस्तुत हुए थे। आज उनमें से केवल दो हजार सैनिक बच रहे हैं। जरा आप इन लोगों से पूछ देखिए कि क्या इनके मन में और भी कोई कामना है।

युवराज ने रुँधे हुए कंठ से कहा—भाइयो।

उस समय कुमार हर्षगुप्त सहसा बोल उठे—तात, मैं समझ गया। देवधर, चक्रव्यूह की रचना करो।

क्षण भर में चक्राकार व्यूह रचा गया। बचे हुए सैनिक भी अपने मरे साथियों का अनुसरण करने के लिये प्रस्तुत हो गए। जिस समय बालसूर्य की लाल लाल किरणों से वृक्षों की डालियाँ सुनहली जान पड़ने लगीं, उस समय स्कंदगुप्त ने बहुत ही विस्मित होकर देखा कि शतद्रु तट के बालू में हजारों पैदल, हजारों सवार, सैकड़ों हाथी और सैकड़ों रथ सजे सजाए

खड़े हैं, और वर्म्म पहने हुए दो योद्धा घोड़े पर चढ़े हुए उन लोगों की ओर आ रहे हैं। उस समय युवराज का मुख गंभीर हो गया। उन्होंने बादल की तरह गरजकर कहा—भाइयो! हूण लोग दूत भेज रहे हैं। खिंखिल हम लोगों को पकड़ना चाहता है। तुम लोग प्रस्तुत हो जाओ।

दो हजार सैनिकों ने चिल्लाकर युवराज की जयध्वनि की, जिसे सुनकर आनेवाले दोनों सवार आधे ही मार्ग में रुककर खड़े हो गए। जयध्वनि सुनने से पहले ही एक सवार ने दूसरे से कहा - कृष्ण! यह किसकी सेना है? कहीं हूणों की तो नहीं है? मुझे तो गरुणध्वज दिखाई पड़ता है।

दूसरे सवार ने कहा—महाराज, यह असंभव है। अब शतद्रु के उस पार और कौन गरुड़ध्वज स्थापित करेगा?

महाराज सचमुच यह असंभव ही है। यदि स्कंद होते, यदि पहले की आक्रमणवाली सेना होती, तो संभव था।

इतने में चक्रव्यूह से जयध्वनि हुई। दोनों सवार रुक गए। काँपते हुए कंठ से गोविंदगुप्त ने कहा—कृष्ण, यह तो आर्यभाषा और स्कंदगुप्त का नाम है। अवश्य ही यह मागध सेना है। आज तो असंभव बात भी संभव हो गई। आज स्कंद ने आर्यावर्त्त की रक्षा कर ली।

इतना कहकर गोविंदगुप्त तीर की तरह घोड़ा बढ़ाते हुए चक्रव्यूह की ओर चले। कृष्णगुप्त स्तंभित होकर वहीं खड़े रह गए। व्यूह के पास पहुँचकर गोविंदगुप्त ने पूछा—कुमारगुप्त की जय हो। यह किसकी सेना है?

उत्तर में दो हजार सैनिकों ने एक स्वर से युवराज स्कंदगुप्त का नाम लिया। गोविंदगुप्त कूदकर घोड़े पर से उतर पड़े और व्यूह की ओर बढ़े। बालकों की तरह दोनों हाथ फैलाकर उन्होंने पुकारा—पुत्र—स्कंद—युवराज—

स्कंदगुप्त व्यूह के सामने ही खड़े हुए थे। वे एक हाथ में गरुड़ध्वज और दूसरे में नंगी तलवार लिए हुए आगे बढ़े। उन्होंने बड़ी दृढ़ता से पूछा—क्या तुम हूणों के दूत हो? तुम जाकर कह दो कि चंद्रसेन भाग

गया था। परंतु आर्य समुद्रगुप्त को रणनीति में भागना नहीं लिखा है। यह भी कह देना कि स्कंदगुप्त कभी पीछे न हटेंगे। तुम चले जाओ। युद्ध समाप्त होने दो—

गोविंद०—पुत्र—मैं—

स्कंद०—तुम कौन हो ?

महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने शीघ्रता से अपना शिरस्त्राण खोल दिया। स्कंदगुप्त अपने पितृव्य के चरणों पर गिर पड़े। फिर हजारों सैनिकों ने युवराज की जयध्वनि की। तब तक कृष्णगुप्त के साथ नई मागध सेना चक्रव्यूह के पास आ पहुँची थी। जब उसके सैनिकों ने जयध्वनि सुनी, तब उन्होंने भी युवराज भट्टारक की जयध्वनि की। एक लाख मागध सैनिक ने तलवार निकालकर शिरस्त्राण से स्पर्श कराई और हूण विजयी दो हजार वीरों को अभिवादन किया। महाराजपुत्र की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने कहा—कृष्ण ! आर्य्यावर्त्त की रक्षा हो गई। स्कंद सचमुच गुप्तवंश के सूर्य हैं। मागध सैनिक पितामह की रणनीति नहीं भूले। परंतु जिनके लिये पाँच लाख वीर वाह्लीक, कपिशा, गंधार और पंचनद में कट मरे, वे कहाँ हैं ?

कृष्णगुप्त ने बहुत ही दुखी होकर कहा—पाटलिपुत्र के प्रमोद उद्यान में।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

वक्षुतट

पराजित होकर हूण सेना उत्तरापथ से भाग निकली। जो गाँव, नगर और दुर्ग आदि उसने जीते थे, उनकी रक्षा करने की उसने कोई चेष्टा नहीं की; और शतद्रुतट से भागकर विपाशा, इरावती, चंद्रभागा और

सिंधु पार करके कपिशा जा पहुँची। साम्राज्य की घुड़सवार सेना भी उसका पीछा करती हुई आगे बढ़ी और हेमंत ऋतु की समाप्ति पर कपिशा पहुँची। कृष्णगुप्त भी पैदल सैनिकों को लेकर ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में वाह्लीक पहुँचे। उस समय वत्तुतट पर स्कंदगुप्त, और भानुमित्र वाल्हीक में हर्षगुप्त, कपिशा में बंधुवर्मा, गंधार में चक्रपालित, पारसिक सीमा पर देवधर और सिंधु देश में गोविंदगुप्त ने फिर से गुप्त वंश का अधिकार स्थापित किया था। धीरे धीरे पहली यात्रा के बचे हुए सैनिक लोग लौट रहे थे और भानुमित्र की सहायता से युवराज स्कंदगुप्त हूण देश पर आक्रमण करने का उद्योग कर रहे थे।

एक दिन प्रातःकाल के समय वत्तु-तट पर बर्फ से ढके हुए पहाड़ों से घिरी हुई एक घाटी में वस्त्रावास के नीचे युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने मंत्रणा सभा की। उस सभा में संमिलित होने के लिये बहुत दूर दूर से बंधुवर्म्मा, चक्रपालित, आदित्यवर्म्मा और देवधर वहाँ आए थे। वाह्लीक से हर्षगुप्त और कृष्णगुप्त पहले ही आ चुके थे। वत्तु तट के उस पार के हूण राज्य पर आक्रमण करने का परामर्श हो रहा था। स्कंदगुप्त ने कहा—मैं और भानुमित्र तो अवश्य ही जायँगे। हम लोगों के साथ और कौन कौन चलेगा ?

सब लोगो ने एक स्वर से कहा—सभी लोग चलेंगे।

युवराज ने कुछ मुस्कराकर कहा--यदि सभी लोग मेरे साथ चलेंगे, तो फिर प्रवेशद्वार की रक्षा कौन करेगा ?

सहसा पीछे से वृद्ध कृष्णगुप्त बोल उठे--युवराज, जब तक वत्तु तट पर स्कंदगुप्त का नाम सुनाई देगा, तब तक हूण सेना वत्तु पार करने का साहस न करेगी।

स्कंद—संभव है कि यह बात ठीक हो। परंतु यदि मैं मर जाऊँ तो ?

कृष्ण०—युवराज, नई पट्टमहादेवी का भाई शिवनंदि नया महाप्रतीहार हुआ है। अब मगध साम्राज्य में कृष्णगुप्त की तो मृत्यु हो चुकी; परंतु वत्तु-तट की रक्षा के लिये आप चिंता न कीजिए। हम लोग एक व्यक्ति की

बात भूल गए हैं। परंतु हूण सेना अब कभी ज्ञान रहते वाह्लीका तट पर नहीं आवेगी।

हर्ष०—क्यों ?

कृष्ण०—कुमार, क्या आप वृद्ध महाबलाधिकृत अग्निगुप्त की बात भूल गए? पकड़े हुए हूणों से पूछिए। स्वयं हूणों के राजा से पूछिए। वे लोग आपको बतलावेंगे कि केवल पाँच सौ मागध वीरों को लेकर वृद्ध महाबलाधिकृत निरंतर बाह्लीका तट की रक्षा करते हैं। प्राण रहते कोई हूण वाल्हीक तट पर नहीं आवेगा।

हर्ष०—तो फिर खिंखिल किस मार्ग से वाह्लीक, कपिशा, गंधार और उद्यान पार करके वक्षु तट तक पहुँचा था ?

कृष्ण०—दूसरे मार्ग से। और फिर दूसरी बात यह भी थी कि उस समय युवराज कारागार में थे, महाराजपुत्र पाटलिपुत्र में थे और इंद्रलेखा का यार साम्राज्य का महाबलाधिकृत था।

स्कंद०—आर्य, केवल स्वर्गीय अग्निगुप्त की आत्मा के भरोसे मैं वाह्लीक और कपिशा को यों ही नहीं छोड़ सकता। वक्षु तट पर किसी न किसी का रहना बहुत आवश्यक है।

बंधु०—तो फिर यहाँ कौन रहेगा ?

स्कंद०—सब लोग निश्चय कर लें।

बंधु०—युवराज, निश्चय कौन करेगा ? आप शतद्रु-तटवाली बात भूल न जाइएगा। हम लोग जो कुछ करने आए हैं, सो करेंगे। आपके लिये मरने आए हैं, सो मरेंगे। आप जो कुछ कहेंगे, वही होगा।

हर्ष०—आर्य, यदि आप मुझे वक्षु तट पर छोड़ जायँगे, तो मैं विद्रोही हो जाऊँगा।

बंधु०—और इस बात का भी स्मरण रखिएगा कि मैं केवल आनंद से भोजन करने का निमंत्रण पाकर वक्षु-तट पर नहीं आया हूँ।

चक्र०—और मैं घुड़सवार सेना का नायक हूँ। मेरे लिये वक्षु तट की रक्षा करना असंभव है।

आदि०—मैंने और चक्रधर ने स्थिर किया है कि यदि आप हम लोगों को वक्षु तट पर छोड़ जायँगे, तो हम लोग छिपकर भाग जायँगे और शत्रुओं से जा मिलेंगे।

स्कंद०—(कृष्णगुप्त से) आर्य! ये लोग युवक हैं। इनमें से कोई यहाँ नहीं रहना चाहता। वक्षु तट, वाह्लीक और कपिशा का भार मैं आप-पर छोड़ता हूँ।

कृष्ण०—मुझ पर! युवराज, आप मुझे क्षमा करें। मगध साम्राज्य में मेरे लिये कोई स्थान नहीं था; इसी लिये इस वृद्धावस्था में मैं कपिशा में मरने के लिये आया हूँ। संभव है कि वक्षु के उस पार मुझे शांति मिले। उस शांति से आप मुझे क्यों वंचित करते हैं?

स्कंद०—आर्य! अभी हूण युद्ध का अंत नहीं हुआ। हेमंत ऋतु में वह फिर आरंभ होगा। उस समय आपकी इच्छा पूरी होने के बहुत से अवसर निकल आवेंगे।

कृष्ण०—अच्छी बात है; आप ही की इच्छा पूरी हो।

इतने में एक दंडधर ने वस्त्रावास में प्रवेश करके युवराज को अभिवादन किया और कहा—देव, गौड़, मगध, मालव और सौराष्ट्र के सेनादलों का एक एक प्रतिनिधि युवराज के दर्शनों की प्रार्थना करता है।

उस समय मंत्रणा समाप्त हो चुकी थी। युवराज ने कहा—उनसे ठहरने के लिये कह दो। मैं आता हूँ।

इसके उपरांत सब लोग वस्त्रावास से बाहर निकल आए। सेना के चारों प्रतिनिधियों ने युवराज को अभिवादन किया। स्कंदगुप्त ने पूछा—तुम लोग क्या चाहते हो?

चारों सैनिकों ने कहा—देव, हम लोग विद्रोही हैं।

स्कंद०—केवल तुम्हीं चारो?

प्रति०—जी नहीं, गौड़, मगध, मालव और सौराष्ट्र के सभी गुल्म।

स्कंद०—तो क्या हमारी सारी सेना विद्रोही हो गई?

प्रति०—देव ! यह तो प्राकृतिक बात है। वे दंड ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत हैं।

स्कंद०—तुम लोग जानते हो कि विद्रोह का दंड क्या है ?

प्रति०—मृत्यु ! देव, दस हजार सैनिकों की और कोई कामना ही नहीं है।

स्कंद—तो वे लोग किस प्रकार मरना चाहते हैं ?

प्रति०—युद्ध करके।

स्कंद०—वक्षु के उस पार हूण देश पर आक्रमण होनेवाला है। तुम लोग मेरे साथ चलोगे ?

चारों सैनिको ने कोई उत्तर न देकर केवल अभिवादन किया। उस समय हर्षगुप्त पीछे से हँस पड़े और कहने लगे—भइया, ये लोग विद्रोही नहीं हुए हैं; झूठ बोलते हैं।

युवराज ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

हर्ष०—भइया, वे लोग हूण युद्ध में जाना चाहते हैं। कहीं दूसरे गुल्म इनसे पहले वक्षु के उस पार न पहुँच जायँ, इसीलिये ये लोग विद्रोह का बहाना करते हैं।

युवराज ने चारों सैनिकों से पूछा—कौन कौन गुल्म विद्रोही हुए हैं ?

एक सै०—देव, सभी।

स्कंद०—तुम लोग किस किस गुल्म के सैनिक हो ?

प्रति०—गौड़ीय महाबलाधिकृत भानुमित्र के; युवराज भट्टारक के; राजा बंधुवर्म्मा के; और सौराष्ट्र के चक्रपालित के।

स्कंद०—गौड़, मगध, मालव और सौराष्ट्र की सभी सेनाएँ वक्षु के उस पार जायँ।

चारो सैनिक अभिवादन करके चले गए। प्रत्येक शिविर में शंख का घोर नाद होने लगा। दोपहर के समय पचास हजार सवारों के साथ युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने वक्षु नदी को पार किया। उस पार हूण सेना उन लोगों

की अभ्यर्थना के लिये प्रस्तुत थी। गौड़ीय सेना ने चट पट वत्तु नदी पार करके हूणों पर आक्रमण कर दिया। वत्तु के उसी बालू पर सैकड़ों गौड़ीय सवारों और घोड़ों का लहू बहने लगा। दूसरी सेना के नदी पार करने के पहले ही हूण सेना पीछे हटने लगी। बालू में खड़े होकर हाथ में गरुड़ध्वज लिए एक सवार बोल उठा—

"करुणा!" वत्तु नदी के आधे मार्ग तक वह नाम सब लोगों को सुनाई दिया। साम्राज्य के चालीस हजार सैनिक वह नाम सुनकर स्तंभित हो गए। जब उस पार गौड़ीय सेना का अधिकार हो गया, तब उसने छिपी हुई शत्रु सेना पर आक्रमण किया। देखते देखते सारी सेना आकर उसी गौड़ीय सेना में मिल गई। साम्राज्य की सेना के सामने हूणों की सेना न ठहर सकी। वह रणक्षेत्र छोड़कर पहाड़ियों की ओर जा छिपी।

जब वत्तु के उत्तर तट पर सारी सेना एकत्र हो गई, तब उसने दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं की। भानुमित्र ने दूसरी बार हूण सेना पर आक्रमण कर दिया। यह देखकर युवराज और दूसरे सैनिकों को विश्राम अथवा परामर्श का अवकाश नहीं मिला। जब बचे हुए चालीस हजार सैनिक रेतीले पर्वतों की श्रेणी पार कर चुके, तब उन लोगों ने भागती हुई हूण सेना के बीच में एक बहुत ही विलक्षण दृश्य देखा। मगध, मालव और सौराष्ट्र के सैनिकों ने बहुत विस्मित होकर देखा कि दस हजार सैनिकों के आक्रमण से हूण सेना भाग निकली है। परंतु उन लोगों के बीच में सोलह घोड़ों का एक विचित्र रथ खड़ा है, जिस पर से एक रूपवती स्त्री उन लोगों को लौटाने की चेष्टा कर रही है।

गौड़ीय सैनिकों ने चिल्लाते हुए चारों ओर से उस रथ को घेर लिया। कोई सौ हाथ दूर से ही भानुमित्र ने "करुणा!" "करुणा!" चिल्लाना आरंभ किया।

अकस्मात् स्कंदगुप्त के रोएँ खड़े हो गए। आप ही आप युवराज के मुँह से निकल गया—"करुणा।" सहसा बड़ा पीला शंख बज उठा। युवराज ने फुरती से अपना घोड़ा रथ की ओर बढ़ाया। साथ ही साथ और भी शंख बज उठे। लोहे और मनुष्यों के शरीर के बने हुए प्राचीर की भाँति चालीस हजार सवार हूण सेना के ऊपर जा गिरे। क्षण ही भर में युद्ध की समाप्ति हो गई।

एक दीर्घाकार हूण रथ से उस युवती को लेकर और घोड़े पर बैठाकर भागा। इसके उपरांत हूण सेना अदृश्य हो गई। वक्षु के उत्तर तट पर कोई आध कोस तक की भूमि उपजाऊ और हरी भरी है। इसके उपरां भीषण मरुभूमि आरंभ होती है। हारी हुई हूण सेना उस मरु-भूमि को पार करके किसी अज्ञात आश्रय के उद्देश्य से वहाँ से आगे बढ़ी। साम्राज्य के सैनिकों को उस भीषण मरूभूमि में उसका पता न लगा।

संध्या के समय थके हुए सवार एक एक करके वक्षु तट पर आने लगे। उन लोगों ने देखा कि नदी तट पर सिंधु देश के एक हजार सवार एक श्रेणी में खड़े हैं। उन लोगों के आगे सफेद घोड़े पर एक व्यक्ति पत्थर की मूरत की तरह वर्म्म पहने हुए अचल बैठा है। जो लोग उसे पहचानते थे, उन्होंने उसे अभिवादन किया था। परंतु उन्हें यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति अभिवादन का उत्तर नहीं देता। अतः वे लोग नई आई हुई सेना के पास ही खड़े हो गए।

रात के पहले पहर पचास हजार सैनिक वक्षु तट पर लौट आए; और सब के अंत में युवराज लौटे। युद्ध में भीषण आघात लगने के कारण भानु-मित्र अचेत हो गए थे। उनके दस हजार गौड़ीय सवारों में से केवल सात हजार सवार बच रहे रहे थे। युवराज ने घोड़े पर वर्म्म पहने हुए व्यक्ति को देखकर दूर से अभिवादन किपा। परंतु उन्हें भी उस अभिवादन का कोई उत्तर नहीं मिला। स्कंदगुप्त घोड़े से उतरकर पास पहुँचे और पूछने लगे—कौन ? आर्य !

जब सवार को कुछ चेतना आई, तब उन्होंने कहा—कौन ? युवराज !

स्कंद०—हाँ, मैं हूँ।

गोविंदगुप्त ने घोड़े पर से उतरकर युवराज को गले से लगा लिया। शिरस्त्राण के छेदों में से कई बूँद आँसू गिरकर युवराज के गालों पर पड़े। स्कंदगुप्त ने काँपते हुए पूछा—तात, क्या हुआ ?

महाराजपुत्र ने रुँधे हुए कंठ से कहा—पुत्र, तुम्हारी स्नेहमयी माता ने तुम्हें स्मरण किया है। तुम्हें पाटलिपुत्र जाना होगा।

स्कंद०—माता ने ?

गोविंद०—हाँ, अनंता ने ।

सहसा किसी ने पीछे से कहा—महाराजपुत्र, युवराज अकेले पाटलिपुत्र नहीं जायँगे । हम लोग भी उनके साथ जायँगे ।

महाराजपुत्र ने विस्मित होकर देखा कि हर्षगुप्त, बंधुवर्म्मा, चक्रपालित, आदित्यवर्म्मा, देवधर और विष्णुगुप्त एक श्रेणी में खड़े हैं और उनकी नंगी तलवारें शिरस्त्राणों से लगी हुई हैं ।

———

बारहवाँ परिच्छेद

मदनिका

पाटलिपुत्र के उपकंठ के एक विस्तृत उद्यान में एक सुंदर अट्टालिका के सामने दो अधेड़ स्त्रियाँ बैठी हुई बातें कर रही हैं । सूर्यदेव अस्ताचल में आश्रय ले चुके हैं । वसंत ऋतु की शीतल और मंद वायु बहने लग गई है । परंतु फिर भी दो दासियाँ उन दोनों स्त्रियों को पंखियाँ झल रही हैं । उन लोगों के सामने हाथी दाँत के बने आसन पर काँच के पात्रों में अनेक प्रकार की मदिराएँ रखी हुई हैं । बीच-बीच में एक बहुत ही सुंदर दासी सोने के पात्र में मद्य भर भरकर उन दोनों स्त्रियों को दे रहीं हैं । मद्य पीकर दोनों स्त्रियों ने पैर फैला दिए । एक स्त्री ने अपनी सुंदर गर्दन हिलाते हुए कहा—क्यों सखी, अनंता का पुत्र कितना बड़ा हुआ है ?

दू० स्त्री—छः महीने का ।

प० स्त्री—भला कौन जानता था कि अनंता राजमाता होगी ! तुम लोग जब कपोतिक संघाराम में रहा करती थी, तब राह-चलते लोग अनंता का

रूप देखकर ठिठक जाते थे। जब अनंता का पुत्र राजा होगा, तब तुम क्या करोगी ?

इंद्र०—कौन जाने कि वह राजा होगा या क्या करेगा ?

दू० स्त्री—क्यों ?

इंद्र०—तुम जानती हो कि अभी तक कंटक तो दूर हुआ ही नहीं।

दू० स्त्री—शत्रु को इस तरह नहीं छोड़ देना चाहिए। उसे तुम दूर क्यों नहीं करती हो ?

इंद्र०—उसको दूर करना कोई सहज काम नहीं है। स्वयं गोविंदगुप्त उसकी सहायता कर रहे हैं।

दू० स्त्री—हैं ! कैसी बात ?

इंद्र०—अजी अब उन सब बातों को जाने दो। अब वे मंदमलयानिल ही विषधर साँप हो गए हैं।

दू० स्त्री—तो तुम उन्हें भी क्यों नहीं दूर कर देती ?

इंद्र०—देखो, चेष्टा तो कर रही हूँ। अब तो केवल भगवान् बुद्ध की कृपा का भरोसा है। अब या तो अनंता का कंटक दूर करूँगी, या अपने प्राण ही दे दूँगी।

दू० स्त्री—बुड्ढा क्या कहता है ?

इंद्र०—उसको क्या मैंने कुछ कहने के योग्य छोड़ रखा है ? वह तो अनंता के कहने से उठता है, और अनंता के कहने से बैठता है।

इतने में एक और सुंदर दासी ने आकर इंद्रलेखा को अभिवादन किया और कहा—भट्टारिका, कुमारपादीय संघस्थविर हरिबल आए हैं।

इंद्र०—उन्हें यहीं ले आओ।

दासी अभिवादन करके चली गई। एक दूसरी दासी एक आसन ले आई। तीसरी दासी चाँदी के एक पात्र में चंदन, रोली, फूल, माला आदि ले आई। उस समय हँसते हुए संघस्थविर वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर इंद्रलेखा ने हँसते हुए कहा—क्यों जी, आज तुम्हारे चेहरे पर मुस्कराहट नहीं दिखाई देती।

बुड्ढे संघस्थविर ने कहा—अब तो अमृत का झरना देखकर सूखा वृक्ष हरा हो गया।

ऊपर से क्रोध दिखलाते हुए इंद्रलेखा ने कहा—क्या मैं ऐसी हो गई बीती हूँ, जो तुम मुझसे व्यंग करते हो ?

हरि०—भला मैं तुमसे व्यंग कर सकता हूँ ! मैं तो मंजुश्री का नाम भूल गया हूँ और सदा तुम्हारा ही नाम जपा करता हूँ।

इंद्र०—ये मीठी मीठी बातें रहने दो। मैं बुरी ठहरी, मैं बुड्ढी ठहरी, तुम मेरे पास क्यों आए ? किसी युवती के पास जाओ।

बुड्ढे संघस्थविर ने उस अधेड़ वेश्या के सामने घुटने टेककर और हाथ जोड़कर कहा—देवी, मैंने तो कोई अपराध नहीं किया। फिर तुम मुझसे क्यों विमुख हो गईं ?

उस समय इंद्रलेखा ने वृद्ध का हाथ पकड़कर उठाया और उन्हें आसन पर बैठा दिया। युवती ने सोने के पात्र में मदिरा उलटकर वृद्ध के आगे रखी। इस पर हरिबल ने कहा—देवी ! आज मद्य नहीं पीऊँगा।

पहली स्त्री ने पूछा—क्यों जी, धर्म की ओर तुम्हारी प्रवृत्ति कब से हो गई ?

इंद्रलेखा ने मुँह फेरकर कहा—मदनिका, इनके साथ व्यर्थ बातें न करो। मैं बुढ्ढी हो गई हूँ। अब ये मेरी बात नहीं मानेंगे। यदि मार्ग में इन्हें कोई युवती मिल जाय और वह इनसे मद्य पीने के लिये कहे तो नाक तक गौड़ीय पी जायँगे और तब भूमि पर गिरकर लोटने लगेंगे।

बुढ्डे संघस्थविर ने बिना कोई उत्तर दिए दासी के हाथ से मद्य का पात्र ले लिया और एक ही साँस में सब मद्य पीकर कहा—देवी ! आज मैंने बुद्ध भगवान् का भी तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया। अब तो तुम मुझपर प्रसन्न हो ? भला बतलाओ तो सही कि ब्राह्मण कुलांगार चंद्रसेन ने ऐसी कौन सी सुकृति की थी ?।

लाल लाल आँखों से देखते हुए इंद्रलेखा ने कहा—इन सब बातों को जाने दो। अभी और बहुत सी आवश्यक बातें हैं।

ठंढी साँस लेकर बुड्ढे संघस्थविर ने कहा—देवी अनंता को आर्यपट्ट

पर बैठा दिया है। वृद्ध कुमारगुप्त को भेड़ की तरह तुम्हारी कन्या के प्रेम-सूत्र में बाँध दिया है। विशाल गुप्त साम्राज्य का तुम्हारे चरणों में नैवेद्य लगाया है परंतु फिर तुमने मुझे अपने चरणों में स्थान नहीं दिया। चंद्रसेन ने तुम्हारे लिये क्या किया ?

मदनिका ने हँसकर कहा—यदि तुम इतना ही समझते, तो मारे मारे क्यों फिरते ?

इंद्र० इन सब बातों को जाने दो तुमने नया समाचार सुना है ?

हरि०—नहीं।

इंद्र—स्कंद वाराणसी तक आ पहुँचा।

मद०—तब तो इस बार कंटक दूर कर डालोगे न ?

हरि०—चेष्टा में तो कोई त्रुटि न करूँगा।

इंद्र०—पहले सब बातें सुन लो, तब चेष्टा करना।

हरि०—क्या समाचार है ?

इंद्र०—तुम जानते हो कि वह बुढ्डा गीदड़ क्या कर रहा है ?

हरि०—नहीं।

इंद्र०—उसने सारी बौद्ध सेना नगर से दूर भेज दी है और रोहिताश्व तथा मंडुला से दस हजार नई वैष्णव सेना मँगवाई है।

हरि०—तो इसमें हानि ही क्या है ? बुढ्डा कुमारगुप्त जब तक अनंता के हाथ का मोल लिया हुआ दास है, तब तक चिंता की कोई बात नहीं है।

इंद्र०—स्कंद अकेला ही आ रहा है न ?

हरि०—और नहीं तो क्या उसके साथ गोविंदगुप्त भी आ रहा है ?

मद०—यदि गोविंदगुप्त भी आता हो, तब तो भारी विपत्ति की बात है।

इंद्र०—गोविंदगुप्त तो नहीं आ रहा है, पर हाँ हर्षगुप्त आ रहा है। और बंधुवर्मा, चक्रपालित, आदित्यवर्मा, देवधर और विष्णुगुप्त पचास हजार सवार लेकर साथ आ रहे हैं।

हरि०—भानुमित्र कहाँ है ?

इंद्र०—वह आहत होकर वाह्लीक में पड़ा है।

हरि०—वाह्लीक में और कौन है ?

इंद्र—कृष्णगुप्त।

हरि०—तब तो बड़ी भारी विपत्ति आ रही है। भगवान् बुद्ध भट्टारक की सेवा के लिये शीघ्र ही पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ेगा।

मद०—वाह ? तुम भी बड़े वीर निकले ! तुम्हीं न साम्राज्य का शासन करनेवाले थे ? पचास हजार सैनिकों और दो बालकों के डर से पाटलिपुत्र छोड़ना चाहते हो !

हरि०—तुम नहीं जानतीं ? वह बुड्ढा गीदड़ ही एक हजार के समान है। और उसपर यदि हर्ष, बंधु, चक्रपालित और देवधर आ पहुँचे, तब तो फिर भगवान् बुद्ध की सेवा में बाधा पड़ेगी ही।

इंद्र०—तो फिर यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारा सिर कटेगा।

हरि०—केवल सिर ही नहीं कटेगा, बल्कि पिंडदान भी होगा।

इंद्र०—तो क्या अभी तक और जीवित रहने की लालसा है ? तुम्हारी अवस्था कितनी हुई ?

हरि०—साठ वर्ष तो पार कर चुका हूँ। परंतु तुम्हारे कृपाकटाक्ष से अभी तक मैं बीस ही वर्ष का बना हूँ।

इंद्र०—अब तो तुम्हें मर जाना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता कि यमराज तुम्हें भूल क्यों गए हैं।

हरि०—जो तुम्हारे चरणों का सेवक हो, भला यमराज उसके पास कैसे आ सकते हैं ?

मद०—तो फिर पाटलिपुत्र छोड़कर भागना क्यों चाहते हो ?

हरि०—मैं भागना इसलिये चाहता हूँ कि मुझे अब इन कोमल होंठों पर हँसी की रेखा न दिखाई देगी।

इंद्र०—तुम तो भाग ही रहे हो, पर यह तो बतलाओ कि हम लोग क्या करें।

हरि०—चलो, तुम्हें तीर्थयात्रा करा लाऊँ।

इंद्र०—अपनी तीर्थयात्रा रहने दो। मैंने अब तक जितना पुण्य किया है, उसीका फल भोग लूँ। पहले यह बतलाओ कि जब स्कंद आवे, तो मैं कहाँ जाऊँ।

हरि०—तुम निश्चित भाव से कुमारगुप्त की सास बनकर आनंद से प्रासाद में बैठी रहना; और मैं गौड़ देश में मंजुश्री को भूलकर तुम्हारे मुख चंद्र का ध्यान किया करूँगा।

इंद्र०—यदि स्कंद मुझे मार डाले तो?

हरि०—तो फिर इसमें किसी का वश ही क्या है?

मद०—जब तक वह बुड्ढा जीता है, तब तक ऐसी बात नहीं हो सकती।

इंद्र०—यदि गोविंदगुप्त भी आ जाय तो?

हरि०—उस समय अपनी कन्या और जामाता को लेकर तुरंत भाग जाना। युवती रूपवती दासी ने सोने के पात्र में थोड़ी थोड़ी मदिरा डालकर सब लोगों को दी। उद्यान की स्वामिनी मदनिका के हाथ से पान लेकर हरिबल काँपते हुए अपने आसन पर से उठे। इतने में एक और दास ने वहीं पहुँचकर अभिवादन किया और कहा—देव, गंधार देश के महास्थविर बुद्धभद्र आपसे भेंट करना चाहते हैं।

हरि०—अरे! उसे यहाँ कौन लाया?

दास०—देव, यह तो मैं नहीं जानता।

हरि०—वह कहाँ है?

दास०—उद्यान के फाटक पर अकेले खड़े हैं।

हरि०—अकेले! वह आया कैसे है?

दास०—पैदल।

हरि०—वह कभी महास्थविर नहीं है। इंद्रलेखा, तुम उससे सावधान रहना। जान पड़ता है, यह कोई दूत आया है।

———

तेरहवाँ परिच्छेद

माता का स्नेह

बहुत दिनों के उपरांत बहुत से दुःख और कष्ट सहकर युवराक भट्टारक स्कंदगुप्त पाटलिपुत्र आ रहे हैं। हूण युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले राजपुत्र की अभ्यर्थना के लिये पाटलिपुत्र के नागरिक और नागरिकाएँ बहुत उत्साह दिखला रही हैं। फाटकों पर दिन रात मंगलवाद्य बज रहे हैं। राजमार्गों पर फूलो और पत्तों के बने हुए कृत्रिम फाटक सजाए जा रहे हैं। अट्टालिकाओं पर फूलों की मालाएँ और पताकाएँ टँगी हुई हैं। नागरिक लोग मार्गों में चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्त की विजय के गीत गाते हुए घूम रहे हैं। वृद्ध नागरिक लोग कहते हैं कि बहुत दिनों से पाटलिपुत्र के राजमार्गों पर ऐसा दृश्य देखने में नहीं आया।

देखते देखते सोन नदी के तट से युवराज की सेना नगर के पश्चिम फाटक पर आ पहुँची। वहाँ उनकी अभ्यर्थना के लिये लाखों नागरिक एकत्र थे। उन सब की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। लाखों शंख बजने लगे। फाटक पर युवराज भट्टारकपादीय महामंत्री दामोदर शर्म्मा, नए महाप्रतीहार और अनेक दूसरे राजपुरुषों ने युवराज भट्टारक परमवैष्णव युवराज स्कंदगुप्त की अभ्यर्थना की। वृद्ध महामंत्री ने आँखों में जल भरकर उन्हें गले से लगाया, उनका मुँह चूमा और उसी समय धीरे से उनके कान में यह भी कह दिया कि—"भाई, सभामंडप में सावधान रहना।" जिस समय युवराज के साथियों ने दामोदर शर्म्मा को प्रणाम किया, उस समय वृद्ध दामोदर शर्म्मा ने कहा—हूण युद्ध में तुम लोगों ने जिस प्रकार मागध सेना का मुख उज्वल किया है, उसी प्रकार आज गुप्तवंश के संमान की भी रक्षा करना।

सब लोगो ने हँसते हुए सामयिक प्रथा से बुड्ढे मंत्री को अभिवादन किया। युयराज के साथ वाह्लीक से पचास हजार सैनिक आए थे। उन सब ने श्रेणीवद्ध होकर पाटलिपुत्र नगर में प्रवेश किया। सबके अंत में युवराज

भट्टाकर स्कंदगुप्त अपने साथियों से घिरे हुए राजप्रासाद की ओर चले। रास्ते में दोनों ओर ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं के अलिंदों और झरोखों से अनेक प्रकार के सुंदर पुष्पों;मालाओं और सुगंधित जलों की वर्षा होती जाती थी। जब सब लोग एक कृत्रिम फाटक के पास पहुँचे, तब सहसा जयध्वनि बंद हो गई। साथ ही साथ सैकड़ों स्त्रियाँ एक स्वर से स्वागत का गीत गाने लगीं। उस गीत का अभिप्राय यह था—

"कौन आता है? किसकी विजयी सेना के भार से पाटलिपुत्र नगर काँप रहा है? वह कौन है? एक दिन उसके प्रपितामह ने पवित्र मगध भूमि से अनार्य शक जाति को निकल दिया था। अनार्यों के पैरों के स्पर्श से मातृभूमि को जो कलंक लगा था, उसे उन्होंने मागध सेना के रक्त से धो डाला था। किसी समय सैकड़ों राजाओं के मुकुटमणि उसके पितामह के गरुणध्वज में लगे रहते थे। एक दिन समुद्रगुप्त की विजयी सेना के पैरों के भार से समुद्र से लेकर समुद्र तक और हिमालय से लेकर कुमारिका तक उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों काँप गए थे।

वह कौन है? वह गुप्त कुल का पुत्र, आर्य्यावर्त्त की रक्षा करनेवाला, स्त्रियों और बालकों को बचानेवाला और वक्षु, वाल्हीक तथा शतद्रु के युद्धों में विजय प्राप्त करनेवाला है। भाइयो, वह मागध, वह पाटलिपुत्रिक हम लोगों का परम आत्मीय है। उसका नाम स्कंदगुप्त है।

"वक्षु के उस पार पराजित होनेवाले हूणों के राजा से पूछना कि शतद्रु के तट पर हूणों की सेना को किसने रोका था। हूणों पर विजय प्राप्त करने-वाली मागध सेना से पूछना कि विचलित कुललक्ष्मी को फिर से स्थिर करने के लिये सदा फूलों की सेज पर सोनेवाले किस व्यक्ति ने कठोर भूमि पर तीन पहर की रात बिताई थी। ब्राह्मणों और श्रमणों, स्त्रियों और बालकों, मंदिरों और खेतों की रक्षा करने के लिये कौन उत्तरापथ के प्रवेशद्वार पर हूणों को रोकने के लिये गया था। केवल बालू का ढेर लेकर किसने महा-समुद्र की बड़ी बड़ी तरंगों को रोका था।

"मगध के निवासियों, वह भी मगध का ही रहनेवाला है। पाटलितुत्र के निवासियो, वह भी पाटलिपुत्र का ही रहनेवाला है। वह हम लोगों का

बंधु है, मित्र है, और परम आत्मीय है। नागरिकों, स्वर्गीया पट्टमहादेवी के नाम का स्मरण करके उनके हूण-विजयी वीर पुत्र, मागध सेनापति युवराज स्कंदगुप्त का स्वागत करो। नागरिको, चंदन और फूलों से हूण-विजयी राजपुत्र का संमान करो, कटे हुए हाथवाले बंधुवर्म्मा की अभ्यर्थना करो, हूणयुद्ध में घायल होनेवाले सेनापतियों का आदर करो, हूण युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले पचास हजार वीरों की आदरपूर्वक अभ्यर्थना करो।"

गीत समाप्त हो गया। फिर लाखों मनुष्यों की जयध्वनि से प्राचीन पाटलिपुत्र नगर की दीवारें काँप उठीं। फिर सब लोग राजप्रासाद की ओर बढ़े।

प्राचीन पाटलिपुत्र का नया सभामंडप आज दर्शकों से भरा हुआ था। अलिंद, मंडप और वेदी पर तिल धरने का भी स्थान नहीं था। स्वर्गीया पट्टमहादेवी की मृत्यु के उपरात फल्गुयश नट की कन्या को अभिवादन करने के डर से साम्राज्य के राजकुल अथवा दूसरे और उच्च कुल के लोगों ने सभामंडप में आना जाना छोड़ दिया था। आज वे लोग युवराज भट्टारक की अभ्यर्थना के लिये फिर नगर में लौट आए थे। यह देखकर क्रोध और क्षोभ के मारे नई पट्टमहादेवी का मुँह लाल हो गया था। प्रासाद के बाहर के मैदानों में हूणों पर विजय प्राप्त करनेवाले राजपुत्र के दर्शनों के लिये लाखों मनुष्य एकत्र थे। कुमारगुप्त के साथ मालव और सौराष्ट्र के युद्धों में जानेवाले वृद्ध सैनिक लोक मंडप के चारों ओर श्रेणी बाँधकर खड़े थे। धीरे धीरे पचास हजार सवारों के साथ युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त ने प्रासाद की सीमा में प्रवेश किया। युवराज सभामंडप में चले गए और उनके साथी लोग बाहर आँगन में खड़े हो गए।

सभामंडप के फाटक पर घोड़े से उतरकर युवराज ने अपने साथियों के साथ मंडप में प्रवेश किया। मंडप के बाहर और अंदर के लोगों ने युवराज को देखते ही जयध्वनि की। सम्राट् कुमारगुप्त सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए। उनके साथ ही साथ मंडप के और सब लोग भी उठ खड़े हुए।

सहसा अस्त्रों की झनकार सुनाई पड़ी। सभासदों ने विस्मित होकर देखा कि नए और पुराने सभी लोगों ने तलवार निकालकर शिरस्त्राण से उसे स्पर्श कराया और इस प्रकार युवराज भट्टारक को अभिवादन किया। उसी समय युवराज और उनके साथियों की तलवारें कोषों से निकलीं। स्कंदगुप्त अपनी तलवार हाथ में लिए हुए आर्यपट्ट की ओर बढ़े। वेदी के सामने खड़े होकर स्कंदगुप्त ने फिर सैनिक रीति से वादन किया, और तब वह तलवार वेदी पर पिता के पैरों के पास रख दी। आँखों में जल भरकर वृद्ध सम्राट् ने उस तलवार को उठा लिया और अपने शिरस्त्राण से स्पर्श कराके फिर उसे अपने पुत्र के हाथ में दे दिया। उस समय परमेश्वर परमवैष्णव युवराज भट्टारक स्कंगुप्त ने आर्यपट्ट के सामने घुटने टेककर पिता को प्रणाम किया। सम्राट् ने आर्यपट्ट से उतरकर अपने पुत्र को गले से लगा लिया और नीचे की ओर दृष्टि करके उँगली से अनंती की ओर दिखलाकर कहा—पुत्र! यह तुम्हारी माता हैं।

पीछे से किसीने चिल्लाकर कहा—विमाता तो हैं, परंतु पट्टमहादेवी नहीं हैं।

सब लोगों ने वक्ता की ओर देखा। वृद्ध महामंत्री वेदी पर खड़े हुए थे। नंगी तलवार कोष में रखकर स्कंदगुप्त ने विमाता को प्रणाम किया। यह देखकर नई पट्टमहादेवी ने क्रोध में भरकर कहा—पुत्र! तुमने मुझे अभिवादन नहीं दिया।

वेदी पर से दामोदर शर्मा बोल उठे—तुम विमाता हो, इसीलिये स्कंद ने तुम्हें प्रणाम किया। परंतु तुम युवराज भट्टारक के अभिवादन के योग्य नहीं हो।

विशाल सभा-मंडप में सन्नाटा छाया हुआ था। सहसा अलिंद से एक वृद्ध महानायक बोल उठे—"स्वर्गीय पट्टमहादेवी की जय।" साथ ही साथ और सब लोगों ने भी स्कंदगुप्त की माता का नाम लेकर जयध्वनि की। सभा मंडप के बाहर जितने नागरिक और सैनिक एकत्र थे, उन सबने भी स्वर्गीया पट्टमहादेवी का नाम लेकर जयध्वनि की। जयध्वनि बंद होने पर स्कंदगुप्त ने आकाश की ओर देखकर तलवार को मस्तक से लगाकर अभिवा-

दन किया। साथ ही साथ और सब नायकों तथा महानायकों ने भी वैसा ही किया। जिन लोगों ने आज तक कभी नई पट्टमहादेवी को अभिवादन नहीं किया था, उन लोगों ने अनंता देवी के सामने भी आकाश की ओर देख, स्वर्गीया पट्टमहादेवी के उद्देश्य से अभिवादन किया। वृद्ध महामंत्री ने रुँधे हुए कंठ से कहा—माता! सब पुत्र तुम्हें अभिवादन कर रहे हैं। अपने देश के कल्याण की कामना से आत्मविसर्जन करके जहाँ गई हो, वहीं से इन लोगों को आशीर्वाद दो।

नई पट्टमहादेवी अब तक मंत्रमुग्ध की भाँति चुपचाप बैठी थी। अब वह आर्यपट्ट छोड़कर उठ खड़ी हुईं और वृद्ध सम्राट् का वस्त्र खींचकर बोली—जब आपके पुत्र अभिवादन ही नहीं करते, तो फिर आपने मुझे आर्यपट्ट पर क्यों बैठाया है।

वृद्ध सम्राट् ने अनंता को कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरी बार और भी वेग से सम्राट् का वस्त्र खींचकर अनंता ने कहा—शीघ्र बतलाए, आप क्यों बार बार मेरा अपमान करा रहे हैं?

सम्राट् अब भी चुप थे। इस पर अनंता ने अपने वृद्ध स्वामी का हाथ खींचकर कहा—आपके पुत्र विद्रोही हैं। या तो आप उन्हें दंड दीजिए और नहीं तो मैं अभी अपने प्राण दे दूँगी।

दंड की बात सुनकर सब लोग मारे क्रोध के गरज उठे। हथकटे बंधुवर्मा ने बाएँ हाथ से कोष से तलवार निकली। साथ ही अलिंद में सैकड़ों तलवारों की झनकार सुनाई पड़ी। उस समय नटकन्या ने समझ लिया कि अब कोई भारी विपत्ति आना चाहती है; अतः वह सभामंडप से निकलकर भाग गई वृद्ध सम्राट् भी उसके पीछे पीछे "अनंता!" "अनंता!" पुकारते हुए उठकर चल पड़े। उस समय दामोदर शर्मा ने मुस्कराते हुए स्कंदगुप्त से कहा—युवराज, तुम प्रासाद में न रहना। आओ, मेरे साथ मेरे आवास में चलो।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

देवकुल

अरुणोदय से पहले ही युवराज स्कंदगुप्त महामंत्री के आवास से निकलकर राजमार्ग में आ खड़े हुए। उसी समय एक सेवक उनके लिये बढ़िया सजा सजाया घोड़ा ले आया। स्कंदगुप्त उस घोड़े पर चढ़ना ही चाहते थे कि इतने में दूसरे खंड के एक झरोखे में से बंधुवर्म्मा ने पूछा—युवराज, क्या इतने तड़के प्रासाद की ओर जाने का विचार है?

युवराज ने हँसते हुए उत्तर दिया—जब मैं प्रासाद में जाने लगूँगा, तब सबसे कह दूँगा। अभी तो मैं यों ही टहलने के लिये जा रहा हूँ।

बंधु०—कहाँ?

युवराज—नगरप्रांत की ओर। बहुत दिनों के उपरांत मगध में आया हूँ। इच्छा होती है कि एक बार जाकर पवित्र मगध भूमि देख आऊँ।

बंधु०—क्या पाटलिपुत्र मगध भूमि नहीं है?

युवराज—है क्यों नहीं; परंतु पाटलिपुत्र नगर ठहरा। मगध भूमि में पहाड़, नदियाँ, क्षेत्र, विहार, स्तूप, देवकुल आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जो इस संकीर्ण नगर में कहाँ।

बंधु०—ठीक ठीक बतलाइए कि आप कहाँ जायँगे। महामंत्री से आपने यह बात कह दी है?

युवराज—नहीं वे गंगास्नान के लिये गए हैं। अभी यह निश्चय नहीं है कि मैं कहाँ जाऊँगा। आगे बढ़ने पर जिधर जी चाहेगा, उधर ही निकल जाऊँगा।

बंधु०—कृपाकर आप अकेले न जाइएगा।

युवराज—तो क्या अकेला होने पर मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता?

बंधु०—गुप्त घातकों के हाथ से नहीं।

युवराज—कोई चिंता नहीं। कोई मेरी हत्या नहीं करेगा। मुझ निः-

सहाय और मातृहीन की हत्या करके कौन अपने ऊपर कलंक लेना चाहेगा? यदि पिता जी चाहें तो अनंता के पुत्र को आर्यपट्ट दे सकते हैं। जिस अनंता की आज्ञा से माता जी आर्यपट्ट से उतार दी गई थीं, उसी अनंता की आज्ञा से मैं आर्यपट्ट से बहुत दूर हट सकता हूँ। फिर मेरी हत्या करने की क्या आवश्यकता है?

बंधु०—युवराज, महादेवी आत्मोत्सर्ग करके आपको आर्यपट्ट की सीढ़ी पर स्थापित कर गईं। आप यह न सोचिएगा कि महाराजाधिराज के महामुद्रांकित पत्र से स्वर्गीया पट्टमहादेवी के पुत्र आर्यपट्ट से हटा दिए जायँगे। इसके लिये पाटलिपुत्र के पाँच लाख नागरिक क्षुब्ध होकर पागलों की तरह उठ खड़े होंगे। कलवाली बात भूल न जाइएगा। शतद्रु तटवाली बात स्मरण रखिएगा। साम्राज्य की सेना जयध्वनि करते समय और किसी का नाम नहीं लेती। आप अकेले न जायँ। क्षण भर ठहर जायँ। मैं अभी आता हूँ।

खिड़की बंद हो गई और मुहूर्त ही भर में वस्त्र आदि पहनकर बंधुवर्म्मा वहाँ आ पहुँचे और घोड़े पर चढ़कर युवराज के साथ हो लिए। अब दोनों व्यक्ति वहाँ से चल पड़े। कुछ दूर चलने के उपरांत बंधुवर्म्मा ने पूछा—कहिए, किधर चलने का विचार है?

युवराज—चलो, राजगृह की ओर चलें। बहुत दिनों से उस ओर नहीं गए। जब करुणा का विवाह हुआ था, तब मैं भानुमित्र के साथ इसी मार्ग से गौड़ नगर गया था। आज कहाँ वह करुणा? और कहाँ वह भानुमित्र?

बिना कुछ उत्तर दिए बंधुवर्म्मा राजगृहवाले फाटक की ओर बढ़े। नगर का एक एक फाटक एक एक प्रधान नगर के नाम से प्रसिद्ध था। केवल पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं के फाटक ही दिशाओं के नाम से प्रसिद्ध थे; जैसे पश्चिम फाटक, पूर्व फाटक इत्यादि। जिस समय वे लोग दक्षिणवाले और राजगृहवाले फाटक के मार्गों के संधिस्थल पर पहुँचे, उस समय युवराज ने देखा कि चीन के बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पहने देवधर चाँदी की पालकी पर दक्षिण फाटक की ओर जा रहे हैं। युवराज और बंधुवर्म्मा

को देखकर देवधर बहुत लज्जित हुए। यह देखकर स्कंदगुप्त की हँसी न रुक सकी। बंधुवर्म्मा ने पूछा—कहिए देवधर जी! आज नए वर की तरह सज-धजकर इतने सबेरे कहाँ जा रहे हैं?

वाहकों ने पालकी वहीं उतार दी। देवधर ने उतरकर युवराज को अभिवादन किया और बंधुवर्म्मा से कहा—एक विशेष कार्य से दक्षिण फाटक की ओर जा रहा था।

बंधुवर्म्मा ने हँसते हुए पूछा—कार्य से जा रहे हैं या देवी के दर्शनों के लिये? वेष तो अभिसार का ही जान पड़ता है। दिन के समय दक्षिण फाटक पर क्या किसी मृगनयनी और नीलवसना सुंदरी के दर्शन होंगे।

देव०—नहीं भाई, अब तो मैं वे सब बातें भूल गया हूँ। रोहिताश्व के युवराज भट्टारकपादीय महानायक महानौबलाधिकृत जयधवलदेव के दर्शनों के लिये जा रहा हूँ।

बंधु०—बहुत लंबे चौड़े विशेषण लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। युवराज और मैं दोनों ही उन्हें जानते हैं। हाँ, मैं समझ गया। अमिया का आकर्षण आपको उधर खींचे लिए जा रहा है।

देवधर का चेहरा और भी लाल हो गया और युवराज ठठाकर हँस पड़े। मार्ग में दो एक स्त्रियाँ और पुरुष एकत्र होकर शतद्रु तट के प्रसिद्ध युद्ध के हूण विजयी वीरों को देख रहे थे। युवराज ने पूछा—क्यों बंधु, तुमने अमिया को कहाँ देखा था?

बंधु०—क्यों? स्वर्गीया वट्टमहादेवी के पास श्यामा मंदिर में, वासुदेव मंदिर में, और नृत्यसभा में।

स्कंद०—तो फिर क्या तुम भी अपना हृदय गँवा बैठे हो?

देव०—तब तो बड़ी भारी विपत्ति होगी।

स्कंद०—तो क्या द्वंद्व युद्ध की ठहरेगी?

बंधु०—क्या मैं केवल गोरा रंग देखकर ही भूल सकता हूँ?

देव०—चलिए, बचत हो गई।

स्कंद०—मुझसे ही भूल हो गई ! मालव में वह कांचनवर्णी मृगनयनी दुर्गस्वामिनी इस समय भी प्रतीक्षा कर रही होगी ।

बंधु०—यह तो अपनी अपनी रुचि है ।

स्कंद०—क्यों जी देवधर, अमिया की बात तो आज तक तुमने कभी नहीं कही ।

देव०—कौन कहे कि आपने ही अरुणा की बात कभी हम लोगों से कही हो । उस दिन प्रासाद के उद्यान में वृक्ष की ओट से आप कैसे आनंद से अरुणा को देख रहे थे । आप पकड़ लिए गए; अब तो स्वीकार कीजिए ।

स्कंद०—भाई, उस बात को भूल जाओ ।

देव०—नहीं नहीं, आप निराश न हों । समाचार बहुत ही शुभ है ।

बंधु०—क्यों भाई, क्या समाचार है ?

देवधर ने बहुत धीरे से युवराज के कान में कुछ कहा और युवराज ने वही बात धीरे से बंधुवर्म्मा के कान में कह दी ।

उस समय देवधर ने फिर कहा—रोहिताश्ववाले मार्ग पर चले जाइए । दो तीन कोस जाते ही देवकुल का शिखर दिखलाई देने लगेगा ।

स्कंद०—भाई देवधर, आज तुमने जो उपकार किया, वह मैं जन्म भर न भूल सकूँगा । आज तुम कुछ पुरस्कार माँगो ।

देव०—युवराज, आपकी मित्रता ही मेरे लिये बहुत कुछ पुरस्कार है । फिर भी एक प्रार्थना है ।

स्कंद०—वह क्या ?

देव०—यही कि शतद्रुवाले युद्ध का कोई चिह्न या निदर्शन मुझे मिले ।

स्कंदगुप्त ने कोष से टूटी हुई तलवार निकालकर कहा—पिता जी की दी हुई यह तलवार शतद्रु के युद्ध में टूट गई थी । इस पर सोने के अक्षरों में आर्य समुद्रगुप्त का नाम लिखा है । यही ले लो ।

देवधर ने टूटी हुई तलवार लेकर अभिवादन किया । उस समय बंधुवर्म्मा ने पूछा—यह निदर्शन लेकर क्या कीजिएगा ?

देव०—बहुत सी बातें हैं, फिर कभी बतलाऊँगा ।

बंधु०—अभी बतलाइए न।

देव०—विलंब हो रहा है। आप लोगों को भी अभी बहुत दूर जाना है।

स्कंद०—बतला ही दो न। उसमें बिलंब ही कितना होगा!

देव० —बहुत दिनों की बात है, मैंने भी स्वर्गीया पट्टमहादेवी के यहाँ एक बार अमिया को देखा था। इसके उपरांत नाट्यशाला में भी दो एक बार मेरी उसकी देखा देखी हुई थी।

स्कंद०—लो बंधुवर्म्मा, इसे तुम अपने पूर्वजों का पुण्य ही समझो कि मालव की दुर्गस्वामिनी ने पहले ही तुम्हारे हृदय पर अधिकार कर लिया था। नहीं तो आज तुम देवधर के हाथ से मारे जाते।

बंधु०—जी नहीं, दुर्गस्वामिनी और अमिया में बहुत अंतर है।

देव०—तो फिर बंधुवर्मा जी, आप सावधान हो जाइए।

स्कंद—वीरता दिखलाने की आवश्यता नहीं है। मैं मान लेता हूँ कि दोनों ही बहुत अधिक सुंदरी हैं। हाँ, तब फिर क्या हुआ?

देव०—हुआ यही कि कृपा कटाक्ष से ही मैंने समझ लिया कि देवी मुझपर प्रसन्न हैं। एक दिन महानायक जयधवल के यहाँ मैंने पुरोहित जी को भेजा था। परंतु उन्होंने पुरोहित को मार पीटकर घर से निकाल दिया था। इसके उपरांत एक दिन श्यामा मंदिर में मुझे देवी के दर्शन हुए थे। मैंने देखते ही समझ लिया कि वह कुछ दुःखी है। इसके उपरांत मैं स्वयं जय-धवल के पास गया। इसपर उन्होंने कहा—कि मैं तुम्हारे ऐसे दुश्चरित्र युवक को अपनी कन्या नहीं दे सकता। बंदर के गले में मोतियों की माला नहीं पहनाई जाती। बहुत कुछ उपाय रचने पर अंत में एक दिन उन्होंने कहा—यदि तुम देश के लिये, धर्म के लिये, राज्य के लिये आत्मोत्सर्ग करके प्राय-श्चित्त कर सको और उस प्रायश्चित्त के उपरांत जीते बच रहो, तो फिर मेरे पास आना। विपाशा के युद्ध में मैंने अनेक बार मृत्यु को आलिंगन करना चाहा था। परंतु फिर भी यमराज ने मुझे ग्रहण नहीं किया। बस तभी से मैंने समझ लिया कि अब एक न एक दिन अमिया मुझे मिल जायगी। अब

तो मैं अभिसार और नृत्य गीत सभी भूल गया हूँ; और हूण युद्ध रूपी दावायल में शुद्ध होकर जयधवल के घर जा रहा हूँ।

स्कंद०—साधु! देवधर, साधु! वासुदेव तुम्हारी इच्छा पूरी करें। विवाह के दिन विपाशा के युद्ध के सभी सैनिकों को निमंत्रण देना।

देव०—युवराज, बिना आप लोगों के आए तो विवाह पूरा ही न हो सकेगा।

स्कंदगुप्त और बंधुवर्मा ने एक स्वर से कहा—भाई, जो जीता रहेगा, वही आवेगा।

इतना कहकर युवराज और बंधुवर्म्मा तो रोहिताश्ववाले फाटक की ओर चल पड़े और देवधर अपनी पालकी पर जा बैठे। फाटक के पास पहुँचकर युवराज ने देखा कि एक सौ सवार एक श्रेणी में खड़े हैं। उन्होंने विस्मित होकर पूछा—तुम लोग यहाँ क्यों आए हो?

एक० सै०—युवराज के साथ चलने के लिये।

युवराज—तुमने यह कैसे जाना कि हम लोग इसी फाटक पर आवेंगे?

सै०—महाराज, महामंत्री की आज्ञा है कि नगर के अठारहों फाटकों पर विपाशा युद्ध के सौ सौ सवार आपके लिये खड़े रहें।

युवराज—अच्छा, चलो।

सौ शरीररक्षक सवार युवराज के पीछे हो लिये। जो सैकड़ों नागरिक वहाँ एकत्र थे, उन्होंने जयध्वनि की। युवराज और बंधुवर्मा फाटक पार करके रोहिताश्व के मार्ग पर चल पड़े। कोई तीन कोस चलने पर एक पुराने देवमंदिर का काला शिखर दिखाई दिया; और पाँच कोस जाने पर उसका उद्यान दिखाई दिया। उद्यान में एक वृक्ष के नीचे हिरनों के झुंड से घिरी हुई गेरुए वस्त्रवाली एक देवी की मूर्ति बैठी थी। स्कंदगुप्त वहीं घोड़े से उतर गए और बंधुवर्मा सवारों के साथ देवमंदिर के फाटक की ओर चले गए।

स्कंदगुप्त काँपते हुए पैरों से वृक्ष के नाचे पहुँचे। पैरों की आहट सुनकर देवी ने सिर उठाया। सब हिरन उठकर खड़े हो गए। देवी ने पूछा—कौन?

कंठस्वर सुनकर युवराज के शरीर में बिजली दौड़ गई। उनका उष्णीष ढीला पड़ गया और बाल बिखरकर मुँह के चारों ओर लहराने लगे। यह देखकर देवी की मूर्ति सिर से पैर तक काँप उठी। युवराज चुपचाप वहीं खड़े हो गए। उनके सिर का उष्णीष वहीं घास पर गिर पड़ा।

कोई आधा दंड इसी प्रकार बीत गया। काँपते हुए स्वर से युवराज ने पुकारा—अरुणा!

वह कंठ स्वर सुनकर देवी भी काँप उठी। उसके दोनों पैर उसके शरीर का भार सहने में असमर्थ हो गए। धीरे धीरे देवी वहीं बैठ गई। हिरनों ने विपत्ति की आशंका से देवी को चारों ओर से घेर लिया। युवराज ने पास पहुँचकर विकृत स्वर से फिर पुकारा—अरुणा!

रुँधे हुए कंठ से धीरे धीरे देवी ने कहा—देवता—तुम—वासुदेव—

युवराज—अरुणा, मैं फिर पाटलिपुत्र आ गया हूँ। बड़े कष्ट से देवधर से मुझे तुम्हारा पता मिला। तुम्हें एक बार फिर देखने के लिये—

देवी—देवता—युवराज—क्या सचमुच—तुम—

युवराज—हाँ अरुणा, सचमुच मैं ही हूँ। उठो, उठकर देखो। तुम्हारे दर्शन पाने की आशा से ही मैं अब तक जीवित था। अरुणा! अरुणा!

अब सब हिरन दूर हट गए। उन्मत्त की भाँति दोनों हाथ पसारकर काँपते हुए पैरों से स्कंदगुप्त आगे बढ़े, परंतु देवी की मूर्ति दूर हट गई। विस्मित और स्तंभित होकर, वृक्ष की शाखा पकड़कर स्कंदगुप्त खड़े हो गए।

अरुणा ने अपना स्वर कुछ दृढ़ करके कहा—युवराज, आप अपना चित्त शांत कीजिए। मैं स्पर्श करने के योग्य नहीं हूँ। आप देखते हैं कि मैं गेरुए वस्त्र पहने हूँ। और फिर यह उद्यान एक पवित्र स्थान है—वासुदेव की संपत्ति है।

युवराज ने विस्मित होकर पूछा—अरुणा, क्या तुम मेरे ही स्पर्श करने के योग्य नहीं हो? यह कैसी बात है?

अरुणा—युवराज, मैंने जो कुछ कहा, क्या आपने उसे नहीं सुना?

युवराज—मैंने सब कुछ सुन लिया। परंतु फिर भी क्या तुम मेरे स्पर्श करने के योग्य नहीं हो ? और इस युवावस्था में तुमने गेरुए वस्त्र क्यों पहने ?

अरुण—युवराज, महादेवी की मृत्यु के उपरांत जब मगध की देव-भोग्या और पवित्र भूमि पिशाचों की लीला भूमि हो गई, और जब परम भट्टारिका स्वर्गीया ध्रुवस्वामिनीं के प्रासाद में एक साधारण वेश्या के यार ने दिन-दोपहर मेरा हाथ पकड़ा, तब मैंने पूर्वजों के पुण्य-बल से अपनी रक्षा करके प्रासाद छोड़ दिया। तीसरे फाटक के बाहर गुरुदेव मेरी प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। उन्हीं के साथ मैं इस मठ में चली आई। अब मैंने उनसे दीक्षा ले ली है और उन्हीं की आज्ञा से अपना तन, मन और प्राण चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी वासुदेव के चरणों में अर्पित करके गेरुए वस्त्र पहन लिये हैं। तब से मैं संन्यासिनी होकर इसी मठ में रहती हूँ।

सहसा युवराज भूमि पर बैठ गए। आप ही आप कातर स्वर से उनके मुँह से निकल गया - अरुण !

अरुणा ने कहा—युवराज, आप मुझे क्षमा कीजिएगा। मैंने अपना जो शरीर आपको उत्सर्ग कर दिया था, उसी शरीर को एक वेश्या के यार के कलंकित हाथों के स्पर्श से बचाने के लिये वासुदेव के चरणों में अर्पित कर दिया है। मैंने सुना था कि सुदूर कपिशा में अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये मेरे देवता ने यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। तभी से मैंने वैधव्य व्रत ग्रहण किया है। दीक्षा लेने के उपरांत भी कभी मैं अपने चित्त को शांत नहीं कर सकती थी। मैंने गुरुदेव से कह दिया था कि मैं मगध साम्राज्य के युवराज की वाग्दत्ता पत्नी हूँ। जब मैं वासुदेव का ध्यान करने लगती हूँ, तब मेरे हृदय में उन्हीं श्री देवदुर्लभ मूर्ति आ पहुँचती है। मैं एक अबला स्त्री हूँ और अपने चित्त को शांत रखना मेरे लिये असंभव है। इसपर गुरुदेव ने कहा था कि तुम्हारे युवराज नर-रूपी नारायण है और उन्होंने आर्य्यावर्त्त तथा आर्यधर्म की रक्षा के लिये मनुष्य का शरीर धारण किया है। उन्हीं की आज्ञा से मैं चतुर्भुज वासुदेव की जगह आपके

अपरूप का ध्यान करती हूँ। अंतर्यामी वासुदेव जानते हैं कि उठते-बैठते, सोते-जागते, आपकी मूर्ति मेरी आँखों के सामने रहती है।

युवराज—परंतु अरुणा, अब तो तुम देखती हो कि मैं मरा नहीं जीता हूँ। और केवल तुम्हें देखने के लिये मैं मर भी नहीं सका था। आओ चलो, प्रासाद को चलें।

अरुणा—देव! मैं कैसे चल सकती हूँ?

युवराज—चलो, अभी विवाह हो जायगा।

अरुणा—क्या गुरुदेव इसके लिये आज्ञा देंगे?

सहसा वृक्ष के पीछे से कोई बोल उठा—दूँगा, परंतु अभी इसमें देर है।

इतने में एक दीर्घाकार वैष्णव संन्यासी, जिनका मुखमंडल बहुत ही शांत और मूर्ति बहुत ही सौम्य थी, वृक्ष की ओट से निकलकर सामने आ खड़े हुए। अरुणा देवी ने दूर से ही अपने गुरुदेव को देखकर प्रणाम किया; और युवराज ने चरण छूए। संन्यासी ने उनसे कहा—पुत्र! मेरे साथ मठ में चलो और मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है।

स्कंद०—प्रभु! जब तक मैंने अरुणा को नहीं देखा था, तब तक मेरा चित्त शांत था। परंतु अपनी बाल्यावस्था की सखी और वाग्दत्ता पत्नी को देखकर मेरा चित्त बहुत ही क्षुब्ध हो गया है। प्रभु! क्या आप अरुणा को प्रासाद में लौट जाने की आज्ञा देंगे?

गु०—समय आते ही मैं आज्ञा दे दूँगा। परंतु अभी इसमें विलंब है। मैं यह बात पहले से ही जानता था कि अरुणादेवी तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी और स्वर्गीया परमभट्टारिका महादेवी की पालिता कन्या है। मैं यह भी जानता था कि अरुणा पर चंद्रसेन हाथ छोड़ेगा। इसलिये मैं पाटलिपुत्र के प्रासाद के बाहर खाईं के पास बैठा हुआ इसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अभी बहुत सी बातें हैं। चलो, मठ में चलें।

युवराज चुपचाप कठपुतली की भाँति संन्यासी के पीछे पीछे मठ की ओर चल पड़े। अरुणा भी छाया की भाँति उनके पीछे पीछे हो ली।

देवालय के चारों ओर मठ था। उसी मठ के सुंदर अलिंद की शीतल छाया में बैठे हुए बंधुवर्मा विश्राम कर रहे थे। संन्यासी को देखते ही वे आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और स्कंदगुप्त को देखते ही उनके मुख पर हास्य की कुछ कुछ रेखा दिखाई दी। सब के पीछे अरुणादेवी आ रही थीं। उसे देखते ही मालवराज के रोएँ खड़े हो गए। तुरंत ही उन्होंने तलवार निकालकर अभिवादन किया और वज्र के समान गंभीर स्वर से कहा—"महादेवी की जय हो"। वहाँ से थोड़ी दूर पर आम की बारी में शतद्रु तट के भीषण युद्धवाले एक सौ वीर विश्राम कर रहे थे। उन्होंने भी वह जयध्वनि सुनते ही महादेवी अरुणा की जयध्वनि से आकाश गुँजा दिया। दुःखिनी अरुणा की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। उस समय नीले आकाश के किसी कोने में भाग्य देवता हँस रहे थे।

आँसू पोंछते हुए अरुणा ने बंधुवर्मा से कहा—मालवराज! मैं प्रायः स्वप्न में यही दृश्य देखा करती थी।

बंधुवर्मा ने हँसते हुए कहा—देवी! आज युवराज के मुख पर जो दीप्ति दिखाई दे रही है, वह बहुत दिनों से देखने में नहीं आई थी। वाह्लीक के तट पर, कपिशा में, गंधार में, पुरुषपुर में और शतद्रु तट पर हम लोग प्रायः यही सोचा करते थे कि क्या युवराज के मुख पर फिर भी वह शांत भाव कभी देखने में आवेगा? परंतु आज तुम्हारे दर्शनों से फिर वह दीप्ति आ गई। देवी! तुम गुप्तकुल की लक्ष्मी हो। तुम विचलित हो गई थीं। इसीलिये साम्राज्य रसातल को जाने लग गया था। देवी, तुम लौट चलो, जिससे देश में फिर से शांति स्थापित हो जाय। और मैं मालव में—

"दुर्गस्वामिनी के पास लौट जाऊँ" धीरे से इतना ही कहकर युवराज ने मुँह फेर लिया। आँखों में आँसू भरकर, बंधुवर्मा ने उन्हें गले से लगा लिया और कहा—युवराज, ऐसा ही हो। वह भी बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रही होगी।

इतने में संन्यासी ने कहा—पुत्रो, तुम लोग विश्राम करो और सेवा ग्रहण करो।

इसपर युवराज ने कहा—प्रभु ! अरुणा पर ही मेरा भाग्य निर्भर करता है। जब तक उसके लौट चलने की बात न हो ले, तब तक मेरे लिये विश्राम करना असंभव है। जिसका चित्त ही ठिकाने न हो, भला वह क्या विश्राम करेगा ?

सं०—अच्छा, तो फिर बैठ जाओ।

एक दूसरे संन्यासी के आसन ले आने पर सब लोग बैठ गए। संन्यासी ने कहा—पुत्र, मेरे दो एक प्रश्न हैं।

स्कंद०—हाँ हाँ, कहिए।

सं०—यदि इस समय अरुणा के साथ तुम्हारा विवाह हो जाय, तो तुम उसे कहाँ ले जाओगे ?

स्कंद—पाटलिपुत्र।

सं०—उसे रखोगे तो प्रासाद में ही न ?

स्कंद—कदापि नहीं। महामंत्री दामोदर शर्मा के यहाँ।

सं०—वहाँ रखने से लोग महाराजाधिराज की निंदा करेंगे, और प्रासाद इस समय उसके रहने के लिये उपयुक्त नहीं है।

स्कंद०—यदि मैं उसे मालव अथवा सौराष्ट्र ले जाऊँ तो ?

सं०—हाँ, यह संभव है। परंतु एक बात और सोच लो। गुप्तवंश के एकमात्र आधार तुम्हीं हो, केवल गुप्तवंश अथवा गुप्त साम्राज्य ही नहीं, किंतु सारा आर्यावर्त्त और आर्यधर्म के तुम्हीं एकमात्र आधार हो। अब तुम मुझे पहले यह बतलाओ कि इस समय तुम विवाह करके गृहस्थी में फँसोगे, अथवा अपने देश और धर्म की रक्षा करोगे ?

स्कंद०—क्या विवाह के उपरांत मैं अपने देश और धर्म की रक्षा न कर सकूँगा ?

सं०—कर तो सकोगे; परंतु तुम्हारा चित्त ठिकाने न रहेगा।

स्कंद—हाँ, यह तो ठीक है।

अरुणादेवी ने सिर झुकाकर बहुत ही लज्जित भाव से कहा—देव, जिस वेश्या कन्या के आने के कारण पट्टमहादेवी को आत्महत्या करनी पड़ी, वह

जब तक जीती रहेगी, युवराज के विवाह में सहमत न होगी। और जब तक वह सहमत न होगी, तब तक सम्राट् विवाह की आज्ञा न देंगे।

बंधु०—हाँ यह भी ठीक है।

सं०—यदि बिना पिता की आज्ञा के ही तुम अरुणा के साथ विवाह करोगे तो सारा आर्य्यावर्त्त तुम्हारी निंदा करेगा।

स्कंद०—यह भी ठीक है। परंतु प्रभु, इतने दिनों के उपरांत अरुणा को पाकर मैं उसे छोड़ नहीं सकूँगा।

सं०—नहीं, छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम मंदिर में चलो।

मंदिर का द्वार खुल गया और सब लोगों ने गर्भगृह में प्रवेश किया। संन्यासी ने आसन पर बैठकर आचमन किया और पत्थर की बनी वासुदेव की मूर्ति के चरण छूकर कहा- युवराज स्कंदगुप्त देव! मैं नारायण की इस पवित्र मूर्ति को स्पर्श करके शपथ करता हूँ कि जब तुम सिंहासन पर बैठोगे, तब मैं तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी अरुणादेवी का व्रत तोड़कर उसे लौटा दूँगा। और जब तक तुम उसे ग्रहण न करोगे, तब तक कन्या की भाँति उसका पालन करूँगा और आजन्म शत्रुओं के हाथ से उसे बचाऊँगा। (अरुणा से) बेटी, आगे आओ, आचमन करो।

अरुणा ने आगे बढ़कर आचमन किया और प्रतिमा को स्पर्श करके कहा—देव, वासुदेव जानते हैं, मैं आपकी पत्नी हूँ। मैं आज वासुदेव के चरण छूकर अपना तन, मन और प्राण आपके चरणों में समर्पित करती हूँ। जब आप मुझे बुलावेंगे, तब चाहे प्रासाद में हो और चाहे कुटी में हो, मैं आपकी सेवा में अपना जीवन बिता दूँगी।

इतने में संन्यासी ने कहा— बेटी, जाकर गेरुए वस्त्र उतार आओ।

अरुणा वहाँ से उठकर चली गई और तुरंत ही गेरुए वस्त्र उतारकर और चीन के लाल रेशमी वस्त्र पहनकर चली आई। संन्यासी ने कहा—बेटी, प्रतिमा के गले की माला उतारकर तुम आप पहन लो।

अरुणा ने प्रतिमा के गले से माला उतारकर अपने गले में पहन ली। संन्यासी ने फिर कहा—अब माला अपने पति को पहना दो।

अरुणा ने काँपते हुए हाथों से युवराज के गले में वह माला पहना दी। स्कंदगुप्त ने भी अपने गले से मोतियों की माला उतारकर अरुणा के गले में पहना दी। उस समय अरुणा ने कहा—देव, एक प्रार्थना है।

युवराज ने हँसते हुए कहा—अरुणा, भला कौन सा ऐसा पदार्थ है जो तुम्हें नहीं दे सकता।

अरुणा—यदि मैं कभी सुनूँ—

स्कंद—यदि मैं मर जाऊँ तो?

अरुणा—तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं चिता पर बैठकर भस्म हो जाऊँ।

स्कंद०—हाँ हाँ, अवश्य।

इतने में एक संन्यासी ने आकर कहा—पाटलिपुत्र से एक सवार आया है और कहता है कि यह अँगूठी युवराज के हाथ में दे दी जाय।

अँगूठी हाथ में लेते ही युवराज काँप उठे। अमंगल की आशंका करके अरुणादेवी ने स्कंदगुप्त का हाथ पकड़ लिया और पूछा—क्यों, क्या हुआ?

युवराज ने घबराहट से कहा—किसी अमंगल की सूचना आई है। चलो, बाहर चलें।

सब लोग उठकर बाहर निकल आए। वहाँ उन्होंने देखा कि पसीने से तर एक सवार एक अधमरे घोड़े की बाग पकड़े खड़ा है। सवार ने युवराज को अभिवादन करके कहा—युवराज, कुमार हर्षगुप्त ने यह अँगूठी भेजी है और कहलाया है कि बड़ा भारी अनर्थ हो गया है। महाराजाधिराज की आज्ञा से महामंत्री मंडला गए हैं। यदि कल प्रातःकाल आप सभामंडप में न पहुँचेंगे, तो बड़ी भारी विपत्ति आ जायगी।

स्कंद०—तुम कुछ कह सकते हो कि क्या हुआ है?

सवार—देव, मैं कुछ भी नहीं कह सकता। परंतु इतना अवश्य है कि कुमार बहुत ही उत्तेजित हो गए हैं।

स्कंद०—हर्ष तो पागल हैं। अच्छा, तुम विश्राम करो। मैं दोपहर को यहाँ से चलूँगा।

दोपहर के समय अरुणा के साथ स्कंदगुप्त मंदिर के गर्भगृह में गए और बंधुवर्मा मंडप में प्रतीहार की भाँति खड़े रहे। गर्भगृह में प्रवेश करते ही युवराज ने कहा—अच्छा, तो अब मैं विदा होता हूँ।

अपनी आँखों के आँसू छिपाने के लिये अरुणा ने सिर झुका लिया। युवराज ने फिर कहा—अरुणा ! आज तक मैंने तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया। क्या आज मैं तुम्हें स्पर्श कर सकता हूँ ?

अरुणा धीरे धीरे आगे बढ़ी। युवराज ने उसे गले से लगा लिया। बहुत देर तक उसी प्रकार गले से लगाए रहने के उपरांत युवराज ने उसे छोड़ दिया और तब दोनों निकलकर बाहर आए। बाहर निकलकर युवराज अपने हाथ से हीरे की अँगूठी उतारकर अरुणा की उँगली में पहना ही रहे थे कि इतने में कुमार हर्षगुप्त दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे और कहने लगे—चलिए, तुरंत चलिए। जान पड़ता है कि अपने कुल के गौरव की रक्षा के लिये देवधर ने आत्मबलि दे दी है।

———

पंद्रहवाँ परिच्छेद

उच्च कुल का गौरव

युवराज का साथ छोड़कर देवधर पालकी पर बैठे और रोहिताश्व के दुर्गाधिपति जयधवलदेव के घर की ओर चले। युवराज भट्टारकपादीय जय-धवल प्रसिद्ध धवलवंशी महानायक थे। वे साम्राज्य के सर्वप्रधान दुर्ग रोहिताश्व के दुर्गाधिपति और गौड़ तथा वंग देश के एक प्रधान भूम्यधिकारी थे। धन, मान और प्रताप में जयधवलदेव महाराजपुत्र गोविंदगुप्त से किसी प्रकार कम नहीं थे। पाटलिपुत्र के दक्षिण फाटक के पास उनकी विशाल अट्टालिका थी। महानायक जयधवलदेव ग्रीष्म ऋतु में रोहिताश्व में और हेमंत ऋतु में पाटलिपुत्र में रहा करते थे।

जब अट्टालिका के सामने पालकी पहुँची, तब जयधवल के सेवकों ने देवधर का परिचय प्राप्त करके लंबी चौड़ी सीढ़ियों पर बहुमूल्य वस्त्र बिछा दिया। इतने मे छत्र आया चँवर आया और सुगंधित जल आया। एक सेवक वह सुगंधित जल छिड़कता हुआ आगे आगे चलने लगा। जब देवधर पालकी से उतरे, तब उनपर लाल रंग का छत्र लगाया गया और दो सेवक उन्हें पंखा झलने लगे। अट्टालिका के दूसरे खंड पर बुड्ढे महानायक जयधवलदेव बैठे हुए देवधर की प्रतीक्षा कर रहे थे। देवधर के कमरे में प्रवेश करते ही वृद्ध महानायक ने उठकर उन्हें गले लगाया। देवधर को प्रणाम करने का भी अवसर न मिला और वृद्ध महानायक बोल उठे—पुत्र! मेरा अपराध क्षमा करना। युवावस्था में मैं भी योद्धा ही था। मैं अभी तक यह नहीं भूला हूँ कि युद्ध किसे कहते हैं। अमिया तुम्हारी ही है। उपयुक्त पात्र को अपनी कन्या देकर मैं धन्य होऊँगा। चंद्रधर के पुत्र को कन्या देकर धवलवंश धन्य होगा।

बड़ी कठिनता से जयधवल के आलिंगन से छूटकर देवधर ने उन्हें प्रणाम किया। वृद्ध महानायक ने एक दंधडर को माला और चंदन लाने की आज्ञा दी और दूसरे दंडधर को अमिया देवी को बुला लाने को कहा। देवधर ने विस्मित होकर पूछा—पिजा जी? माला क्या होगी?

वृद्ध योद्धा ने हँसकर कहा—पुत्र! क्षत्रिय के विवाह में बिलंब करना ठीक नहीं; और विशेषतः ऐसी अवस्था में जब कि महायुद्ध चल रहा हो। विवाह तुरंत ही हो जाना उचित है।

देव०—परंतु इस समय बंधु बांधव और आत्मीय लोग कहाँ से आवेंगे?

जय०—इस समय गांधर्व विवाह हो जाय। ब्राह्म विवाह पीछे से होता रहेगा।

देवधर कोई उत्तर न दे सके और लज्जा के कारण सिर झुकाकर खड़े रहे। वृद्ध ने फिर कहना आरंभ किया—पुत्र! एकाध वर्ष में हूण युद्ध समाप्त होनेवाला नहीं है। शीघ्र ही सीमांत पर फिर युद्ध आरंभ होगा।

अग्निगुप्त ने अपने स्वामी की सेवा में अपना जीवन दे दिया। यदि मुझे भी वृद्धावस्था न आ ग्रसती, तो मैं भी पाटलिपुत्र छोड़कर युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचता। ध्रुवस्वामिनी की भाँति मेरा यश भी चंद्रगुप्त आदि के साथ लुप्त हो गया है।

देव०—जी हाँ, मैंने ये सब बातें सुनी हैं।

जय०—किससे ?

देव०—पितामह महामंत्री से।

जय०—अवश्य सुनी होंगी; क्योंकि दामोदर शर्म्मा ये सब बातें जानते हैं। मेरी इच्छा होती है कि वीरधवल को भी इस वर्ष कपिशा भेजूँ। विवाह के उपरांत मैं उसे तुम्हारे हाथ सौंप दूँगा। मुझे आशा है कि बालक वीरधवल भी एक न एक दिन तुम लोगों के साथ शतद्रुवाले युद्ध के समान किसी महायुद्ध में लड़कर धवलवंश उज्जवल करेगा।

इतने में एक दंडधर ने कहा—देव, महानायिका और अमियादेवी धवलेश्वर मंदिर में पूजा कर रही हैं।

यह सुनकर वृद्ध जयधवल ने कहा—यह तो और भी उत्तम है। चलो मंदिर मे ही मैं तुम्हें कन्या दूँगा।

देवधर ने वृद्ध जयधवलदेव के साथ धवलवंश के प्रासाद के अंतःपुर में प्रवेश किया। पूजा कर चुकने पर महानायिका अपनी कन्या का हाथ पकड़े हुए बाहर आईं। देवधर ने अपनी भावी सास को प्रणाम किया। मंदिर में शिवलिंग को स्पर्श करके युवराज भट्टारकपादीय महानायक ने देवधर को अपनी कन्या दान की। इसके उपरांत पुरोहित आए और विवाह का दिन निश्चित हुआ। तीन ही दिन के उपरांत विवाह की तिथि निकली। तब तक अमियादेवी का अपने पिता के घर रहना ही स्थिर हुआ। इसके उपरांत महानायिका और पुरोहित आदि आड़ में चले गए और मंदिर के गर्भगृह में वर और कन्या ने एक दूसरे की मालाएँ पहनी और एक दूसरे को पहनाईं। देवधर ने अपने गले का बहुमूल्य हार अपनी पत्नी के गले में पहना दिया। उस समय अमियादेवी कुछ

लज्जित हुई क्योंकि पूजा से पहले स्नान के समय वह अपने सब अलंकार उतार आई थी। देवधर ने चुटकी लेते हुए पूछा—क्यों अमिया, क्या तुम मुझे अपना कोई निदर्शन न दोगी ?

अमि०—स्वामी, अभी स्नान करते समय मैंने अपने सब अलंकार उतार दिए थे। अब इस समय मैं आपको क्या दूँ और कहाँ से दूँ ?

देव०—अच्छा, तो अपने बालों की एक लट ही दे दो। मैं वही गले में पहन लूँगा।

अमि०—यहाँ और तो कोई अस्त्र नहीं है, आप अपनी तलवार मुझे दीजिए।

देव०—क्यों ?

अमि०—बालों की लट काटूँगी।

देवधर ने अपनी तलवार निकालकर दे दी। अमिया ने उसी से अपने लंबे लंबे बालों की एक लट काटकर अपने पति के हाथ में दी। देवधर ने उसी को माला की भाँति अपने गले में पहन लिया। अमियादेवी और महानायक जयधवलदेव से बिदा होकर देवधर अपने घर की ओर चले। मार्ग में जिस स्थान पर दक्षिण फाटक और राज गृहवाले फाटक के मार्ग मिलते थे, वहाँ पालकी रुक गई। वहाँ बहुत से रथ, हाथी, घोड़े, और ऊँट भी खड़े थे, जिनके कारण मार्ग रुका हुआ था। देवधर ने विस्मित होकर एक वाहक से पूछा—यह पालकी किसकी है ?

वा०—देव, मैं नहीं कह सकता।

देव०—क्या यह प्रासाद की पालकी है ?

वा०—नहीं।

देव०—तो फिर यह किसकी पालकी है, जिसके कारण राजमार्ग रुका है ?

पास खड़ा हुआ एक नागरिक बोल उठा—महानायिका मद-निका की।

देवधर ने विस्मित होकर पूछा—महानायिका मदनिका ? वे किनकी पत्नी हैं ?

नाग०—यह मैं नहीं कह सकता।

जब कोई आधा दंड बीत गया और पालकी फिर भी न उठी, तब देवधर पालकी पर से उतरकर उस ओर बढ़े। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक दंडधर ने उन्हें रोका। उन्होंने पूछा—क्यों भाई, तुम कह सकते हो कि यह किसकी पालकी है?

दंड०—महानायिका मदनिका की।

देव०—यह तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ। परंतु वे किनकी पत्नी हैं?

दंड०—अभी तक उनका विवाह नहीं हुआ।

देव०—तो फिर वे किन महानायक की कन्या हैं?

वेश्या मदनिका किसकी कन्या है, यह बात उसकी माता तक तो जानती ही नहीं थी, वह दंडधर क्या जान सकता था? अतः वह सिर नीचा करके सोचने लगा। इतने में एक दूसरे नागरिक ने देवधर का वस्त्र पकड़कर खींचा, जिससे देवधर उस प्रतीहार से कुछ दूर हो गए। नागरिक ने उनसे पूछा— महाशय, आप कितने दिनों से पाटलिपुत्र आए हैं?

देवधर ने बहुत ही विस्मित होकर पूछा—तो क्या मैं कोई विदेशी अथवा ग्रामवासी जान पड़ता हूँ?

नागरिक—यह बात तो नहीं है, परंतु फिर भी पाटलिपुत्र का कोई निवासी कभी यह न पूछता कि मदनिका कौन है?

देव०—क्यों?

नाग०—जान पड़ता है कि आप बहुत दिनों तक विदेश में रहे हैं।

देव०—बहुत दिनों तक तो नहीं, परंतु कुछ दिनों तक अवश्य रहा हूँ।

नाग०—यह मदनिका महाराजाधिराज की सास महानायिका इंद्रलेखा देवी की सखी है।

देव०—बहुत ठीक। तो क्या पाटलिपुत्र की सभी वेश्याएँ अब महानायिका हो गई हैं?

नाग०—सब तो नहीं, परंतु दो चार अवश्य हो गई हैं।

देव०—राजमार्ग में रुककर महानायिका क्या कर रही हैं?

नाग०—पान बेचनेवाली एक पुरानी सखी से बातचीत कर रही हैं।

देव०—परंतु केवल इसी कारण राजमार्ग के लोगों का आना जाना क्यों रोक दिया गया है ?

नाग०—महानायिका की आज्ञा से।

देवधर का शांत मुखमंडल तुरंत ही मारे क्रोध के लाल हो गया। उन्होंने तुरंत पालकी के पास पहुँचकर कहा—पालकी दूर हटा ले जाओ।

उसी पहरेवाले प्रतीहार ने देवधर के पास आकर कहा—महाशय, आप चिल्लाते क्यों हैं ? महानायिका अभी बिगड़ने लगेंगी।

देव०—महानायिका बिगड़ा करें। उनके बिगड़ने से क्या होता है ? कह दो कि पालकी मार्ग में से हटा दी जाय।

प्रती०—क्यों ?

देव०—मार्ग रुका हुआ है।

प्रती०—तुम्हारे जैसे लोगों के कहने से महानायिका मदनिकादेवी की पालकी दूर हटा दी जायगी ? अपना कल्याण चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।

अब देवधर को और भी अधिक क्रोध आ गया। उन्होंने फिर चिल्लाकर कहा—पालकी दूर हटाओ। मार्ग छोड़ दो।

प्रतीहार ने व्यंग से कहा—किसकी आज्ञा से ?

देव०—महानायक गुल्माधिकृत देवधर की आज्ञा से।

नाम सुनते ही प्रतीहार मारे भय के तीन हाथ पीछे हट गया और अभिवादन करके बोला—देव, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैं अभी महानायिका को आपके आने का समाचार देता हूँ।

प्रतीहार का विनीत भाव देखकर देवधर का क्रोध कुछ शांत हो गया। उन्होंने कहा—उन्हें मेरे आने का समाचार देने की आवश्यकता नहीं; कह दो कि मार्ग छोड़ दें।

प्रतीहार धीरे धीरे पालकी की ओर बढ़ा। थोड़ी देर के उपरांत मदनिका ने पालकी में से क्रुद्ध होकर कहा—मार्ग नहीं छूट सकता। मेरा

जब तक जी चाहेगा; तब तक मैं यहाँ बैठी रहूँगी। यदि किसीमें सामर्थ्य हो तो वह मुझे हटा दे।

देवधर को फ़िर क्रोध चढ़ आया। उन्होंने तीव्र स्वर से कहा—यदि तुम अपना कल्याण चाहो तो अभी मार्ग छोड़ दो।

मदनिका उस समय बहुत अधिक मद्य पीए हुए थी। वह उठकर लड़खड़ाती हुई पालकी के बाहर निकल आई। उसे देखते ही नागरिक लोग मारे भय के दूर हट गए। वह लड़खड़ाती हुई देवधर की ओर बढ़ी और बोली—अरे, तूने मुझे क्या समझ रखा है? क्या तुझे अपने प्राणों का भय नहीं है? जानता नहीं कि मैं तुझे अभी कुत्तों से नुचवा सकती हूँ?

देवधर ने उसकी दशा समझकर धीरे से कहा—देखो, यदि तुम अपना कल्याण चाहती हो, तो मार्ग छोड़कर दूर हट जाओ।

मद०—क्या यह मार्ग तेरे पिता की संपत्ति है?

देव०—देखो मदनिका, इस समय मद्य पीने के कारण तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं है। मैं फिर कहता हूँ कि तुम हट जाओ।

मद०—मद्य पीनेके कारण तेरी दादी की बुद्धि ठिकाने न रही होगी।

देव—देखो, तुम एक साधारण वेश्या हो। अपनी योग्यता देखकर बातें करो।

मद०—तेरी माँ, तेरी दादी वेश्या है, परदादी वेश्या है। मैं वेश्या हूँ?

इतना सुनते ही देवधर के एक वाहक ने पीछे से आकर मदनिका को पटक दिया। मदनिका के प्रतीहारों ने मिलकर उस वाहक को मारना आरंभ किया। उस समय वाहक को बचाने के लिये तलवार निकालनी पड़ी। दंडधर और प्रतीहार लोग अस्त्र शस्त्र लिए हुए थे, परंतु वाहकों के पास कोई अस्त्र नहीं था देवधर सामने खड़े होकर मदनिका के सेवकों को रोकना चाहते थे, यह देखकर सबने उन्हीं पर आक्रमण किया। अस्त्र चलते देखकर राजमार्ग से सब लोग हट गए थे। कोई बीस दंडधर और प्रतीहार अकेले देवधर पर आक्रमण कर रहे थे और मदनिका दूर खड़ी हुई अपने सेवकों को बढ़ावा दे रही थी।

वाहक लोग भाग गए थे, और देवधर विपत्ति देखकर एक अट्टालिका की दीवार से लगकर अपने आपको बचाने का प्रयत्न कर रहे थे। सहसा दूर से घोड़ों के आने का शब्द सुनाई दिया। मदनिका के सेवकों ने डरकर अस्त्र चलाना छोड़ दिया। तुरंत कोई एक सौ के ऊपर सवारों के साथ कुमार हर्षगुप्त ने वहाँ पहुँचकर उन सबको घेर लिया। तुरंत ही सब दंडधर और प्रतीहार या तो मार डाले गए या पकड़ लिए गए। मदनिका भागने का उद्योग कर रही थी, इतने में एक सवार ने उसके सिर के बाल पकड़कर झटके से उसे गिरा दिया और ऊपर से एक लात मारी। वह रोने और चिल्लाने लगी। यह देखकर देवधर ने कहा—इसे छोड़ दो।

इस पर हर्षगुप्त ने कहा—नहीं, अभी नहीं।

देव०—तो फिर क्या करोगे?

हर्ष०—देखो।

कुमार की आज्ञा से सवारों ने मदनिका को उसकी पालकी से बाँध दिया और मारे कोड़ों के उसकी पीठ लाल कर दी और तब उसे खोल दिया। अधमरी मदनिका छूटते ही वहाँ से भागी। उस समय देवधर ने हर्षगुप्त से पूछा—कुमार, तुम कहाँ जा रहे थे?

हर्ष०—मैं प्रासाद की ओर जा रहा था। मार्ग में तुम्हारे वाहकों से मुझे इस घटना की सूचना मिली थी।

देव०—यह मदनिका कौन है?

हर्ष०—इंद्रलेखा की सखी।

देव०—तब तो आज की घटना का यही अंत न होगा।

हर्ष०—तुम निश्चिंत रहो। मैं गोविंदगुप्त का पुत्र और द्वितीय चंद्रगुप्त का पौत्र हूँ। तुम घर चले जाओ। परंतु अकेले बाहर न निकलना।

देव०—क्यों?

हर्ष०—युवराज आ जायँ, तब बतलाऊँगा। आज महामंत्री भी नगर में नहीं हैं। तुम प्रतिज्ञा करो कि मैं अकेला घर से नहीं निकलूँगा।

देव०—क्यों? भय किस बात का है?

हर्ष०—बात यह है कि इस नगर में आजकल किसी का विश्वास नहीं है। जहाँ दिन दोपहर राजमार्ग में वेश्या के सेवक एक महानायक पर आक्रमण करें, वहाँ सदा सावधान ही रहना चाहिए।

देव०—अच्छी बात है। जब तक युवराज नहीं आवेंगे, तब तक मैं अकेला बहार न निकलूँगा।

देवधर पालकी पर बैठकर अपने घर चले गए। तीसरे पहर एक सेवक ने उन्हें सोते से जगाकर सूचना दी कि महाप्रतीहार की आज्ञा से चोर पकड़नेवाला एक राजकर्मचारी आपको पकड़ने आया है। देवधर ने विस्मित होकर पूछा—चोर पकड़नेवाला राजकर्मचारी ? पकड़ने के लिये ?

सेवक—हाँ प्रभु।

देव०—किसे ?

देव०—आपको।

देव०—मुझको ?तुम भूलते हो।

देव०—देव, वह कहता है कि मैं महाप्रतीहार की आज्ञा से महानायक को पकड़ने के लिये आया हूँ।

देव०—यह असंभव है तुम फिर जाकर उससे पूछ आओ।

सेवक अभिवादन करके चला गया और थोड़ी ही देर में फिर आकर बोला—देव, वह आपके दर्शनों की प्रार्थना करता है।

देवधर ने पलंग से उतरकर उस राजकर्मचारी को वहीं लाने की आज्ञा दी तुरंत ही वह सेवक उस कर्मचारी को साथ लेकर कमरे में आ पहुँचा और देवधर को अभिवादन करके एक कोने में खड़ा हो गया। देवधर ने उससे पूछा—क्या तुम महाप्रतीहार की आज्ञा से मुझे पकड़ने के लिये आए हो ?

कर्म०—हाँ, प्रभु।

देव०—तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ?

देव०—तुम यह भी जानते हो कि तुम्हारे जैसा एक साधारण कर्मचारी साम्राज्य के महानायकों को नहीं पकड़ सकता ?

कर्म०—हाँ, प्रभु ।

देव०—तो फिर क्यों आए हो ?

कर्म०—महाप्रतीहार की आज्ञा से ।

देव०—तुम यह जानते हो कि महामुद्रांकित आज्ञापत्र के बिना स्वयं महाप्रतिहार भी मुझे नहीं पकड़ सकते ?

कर्म०—देव, मैं दस वर्ष से राज्यकार्य करता आ रहा हूँ । मैंने साम्राज्य की प्राचीन नीति महाप्रतीहार के सामने विवेदन कर दी थी ।

देव०—शिवनंदी तो हूण युद्ध में है । नया प्रतीहार कौन है ?

कर्म०—अच्चयनाग के पुत्र भवरुद्र ।

देव०—जाकर नए महाप्रतीहार से कह दो कि महानायक देवधर के घर अच्चयनाग की मद्य की दूकान नहीं है ।

राजकर्मचारी अभिवादन करके चला गया । देवधर अपने विवाह का प्रबंध करने लगे । थोड़ी देर के उपरांत फिर वह सेवक आया और अभिवादन करके बोला—देव, नगर के महाप्रतीहार आपसे भेंट करना चाहते हैं ?

देवधर ने विस्मित होकर पूछा—कौन ? महाप्रतीहार ?

सेवक—हाँ, प्रभु । कोई सौ दंडधरों और प्रतीहारों ने इस घर को चारों ओर से घेर लिया है ।

देव०—इस समय यहाँ कितने सैनिक हैं ?

सेवक—दो सौ से ऊपर ।

देव०—उन सबसे कह दो कि अस्त्रशस्त्र लेकर मंडप में आ जायँ ।

सेवक अभिवादन करके चला गया । कुछ ही क्षणों के उपरांत ढाई सौ वर्मधारी सैनिकों को साथ लिए हुए देवधर मंडप में आ पहुँचे । मंडप में नया महाप्रतीहार भवरुद्र खड़ा था । देवधर को देखते ही उसने पूछा—क्या आप ही महानायक देवधर हैं ?

देव—हाँ ।

भव—मैं आपके लिये महामुद्रांकित आज्ञापत्र लाया हूँ ।

यह सुनते ही देवधर ने अपनी तलवार निकाल ली। साथ ही ढाई सौ योद्धाओं की तलवारें भी निकलकर चमकने लगीं। भवरुद्र ने दंडधर के हाथ से चाँदी का एक पात्र ले लिया। अपने सिर से तलवार स्पर्श कराके देवधर ने उस पात्र में से तालपत्र पर लिखा हुआ आज्ञापत्र उठा लिया। उस समय ढाई सौ सैनिकों ने राजकीय मुद्रा को अभिवादन किया। उस पत्र में लिखा था—

"महानायक गुल्माधिकृत देवधर ने राजमार्ग में महानायिका मदनिका को अपमानित किया है। महाप्रतीहार इस आज्ञापत्र को पाते ही चंद्रधर के पुत्र देवधर को पकड़कर कारागार में ले आवें और कल प्रातःकाल सभा-मंडप में उन्हें विचार के लिये उपस्थित करें। स्वहस्तोयम् मम महाराज-धिराजस्य श्री कुमारगुप्तस्यः संवत् १२६ भाद्रपद ७"।

आज्ञापत्र पढ़ते ही देवधर का मुँह लाल हो आया। परंतु तुरंत ही शांत होकर उन्होंने महाप्रतीहार से कहा—महाप्रतीहार, महाराजाधिराज की आज्ञा शिरोधार्य है। परंतु मैं साम्राज्य का महानायक हूँ, और आर्य समुद्रगुप्त की नीति के अनुसार कोई महानायक विचार होने से पहले ही कारागार में नहीं भेजा जा सकता। आप चले जायँ। मैं प्रातःकाल स्वयं ही सभामंडप में पहुँच जाऊँगा।

भव०—पट्टमहादेवी की आज्ञा है कि आप इसी समय कारागार में भेजे जायँ।

देव—आप जाकर पट्टमहादेवी से कह दीजिएगा कि जो आज्ञा गुप्त-साम्राज्य की राष्ट्रनीति के विरुद्ध होती है, उसका पालन नहीं होता।

भव०—पट्टमहादेवी की आज्ञा है कि यदि आप यों न मानें, तो आप-को बलपूर्वक कारागार में बंद किया जाय।

देव०—देखो सावधान, यहाँ वक्षु और शतद्रु तट के ढाई सौ वीर खडे हैं। यदि तुम बल प्रयोग का प्रयत्न करोगे, तो यहीं तुम्हारे शरीर के टुकड़े टुकड़े करके ये लोग तुम्हें गंगा में मगरों और घड़ियालों के सामने डाल देंगे।

देवधर की बात समाप्त होते ही फिर ढाई सौ तलवारें निकलकर चमकने लगीं। भवरुद्र ने समझ लिया कि अब आपत्ति आया चाहती है। अतः वह अभिवादन करके चला गया। थोड़ी देर तक देवधर पत्थर की मूरत की भाँति चुपचाप खड़े कुछ सोचते रहे। इसके उपरांत उन्होंने तीन सैनिकों को बुलाकर उनमें से एक से कहा—प्रियनंदी, तुम यह बालों की लट लेकर रोहिताश्व के अधिपति महानायक जयधवलदेव के यहाँ जाओ और उनकी कन्या अमियादेवी के हाथ में इसे दे दो।

इतना कहकर देवधर ने अपने गले से सोने की सिकड़ी में बँधी हुई बालों की लट उतारकर उस सैनिक के हाथ में दे दी। सैनिक अभिवादन करके उस कमरे से निकल गया। इसके उपरांत उन्होंने अपने दाहिने हाथ की उँगली से हीरे की एक अँगूठी उतारकर दूसरे सैनिक को दी और उससे कहा—तुम यह महाकुमार हर्षगुप्त के हाथ में दे देना।

जब दूसरा सैनिक भी चला गया तब देवधर ने कोष से टूटी हुई तलवार निकाली और उसे तीसरे सैनिक के हाथ में देकर कहा—यह तलवार शतद्रु तटवाले प्रसिद्ध युद्ध में युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त के हाथ में थी। जब युवराज नगर में लौट आवें, तब उन्हें यह तलवार दे देना।

वह सैनिक विस्मित होकर देवधर के मुँह की ओर देखने लगा। देवधर ने और सैनिकों से कहा—भाइयो, सुख और दुःख दोनों में तुम लोगो ने बहुत दिनों तक मेरा साथ दिया है और पुरुषानुक्रम से तुम लोग धरवंश के शुभचिंतक हो। अब धरवंश का लोप हो जायगा। एक साधारण वेश्या ने राजमार्ग में मेरी माता आदि का नाम लेकर दुर्वचन कहे थे, इसी कारण शतद्रु तटवाले वीरों ने कोड़ों से उसे मारा था, परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज ने केवल इसी अपराध के कारण मेरे वंश की सैकड़ों वर्ष की सेवाओं को भुलाकर मुझे कारागार में बंद करने की आज्ञा दी है। मेरे पिता चंद्रधर ने सिप्रा और शुभ्रमति के तट पर जो जो काम किए थे, उन सबको चंद्रगुप्त के पुत्र ने भुला दिया है। एक वेश्या के जामात ने वेश्या के अनुरोध ने उसी चंद्रधर के पुत्र को साधारण चोरों की भाँति कारागार में बंद करने की आज्ञा दी है। भाइयों, अब उत्तरापथ में धरवंश की कोई आवश्यकता

नहीं है। आज मैं पुरानी प्रथा के अनुसार धरवंश के उज्वल यश को कलंकित होने से बचाऊँगा। तुम सब लोग उत्सव का प्रबंध करो।

देवधर की बात समाप्त होते ही कमरे का द्वार खुला। कुमार हर्षगुप्त ने शीघ्रतापूर्वक आकर देवधर को गले से लगा लिया और रुँधे हुए कंठ से कहा—देवधर, क्या हुआ ? तुमने पिता जी की दी हुई अँगूठी क्यों लौटा दी ?

देवधर ने कुमार हर्षगुप्त को गले से लगाकर कहा—बस कुमार, यह अँगूठी महाराजपुत्र को लौटा देना और कह देना कि देवधर ने अपने वंश के गौरव की रक्षा के लिये अपनी पुरानी प्रथा का अनुसरण किया है।

हर्ष०—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

देव०—भाई, मैंने मदनिका का अपमान कराया था, इसी कारण महाराजाधिराज ने मुझे कारागार में बंद करने की आज्ञा दी थी। अभी महाप्रतीहार मुझे पकड़ने के लिये आया था, परंतु मैंने उसे लौटा दिया कल प्रातःकाल सभामंडप में एक वेश्या का अपमान करने के अपराध में मेरा विचार होगा। साम्राज्य के महानायकों से उस समय वहाँ उपस्थित रहने के लिये अनुरोध करना।

हर्ष०—भाई देवधर, इस समय नगर में न तो महामंत्री हैं और न युवराज—

देव०—तो फिर इसमें हानि ही क्या है ? यदि और कोई नहीं है, तो तलवार तो है। कल प्रातःकाल मेरा मृत शरीर सम्राट् के सामने ले जाना। मैंने शपथ की है कि प्रातःकाल सभामंडप में उपस्थित होऊँगा। अतः मेरी शपथ टूटने न पावे।

हर्ष०—भाई देवधर, युवराज संध्या से पहले ही लौट आवेंगे। अतः तुम कुछ समय तक उनकी प्रतीक्षा कर लो।

देव०—भाई, युवराज आकर क्या करेंगे ? आज एक वेश्या की कन्या साम्राज्य की पट्टमहादेवी है। वेश्या के जामाता एक वेश्या का अपमान करने के लिये मुझे क्षमा नहीं करेंगे। योद्धाओं का बल आँसू नहीं है, तलवार है।

हर्ष०—देवधर, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम ठहर जाओ; क्षण भर ठहर जाओ।

इतना कहकर कुमार हर्षगुप्त शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चले गए। संध्या से कुछ पहले ही चंद्रधर का विशाल प्रासाद दीपमालाओं से सुशोभित हो गया। अनेक प्रकार के फूलों के गुच्छों और मालाओं से सजे हुए मंडप में नाच गाना आरंभ हुआ। सेवकों से घिरे हुए देवधर अपने आसन पर जा बैठे। इतने में ओहार से ढकी हुई दो पालकियाँ धरवंश के प्रसाद के सामने आ पहुँचीं। पहली पालकी पर से अस्सी वर्ष के एक वृद्ध ने और दूसरी पालकी पर से सोलह वर्ष की एक युवती ने उतरकर प्रासाद में प्रवेश किया। मंडप में उन लोगों के पहुँचते ही देवधर चौंककर आसन पर से उठ खड़े हुए और रुँधे हुए कंठ से बोले—अमिया—जयधवलदेव !

वृद्ध महानायक जयधवल अपनी कन्या का हाथ पकड़े हुए आसन के पास पहुँचकर बोले—देवधर, तुम चंद्रधर के पुत्र हो। इसी कारण मैं तुम्हें क्षमा कर देता हूँ, नहीं तो प्रसिद्ध धवलवंश का अपमान—

देवधर ने विस्मित होकर पूछा—देव, अपमान कैसा ?

जय०—तुमने अमिया के बालों की लट क्यों लौटा दी ?

देव०—देव, मार्ग में एक वेश्या के—

जय०—मैं सब कुछ सुन चुका हूँ। परंतु देखो पुत्र, धवलवंश की कन्या कोई वेश्या नहीं है। मैंने प्रातःकाल धवलेश्वर को साक्षी करके तुम्हें जो कन्या दी है, उसे मैं संध्या समय लौटा नहीं सकता।

देव०—परंतु—देव—

जय०—पुत्र, अपने गौरव की रक्षा करने की प्रथा केवल धर वंश ही नहीं जानता। चंद्रधर का पुत्र जिस काम को सहज समझता है, जयधवल की कन्या भी वह काम सहज में कर सकती है।

देव०—अमिया—

आँसुओं के मारे देवधर के गाल और छाती तर हो गई। उनका गला रुँध गया। उन्होंने धीरे धीरे अपने दोनों हाथ पसारे। अमिया आगे

बढ़कर अपने पति से जा मिलीं। उसी समय वेश्याओं ने मंगल ध्वनि की, योद्धाओं ने जयध्वनि की और वृद्ध महानायक ने मुँह फेरकर अपने आँसू पोंछे।

इतने में फिर द्वार खुला और कुमार हर्षगुप्त झपटे हुए वहीं आ पहुँचे। परंतु बीच में ही यह दृश्य देखकर वे स्तंभित होकर खड़े हो गए। उन्हें देखते ही देवधर ने मुस्कराकर कहा—कुमार, आज मेरा विवाह है।

हर्षगुप्त थोड़ी देर तक तो स्तंभित होकर खड़े रहे। इसके उपरांत उन्होंने धीरे से कहा—देवधर, आज मैं तुमसे एक भिक्षा माँगता हूँ।

देवधर ने बहुत ही शांत भाव से कहा—भाई, ऐसा कौन सा पदार्थ है, जो मैं तुम्हें नहीं दे सकता? कहो, क्या चाहते हो?

हर्ष०—तुम आधी रात तक ठहरे रहो।

देव०—ठहर जाऊँगा।

हर्ष०—मैं स्वयं वासुदेव के मंदिर में जाता हूँ।

इतना कहकर कुमार हर्षगुप्त फिर मंडप से निकलकर चले गए।

फिर नाच गाना आरंभ हुआ। अपनी कन्या और जामाता को एक आसन पर बैठाकर वृद्ध महानायक जयधवलदेव आप भी वहाँ से कुछ दूर एक आसन पर बैठ गए। देखते देखते रात के पहले दो पहर बीत गए। नगर के फाटकों पर दूसरे पहर के मंगलवाद्य बजने लगे। इतने में देवधर आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। जयधवल ने पूछा—पुत्र, क्या समय हो गया?

देव०—हाँ देव, हो गया।

इसपर वृद्ध महानायक ने अपनी कमर पेटी में से एक धारदार छुरी निकालकर अपनी कन्या के हाथ में दी और कहा—बेटी, अपने कुल के गौरव की रक्षा करो।

अमिया ने हँसते हुए वह छुरी अपने हाथ में ले ली और उससे अपने हाथों और पैरों की नसें काट डालीं। फिर वही छुरी लेकर देवधर ने भी अपने हाथों और पैरों की नसें काट डालीं। उस समय एक वृद्‌ध सैनिक

ने आगे बढ़कर कहा—देव, परलोक में भी आपको सेवकों की आवश्यकता होगी। हम लोग भी अपना स्वामी धर्म नहीं भूले हैं।

यद्यपि अब तक देवधर का चेहरा पीला पड़ गया था, परंतु फिर भी उन्होंने कुछ मुस्कराकर कहा—अच्छी बात है।

तुरंत ही ढाई सौ तलवारें ढाई सौ कलेजों को पार कर गईं। शतद्रु तटवाले ढाई सौ सैनिकों ने भी अपने स्वामी का अनुसरण किया। देखते देखते एक दूसरे को कसकर गले लगाए हुए पत्नी और पति दोनों वहीं गिर पड़े। विशाल मंडप की दीप मालाएँ बुझ गईं। सहसा फिर द्वार खुला। स्कंदगुप्त और हर्षगुप्त ने दौड़ते हुए वहीं पहुँचकर पुकारा "देवधर!"

वहीं खड़े हुए वृद्ध महानायक जयधवल ने सूखे हुए कंठ से कहा—धीरे युवराज—धीरे कुमार—मेरी कन्या और जामाता सोए हुए हैं।

भस्म

पहला परिच्छेद

विचार

जिस समय प्रथम चंद्रगुप्त ने पाटलिपुत्र से शक जाति के महाक्षत्रप को हटाकर गुप्त साम्राज्य का आर्यपट्ट स्थापित किया था, उस समय से लेकर प्रथम कुमारगुप्त के राज्यकाल तक कभी किसी ने आर्यपट्ट पर तीन सिंहासन रखे नहीं देखे थे। परंतु महानायक देवधर के शरीरत्याग के दूसरे दिन पाटलिपुत्र के नागरिकों ने देखा कि आर्यपट्ट पर दो सिंहासनों की जगह चार सिंहासन रखे हुए हैं। जब सम्राट् और पट्टमहादेवी ने अपना अपना आसन ग्रहण कर लिया, तब उच्च कुल के लोगों और सभासदों ने विस्मित होकर देखा कि इंद्रलेखा और मदनिका भी शेष दोनों सिंहासनों पर जा बैठीं। जब वैतालिकों का संगीत समाप्त हो गया, तब पट्टमहादेवी अनंतादेवी ने महाप्रतीहार से पूछा—भवरुद्र! वह अधम देवधर कहाँ है?

भवरुद्र ने आर्यपट्ट के सामने खड़े होकर अभिवादन किया और कहा—देवी, महानायक गुल्माधिकृत देवधर ने कल मुझसे कहा था कि मैं विचार के समय सभा मंडप में उपस्थित रहूँगा। संभवतः वे मंडप के बाहर प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

पट्ट०—उसे बुला लाओ।

भव०—क्या वे मेरे बुलाने पर आवेंगे?

पट्ट०—क्यों नहीं आवेगा।

भव०—वे साम्राज्य के महानायक हैं; और साम्राज्य की प्राचीन प्रथा के अनुसार महानायक को महानायक के अतिरिक्त और कोई नहीं पकड़ सकता।

इसपर पट्टमहादेवी ने सम्राट् से पूछा—देव! क्या यह बात ठीक है?

सम्राट्—हाँ, ठीक है।

इसपर पट्टमहादेवी से महाप्रतीहार से कहा—भवरुद्र ! तुम देवधर को सम्राट् के नाम से सभामंडप में बुला लाओ।

महाप्रतीहार अभिवादन करके सभामंडप से निकल गया। उसके साथ ही अलिंद में बैठे हुए उच्च कुल के और लोग भी सभामंडप से निकल गए।

आधा दंड बीत गया, परंतु कोई न आया। यह देखकर इंद्रलेखा ने पूछा—अनंता ! देवधर कहीं भाग तो नहीं गया ?

पट्टमहादेवी ने गरजकर कहा—नहीं, वह भाग नहीं सकता। नगर के प्रत्येक फाटक पर भवरुद्र ने दंडधर खड़े कर दिए हैं। वे सब देवधर को पहचानते हैं।

पट्टमहादेवी की बात समाप्त होने से पहले ही सब सभासद अपना अपना आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। सम्राट् और पट्टमहादेवी ने विस्मित होकर देखा कि अस्सी वर्ष के बुड्ढे युवराज भट्टारकपादीय महानायक रोहिताश्व के अधिपति जयधवलदेव नगे सिर और नगे पैर मंडप के फाटक पर खड़े हैं। उन्हें देखते ही सम्राट् सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए। यह देखते ही जयधवलदेव ने कहा—धीरे ! महाराजधिराज धीरे ! मेरी कन्या और जामाता दोनों सोए हैं—बड़े कष्ट से सोए हैं।

धीरे धीरे वृद्ध जयधवलदेव ने सभामंडप में प्रवेश किया। उनके पीछे पीछे हाथी दाँत की बनी खाट लिए हुए कुछ लोग और साथ मे युवराज स्कंदगुप्त, कुमार हर्षगुप्त, मालवराज बंधुवर्मा और सौराष्ट्र के महापात्र चक्रपालित ने मंडप में प्रवेश किया। उन लोगों के पीछे पाटलिपुत्र में उपस्थित और सब महानायक थे। वे सब के सब नंगे सिर और नगे पैर थे। खाट आर्यपट्ट के सामने रख दी गई और सब लोग एक श्रेणी में खड़े हो गए। वृद्ध सम्राट् और युवती पट्टमहादेवी ने बहुत विस्मित होकर देखा कि सफेद फूलों की शय्या पर सफेद फूलों के अलंकार पहने हुए महानायक चंद्रधर के पुत्र महानायक गुल्माधिकृत देवधर और महानायक जयधवल की कन्या अमिया दोनों मरे पड़े हैं।

वृद्ध सम्राट् स्तंभित होकर सिंहासन पर बैठ गए। उस समय जयधवल-

देव ने आर्यपट्ट के सामने आकर कहा—महाराजाधिराज ! आपने विचार के लिये देवधर को सभा मंडप में आने की आज्ञा दी थी। उसी आज्ञा के अनुसार वे इस समय यहाँ उपस्थित हैं। अमिया को देखकर आप विस्मित न हों। धवल वंश की कोई कन्या आज तक सभा मंडप में नहीं आई थी। परंतु मरने पर भी ये दोनों एक दूसरे को नहीं छोड़ते थे। इस कारण अमिया को यहाँ तक लाना पड़ा। कन्या और जामाता दोनों सोए हुए थे। उन्हें कष्ट होता, इसी कारण दोनों को एक दूसरे से नहीं छुड़ाया।

कुमार हर्षगुप्त ने आगे बढ़कर कहा—महाराजाधिराज की जय हो ! स्वर्गीय गुल्माधिकृत महानायक देवधर के अनुरोध से मैं उनका मृत शरीर सभामंडप में लाया हूँ। उन्होंने मुझसे आपकी सेवा में यह निवेदन करने के लिये कहा था कि एक वेश्या के कहने से आज तक साम्राज्य का कोई महानायक धर्माधिकरण में नहीं लाया गया था। परंतु महाराजाधिराज ने मदनिका वेश्या का अपमान करने के अपराध में देवधर को दंड देने के लिये उनके पास महामुद्रांकित आज्ञापत्र भेजा था। महामुद्रा के संमान की रक्षा की गई है। देवधर का मृत-शरीर विचार के लिये यहाँ उपस्थित है। परंतु धर-वंश की उज्जवल कीर्ति को कलंकित होने से बचाने के लिये देवधर ने सदा की प्रथा के अनुसार आत्मबलि दे दी।

इतना कहकर कुमार हर्षगुप्त फिर अपने स्थान पर आ खड़े हुए, और युवराज स्कंदगुप्त ने आगे बढ़कर कहा—महाराजाधिराज की जय हो। आर्य अग्निगुप्त के परलोक सिधारने पर महामुद्रांकित आज्ञापत्र के अनुसार मैं साम्राज्य का महाबलाधिकृत बना हूँ। अपने उच्च कुल के गौरव की रक्षा के लिये महानायक चंद्रधरदेव के पुत्र महानायक गुल्माधिकृत देवधर ने आत्मबलि दी है। अब धरवंश का अंत हो गया। आर्य समुद्रगुप्त की राष्ट्रनीति के अनुसार धरवंश की सब ध्वजाएँ और स्मृतिचिन्ह आदि सम्राट् के सामने उपस्थित करता हूँ।

उपस्थित महानायकों के हाथ से एक एक पदार्थ लेकर युवराज आर्यपट्ट के सामने रखने लगे और बोले—महाराजधिराज महानायक देवधर के

पितामह महानायक शशांकधर आर्य समुद्रगुप्त के सहचर थे। दाक्षिणात्य में शशांकधर ने पल्लव की राजधानी कांचीपुर पर अधिकार किया था। इस कारण विष्णुगोप का जड़ाऊ ध्वज उन्हें दिया गया था। आर्य समुद्रगुप्त ने जिस समय यमुना तट पर शाही शाहानुशाही शक राजाओं को परास्त किया था, उस समय अकेले शशांकधर ने शत्रुओं का व्यूह तोड़ा था। इस कारण आर्य समुद्रगुप्त ने उन्हें तलवार दी थी, जिसपर उनका नाम अंकित था। पितामह ने जिस समय मालव पर आक्रमण किया था, उस समय सिप्रा तटवाले भीषण युद्ध में महानायक चंद्रधर महाराजाधिराज के साथ थे। उन्होंने बड़े अनुरोध से उज्जयिनी के राजा का मकरध्वज चंद्रधर को प्रदान किया था। संभवतः महाराजाधिराज इस बात को भूले न होंगे। जिस समय शुभ्रमति के तट पर साम्राज्य की सेना हारकर भागना चाहती थी, उस समय महानायक चंद्रधर ने एक हजार मागध सैनिकों को लेकर भाग्यलक्ष्मी की गति बदली थी। सुनता हूँ कि उस युद्ध में स्वयं महाराजाधिराज और महाराजाधिराज महाराजपुत्र उपस्थित थे। उसी युद्धक्षेत्र में स्वयं पितामह ने अपने मुकुट में से मोतियों की यह माला निकालकर महानायक चंद्रधर के उष्णीष में लगा दी थी। जिस समय शक राज्य पर अधिकार हुआ था, उस समय तीन घोड़ों की पूँछवाली यह पताका स्वयं महानायक चंद्रधर ने शक राज से ले ली थी। इस कारण परमभट्टारिका महादेवी ध्रुवस्वामिनी ने यह पताका उन्हीं को दे दी थी। तब से यह धर वंश के ही पास थी। संभवतः महाराजाधिराज के प्राण बचाने के लिये ही अपने प्राण दिए थे। विपाशा के तट पर एक हजार सैनिक लेकर महानायक देवधर उपस्थित थे। उसीके स्मृतिचिन्ह के रूप में मैंने पिताजी की दी हुई यह तलवार, जो हूण युद्ध में टूट गई थी, देवधर को दी थी—

सहसा वृद्ध सम्राट् सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए और बोले—युवराज; ठहर जाओ। पहले यह बतलाओ कि देवधर की हत्या किसने की है?

स्कंद०—महाराजाधिराज, महानायक देवधर नें स्वयं प्राणत्याग किया है।

सम्रा०—क्यों ?

स्कंद०—अपने कुल के गौरव की रक्षा के लिये।

सम्रा०—क्या हुआ था ?

स्कंद०—मदनिका वेश्या का अपमान करने के अपराध में उन्हें सभा-मंडप में आने की आज्ञा दी गई थी।

सम्रा०—वह आज्ञा कौन ले गया था ?

स्कंद०—महाप्रतीहार भवरुद्र।

सम्रा०—भवरुद्र तुमने वह आज्ञापत्र किससे पाया ?

भव० पट्टमहादेवी से।

सम्रा०—देवी ! तुमने वह आज्ञापत्र कहाँ पाया ?

अनंता—मैंने स्वयं आज्ञा की थी।

सम्रा०—बिना महामुद्रांकित पत्र के कोई महानायक नहीं पकड़ा जा सकता। क्या तुमने आज्ञापत्र पर महामुद्रा लगाई थी ?

अनंता—उस समय महाराजाधिराज सो रहे थे, इस कारण मैंने स्वयं ही आज्ञापत्र पर महामुद्रा अंकित की था।

सम्रा०—तुमने सर्वनाश कर डाला !

इतने में बंधुवर्म्मा ने आगे बढ़कर कहा—सम्राट् की आज्ञा से महानायक देववर विचार के लिये सभा मंडप में लाये गए हैं। हम लोग प्रार्थना करते हैं कि उनका विचार किया जाय।

सम्राट् सिंहासन पर बैठ गए और उनका सिर झुक गया। उस समय वृद्ध जयधवल ने आर्यपट्ट के सामने पहुँचकर कहा महाराजाधिराज की जय हो। मैं आर्य समुद्रगुप्त का सहचर हूँ। मैं समझता हूँ कि सम्राट् मुझे भूले न होंगे।

सम्राट् का सिर और भी झुक गया। जयधवल ने फिर कहा—महाराजाधिराज, धवल वंश आरंभ से ही गुप्त वंश की सेवा करता आया है। इस वंश ने अपना रक्त बहाकर समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त तथा स्वयं सम्राट की सेवा की है। क्या उस सेवा का यही पुरस्कार है ?

रुँधे हुए कंठ से सम्राट् ने कहा—महानायक ! आप मुझे क्षमा करें। यह सब इस बालिका की चपलता—

वृद्ध जयधवल ने गरजकर कहा—महाराजाधिराज ! कल मैंने अपनी आँखों की पुतली एक मात्र कन्या अमिया को मृत्यु की गोद में सुलाया है। जिस छुरी से उसने अपने कोमल शरीर की नसें काटी थीं वह छुरी मैंने स्वयं अपने हाथ से दी थी। मैंने स्वयं खड़े होकर अपनी कन्या और जामाता को मरते हुए देखा था। अतः मेरे लिये क्षमा करना असंभव है।

वृद्ध साम्राट् ने दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लिया।

वृद्ध जयधवल ने फिर कहना आरंभ किया—महाराजाधिराज ! आप चंद्रगुप्त के पुत्र और समुद्रगुप्त के पौत्र हैं। चारों समुद्रों तक विस्तृत साम्राज्य के आप ही एक मात्र अधीश्वर हैं। आप ही विचार कीजिए। जिन लोगों ने चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त के साथ रहकर मगध साम्राज्य को सोन के तट से वक्षु के तट तक फैलाया, वे ही लोग साम्राज्य के धर्माधिकरण में उपस्थित होकर विचार की प्रार्थना करते हैं।

सहसा फाटक पर किसीके पैरों की आहट सुनाई दी। महानायक लोग मार्ग छोड़कर अलग खड़े हो गए। आगंतुक को देखते ही जयधवल ने कहा-आइए महामंत्री जी ! स्वागत। आप बड़े ही शुभ अवसर पर आए। आज घर वंश निर्मूल हो गया है और धवल वंश विचार की प्रार्थना करता है। आज साम्राज्य के धर्माधिकरण में आप ही सरीखे साक्षी की आवश्यकता है।

महामंत्री दामोदर शर्म्मा बिना कोई उत्तर दिए आर्यपट्ट के पास की बेदी पर चढ़ गए और आशीर्वाद देकर अपने आसन पर बैठ गए। जब बहुत देर तक सम्राट् उसी प्रकार चुप चाप सिर झुकाए बैठ रहे तब अंत में वृद्ध महामंत्री ने कहा—सभा के कार्य में विलंब हो रहा है; अत: अब विचार आरभ होना चाहिए। साम्राज्य के प्रधान नायक लोग आर्य्यपट्ट के सामने खड़े हैं; अतः अपराधी का विचार होना चाहिए। महाराजाधिराज, महानायक चंद्रधर के पुत्र, महानायक गुल्माधिकृत देवधर ने पाटलिपुत्र के राजमार्ग में मदनिका वेश्या का अपमान किया था। अपमान करने का

कारण यह था कि मदनिका राज मार्ग में हजारों रथों और घोड़ों की गति रोककर एक बुड्ढी पान बेचनेवाली वेश्या से बातें कर रही थी। यदि स्वर्गीया पट्टमहादेवी इस समय जीवित होती, तो गणिकाध्यक्ष इस अभियोग का विचार करते। परंतु इस समय एक वेश्या की कन्या आर्य्यपट्ट पर बैठी है और उसीके हाथ में महामुद्रा है। जिस समय सम्राट् सोए हुए थे, उस समय बिना उनकी अनुमति लिये ही उसने आज्ञापत्र पर महामुद्रा अंकित कर दी थी। अब साम्राज्य के धर्माधिकरण के अतिरिक्त ईश्वर के अपराध का विचार और कहीं नहीं हो सकता। महाराजाधिराज! मैं पवित्र धर्माधिकरण में वासुदेव का पवित्र नाम लेकर शपथपूर्वक कहता हूँ कि इस काम में एक और व्यक्ति अपराधी है। देवधर ने तो मदनिका को छुड़वा दिया था; परंतु चंद्रगुप्त के पौत्र और महाराज पुत्र गोविंदगुप्त के एकमात्र पुत्र महाकुमार हर्षगुप्त की आज्ञा से विपाशा तटवाले सवरों ने मारे कोड़ों के महानायिका मदनिका की कोमल पीठ का चमड़ा उतार दिया था। महाराजाधिराज! नयविधि के अनुसार गोविंदगुप्त के पुत्र हर्षगुप्त को भी दंड मिलना चाहिए।

इतना सुनते ही वृद्ध सम्राट् चुपचाप आर्य्यपट्ट पर से उठ खड़े हुए और ठंढी साँस लेकर धीरे धीरे सभा मंडप से निकल गए। उस समय दामोदर शर्म्मा ने कहा - इस समय सभामंडप में सम्राट् उपस्थित नहीं हैं; परंतु फिर भी विचार होना आवश्यक है। आप लोग पुरानी प्रथा का अनुसरण कीजिए।

इतना सुनते ही बारहो महानायक चुपचाप आर्यपट्ट पर जा बैठे। युवराज भट्टारक ने मदनिका को और बंधुवर्म्मा ने इंद्रलेखा को पकड़ लिया। बारहो महानायकों ने एक स्वर से कहा—इन सब को प्राणदंड मिलना चाहिये।

वृद्ध महानायक जयधवल ने धीरे धीरे कहा - देवधर मेरे जामाता थे। सदा की प्रथा के अनुसार यह निर्णय करना मेरा काम है कि इन्हें किस प्रकार प्राणदंड दिया जाय।

बारहो महानायकों ने एक स्वर से कहा—बहुत ठीक।

जयधवल ने फिर बहुत धीरे धीरे कहा—इन पर कुत्ते छोड़ दिए जायँ।

दासियाँ आकर मूर्छित महादेवी को उठाकर अंतःपुर में ले गईं।

———

दूसरा परिच्छेद

प्रायश्चित्त

संध्या के समय पाटलिपुत्र के पास गंगा तट पर एक बड़ी चिता बनाकर लाल वस्त्र पहने हुए एक कापालिक पश्चिम आकाश में सूर्य का अस्त होना देख रहा था। वह स्थान पाटलिपुत्र का श्मशान था। उस स्थान पर बहुत सी चिताएँ जल रही थीं, जिनमें से कुछ तो अभी जलने लगी थीं और कुछ प्राय: जल चुकी थीं। चिता के धुएँ और जलते हुए मांस की दुर्गंध सहता हुआ वह कापालिक चुपचाप वहीं बैठा हुआ था। बहुत से नागरिक दाह कर्म्म करके चले गए। कुछ लोग अपने किसी संबंधी का शव जलाने के लिये ले आए, कुछ वहीं बैठे रहे, परंतु कापालिक ने उनमें से किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखा। जिस समय सूर्यदेव अस्त हो रहे थे, उस समय सहसा बहुत से लोगों से वह श्मशान भर गया। हाथी दाँत के पलँग पर कोमल फूलों के बिछौने पर महानायक गुल्माधिकृत देवधर और अमिया देवी के मृत शरीर लिये युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त, महाकुमार हर्षगुप्त मालवराज बंधुवर्म्मा और सौराष्ट्रपति चक्रपालित वहाँ आ पहुँचे। उन लोगों के पीछे पीछे युवराज भट्टारकपादीय महामंत्री दामोदर शर्म्मा, युवराज भट्टारकपादीय महानायक जयधवलदेव और साम्राज्य के दूसरे प्रधान महानायक लोग थे। वहीं बालू पर चंदन और अगर की लकड़ियों की चिता बनाई गई। उस पर फूलों की मालाएँ और चंदन, कुमकुम आदि रखकर देवधर और अमिया के नहलाए हुए मृत शरीर रखे गए। सहसा युवराज

भट्टारक कूदकर चिता पर चढ़ गए और देवधर मृत के शरीर को गले से लगाकर बोले—देवधर ! क्या यही शतद्रु तटवाले युद्ध का पुरस्कार है ? क्या यही वक्षु तटवाले युद्ध का स्मृतिचिह्न है ? क्या यही गुप्त कुल की कृतज्ञता है ?

कुमार हर्षगुप्त बालकों की भाँति रोने लगे। वृद्ध दामोदर शर्म्मा ने मुँह फेर लिया। उस समय उसी कापालिक ने बंधुवर्म्मा के पास आकर कहा—महाशय, विलंब हो रहा है। अब मृतक संस्कार आरंभ होना चाहिए।

बंधुवर्म्मा ने विस्मित होकर पूछा—महाशय; आप कौन हैं ?

कापालिक ने विकट रूप से हँसकर कहा—मैं ! मालवराज, आपने मुझे नहीं पहचाना ? मैं ही महायज्ञ का पुरोहित हूँ।

बंधुवर्म्मा ने और भी विस्मित होकर पूछा—महायज्ञ कैसा ?

कापा०—क्या अब तक आपने नहीं समझा ? वही गुप्त कुल के नाश का महायज्ञ।

बंधु०—गुप्त कुल का नाश कौन करेगा ?

कापा०—यही इंद्रलेखा, नंदसेना और हरिदत्त।

बंधु०—महाशय, आप यह क्या कह रहे हैं ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता।

इतने में यशधवल ने युवराज का हाथ पकड़कर उन्हें चिता पर से उतार लिया। शतद्रु-तटवाले एक हजार योद्धाओं ने चिता को चारों ओर से घेरकर अंतिम बार हूण-विजयी वीर को अभिवादन किया।

उस समय दृढ़ता से अपने हाथ में घी का दीपक पकड़कर वृद्ध महानायक जयधवल ने अपनी एकमात्र कन्या और एकमात्र जामाता के मुँह में आग दी। घी से तर लकड़ियाँ जल उठीं। तुरंत चिता से ऊँची ऊँची लपटें निकलने लगीं। उस समय वृद्ध जयधवल ने दामोदर शर्म्मा से कहा—मैंने कन्या और जामाता को खा लिया है। अब मुझे प्यास लगी है।

कुमार हर्षगुप्त बोल उठे—महानायक, आपके लिये गंगाजल कौन लावेगा ?

वृद्ध महानायक के विकट हास्य से श्मशान काँप उठा। उन्होंने कहा—आज की प्यास गंगाजल से बुझनेवाली नहीं है। सारा समुद्र पी जाने पर भी यह प्यास नहीं बुझेगी। इसे बुझाने के लिये लाल और गरमागरम लहू चाहिए। यदि इस समय तुम्हारे पितामह जीवित होते, तो वे बतलाते कि धवलवंश को लहू की जो प्यास लगी थी, वह सिप्रा और शुभ्रमती नदी के तट पर किस प्रकार मिटी थी। महामंत्री जी! मेरे जामाता ने केवल इसी कारण अपने प्राण दिए कि उसपर वेश्या को अपमानित करने का अपराध लगाया गया था; और मेरी बालिका कन्या ने अपने पति का अनुगमन किया है। मैंने उनके सिरहाने खड़े होकर उनका असह्य कष्ट देखा है। इस समय मुझे रक्त--रक्त--

महामंत्री ने संकेत किया। इतने में दो सैनिक सिकड़ियों से बंधी हुई इंद्रलेखा और मदनिका को ले आए। उधर से एक सेवक नेपाल देश के पागल सरीखे चार कुत्ते ले आया। यह देखते ही कापालिक ने जयधवल के पास पहुँचकर कहा—महानायिका मदनिका की तो बहुत ठीक व्यवस्था हुई है, परंतु इंद्रलेखा की कुछ और ही व्यवस्था होनी चाहिए।

जयधवल ने विस्मित होकर पूछा—तुम कौन हो?

कापालिक ने विकट रूप से हँसकर कहा—मैं महायज्ञ का पुरोहित हूँ। आज यहाँ पूर्णाहुति देने आया हूँ। मैं कापालिक हूँ। महामंत्री जी और युवराज! आप लोग सुनें, मैं संसारत्यागी हूँ। और आदिशक्ति का सेवक हूँ। इंद्रलेखा को मैंने भले घर की स्त्री समझा था और इसी कारण युवराज की माता के सिर के बाल लेकर मारण यज्ञ किया था। उस समय मैं समझता था कि अनंता किसी अविवाहित युवक की कामना करती है। माता ने मुझे आज्ञा दी है, इसीलिये मैं ये सब बातें कह रहा हूँ। गुप्तवंश को नष्ट करने के लिये नारकीय हरिबल ने वृद्ध सम्राट् को फँसाने के विचार से इस वेश्या की कन्या को खड़ा किया था। उनकी बातों में आकर मैंने गुप्तवंश की स्थिर कुललक्ष्मी को चंचल कर दिया। लहू की नदियों से पृथ्वी भर गई। असहायों के आर्त्तनाद से माता का आसन हिल गया। अब माता ने मुझे प्रायश्चित करने की आज्ञा दी है। महाशयो! आप लोग

सुन रखें, इस संसार में झूठ के लिये स्थान नहीं है। लाखों स्त्रियाँ और पुरुष कुमारगुप्त के पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं। जिस दिन यही कुलपुत्र गुप्तकुल के सूर्य अपने हाथ से महायज्ञ में पूर्णाहुति देंगे, उसी दिन आर्य्यावर्त्त की चंचल लक्ष्मी स्थिर होगी। महामंत्री जी! सुनिए, वृद्ध सम्राट् को अपने वश में करके इंद्रलेखा ने सोचा था कि चंद्रसेन के साथ सिंहासन पर बैठूँगी। मैंने यहाँ पर चंद्रसेन और इंद्रलेखा के लिये सिंहासन सजा रखा है।

कापालिक की बात समाप्त होने पर कुछ ठहरकर महामंत्री ने कहा—महाशय, जब महाराजाधिराज सिंहासन छोड़कर चले गए तब उच्च कुल के बारह महानायकों ने इसके लिये इस दंड की व्यवस्था की थी। अतः उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना मेरी शक्ति के बाहर है।

इतने में जयधवलदेव बोल उठे—दंड देने का भार मुझ पर है। कापालिक की इच्छा पूरी हो। चंद्रसेन कहाँ है?

कापा०—कारागार में।

विस्मित होकर दामोदर शर्म्मा ने पूछा—आपने यह कैसे जाना।

कापा०—माता ने मुझे बतलाया था।

जयधवल ने पूछा—महामंत्री जी, क्या यह बात ठीक है?

महामंत्री ने धीरे से कहा हाँ, ठीक है।

इतने में एक दंडधर चंद्रसेन को ले आया। इस बीच में युवराज ने कापालिक के पास पहुँचकर पूछा—महाशय, यह चंचल लक्ष्मी कब स्थिर होगी?

कापालिक ने हँसकर कहा—जिस दिन नारायण पार्थिव शरीर त्याग कर बैकुंठ जायँगे और लक्ष्मी से मिलेंगे, उसी दिन यह चंचल शिवकन्या अपनी चंचलता छोड़ेगी।

युवराज ने फिर उत्सुकता से पूछा—कितने दिनों में?

कापा०—शीघ्र ही। जिस दिन लहू की नदियों से गंगातट का बालू भर जायगा और चारों ओर से जल से घिरे रहने पर भी, जिस दिन प्यास

नहीं बुझेगी, उसी दिन नारायण इस जीवन की बिना बुझी प्यास लेकर अमरधाम को सिधारेंगे। क्या अब नारायण फिर इस संसार में नहीं आवेंगे ? और इस आर्य भूमि को पवित्र न करेंगे ?

युवराज ने विस्मित होकर पूछा—महाराज ! आपका क्या तात्पर्य है ? मेरी समझ में तो कुछ भी न आया।

कापा०—जिस दिन अंतिम बार मागध वीर आर्यभूमि की रक्षा के लिये अपना रक्त बहाकर संसार का कलंक धो डालेंगे, उसी दिन स्मरण करना। उसी दिन यह वृद्ध कापालिक नरक से निकलकर वैकुंठ जायगा।

युवराज—अरुणा का क्या होगा ?

कापा०—उसकी चिंता छोड़ दो। लक्ष्मी अभी चंचल हो रही है, वैकुंठ का सिंहासन बहुत दिनों से सूना है, जगद्धात्री का रथ आ गया है। माता शीघ्र ही लौट आवेंगी।

इतने में सिकड़ियों में बँधा हुआ चंद्रसेन वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही इंद्रलेखा चिल्ला उठी। कापालिक की बनाई हुई चिता पर सिकड़ियों से बँधी हुई इंद्रलेखा और चंद्रसेन दोनों रख दिए गए। कापालिक ने अपने हाथ से उन दोनों के सिर पर श्मशान की खोपड़ी का मुकुट और गले में हड्डियों की माला पहनाई और तब चिता में आग लगा दी। घी की सैकड़ों कलसियों के कारण वह चिता धकधक जलने लगी। इंद्रलेखा के रोने चिल्लाने से आकाश फटने लगा। उस समय कापालिक ने सहसा स्कंदगुप्त के पैर पकड़कर कहा नारायण ! मुझे वचन दो कि जिस दिन गंगा और यमुना के संगम पर तुम मनुष्यों के शरीर से जयस्तंभ स्थापित करोगे, उसी दिन इस वृद्ध को भी स्मरण करोगे।

युवराज ने कापालिक के हाथ पकड़कर कहा—आर्य ! आप मुझे अपराधी न बनावें।

वृद्ध कापालिक ने युवराज के पैर छोड़ दिए और कई बार बड़े अनुरोध से कहा—इस बात की शपथ करो।

अंत में युवराज को विवश होकर कहना पड़ा कि मैं तुम्हें स्मरण करूँगा।

यह सुनते ही वृद्ध कापालिक भी कूदकर उस चिता पर जा बैठा। उस समय चारों कुत्ते महानायिका मदनिका को नोच नोचकर उसके अंगों के टुकड़े टुकड़े कर रहे थे।

तीसरा परिच्छेद

मथुरा का दुर्ग

"तुम्हारी माता और तुम्हारी बहन को जंगली हूण कष्ट देंगे। क्या यह बात तुम चुपचाप दूर से खड़े देखा करोगे?"

"युवराज! मैं और क्या करू?"

"भाई, अब मैं युवराज नहीं हूँ। पाटलिपुत्र में नए युवराज ने जन्म लिया है। तुम पुरुष हो अथवा स्त्री?"

"पाटलिपुत्र में एक नहीं सौ युवराज जन्म लिया करें, परंतु शकमंडल के लिये एकमात्र आप ही युवराज हैं। युवराज, मैं क्या करूँ, कोई उपाय नहीं है। आप ही रक्षा कीजिए। मैं अपनी माता का एक ही पुत्र हूँ।"

'जिस प्रकार माता के दस पुत्र अपनी माता की रक्षा कर सकते है, उसी प्रकार अकेले तुम्हें भी अपनी माता की रक्षा करनी चाहिए।"

"युवराज, आपकी युक्ति का खंडन नहीं हो सकता। परंतु मैं अपनी माता के चरणों को स्पर्श करके शपथ कर चुका हूँ कि अब मैं युद्ध नहीं करूँगा।

ईसवी पाँचवीं शताब्दी के तीसरे चरण में मथुरा के लाल पत्थरवाले दुर्ग के प्राकार के नीचे एक नाटे गोरे युवक एक दूसरे युवक के साथ येही बातें कर रहे थे। पहले युवक ने दूसरे युवक का उत्तर सुन करपूछा—तुम्हारी माता कहाँ हैं?

दूसरे युवक ने उत्तर दिया—"दूकान पर।"

"चलो, तुम्हारी माता के पास चलूँ।"

"माता के पास!"

"हाँ।"

"युवराज, यदि आज्ञा हो, तो मैं अपनी माता को यहीं बुला लाऊँ।"

"नहीं मैं तुम्हारी माता के पास भिक्षा माँगने चल रहा हूँ।"

"कैसी भिक्षा?"

"चलो, फिर बतलाऊँगा।"

दोनों युवकों ने दुर्ग के प्राकार से चलकर नगर में प्रवेश किया। बहुत सी संकरी और टेढ़ी मेढ़ी गलियों को पार करके वे दोनों यमुनातट के एक चौड़े राजमार्ग पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दूसरा युवक एक दूकान में घुस गया। दूकान में एक अधेड़ स्त्री गेहूँ और चावल बेच रही थी। दूसरा युवक अपनी माता को युवराज का परिचय देना ही चाहता था कि इतने में पहले युवक ने उसे रोककर उस अधेड़ स्त्री से कहा—माता, मैं कुमारगुप्त का पुत्र हूँ। मेरा नाम स्कंदगुप्त है। आज मैं तुम्हारे द्वार पर भिक्षा माँगने आया हूँ।

वह अधेड़ स्त्री घबड़ाकर उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर बोली—युवराज! मैं तो बहुत ही दरिद्र हूँ। आप ये कैसी बातें करते हैं? आप मेरे द्वार पर भिक्षा माँगने आए हैं? मेरी समझ में इसका कुछ भी अर्थ नहीं आता।

स्कंद०—माता राज्य के लिये, धर्म्म के लिये, देश के लिये मैं तुमसे पुत्र की भिक्षा माँगने आया हूँ। शीघ्र ही हूण लोग यहाँ आ पहुँचेगे और इस सुंदर सौरसेन राज्य में रक्त की नदियाँ बहने लगेंगी। उस समय इस दुर्ग के लाल पत्थरों का रंग और भी गहरा हो जायगा, जब हजारों वीर माताएँ और स्त्रियाँ, ब्राह्मण और श्रमण, देश और धर्म्म की रक्षा के लिये अपनी मातृभूमि के चरणों में अपने रक्त का अपूर्व आलता लगावेंगे। माता! जिस दिन मगध और सौरसेन के हजारों वीर पवित्र सूरसेन भूमि की रक्षा के लिये युद्ध क्षेत्र में वीरगति प्राप्त करेंगे, क्या उस दिन तुम्हारा पुत्र चुपचाप दूर खड़ा खड़ा यह सब दृश्य देखता रहेगा?

स्त्री—युवराज ! आप क्या कह रहे हैं ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया ।

स्कंद०—माता, तुम्हारा पुत्र युद्धक्षेत्र में जाना चाहता है। परंतु तुम्हारी आज्ञा न मिलने के कारण उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही है इसी कारण मैं तुम्हारे पास पुत्रभिक्षा माँगने आया हूँ ।

स्त्री—युवराज ! मेरा तो बस यही एक पुत्र है। यही मेरी आँखों का तारा है और यही मुझ दरिद्र की निधि है ।

स्कंद०—माता ! क्या जो अपनी माता का एक ही पुत्र हो, उसे अपने पुत्र धर्म्म का पालन नहीं करना चाहिए ?

अधेड़ स्त्री ने अपने पुत्र को गले से लगाकर कहा—युवराज ! आप मुझे क्षमा प्रदान करें । मुझसे यह न हो सकेगा । जिसके एक से अधिक पुत्र हों, आप कृपाकर उसके पास जायँ । क्या आपकी माता नहीं हैं ?

स्कंद०—इस समय तो नहीं हैं; परंतु हाँ किसी समय थीं। मैं भी अपनी माता का एक ही पुत्र हूँ ।

स्त्री—युवराज, आप राजा ठहरे । राज्य की रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है। परंतु मैं तो बहुत ही दीन और दरिद्र हूँ । मेरा पुत्र युद्ध करके क्या करेगा ?

स्कंद०—माता ? आज देश की भाग्यलक्ष्मी विचलित हो रही हैं। लाखों मनुष्यों का बलिदान लेकर भी रणचंडी अभी तक प्रसन्न नहीं हुई। इसी कारण मैं तुम्हारे पास पुत्रभिक्षा माँगने आया हूँ । क्या तुम्हारा पुत्र मथुरा का नागरिक नहीं है ? सौरसेन राज्य में उपजे हुए अन्न से उसका शरीर पुष्ट नहीं हुआ है ? माता ! यह सौरसेन राज्य कृष्ण की जन्मभूमि है। रामदत्त का लीलाक्षेत्र है। जिस समय यह पवित्र आर्यभूमि जंगली हूणों के पैरों के स्पर्श से कलंकित होगी, क्या उस समय सौरसेन का युवक दूर खड़ा होकर अभिनय देखेगा ?

स्त्री—युवराज ! मुझे क्षमा कीजिएगा । इतनी बड़ी बड़ी बातें मेरी समझ में नहीं आईं । मैंने सुना है कि जो हूणयुद्ध में जाता है, वह लौटकर

नहीं आता। राज्य राजा का है, वे ही इसकी रक्षा की व्यवस्था करें। भला हम लोग क्या कर सकते हैं? शकों का राज्य गया, मागधों का राज्य आया; परंतु हम लोग जैसे उस समय थे, वैसे ही इस समय भी हैं; और यदि हूण लोग आ जायँगे तो भी वैसे ही रहेंगे। परंतु मैं अपने एकमात्र पुत्र को मृत्यु के मुख में नहीं भेज सकती।

इतना कहकर वह अधेड़ स्त्री अपने पुत्र के गले से लिपट गई और रोने लगी। यह देखकर युवराज ने ठंढी साँस लेकर कहा - माता, आज इस मथुरा नगर में सब लोग यही एक बात कहते हैं। मैंने वक्षु पार से लेकर यमुना तट की हूणों की रणनीति पर अच्छी तरह विचार किया है। शकों और हूणों में बहुत अधिक अंतर है। जब हूण लोग यहाँ आ पहुँचेंगे, तब न तो नगर रह जायगा, न दुर्ग रह जायगा और न पुत्र, कन्या अथवा माता पिता रह जायँगे। यह सुंदर राजधानी जलकर राख हो जायगी। माता, तुम अच्छी तरह विचार कर लो। तुम्हारा पुत्र कायर नहीं है।

स्त्री—युवराज, चाहे जो हो, परंतु मैं अपने पुत्र को नहीं छोड़ सकती।

स्कंद०—माता, जिस दिन हूण आ जायँगे, उस दिन क्या तुम अपने पुत्र की रक्षा कर सकोगी?

स्त्री—मैं अपने पुत्र को कलेजे से लगा रखूँगी।

स्कंद०—ईश्वर तुम्हारा मंगल करे। मैं आशा करता हूँ कि उस दिन मथुरा नगर में माता की गोद में पुत्रों की रक्षा हो सकेगी।

अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए युवराज उस दूकान से बाहर निकले। दुर्ग के प्राकार के नीचे बंधुवर्म्मा और चक्रपालित उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन लोगों को दूर से देखते ही युवराज ने पूछा—क्या समाचार है?

बंधुवर्म्मा ने सिर झुकाकर कहा - क्या यही रामगुप्त की जन्मभूमि है? मथुरा के नागरिक युद्ध नहीं करेंगे—आत्मसमर्पण करेंगे।

स्कंद०—तुमने उन्हें अच्छी तरह से समझा दिया है कि हूणों के हाथ में आत्मसमर्पण करने का क्या अर्थ है?

बंधु०—मैंने बहुत कुछ समझाया, परंतु फल कुछ भी न हुआ।

स्कंद०—अच्छा, तो अब स्वयं वासुदेव ही अपनी जन्मभूमि की रक्षा करेंगे। अब इसकी रक्षा करना मेरी शक्ति के बाहर हो गया है। हम लोगों के साथ केवल पाँच हजार सवार हैं उन्हीं को लेकर मथुरा नगर का पाँच कोस का प्राकार बचाना असंभव है।

बंधु०—तो फिर क्या किया जायगा ?

युवराज ने अपने पीछेवाले दुर्ग के विशाल प्राकार की ओर उँगली उठाई। बंधुवर्म्मा ने हँसकर पूछा—कितने दिनों तक ?

स्कंद०—जितने दिनों तक हो सकेगा।

बंधु—इसका क्या अर्थ ?

स्कंद०—यही की जितने दिनों तक हाथ में तलवार उठाने की शक्ति है।

बंधु०—इसका फल क्या होगा ?

स्कंद०—जो हो। तुम जानते हो कि पितृव्य कहाँ हैं ?

बंधु०—नहीं।

स्कंद०—शतद्रु तट पर।

बंधु०—अकेले ही ?

स्कंद०—केवल दस गुल्म और बचे हैं।

बंधु०—साम्राज्य के नए महाबलाधिकृत शिवनंदी कहाँ हैं ?

स्कंद०—मैंने सुना है कि वह पाटलिपुत्र लौट गया।

बंधु०—तो फिर युद्ध कौन कर रहा है ?

स्कंद०—वेही जो कई पीढ़ियों से साम्राज्य के लिये युद्ध करते आए हैं। भाई, अब तो नगर की रक्षा करना असंभव है। नगर निवासियों से कह दो कि वे अपनी अपनी रक्षा का प्रयत्न करें। साम्राज्य की सेना केवल दुर्ग की रक्षा करेंगी।

पत्थर के बने लाल रंग के उसी छोटे दुर्ग में साम्राज्य के पाँच हजार सैनिक युद्ध के लिये प्रस्तुत होने लगे। मथुरा के नागरिकों ने एक स्थान पर एकत्र होकर निश्चित किया कि जब हूणों की सेना आवेगी, तब हम लोग

आत्मसमर्पण कर देंगे। युवराज और बंधुवर्म्मा बहुत कुछ अनुरोध करने पर भी उन लोगों को किसी दूसरे स्थान पर न भेज सके। धीरे-धीरे हूण सेना के आने का समाचार मिलने लगा। नागरिकों ने सुना कि खिंखिल शतद्रु पार कर चुका है। एक दिन संध्या के समय जलते हुए गाँवों की लपट से पश्चिम आकाश में लाली छा गई; परंतु फिर भी नागरिक लोग चैतन्य नहीं हुए। उसी रात के तीसरे पहर एक दंडधर ने युवराज को सोते से जगाकर कहा—देव, दुर्ग के द्वार पर बहुत से सवार आ पहुँचे हैं।

युवराज ने उठकर पूछा—क्या वे लोग दुर्ग पर आक्रमण करने का प्रयत्न कर रहे हैं?

दंड०—जी नहीं।

स्कंद०—तो फिर क्या कर रहे हैं?

दंड०—वे यमुना किनारे श्रेणी बाँधकर खड़े हो रहे हैं।

युवराज चटपट वर्म पहनकर दुर्ग के प्राकार पर आ पहुँचे। उस समय बंधुवर्म्मा वहीं उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह देखकर युवराज ने पूछा—क्या यह हूणों की सेना है?

बंधु०—नहीं।

स्कंद०—तो फिर यह किसकी सेना है?

बंधु०—साम्राज्य की।

स्कंद०—यह तुमने कैसे जाना?

बंधु०—यदि और किसी की सेना होती, तो इतनी देर तक चुपचाप खड़ी न रहती।

स्कंद०—क्या हूण सेना सुशिक्षित नहीं है?

बंधु०—उन लोगों की शिक्षा और ही प्रकार की है। अभी तक हूणों ने विजय प्राप्त करने के उपरांत अपने आपको छिपाना नहीं सीखा है।

स्कंद०—यदि ये लोग साम्राज्य के ही सैनिक हैं, तो फिर दुर्ग में क्यों नहीं चले आते?

बंधु०—यही बात तो मेरी समझ में नहीं आती।

स्कंद०—चलो, हम लोग बाहर चलें।

बंधु०—बाहर चलना भी ठीक नहीं होगा। सेनानायक किसी विशेष उद्देश्य से दुर्ग के पास छिपा हुआ है। तड़के जब दुर्ग का द्वार खुलेगा, तब उसका उद्देश्य व्यर्थ हो जायगा।

स्कंद०—तो क्या तुम अभी कुछ ठहरना चाहते हो?

बंधु०—क्यों, इसमें हानि ही क्या है? वे चाहे शत्रु हों चाहे मित्र, जब वे दुर्ग में प्रवेश करने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं, तब उन्हें छेड़ना ठीक नहीं।

स्कंद०—अच्छा, ऐसा ही सही। परंतु फिर भी हम लोगों को चुपचाप न बैठ रहना चाहिए। तुम गुप्त रूप से सारी सेना को प्रस्तुत होने की आज्ञा दे दो।

बंधुवर्म्मा अभिवादन करके चले गए, परंतु युवराज दुर्ग के प्राकार पर ही खड़े रहे। थोड़ी देर में पाँच हजार सैनिक दुर्ग की रक्षा के लिये प्रस्तुत होकर प्राकार पर आ खड़े हुए। देखते देखते रात भी बीत गई। ऊषा के क्षीण प्रकाश में स्कंदगुप्त ने बहुत ही विस्मित होकर देखा कि यमुना तट पर प्रायः पाँच हजार वर्म्मधारी सवार पंक्ति बाँधे खड़े हैं। उन लोगों के आगे एक दीर्घाकार योद्धा एक और घोड़े की बाग पकड़े खड़ा है। दूसरे घोड़े पर कोई बैठा नहीं है और उसपर सोने का एक छोटा गरुड़ध्वज रखा है। गरुड़ध्वज देखते ही युवराज मारे आनंद के चिल्लाना ही चाहते थे, कि इतने में बंधुवर्म्मा ने उन्हें रोक दिया। थोड़ी देर में सूर्य्य निकला। नदी तट पर सैकड़ों वर्म्म और शिरस्त्राण बालसूर्य की किरणों में चमकने लगे। उस समय यमुना के उस पार बहुत से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। इतने में एक सवार ने जल्दी से दुर्ग के सामने आकर अपना घोड़ा छोड़ दिया और उस दूसरे घोड़े पर चढ़कर दाहिने हाथ में गरुड़ध्वज ले लिया। सहसा युवराज के पास खड़े हुए बंधुवर्म्मा बोल उठे—महाराजाधिराज की जय हो। महाराजपुत्र की जय हो।

आगंतुक ने विस्मित होकर दुर्ग के प्राकार की ओर देखा। यह देखकर युवराज ने पूछा—क्या ये पितृव्य हैं?

बंधुवर्म्मा ने मुस्कराकर कहा—जी हाँ। क्या आप महाराजपुत्र को नहीं पहचान सके ?

स्कंद०—नहीं। चलो, नीचे उतर चलें।

बंधु०—अकेले चलकर क्या करेंगे ? यह देखिए, उस पार हूण सेना आ पहुँची है।

एक हजार सैनिक दुर्ग में छोड़ दिए गए और शेष चार हजार सैनिकों को लेकर युवराज और बंधुवर्म्मा नदी तट पर आ पहुँचे। युवराज को देखते ही गोविंदगुप्त ने बहुत ही विस्मित होकर कहा—पुत्र ! तुम तो यहीं मथुरा में हो; और मैं तुम्हारे भरोसे पर मुट्ठी भर सैनिक लेकर खिंखिल को रोकने की चेष्टा करता हूँ पाटलिपुत्र का क्या समाचार है ?

युवराज ने बहुत ही दुःखित होकर कहा—समाचार अच्छा ही है। देवधर ने अपने कुल के गौरव की रक्षा के लिये अपने प्राण दे दिए। पिता जी पाटलिपुत्र छोड़कर चले गए। विमाता और पुरुगुप्त महोदय में हैं। महामंत्री जी को पाटलिपुत्र में छोड़कर आपकी आज्ञा के अनुसार मैं यहाँ चला आया हूँ। हर्षगुप्त और चक्रपालित कान्यकुब्ज गए हैं। तनुदत्त और स्थाणुदत्त प्रतिष्ठान से शीघ्र ही आनेवाले हैं; और विष्णुगुप्त सैनिक एकत्र करने के लिये गौड़ गए हैं।

गोविंद०—तुम्हारे साथ कितने सैनिक हैं ?

स्कंद०—केवल पाँच हजार। शिवनंदी के भाग जाने पर छत्रभंग हो गया और सब सैनिक इधर भाग गए। अभी तक किसी का पता नहीं लगा।

गोविंद०—अच्छी बात है। तुमने दस हजार मागध सैनिकों को लेकर शतद्रु तट पर खिंखिल को परास्त किया था। आज मैं यमुना तट पर दस हजार सैनिक लेकर अपने भाग्य की परीक्षा करूँगा।

देखते देखते हूण-सेना दुर्ग के पास आ पहुँची। दुर्ग के द्वार पर चक्रव्यूह रचकर गोविंदगुप्त स्कंदगुप्त शत्रुओं की प्रतीक्षा कर रहे थे, परंतु हूणों ने उनसे युद्ध न किया। उन्होंने व्यूह तोड़ने के लिये बीस हजार सैनिक छोड़ दिए और शेष सैनिक नगर लूटने के लिये चले गए।

मथुरा के नागरिक लोग हूणों के हाथ आत्मसमर्पण करने के लिये पहले से ही फाटक पर खड़े थे। परंतु हूणों ने न तो उन लोगों के उपहार लिये और न उनकी प्रार्थना पर ध्यान दिया। देखते देखते नगर के प्रधान निवासियों के कटे हुए सिर धूल में लोटने लगे। बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ जलने लगीं। सारे नगर में हाहाकार मच गया। उस समय तक नदीतट-वाला युद्ध समाप्त हो गया था।

लुटेरे हूण सैनिकों ने पहले तो व्यूह तोड़ने के लिये उस पर आक्रमण किया, परंतु थोड़ी ही देर में वे भाग खड़े हुए। बंधुवर्म्मा और युवराज स्कंदगुप्त ने उन लोगों का पीछा किया। महाराजपुत्र दुर्ग की रक्षा करने के लिये पाँच हजार सैनिकों को लेकर वहीं रह गए। विशाल मथुरा नगर के राजमार्गों में देखते देखते पाँच हजार मागध वीर कटकर धूल में मिल गए। जिस समय बंधुवर्म्मा दुर्ग की ओर लौटे, उस समय जलते हुए दुर्ग से आग की लपटें निकल निकलकर आकाश तक पहुँच रही थीं। बंधुवर्म्मा और युवराज चटपट अपना भारी वर्म्म फेंककर यमुना मे कूद पड़े। उसी समय एक और व्यक्ति मुँह में सोने का दंड लिये यमुना के जल में उतरा था। मथुरा नगर का अंत हो चुका था।

नगर से एक कोस पूर्व पहुँचकर तीनों व्यक्ति किनारे पर आए। उन्हें देखते ही एक और व्यक्ति दौड़ता हुआ नदी तट पर आ पहुँचा। यह देखते ही महाराजपुत्र का सूखा हुआ मुँह और भी सूख गया। काँपते हुए स्वर से बंधुवर्म्मा ने कहा—भानु !

सफेद कपड़े पहने हुए वह प्रेतमूर्ति ठठाकर हँस पड़ी। स्कंदगुप्त ने बहुत ही दुःखित होकर पूछा—सबका अंत हो गया ?

चौथा परिच्छेद

गोपाल का देश

यमुना के गीले बालू पर एक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे एक बुड्ढा सोया हुआ था। उसके पास एक बहुत ही रूपवती युवती बैठी हुई चुपचाप आँसू बहा रही थी। इतने में बुडढ़े ने धीरे धीरे कहा—यही गोपाल का देश है। युवती ने पूछा—गोपाल कहाँ हैं?

वृद्ध—मैं तुम्हें कितना समझाऊँ? तुम कब समझोगी? आज मेरा अंतिम दिन है।

युवती—कहाँ जाओगे!

वृद्ध—जहाँ अंत में सब लोग जाते हैं।

युवती—मैं कहाँ रहूँगी?

वृद्ध—पाँच वर्ष से तुमसे कहता आ रहा हूँ। आज अंतिम बार कहता हूँ। तुम देवी हो। परंतु यह बतलाओ कि तुम किसकी माया में फँसी हुई हो।

युवती—मैं क्या जानूँ? मुझे तो बीच बीच में कुछ स्वप्न सा जान पड़ता है।

वृद्ध—क्या जान पड़ता है?

युवयी—बहुत दूर किसी सरोवर के कमलों में मेरा हंस क्रीड़ा कर रहा है।

उस मृतप्राय वृद्ध की आँखें चमकने लगीं। उसने कहा—इतने दिनों तक तुम क्या देखती थीं? वह गौड़ देश है। वह बहुत ही सुंदर है। ऐसा सुंदर देश कभी किसी ने देखा होगा। वह तुम्हारा उद्यान—प्यारा उद्यान है। क्या इतने दिनों पर तुम्हारीं आँखों के आगे का परदा हट गया?

युवती—वहाँ मेरा कौन था?

वृद्ध—कौन था! था कैसा, अभी तक है। वही भानुमित्र है। तुम उसकी आँखों की पुतली थीं। मैं तो अब फिर गौड़ देश नहीं देख सकूँगा, परंतु तुम देखोगी। तुम मुझे इस गोपाल के देश में गोपाल के हाथ सौंपकर उसी सुंदर गौड़ देश को चली जाओ। अपने प्रासाद में अपने उद्यान में जा रहो। पहले तुम लोग जिस प्रकार सुख से वहाँ रहा करते थे, अब भी उसी प्रकार जा रहो और सरोवर के संगमरमर के घाट पर बैठकर अपने आलता लगे पैर सरोवर के स्वच्छ जल में डुबा दो।

युवती—सरोवर—घाट—हंस—

वृद्ध—अभी तक तुम्हारे ध्यान में नहीं आया?

युवती—नहीं, एक बार पहले तो छाया के समान कुछ कुछ मन में आता है, पर फिर तुरंत ही आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है।

वृद्ध—देखो मैं, अंतिम बार कहता हूँ। अच्छी तरह सुन लो। मेरा गला सूख रहा है मेरी आँखों के सामने मानो कोई धीरे धीरे काला परदा ला रहा है। जब मैं चला जाऊँगा, तब फिर तुम्हें ये सब बातें बतलानेवाला कोई न रह जायगा। तुम सम्राट् कुमारगुप्त की पालिता कन्या हो और अग्निमित्र के पुत्र गौड़ देश के प्रधान सेनापति भानुमित्र तुम्हारे पति हैं।

युवती—जब तुम न रहोगे तब मैं क्या करूँगी?

वृद्ध—मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे कंठस्थ कर लो।

युवती—कहो।

वृद्ध—तुम कुमार गुप्त की पालिता कन्या और गौड़ के महाबलाधिकृत भानुमित्र की धर्मपत्नी हो।

युवती—मैं कुमारगुप्त की पालिता कन्या और गौड़ के महाबलाधिकृत भानुमित्र की धपर्मत्नी हूँ।

वृद्ध—स्मरण रखना।

युवती—जब तुम चले जाओगे तब मैं किससे बातें करूँगी?

वृद्ध—गोपाल से।

युवती—क्या बुलाते ही गोपाल आ जायँगे?

वृद्ध—मैंने जिस प्रकार बतलाया है, ठीक उसी प्रकार बुलाना। तुम ज्यों ही बुलाओगी, त्यों ही वे आ जायेंगे।

युवती—अभी कहाँ आ रहे हैं ?

वृद्ध—जब मैं चला जाऊँगा, तब पहले तुम अपना चित्त स्थिर करके तब बुलाना।

युवती—तो क्या तुम आज ही चले जाओगे ?

वृद्ध—मेरे जाने में अब अधिक विलंब नहीं है। मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारी सेवा की है। तुम मेरी एक बात मानोगी ?

युवती हाँ, कहो।

वृद्ध—मेरे चले जाने पर जो कुछ बच रहे, उसे तुम गौड़ ले जाओगी ?

युवती—मैं गौड़ कब जाऊँगी ?

वृद्ध—कभी न कभी तो जाओगी ही। जब जाओ तब लेती जाओगी ?

युवती—वहाँ ले जाकर क्या करूँगी ?

वृद्ध—वहाँ गौड़ नगर में केशव के घाट के नीचे प्रातःकाल सैकड़ों हजारों स्त्रियाँ और पुरुष स्नान करने के लिये आते हैं। उनके आने जाने के कारण घाट की बनी सीढ़ियाँ घिस गई हैं। यदि तुम वर्षा ऋतु में गौड़ जाओगी, तो देखोगी कि गंगा का मटमैला जल उन सीढ़ियों को धोता है। मेरी हड्डियाँ उन्हीं सीढ़ियों पर फेंक देना। परंतु यदि तुम ग्रीष्म अथवा शीत ऋतु में जाओगी, तो तुम देखोगी कि गंगा का जल बहुत घट गया है और केशव के घाट के नीचे बहुत दूर तक बालू निकल आया है। बस उसी बालू में मेरी राख फेंक देना। उस दशा में प्यासा प्रेत केशव के घाट के चारों ओर घूमता फिरेगा। और केशव के घाट से दूर जहाँ गंगा का जल एक ओर से उस रेतीली भूमि को धोता है, वहीं पेटू ऋषभ की हड्डियाँ फेंक देना।

इतना कहकर वृद्ध ने अपनी आँखें बंद कर लीं। उन आँखों से दो बूँद आँसू निकल पड़े। कुछ समय तक चुप रहकर वृद्ध ऋषभदेव ने धीरे धीरे फिर कहना आरंभ किया—कापालिक ने जो कुछ कहा था, वह अब तक

ठीक निकला है और आगे भी ठीक निकलेगा। कभी न कभी तुम गौड़ अवश्य जाओगी और गंगा, यमुना तथा महानंदा से घिरा हुआ गौड़ नगर देखोगी उसी दिन मेरी बातों को स्मरण करना। मैं गौड़ का रहनेवाला हूँ। गौड़ नगर में ही मेरा जन्म हुआ है। तुम जिस दिन गौड़ पहुँचना, उसी दिन मेरी ओर से भली भाँति जी भरकर वहाँ के आमों और कटहलों के जगल और हरी भरी भूमि को देखना। गौड़वासी मुझसे बहुत प्रेम करते थे। वे जानते थे कि वह मोटा बुड्ढा ऋषभ बहुत पेटू है और इसे भोजन बहुत ही अच्छा लगता है। इसी कारण उन्होंने कभी मुझे अन्न के अभाव का अनुभव नहीं होने दिया। गौड़ पहुँचकर केशव के घाट पर खड़ी होकर उन लोगों से कह देना कि ऋषभ मरते समय तक भी तुम लोगों का स्नेह और प्रीति नहीं भूला था। यह भी कह देना कि ऋषभ ने कभी अपने लोभ को रोकना सीखा ही न था। इसी पाप के कारण वह मरते समय गौड़ देश की हरी भरी भूमि न देख सका।

धीरे धीरे वृद्ध की बोली बंद होने लगी और उसकी चेतना शक्ति नष्ट होने लगी। दोपहर के समय उस पेटू और कायर गौड़वासी ऋषभ का शरीर छूट गया। करुणा पत्थर की मूरत की भाँति ऋषभ के मस्तक को अपनी गोद में लिये बैठी रही। साँस रुक जाने पर हूणों का पुरोहित हूणराज को बुला लाया। हूण सैनिक मथुरा नगर को उजाड़ कर लकड़ियाँ ले आए। यमुना के तट पर एक बड़ी चिता बनाई गई और बड़े समारोह से हूण देवी के अनुचर गौड़ीय ब्राह्मण का मृत शरीर जलाया गया।

चिता की राख बहा चुकने पर यमुना तट पर खड़ी होकर करुणा ने हूण-राज को बुलाया। संध्या समय जलते हुए मथुरा नगर के उस पार हूण राज ने घुटने टेककर हूण देवी को प्रणाम किया। करुण ने कहा—पुत्र! मैं गौड़ जाऊँगी।

विस्मित होकर हूणराज ने पूछा—गौड़? वह किस ओर है?

करुणा—मैं नहीं जानती।

हूण०—देवी की आज्ञा का पालन हो। गौड़ देश की ओर प्रस्थान हो।

दूसरे दिन प्रातःकाल अनुसंधान करके हूण राज ने गौड़ देश की ओर प्रस्थान किया। उसी समय गुप्त साम्राज्य के अधःपतन का अंतिम अंश प्रारंभ हुआ।

—

पाँचवाँ परिच्छेद

शूकरक्षेत्र

सफेद वस्त्र पहने युवक विकट रूप से हँस पड़ा। यह देखकर महाराजपुत्र काँप उठे। युवक ने कहा—तुम समझते हो कि मैं जब चाहूँगा, तभी मर जाऊँगा। यदि ऐसा ही होता, तो भानुमित्र बहुत पहले मर चुके होते। तुम्हारी इतनी अवस्था हो गई परंतु अब तक तुम यह भी न समझे। मनुष्य जिस समय मृत्यु की इच्छा करता है, उस समय मृत्यु सौ कोस पीछे हट जाती है। सुना है कि पाटलिपुत्र में देवधर मर गए, और मरे थे वृद्ध अग्निगुप्त, और फिर – क्या कह रहा था? भूल गया। जानते हो, शतद्रु तट पर युवराज स्कंदगुप्त ने क्या कहा था? उन्होंने कहा था कि पाटलिपुत्र में मेरा निमंत्रण है। नहीं, नहीं – महाराजपुत्र! मैं भूलता हूँ वह वाह्लीक में—उसी रथ पर–

महाराजपुत्र ने ठंढी साँस लेकर धीरे धीरे युवराज स्कंदगुप्त से कहा–जब मथुरा में सबका अंत हो गया, तब फिर हम लोग क्यों बच रहे? मैंने सोचा था कि फिर एक बार प्रयत्न करूँगा। इसी लिये मैं भागा था। मैंने व्यर्थ गुप्तवंश पर कलंक लगाया। चंद्रगुप्त का पुत्र होकर युद्ध में पीठ दिखलाकर भाग आया। जब तक भारतवर्ष में गुप्तवंश का नाम रहेगा, तब तक आर्य्यावर्त्त के निवासी गोविंदगुप्त के भागने का स्मरण करके घृणा से थूकेंगे स्कंद! सब का अंत हो गया। वाह्लीक, कपिशा, नगरहार सब कुछ गया। अब इतने दिनों पर मैंने जाना कि पुरुषपुर, तक्षशिला और जालंधर नहीं है। मैंने सोचा था कि मैं फिर लौटकर चलूँगा और साम्राज्य की सेना लेकर शत्रुओं से घिरी हुई अपनी सेना का उद्धार करूँगा।

सफेद वस्त्र पहने हुए युवक ने फिर हँसकर कहा—मैं कहना भूल गया। जिसने मुझे मरने नहीं दिया था, वही मुझे यहाँ ले आया है।

महाराजपुत्र ने कुछ शांत होकर कहा—भानुमित्र! चपलता छोड़ दो। क्या तुम अपने देश और अपने साम्राज्य की दशा नहीं समझते हो? तुम मेरे सखा अग्निमित्र के पुत्र हो, अपना चित्त स्थिर करो। अब आर्य्यावर्त्त और आर्य धर्म का अंतिम दिन आ पहुँचा है। तुम क्षत्रिय हो, अपने क्षात्रधर्म को न भूलो।

पागल भानुमित्र फिर हँसकर बोले—तुम क्या समझते हो, कि मैं मर जाऊँगा? यदि ऐसा ही हो, तो इसमें वश किसका है? वाह्लीका तट से लेकर यमुना तट तक सैकड़ों युद्धों में मैं मृत्यु को आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ा हूँ। परंतु मृत्यु सदा मुझसे दूर हटती गई है। तलवार चली गई, वर्म चला गया, सैकड़ों तलवारें और खाँड़े मेरे सिर तक पहुँचे, परंतु मृत्यु फिर भी नहीं आई। न जाने किसका अदृश्य हाथ, किसका अदृश्य वर्म सदा मेरी रक्षा करता रहा है। तुम यह न समझना कि मैं क्षात्रधर्म भूल गया हूँ। मैंने बहुत चाहा, परंतु मृत्यु न आई—न आई—न आई।

युवराज स्कंदगुप्त बालू पर से उठ खड़े हुए और गोविंदगुप्त से कहने लगे तात, एक दिन शतद्रु के तट पर मैंने भाग्य की हँसी उड़ाई थी। आज एक बार फिर हँसी उड़ाऊँगा।

महाराजपुत्र ने विस्मित होकर पूछा—स्कंद! तुम क्या कह रहे हो?

स्कंद०—आज मैं देखूँगा कि मृत्यु आती है या नहीं।

गोविंद०—तात, हम लोगों के लिये उचित प्रायश्चित्त तुषानल में ही जल मरना है परंतु आज मैं एक दूसरा उपाय करूँगा। देवधर ने शतद्रु के युद्धवाली तलवार लौटा दी थी। आज मैं परीक्षा करके देखूँगा कि मेरी वह बहुत दिनों की मित्र सहायता करती है या नहीं।

पागल भानुमित्र ने फिर हँसकर कहा—यह तुम्हारी भूल है—बड़ी भारी भूल है कौन तुम्हारा सदा का मित्र है? नगरहार की तलवार ने जिस

प्रकार सर्वनाश किया था, उसी प्रकार शतद्रुवाली तलवार भी विश्वासघात करेगी। युवराज, तुमसे कुछ भी न हो सकेगा। तुम्हारी चेष्टा व्यर्थ हो जायगी।

अब तक हथकटे बंधुवर्म्मा चुपचाप बालू पर बैठे थे। अब उन्होंने उठकर भानुमित्र से पूछा—क्या आप अकेले ही जालंधर से आए हैं?

भानु०—अकेले क्यों आया था, और भी बहुत से लोग साथ थे।

बंधु०—वे कहाँ गए?

भानु०—यह तो मैं नहीं जानता।

युवराज ने ठंढी साँस लेकर बंधुवर्म्मा से कहा—भाई, क्या तुम भानुमित्र की बातें सुनकर भी उनकी अवस्था नहीं समझ सकते?

बंधु०—मैंने इनकी अवस्था समझ तो ली है। परंतु क्या आप समझते हैं कि भानुमित्र अकेले ही जालंधर से यहाँ तक आए हैं? कभी नहीं।

स्कंद०—संभव है, दस पाँच सैनिक उनके साथ आए हों। परंतु इतने ही से क्या होता है?

बंधु०—युवराज! भानुमित्र केवल दस पाँच सैनिक लेकर जालंधर से नहीं आए हैं। पास ही साम्राज्य की सेना है। महाराजपुत्र, आप अधीर न हों, अब भी बहुत कुछ आशा है। गुप्तकुल के गौरव का सूर्य्य अभी तक अस्त नहीं हुआ। यदि आप और युवराज रहेंगे, तो बहुत संभव है कि आर्यावर्त्त की रक्षा हो जाय। केवल व्यर्थ की आशा पर ही मैं रणक्षेत्र से भागकर नहीं आया हूँ।

युवराज स्कंदगुप्त ने ठंढी साँस लेकर कहा—भाई, क्या तुम भी कापालिक की बात पर विश्वास किए बैठे हो?

बंधु०—कापालिक ने झूठ नहीं कहा था युवराज, आप केवल दो दंड और ठहर जायँ। यदि दो दंड के अनतर अवस्था में कोई परिवर्त्तन न हो जाय, तो फिर आप जैसी व्यवस्था चाहिए, वैसी कीजिएगा।

इतने में फिर पागल भानुमित्र बोल उठे—देखो देखो, वह दूर घोड़े पर चढ़ा हुआ कोई आ रहा है। मेरा मन कहता है कि मैंने उसे कहीं देखा है।

सवार के आने की बात सुनकर सब लोग उसी ओर देखने लगे। बंधुवर्म्मा ने तलवार निकालकर कहा—महाराजपुत्र! यदि भानुमित्र की बात

ठीक हो, तो हम लोगों को अपनी रक्षा का प्रबंध करना चाहिए। नहीं तो अभी हम लोगों की कुछ और ही दशा हो जायगी। यदि यह सवार हूण हो तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु ने हम लोगों की पुकार सुन ली। परंतु यदि यह सवार साम्राज्य का हो, तो आज सूर्य अस्त होने से पहले ही हूणों के रक्त से कलंक कालिमा धो डालूँगा। परंतु वह सवार है कहाँ?

ठंढी साँस लेकर महाराजपुत्र ने कहा—बंधुवर्म्मा! यह सब कोरा स्वप्न है। अंतर्वेदी में मनुष्य कहाँ हैं? सवार कहाँ से आवेगा? आज यदि मुझे सवार मिल जायँ, तो मैं हूणराज को अंतर्वेदी के बाहर निकल दूँ; और यदि पंद्रह हजार सवार मिल जायँ, तो फिर शतद्रु तट तक जा पहुँचूँ—

पीछे से बालू के ढूह की ओट से न जाने कौन बोल उठा—यदि आवश्यकता होगी, तो मैं बीस हजार सवार दूँगा।

सब लोग चौंककर उसी ओर देखने लगे। बालू के ढूह की ओट से वर्म्म पहने हुए एक योद्धा ने निकलकर सामरिक रीति से अभिवादन किया। महाराजपुत्र ने पूछा—तुम कौन हो?

उत्तर मिला—यह मैं फिर बतलाऊँगा।

इतने में बंधुवर्म्मा बोल उठे—मैंने पहचान लिया। साम्राज्य में मैंने इस प्रकार का कंठस्वर और किसी का नहीं सुना। महाराजपुत्र! आपके सामने महानायक महाप्रतीहार कृष्णगुप्तदेव खड़े हैं।

उस समस गोविंदगुप्त ने कृष्णगुप्त का हाथ पकड़कर रूँधे हुए कंठ से कहा—क्या तुम सचमुच कृष्णगुप्त हो? यदि यही बात है, तो अब भी बहुत कुछ आशा है। यदि तुम न आते, तो अब तक हम लोग तुषानल में प्रवेश कर चुके होते। शीघ्र बताओ, सेना कहाँ है?

कृष्ण०—महाराजपुत्र! आप शांत हों। सेना यहीं पास ही है। आज दो दिन से मैं समस्त अंतर्वेदी में भानुमित्र को ढूँढ़ता फिरता हूँ। मथुरा से जो लोग भागकर आए हैं, उनसे मैंने जो कुछ सुना उससे समझ लिया कि अब सब का अंत हो गया। मुझे यह आशा ही नहीं थी कि मैं आपको अथवा युवराज को देख सकूँगा। जालंधर से मैं बीस हजार सवार लेकर आया था। उधर कान्यकुब्ज में चक्रपालित और हर्षगुप्त पच्चीस हजार सवार

लेकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। मथुरा का समाचार सुनकर वे लोग स्तंभित हो गए हैं। उन लोगों ने तो यही सुना है कि महाराजपुत्र और युवराज भट्टारक युद्ध में मार डाले गए। कान्यकुब्ज में हरिबल ने महोत्सव आरंभ कर दिया है। उधर सम्राट् ने भी यह सुनकर कि युद्ध में भाई और पुत्र ने वीरगति प्राप्त की और दस हजार मागध सैनिक नष्ट हो गए, निश्चित भाव से दिन रात आनंद मंगल करना आरंभ कर दिया है। चक्रपालित ने संकल्प कर लिया है कि अब मैं लौटकर सौराष्ट्र चला जाऊँगा। कुमार हर्षगुप्त अपने पिता के शोक में व्याकुल हो रहे हैं। मैं सोचता था कि वानप्रस्थ आश्रम में चला जाऊँ—

गोविंद०—भाई, इन सब बातों के लिये अभी बहुत समय है। इस समय विजय के कारण उन्मत्त होकर शत्रु लोग महोदय की ओर बढ़ रहे हैं। उन्हें रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हारी सेना कहाँ है?

कृष्ण०—कोस भर पर, छावनी में।

गोविंद०—अच्छा, तो अब तुरंत हम लोगों को वहाँ ले चलो और वहाँ से तुम सीधे कान्यकुब्ज चले जाओ। नहीं तो किसी को यह विश्वास भी न होगा कि हम लोग जीवित हैं। चक्रपालित और हर्ष से कह देना कि वे समाचार मिलते ही शूकरक्षेत्र में आ पहुँचें।

बिना कोई उत्तर दिए कृष्णगुप्त चुपचाप आगे बढ़े। गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त बंधुवर्म्मा और भानुमित्र उनके पीछे पीछे हो लिये। वहाँ से प्रायः एक कोस की दूरी पर जाह्नवी के तट पर आमों का एक छोटा जंगल था। उसके पास ही एक पुराने देवालय पर खड़ा हुआ एक नाटा युवक चारों ओर देख रहा था। इन पाँचों को दूर से आते देखकर वह मंदिर से नीचे उतर पड़ा और घोड़े पर चढ़कर क्षण भर में उन लोगों के पास आ पहुँचा। उस युवक को घोड़े पर चढ़ते देखकर आम के जंगल की छावनी में से बहुत से सैनिक बाहर निकल आये थे। युवक ने महाराजपुत्र आदि के पास पहुँचकर कहा—महाराजपुत्र की जय! युवराज भट्टारक की जय!

जो लोग छावनी के बाहर खड़े हुए थे, उन्होंने भी यह जयध्वनि सुनकर उसी प्रकार जयध्वनि की, जिसे सुनते ही ग्राम के जंगल में से हजारों सैनिक बाहर निकल आए। उन सबकी जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। रुँधे हुए स्वर से गोविंदगुप्त ने कहा—आर्य्यावर्त्त में अब भी जीवन है।

संध्या समय जब कि बीस हजार सवार युद्ध के लिये सजकर ग्राम के उस जंगल से बाहर निकल रहे थे, उस समय हजारों हूण सैनिक निश्चित होकर अंतर्वेदी लूट रहे थे; और हूणराज अपनी सेना के साथ धीरे धीरे गौड़ की ओर बढ़ रहे थे। उस अँधेरी रात में ये बीस हजार सैनिक भूखे बाघों की तरह हूण सैनिकों के छोटे-छोटे दलों पर टूट पड़े, जिसके कारण हूण लोग परास्त होकर भाग खड़े हुए हूण सैनिक छोटे छोटे दलों में विभक्त होकर इधर उधर लूट मार कर रहे थे। कहीं पचास, कहीं सौ, कहीं हजार और कहीं दो हजार हूण थे। परंतु साम्राज्य के बीस हजार सैनिक सदा एक होकर उन पर आक्र- मण करते थे। हूण सैनिक परास्त होकर पीछे हटते जाते थे। प्रातःकाल हो गया, परंतु फिर भी शत्रुओं का अंत नहीं हुआ। प्रातःकाल मुट्ठी भर शत्रुओंको देखकर हूणों का चित्त कुछ ठिकाने हुआ और उन्होंने चारों ओर से उनपर आक्रमण किया। उस समय चक्रव्यूह रचकर गुप्त साम्राज्य के सैनिक प्राण देने के लिये प्रस्तुत हो गए।

आज से प्राय: १५०० वर्ष पहले कान्यकुब्ज नगर के पास गंगा उत्तर की ओर बहती थी। उस स्थान पर नदी की टेढ़ी गति के कारण बलुई भूमि सदा गीली रहती थी। उसी गीली भूमि पर १८०००सवार लेकर गोविंदगुप्त, स्कंदगुप्त और बंधुवर्म्मा हूणों के साथ अंतिम युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गए। सूर्योदय से सूर्यास्त तक तो साम्राज्य की सेना सहज में ही अपनी रक्षा करती रही, परंतु संध्या समय वह थककर हताश हो गई। अपने अपने घोड़े पर से उतरकर युवराज और महाराजपुत्र हूण-सैनिकों के बीच कूदना ही चाहते थे कि इतने में दूर से जयध्वनि सुनाई दी। विजयी हूण सेना ने भागना आरंभ किया। गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त विस्मित होकर अपने अपने घोड़े पर चढ़ गए। उन्होंने देखा कि वर्षा के घने मेघ की भाँति हजारों सवार तीनों ओर से हूणों पर आक्रमण कर रहे हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करने पर भी हूण लोग

विजयी न हो सके। लाखों हत और आहत सैनिकों को युद्धक्षेत्र में छोड़कर खिंखिल को भागना पड़ा।

युद्ध समाप्त होने पर चक्रपालित, हर्षगुप्त और कृष्णगुप्त ने आकर महा राजपुत्र को अभिवादन किया। गोविंदगुप्त ने उन लोगों से कहा—अब तुम लोग अंतर्वेदी पर अधिकार करके मथुरा की ओर बढ़ो। स्कंद मेरे साथ महोदय जायँगे।

हर्षगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—महोदय ?

गोविंद०—हाँ, महोदय। पुत्र, तुम घबराओ नहीं। उत्तरापथ में अभी किसी ऐसे व्यक्ति ने जन्म नहीं लिया है जो गोविंदगुप्त की हत्या करे।

हर्ष०—महोदय में—

गोविंद०—महोदय में इस समय क्या हो रहा है ?

हर्ष०—वहाँ आपकी और युवराज की मृत्यु के उपलक्ष में उत्सव मनाया जा रहा है।

छठा परिच्छेद

महोदय

महोदय नगर के प्रशस्त राजमार्ग में खड़े होकर एक नागरिक ने दूसरे से पूछा—क्यों भाई, यह क्या हो रहा है ? कुछ तुम्हारी समझ में भी आता है ?

दूसरे नागरिक ने उत्तर दिया—भाई, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आता। मैंने एक नाव ले रखी है। ज्यों ही कोई ऐसी वैसी बात होगी, त्यों ही मैं गंगा पार करके भाग जाऊँगा।

पह० ना०—इस बात में तो कोई संदेह ही नहीं है कि मथुरा गया। परंतु फिर भी मैं देखता हूँ कि ये लोग बहुत ही निश्चिंत होकर बैठे हैं।

दू० ना० कौन लोग ?

पह० ना०—यही शिवनंदी, संघस्थविर हरिबल और महाराजाधिराज आदि।

दू० ना०—तुम भी निरे मूर्ख हो। जिस समय हूण लोग आवेंगे, उस समय देखना कि ये लोग कैसी वीरता से रथ पर चढ़कर पाटलिपुत्र की ओर भागते हैं। उस समय मरेंगे हम लोग।

पह० ना०—पर भाई, यह नवयुवकों का दल तो धन्य है। पाँच हजार सैनिक लेकर स्कंदगुप्त यम के घर जा पहुँचे। हूणों के सामने मथुरा नगर और यमराज का घर दोनों एक ही हैं। अरे भाई तुम राजपुत्र थे; तुम्हें युद्ध में जाने की क्या आवश्यकता थी ? वहाँ पहुँचकर जो तुमने अपने प्राण दे दिए, तो इससे क्या लाभ हुआ ? यही न कि शत्रु को हँसने का अवसर मिला !

दू० ना०—देखो, कैसे आश्चर्य की बात है कि राजा के राज्य की रक्षा करने में भाई कट मरा, पुत्र कट मरा और फिर उसी राजा ने उन लोगों के मरने के उपलक्ष में महोत्सव की आज्ञा दी है !

प० ना०—अरे राजा ने काहे को आज्ञा दी है, आज्ञा दी है, अनंता के उसी बंदर ने।

दू० ना०—अरे चुप चुप ! नहीं तो अभी कोई सुन लेगा। हरिबल के दूत चारों ओर घूमते हैं।

उन दोनों नागरिकों के पास से होकर दो पथिक चले जा रहे थे। उन दोनों की बात सुनकर वे दोनों कुछ दूर पर जाकर ठहर गए। उस समय पहला नागरिक कह रहा था—भला बतलाओ तो वे दोनों छोकरे कहाँ गए ?

दू० ना०—अरे हर्षगुप्त बड़े भारी वीर का लड़का है। मैंने सिप्रा के तट पर ही पहले पहल देखा था कि युद्ध किसे कहते हैं। उसके पिता देश की रक्षा करने के लिये युद्ध में कट मरे। यह देखकर हर्षगुप्त सरीखा पुत्र भी कहीं स्थिर रह सकता था ? वह भी मरने चला गया।

प० ना०—परंतु नगर में तो एक भी सैनिक नहीं है।

दू० ना०—महाराजपुत्र और युवराज के कहते ही सारी सेना उठ खड़ी हुई थी। यदि ऐसा न होता तो क्या हरिबल यों ही महाराज पुत्र और युवराज को छोड़ देता ? भाई, मैंने सिप्रा और शुभ्रमती के तट पर कुमारगुप्त और गोविंदगुप्त दोनों को एक साथ ही युद्ध करते देखा है। आज वही गोविंदगुप्त मर गए और वही कुमारगुप्त आनंद मंगल कर रहे हैं।

दोनों पथिक तब तक खड़े थे। इतने में उन लोगों में से एक ने आगे बढ़कर पहले नागरिक से पूछा—क्यों भाई, क्या आज इस नगर में कोई उत्सव होगा ?

ना०—हाँ।

पथिक—कैसा उत्सव होगा ?

ना०—सारे नगर में दीपामालाएँ जलाई जायँगी और प्रत्येक मार्ग में वेश्याओं का नृत्य होगा।

पथिक—क्या हूण सेना हार गई ?

ना०—नहीं, सुना है, कि वह मथुरा तक आ पहुँची है।

पथिक—तो फिर यह उत्सव कैसा है ?

ना०—सद्धर्म के शत्रुओं का नाश हो गया है, इस कारण।

पथिक—सद्धर्म के शत्रु कौन हैं ?

ना०—गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त।

पथिक—क्यों भाई, तुम तो अभी कह रहे थे न कि तुम सिप्रा और शुभ्रमती के तट पर उपस्थित थे ?

ना०—हाँ, था तो।

पथिक—तुमने कभी गोविंदगुप्त को बौद्धों पर अत्याचार करते भी देखा अथवा सुना है ?

ना०—नहीं।

पथिक—तो फिर गोविंदगुप्त सद्धर्म शत्रु कैसे हुए ?

ना०—यह तो संघस्थविर हरिबल ही बतला सकता है ?

पथिक--क्यों भाई, तुमने गोविंदगुप्त को देखा है ?

ना०—बहुत दिनों पहले देखा था। अब तो कदाचित् उन्हें देखकर पहचान भी न सकूँ।

पथिक--स्कंदगुप्त को देखा है ?

ना०--हाँ।

इसपर पथिक ने अपने साथी के सिर पर का उष्णीष खींचकर उतार दिया, जिसके कारण उनके बाल खुलकर मुँह के चारों ओर लहराने लगे। दोनों नागरिक घुटने टेककर वहीं बैठ गए। पहले नागरिक ने कहा--देव ! तब तो कान्यकुब्ज नगर बच गया।

पहले पथिक ने हँसकर पूछा—वह कैसे ?

ना०—यदि ऐसा न होता तो आज नगर में महाराजपुत्र और युवराज के दर्शन न होते।

गोविंद०—नगर बच गया। तुम लोग निश्चिंत होकर अपने अपने घर लौट जाओ। देखो, यह बात किसी पर प्रकट न हो कि तुमने हम लोगों को देखा है।

संध्या हो गई। महोदय नगर में असंख्य दीपमालाएँ जलने लगीं। प्रत्येक मार्ग में पाटलिपुत्र की वेश्याओं का नाच आरंभ हो गया। उस समय दोनों पथिकों ने गंगा तटवाले विशाल प्रासाद में प्रवेश किया। परिखा से घिरे हुए प्रासाद के फाटक पर एक द्वारपाल किसी युवती दासी से हँसी-दिल्लगी कर रहा था। दोनों पथिकों ने उसके सामने खड़े होकर अपने सिर से उष्णीष खोलकर फिर से बाँधना आरंभ किया। द्वारपाल ने पहले तो उन लोगों की ओर एक बार यों ही देखा, परंतु दूसरी बार देखते ही उसने दासी से बातें करना बंद कर दिया और दौड़कर दोनों पथियों के पैर पकड़ लिये। उसके रुँधे हुए कंठ से निकला—"प्रभु" ?

महाराजपुत्र ने उसे उठाकर कहा—शांत हो। हम लोग मरे नहीं, जीवित हैं। महाराज कहाँ हैं ?

द्वारपाल ने आँसू पोंछते हुए कहा—मंडप में नाच देख रहे हैं।

दोनों पथिक प्रासाद में घुसकर अनंता में मिल गए।

कान्यकुब्ज के प्रासाद में, संगमरमर के बने सभामंडप के आँगन में एक बड़े चंद्रातप के नीचे बहुत से सभासदों से घिरे हुए महाराजाधिराज कुमारगुप्त नाच देख रहे थे। उनके पीछे सोने के बने जड़ाऊ सिंहासन पर पट्टमहादेवी अनंतादेवी आनंद से लेटी हुई अपनी सखी से बातें कर रही थी। सहसा महादेवी का प्रसन्न मुख सूख गया। वह घबराकर उठ बैठी और कहने लगी—वह कौन है ?

जिस ओर अनंता ने दिखलाया था, सखियों ने उसी ओर देखा। संगमरमर के खंभे में लटका हुआ चाँदी का दीपाधार हिल रहा था। पट्टमहादेवी शांत होकर फिर नाच देखने लगी। कोई आधा दंड इसी प्रकार बीत गया। सहसा दूसरे खंभे की ओर देखकर महादेवी फिर चिल्लाकर कहने लगी—वह कौन है ?

नाच बंद हो गया। सभासद लोग उठकर खड़े हो गए। सब ने देखा कि दूसरे खंभे में लटका हुआ सोने का गंधाधार हिल रहा है। कुछ समय के उपरांत जब महादेवी का चित्त ठिकाने हुआ, तब फिर नाच गाना आरंभ हुआ। कोई आध दंड के उपरांत संघस्थविर सहसा अचेत होकर सभामंडप में गिर पड़े। साथ ही साथ पट्टमहादेवी ने चिल्लाकर कहा—"अरे! कोई मुझे बताओ।" इतना कहते ही अनंता वृद्ध सम्राट् से लिपट गई। उसी समय खंभे की आड़ से दो व्यक्ति निकलकर सिंहासन की ओर बढ़े। वृद्ध सम्राट् ने घबराकर डरी हुई पट्टमहादेवी को दूर हटा दिया और उठ खड़े हुए। दोनों व्यक्तियों ने तलवार निकालकर सैनिक रीति से अभिवादन किया। उस समय सम्राट् ने कहा—कौन ?
महाराजपुत्र—स्कंद ? क्या यह स्वप्न है ?

गोविंदगुप्त ने कहा—महाराजाधिराज की जय हो। मैं गोविंदगुप्त हूँ और मेरे साथ युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त हैं। महाराज! महोदय नगर में आज यह किस बात का उत्सव है ? आपके भाई और पुत्र हूण सेना का समुद्र मथकर आए हैं। क्या उसी का आनंद मनाने के लिये आज महोदय वाले यह महोत्सव कर रहे हैं ?

वृद्ध सम्राट् ने सिर झुका लिया। उसी समय पट्टमहादेवी अनंता चिल्लाकर मूर्छित हो गईं। उस समय गोविंदगुप्त ने कहा—महाराज! क्या आप इस समय हम लोगों का नृत्यसभा में आ पहुँचना अच्छा नहीं समझते?

वृद्ध कुमारगुप्त का सिर और भी झुक गया। गोविंदगुप्त ने फिर कहा—महाराज! मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए थे। मैंने सुना था कि पाटलिपुत्र में चंद्रधर के पुत्र ने आत्मबलि दे दी थी। इसी कारण महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की राजधानी छोड़कर चले गए हैं। उच्च कुल का कोई व्यक्ति सभा अथवा प्रासाद में नहीं आता; और अच्युतनाग का पुत्र लौटकर पाटलिपुत्र चला गया है। इन्हीं सब कारणों से बहुत दिनों के उपरांत आज मैं आपके दर्शन करने आया हूँ।

वृद्ध सम्राट् तब तक चुप ही थे। इतने में संघस्थविर हरिबल ने धीरे धीरे सम्राट् के पास पहुँचकर उनके पैर पकड़ लिए। यह देखकर गोविंद-गुप्त को बहुत क्रोध आया। उन्होंने चिल्लाकर कहा—महाराज, आज साम्राज्य पर बड़ी भारी विपत्ति आई है नहीं तो मैं कभी यहाँ न आता। वाह्लीक, कपिशा और गांधार शत्रुओं के हाथ में चले गए हैं। नगरहार, तक्षशिला और पुरुषपुर जलकर राख हो गए हैं। हजारों हूण सैनिक शतद्रु पार करके अंतर्वेदी में घुस आए हैं। मथुरा का अस्तित्व नष्ट हो गया है। तात! अब भी आप सचेत हों। आर्यावर्त्त का सर्वनाश होना चाहता है। उठिए, और पिता जी की दी हुई तलवार हाथ में लीजिए। बस मैं फिर शत्रुओं को वक्षु के उस पार पहुँचा दूँगा। आपकी ये सुंदर वेश्याएँ, बहु-मूल्य मद्य, नाच गाना और महोत्सव सभी कुछ बचा रहेगा। एक बार उठिए, जड़ता छोड़िए, आँख उठाकर देखिए, सारे देश में लहू की नदियाँ बह रही हैं। प्रजा का रोना चिल्लाना सुनकर कान फटे जाते हैं। सेनादल छिन्न भिन्न हो रहे हैं और सारे साम्राज्य में अव्यवस्था छाई हुई है। क्या आप वही कुमारगुप्त हैं? क्या सिप्रा और शुभ्रमती के तट पर आपने ही शत्रुओं का व्यूह तोड़ा था? उठिए महाराज, उठिए! यह समय भोग-विलास का नहीं है। आज पवित्र आर्यभूमि अस्पृश्य जंगलियों के कलुषित

पैरों के स्पर्श से कलंकित हो रही है। आप चंद्रगुप्त के पुत्र और समुद्रगुप्त के पौत्र होकर भी इन सब बातों को सुनकर कैसे चुपचाप बैठे हैं ?

महाराजपुत्र की बात समाप्त होने के पहले ही, अनंता सचेत हो गई थी। उसने युवराज की ओर उँगली दिखाकर कहा—उसे हटा दो। यहाँ से हटा दो। उसने अपनी माता की हत्या की है। अब वह मुझे भी मार डालेगा।

अब सम्राट् में भी बात करने की शक्ति आ गई। उन्होंने घबराकर अनंता से पूछा—किसको हटा दूँ ? कौन तुम्हें मार डालेगा ?

अनंता ने दूसरी बार युवराज की ओर संकेत करके कहा—उसे, उसे—उसे दूर हटा दो। अभी हटा दो। नहीं तो मैं मर जाऊँगी।

इतने में गोविंदगुप्त ने कहा—महाराज ! इस समय साम्राज्य पर बड़ी भारी विपत्ति आई है। इसी कारण मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अब साम्राज्य की रक्षा करना मेरे लिये असंभव हो गया है—

अनंता—उसे हटा दो। अभी हटा दो। मेरा दम रुक रहा है।

गोविंद०—महाराज ! सुनिए, यह स्त्री पागल है। इसके जैसी सैकड़ों हजारों पागल स्त्रियाँ हूण युद्ध में अपने पति पुत्र खोकर गलियों में मारी मारी फिरती हैं। तात ! अब भी आप सचेत हो, नहीं तो सिप्रा और शुभ्रमती तट का यश हूण युद्ध की कलंक कालिमा को न धो सकेगा। आर्य्यावर्त्त के निवासी बहुत दिनों तक आपके कलंक का—

अनंता—उसे हटाओ ! हटाओ ! अभी हटाओ।

वृद्ध सम्राट् ने धीरे से कहा—स्कंद ! तुम यहाँ से हट जाओ।

महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने स्तंभित होकर कहा—महाराज ! आप क्या कर रहे हैं ? स्कंद ही आर्य्यावर्त्त के एकमात्र आधार हैं। क्या आप यह समझते हैं कि वेश्या का यार चंद्रसेन, वेश्या का पुत्र शिवनंदी अथवा मद्य बेचनेवाले अक्षयनाग का पुत्र भवरुद्र उत्तरापथ और दक्षिणापथ को हूणप्रलय से बचा लेगा ? स्कंद, पुत्र, युवराज—

उस समय के उपरांत महोदय नगर में फिर कभी किसी ने परमेश्वर परमवैष्णव युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त को नहीं देखा।

———

सातवाँ परिच्छेद

स्तूपरक्षा

गोविंदगुप्त—पुत्र! अब तो यह शरीर भार जान पड़ता है। और कितने सैनिक बचे हैं?

हर्ष०—केवल पाँच सौ।

गोविंद०—ये पाँच सौ मागध वीर व्यर्थ क्यों मेरे लिये प्राण दे रहे हैं! उन लोगों से कह दो कि भाग जायँ! उन लोगों से कह दो कि गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया, गोविंदगुप्त मर गए, अब ये लोग अपने अपने घर चले जायँ।

हर्ष०—पिता जी! कोई लौटकर जाना नहीं चाहता।

गोविंद०—क्यों?

हर्ष०—वे लोग कहते हैं कि कई पीढ़ियों से हम लोगों का पालन गुप्तकुल के ही अन्न से होता आ रहा है। आज बुरे दिन देखकर हम लोग अपने स्वामी को कैसे छोड़ सकते हैं?

गोविंद०—अब युद्ध करके क्या होगा! किसके लिये युद्ध किया जायगा? स्कंद के साथ साथ सब बातों का अंत हो गया।

हर्ष०—पिता जी, हम लोगों के साथ जो एक नया युवक गौल्मिक है, उसे आपने कभी ध्यान से देखा है?

गोविंद०—हर्ष! तुम जो बात सोचते हो, वह नहीं है। उस गौल्मिक का मुख स्कंदगुप्त के मुख के समान अवश्य है; परंतु उसके बाल काले हैं।

हर्ष०—क्या पिंगल वर्ण के बाल रँगकर काले नहीं किए जा सकते ?

गोविंद०—क्यों नहीं किए जा सकते हैं। परंतु वह रंग कितने दिनों तक ठहरेगा ?

हर्ष०—एक बार परीक्षा तो कर ली जाती।

गोविंद०—हर्ष ! यह आशा व्यर्थ है। मेरी आयु पूरी हो चुकी है। अब तुम मुझे और लोभ मत दिलाओ। यदि स्कंद जीते होते तो मरते समय मुझे छोड़कर कहीं न जाते।

इतने में दूर से घोड़ों के पैरों का शब्द सुनाई दिया। घने जंगल में युद्ध से थके हुए, पाँच सौ सवार वृक्षों के नीचे विश्राम कर रहे थे। वे लोग वह शब्द सुनकर सज बजकर उठ खड़े हुए। कुछ समय के उपरांत एक सवार ने पहुँचकर हर्षगुप्त से कहा—देव ! हूण सेना को हम लोगों का पता लग गया और उसने चारों ओर से हम लोगों को घेर लिया।

वृद्ध गोविंदगुप्त उस समय भूमि पर पत्ते बिछाकर वहीं विश्राम कर रहे थे। उन्होंने यह समाचार सुनते ही कहा - बस हर्ष, अब नहीं ठहरा जाता। मैं आज ही हूण युद्ध का अंत करूँगा। इससे पूछो कि पास ही कोई पर्वत है ?

हर्षगुप्त अपने पिता के पास से उठकर सवारों के पास चले गए और कुछ समय के उपरांत लौटकर बोले—पिता जी, यहाँ कोई पर्वत तो नहीं है; परंतु पत्थर के खंभों से घिरा हुआ एक बौद्ध स्तूप अवश्य है।

गोविंदगुप्त ने उत्सुक होकर पूछा—वह कितनी दूर है ?

एक सवार ने उत्तर दिया—आध कोस से भी कम होगा।

गोविंद०—अच्छा तो तुरंत वहीं चलो। यदि मरना ही है, तो शत्रुओं की सेना का नाश करके मरूँगा। साम्राज्य की सेना का बचा हुआ गुल्म, लाखों सैनिकों में से बचा हुआ पाँच सौ सैनिकों का दल, यदि मरते समय हजार दो हजार हूणों को भी न मार सकेगा, तो जो लोग हमसे पहले मर चुके हैं, उनकी आत्माएँ क्या कहेंगी ?

पाँच सौ सवारों ने लाल पत्थर के बने हुए स्तूप में पहुँचकर आश्रय लिया। स्तूप के फाटकों पर बहुत से वृक्ष काट काटकर प्राकार बनाया गया और सब लोग अपनी रक्षा के लिये प्रस्तुत हो गए। स्तूप बहुत बड़ा था और उसके चारों ओर प्रदक्षिणा करने के लिये मार्ग बना हुआ था। उसमें एक हजार सवार तक बहुत सहज में रह सकते थे। देखते देखते हूण सेना आ पहुँची। चारों ओर से हूणों ने उस स्तूप पर आक्रमण किया। सैकड़ों तीरों और भालों से स्तूप की वेष्टनी पर बने हुए चित्र टूट फूट गए; परंतु हूण लोग स्तूप की ओर न बढ़ सके। इतने में संध्या हो गई और हूण लोगों ने आक्रमण रोक दिया। रात होने पर वे लोग जंगल में आग जलाकर भोजन बनाने लगे। और स्तूप में बंद, साम्राज्य के भूखे सैनिक लोलुप दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे।

महाराजपुत्र गोविंदगुप्त इससे पहले कई बार घायल हो चुके थे। रात का पहला पहर बीत जाने पर शरीर में से बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण वे बहुत ही शिथिल हो गए। उन्होंने सैनिकों तथा गौल्मिक को बुलाकर कहा—भाइयो! युद्ध समाप्त हो गया। गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया और मेरा अंतिम समय आ पहुँचा। अब तुम लोग मुझे छोड़कर अपनी रक्षा का प्रयत्न करो।

थके हुए, घायल और भूखे मागध सैनिकों के नायकों ने समझ लिया था कि इस युद्ध में जीतना असंभव है। अतः वे कुछ भी निश्चित न कर सकते थे कि महाराजपुत्र को क्या उत्तर दिया जाय। यह देखकर उन लोगों के पीछे से एक वर्म्मधारी गौल्मिक बोल उठा—भाइयो! महाराजपुत्र ने जो कुछ कहा है, वह ठीक है। कदाचित् तुम लोग यह समझते होगे कि व्यर्थ युद्ध में अपनी शक्ति नष्ट करने की अपेक्षा अपनी रक्षा का प्रयत्न करना अधिक उत्तम है। परंतु स्मरण रखना कि केवल प्रयत्न करने से ही तुम लोगों की रक्षा न हो सकेगी। यदि तुम पाँच सौ सैनिक डरकर यहाँ से भागने की चेष्टा करोगे, तो हूण सैनिक सहज में ही तुम लोगों को मार डालेंगे। यह भी स्मरण रखना कि भागने पर भी तुम लोग मृत्यु से नहीं बच सकोगे। एक न एक दिन तुम लोगों को मरना ही होगा। यह भी

स्मरण रखना कि इन्हीं वृद्ध, आहत और शक्तिहीन महाराजपुत्र ने सैकड़ों युद्धों में आर्यावर्त की रक्षा करने की चेष्टा की है। आज यदि इस घने जंगल में उन्हीं महाराजपुत्र को इस असहाय और दीन अवस्था में छोड़कर मागध सैनिक प्राण-भय से भाग जायँगे, तो आर्यावर्त के लोग क्या कहेंगे, । वर्ष ही नहीं, युग के युग बीत जाने पर भी जब तक संसार में मनुष्य रहेंगे, तब तक लोग कृतघ्न मागध सैनिकों पर कलंक लगाते रहेंगे।

इसपर एक वृद्ध सेनापति बोल उठे—भाई! तुम तो बहुत बड़ी बड़ी बातें कह गए। परंतु यह तो बतलाओ कि इस समय भागने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है। दो दिन से हम लोगों को अन्न नहीं मिला। इस स्तूप में बूँद भर भी जल नहीं है। ऐसी अवस्था में हम लोग कब तक अपनी रक्षा कर सकते हैं?

गौल्मिक ने वृद्ध सेनापति को अभिवादन करके कहा—तात! आप गुरु के तुल्य हैं। युद्ध करते करते आपके बाल पक गए हैं। आपके मुँह से ऐसी बात सुनकर मागध सैनिक क्या कहेंगे? मैंने सिप्रा और शुभ्रमती तटवाले महाराजपुत्र के अद्भुत युद्ध नहीं देखे, परंतु चारणों के मुख से मैंने उनका वर्णन अवश्य सुना है। हाँ, वाल्हीका और शतद्रु पर तथा शौरसेन राजधानी में उनकी वीरता अपनी आँखों से देखी है। भीषण हूण समर के सैकड़ों युद्धों में उन्होने अपूर्व आत्मत्याग और रणकुशलता दिखलाई है। आज यदि महाराजपुत्र न होते, तो कपिशा से कामरूप तक सारा आर्यावर्त हूणों के अधिकार में ही दिखलाई देता। मागध सैनिक आज उन्हीं महाराजपुत्र को इस अवस्था में अकेले जंगल में छोड़कर कहाँ जायँगे? मगध तो बहुत दूर है; पर हाँ, नरक बहुत पास है। क्या भागकर कोई मृत्यु से भी बच सकेगा? यदि मरना ही है, तो भी व्यर्थ अपने सिर कलंक क्यों लें? चलिए, मागध राजपुत्र, मागध सवारों और मागध पैदलों सब लोग मिलकर अग्निगुप्त के दिखलाए हुए मार्ग पर ही चलें। भाइयों मैंने सुना है कि केवल सात सेनापतियों ने दस हजार सवारों को लेकर शतद्रुतट पर एकलाख हूण सैनिकों को रोका था। क्या आज पाँच सौ

मगध सैनिक महाराजपुत्र को लिये हुए दस हजार हूणों में से होकर गंगा तट तक नहीं जा सकते ?

तुरत ही पाँच सौ मागध सैनिकों ने जय ध्वनि की, जिसे सुनते ही हूणों ने भोजन छोड़कर अस्त्र उठा लिए। सहसा बड़े वेग से मागध सैनिक स्तूप के फाटक में से निकले। चार सैनिक काठ की बनी हुई एक खाट पर अचेत गोविंदगुप्त को लेकर चलने लगे। सबसे आगे वह वर्म्मधारी गौल्मिक और सब के पीछे गोविंदगुप्त की खाट थी। उन लोगों को देखते ही हजारों हूणों ने उन पर आक्रमण किया। सहसा एक बड़ा भाला आकर गौल्मिक के सिर पर लगा, जिससे शिरस्त्राण नीचे गिर पड़ा। साथ ही पाँच सौ मागध वीर मारे आनंद के चिल्ला उठे—युवराज की जय! स्कंदगुप्त की जय!

सैनिकों की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। हूण सेना चौंककर स्तंभित हो गई। उसी समय विचलित हूण सेना पर बड़े वेग से आक्रमण करके साम्राज्य के सैनिक आगे बढ़े। उस रात के युद्ध में, उस जंगल में सैंकड़ों हूण मारे गए और हजारों घायल हुए। परंतु फिर भी पाँच सौ मागध वीरों की गति नहीं रुकी। बहुत दिनों के उपरांत युवराज भट्टारक स्कंद को अपना नेता देखकर मागध सैनिकों में न जाने कहाँ से अमानुषिक बल आ गया। हजारों हूण सैनिक पत्थर की मूरत की तरह चुपचाप दूर खड़े रहे और पाँच सौ मागध वीर उनमें से निकलकर अदृश्य हो गए। इस युद्ध के पचास वर्ष उपरांत भी जालंधर और उज्जयनी के वृद्ध हूण लोग काँपते हुए महावीर स्कंदगुप्त के अमानुषिक पराक्रम का वर्णन किया करते थे। और सौ वर्ष उपरांत तक उत्तरापथ और दक्षिणापथ की आर्य स्त्रियाँ देवताओं और ब्राह्मणों, स्त्रियों और बालकों, देवकुलों और शस्यक्षेत्रों की रक्षा करनेवाले स्कंदगुप्त का प्रात:काल नाम लेकर तब घर का काम काज किया करती थी। मालव के कृषक और गौड़ के धीवर बहुत दिनों तक कृतज्ञ चित्त से गुप्तकुल के युवराज का यश गाया करते थे।

प्रभात के समय सफेद वस्त्र पहने हुए एक सवार एक टीले पर खड़ा चारों ओर देख रहा था। सहसा उसने देखा कि बहुत दूर पर उपत्यका

सी काली चीटियों की तरह बहुत से सैनिक शीघ्रतापूर्वक चले आ रहे हैं। उस व्यक्ति की आँखें चमकने लगीं। वह तुरंत टीले पर से नीचे उतर आया। नीचे एक बड़ी छावनी में हजारों सैनिक सोए हुए थे। उस व्यक्ति ने उन सब को जगाया। कोई आध दंड के उपरांत बीस हजार सवार उपत्यका की ओर बढ़ने लगे। मार्ग में उसी सफेद वस्त्रवाले व्यक्ति ने अपने साथी से पूछा—क्या ये लोग हूण हैं।

साथी ने उत्तर दिया—मैं ठीक नहीं कह सकता; पर ये लोग चाहे जो हों, मैं इनपर अभी आक्रमण करूँगा। दस दिन में मालव पहुँचूगा और बीस दिन में प्रतिष्ठान लौट आऊँगा। जब तक मालव और सौराष्ट्र में थोड़े से लोग भी बचे रहेंगे, तब तक मैं अनंता के पुत्र को आर्यपट्ट पर नहीं बैठने दूँगा। जिस मार्ग पर युवराज स्कंदगुप्त कुमार हर्षगुप्त और महाराज पुत्र गोविंदगुप्त गए हैं, जहाँ साम्राज्य, स्वदेश और स्वधर्म गया है, उसी मार्ग पर और वहीं स्वदेश, स्वधर्म और स्वराज्य के विनाश को भी भेजूँगा। इसके लिये यदि सारा मालव नष्ट हो जाय, तो भी कोई चिंता नहीं।

पहले व्यक्ति ने कहा—भाई बंधुवर्म्मा, यदि मुझे एक व्यक्ति भी मिल जाय, यदि वृद्ध दामोदर शर्म्मा जीवित हों, तो मैं फिर वाह्लीका तट पर पहुँच जाऊँगा, और उत्तरापथ का गया हुआ गौरव फिर आ जायगा।

बंधु०—भाई भानुमित्र! ये सब भाग्य की बातें हैं। नहीं तो युवराज स्कंदगुप्त बालकों की भाँति अभिमान करके क्यों निरुद्देश्य होकर कहीं निकल जाते? अथवा महाराजपुत्र ही केवल दो हजार सैनिक लेकर क्यों वन में प्रवेश करते? अब भी मगध में प्राण हैं, अब भी आर्य्यावर्त्त के निवासी पत्थर नहीं हो गए हैं। परंतु हाँ अब भी यदि युवराज लौट आवें तो सब कुछ हो सकता है।

सैनिकों ने उपत्यका के द्वार पर पहुँचकर देखा कि द्वार बंद है और प्राचीर पर एक वर्म्मधारी योद्धा एक बड़े भाले के सहारे खड़ा है। उसने उन असंख्य सैनिकों को देखकर कहा—तुम लोग क्या चाहते हो? निक-

लगने के लिये मार्ग ? लौट आओ और जाकर खिंखिल से कह दो कि मेरा नाम स्कंदगुप्त है। वाह्लीका और शतद्रु के तट पर उससे मेरी भेंट हुई थी।

सहसा भीषण जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। साम्राज्य के बीस हजार सैनिक चिल्ला उठे—"महाराजाधिराज की जय हो"। जयध्वनि सुनकर स्कंदगुप्त काँप उठे। उस समय चार वर्म्मधारी योद्धा आगे बढ़कर प्राचीर के सामने घुटने टेककर बैठ गए। सब ने अपनी अपनी तलवार निकालकर युवराज स्कंदगुप्त के पैरों के पास रख दी। यह देखकर युवराज ने काँपते हुए स्वर से पूछा—यह क्या ?

उन चारो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति ने उठकर रुँधे हुए स्वर से कहा—महाराजाधिराज ! आपकी आज्ञा से शतद्रु तट पर विश्ववर्म्मा के पुत्र ने अपना दाहिना हाथ रणचंडी पर चढ़ा दिया था। अब केवल बायाँ हाथ बच रहा है। यदि सम्राट् की आज्ञा हो तो आवश्यकता पड़ने पर बंधुवर्म्मा अपना वह बायाँ हाथ भी सिंधु अथवा वाह्लीका के तट पर बलिस्वरूप देने के लिए प्रस्तुत है। देव ! ईश्वर ने आर्यावर्त्त की रक्षा कर दी। परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज स्कंदगुप्त देव की जय !

प्राचीर पर खड़े हुए स्कंदगुप्त काँप उठे। यदि पीछे से एक दूसरा वर्म्मधारी मनुष्य उन्हें पकड़ न लेता, तो कदाचित् वे नीचे गिर पड़ते। पीछे से कुमार हर्षगुप्त ने स्कंदगुप्त को पकड़ा था। उन्होंने बंधुवर्म्मा से पूछा—आप क्या कह रहे हैं ?

बंधु०—मैं सत्य कहता हूँ। पवित्र महोदय नगर में गंगा तट पर द्वितीय चंद्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त का देहांत हो गया।

आठवाँ परिच्छेद

देवकुल में नीलमणि

प्रातःकाल हाथीदाँत की पालकी में बैठे हुए संघस्थविर हरिबल ने कपोतिक संघाराम के फाटक में प्रवेश किया। फाटक पर सैकड़ों दर्शनार्थी

उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन लोगों ने दूर से पालकी को देखते ही प्रणाम किया। पहले प्रबल पराक्रांत मागध संघ के अधिनायक फाटक पर ही उन लोगों के निवेदन सुना करते थे। परंतु आज संघस्थविर की पालकी फाटक पर नहीं रुकी। महाबिहार के सामने पालकी पर से उतरकर हरिबल ने अवलोकितेश्वर के मंदिर में प्रवेश किया। मंदिर के द्वार पर एक आचार्य खड़ा था। वह महास्थविर को प्रणाम करके वहाँ से हट गया। मंदिर में प्रवेश करके संघस्थविर कुश के एक आसन पर बैठ गए। उस समय एक भिक्षु ने आकर कहा—देव ! जो व्यक्ति कान्यकुब्ज से आया है, यदि आज्ञा हो तो उसे ले आऊँ।

संघस्थविर ने बिना उसकी ओर देखे ही कहा—ले आओ।

भिक्षु डरता हुआ प्रणाम करके चला गया। कुछ समय के उपरांत उष्णीष पहने हुए दीर्घाकार व्यक्ति मंदिर के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। उसे देखकर हरिबल ने कहा—चले जाओ।

आगंतुक ने मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करके पूछा—क्या आप ही महास्थविर हरिबल हैं ?

महास्थविर ने दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा—हाँ, इस समय मैं इसी नाम से परिचित हूँ।

आगंतुक—देव, मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। क्या आप कृपाकर इस बात का कोई प्रमाण दे सकते है कि आप ही महास्थविर हैं ?

हरि०—जान पड़ता है, तुम्हें भद्रोचित व्यवहार करने की शिक्षा नहीं मिली।

आगं०—देव, मैंने तो पहले ही कहा था कि मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। मैं जिस उद्देश्य से पाटलिपुत्र आया हूँ, वह बहुत ही गोपनीय है। अतः मैं बिना प्रमाण पाए आपसे कोई बात नहीं कह सकता।

हरि०—अच्छी बात है। यदि तुम कुछ नहीं कहना चाहते हो तो चले जाओ।

आगं०—मैं जो समाचार लाया हूँ, वह मेरे लिये जितना आवश्यक है, आपके लिये उसकी अपेक्षा वह कहीं अधिक आवश्यक है।

हरि०—यह मैं कैसे मान लूँ ?

आगं०—यह तो आप सुनते ही मान लेंगे।

हरि०—पर जब तक तुम कहोगे नहीं, तब तक मैं सुनूँगा कैसे ?

आगं०—परंतु मैं बिना प्रमाण पाए कुछ कह भी तो नहीं सकता।

हरि०—सचमुच तुम दूत के काम के लिये उपयुक्त पात्र हो। तुम्हें आनंदरक्षित जी ने भेजा है न ? उसने तुमसे अवश्य कह दिया होगा कि दामोदर शर्मा अपना सारा शरीर काले वस्त्र से ढककर सुरंग के मार्ग से संघाराम में आया करते थे।

अब आगंतुक ने संघस्थविर को साष्टांग प्रणाम करके कहा—प्रभु ! मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। समाचार बहुत ही शुभ है। युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त मर गए और गोविंदगुप्त तथा हर्षगुप्त का कोई समाचार नहीं मिलता। हूण सेना जंगली प्रदेश पर अधिकार करके महाकोशल तक बढ़ आई।

हरि०—क्या तुम्हें स्कंध की मृत्यु का कोई प्रमाण भी मिला है ?

आगं०—यदि कोई प्रमाण न मिलता, तो मैं कान्यकुब्ज से चलकर पाटलिपुत्र तक क्यों आता ?

हरि०—क्या प्रमाण मिला है।

आगंतुक ने अपसे वस्त्रों में से चमड़े की एक पेटी निकाली और उसमें से लोहे के बने शिरस्त्राण का एक ऊपरी टुकड़ा निकालकर हरिबल के हाथ में दे दिया। संघस्थविर ने उसे लेकर बड़े ध्यान से इधर उधर देखा और अंत में हताश होकर पूछा—भला इससे स्कद की मृत्यु का क्या संबंध है।

आगं०—यह युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त का ही शिरस्त्राण है।

हरि०—यह तुमने कैसे जाना।

आगं०—इसका प्रमाण तो शिरस्त्राण में ही है।

हरि०—मुझे तो कुछ भी नहीं दिखलाई दिया।

आगं०—अभी आपने उसे अच्छी तरह नहीं देखा।

हरि०—और कैसे देखता ?

आगं०—शिरस्त्राण में जो पत्र है, उसे आपने देखा ?

हरि०—नहीं।

आगंतुक ने हरिबल के हाथ से शिरस्त्राण लेकर उसमें से एक भोजपत्र निकाला। हरिबल ने वह पत्र हाथ में लेकर बड़ी उत्सुकता से पढ़ा। उसमें लिखा था—"यदि यह तुम्हें युद्धक्षेत्र में मिले और यदि तुम आर्यावर्त्त के निवासी हो, तो इसे पाटलिपुत्र के दक्षिण ओर रोहिताश्व के मार्ग पर वासुदेव के मंदिर में भेज देना।"

पत्र पढ़ चुकने पर आगंतुक से हरिबल ने पूछा—यह किसे मिला था ?

आगंतुक—मुझे।

हरि०—कहाँ ?

आगं०—जंगली प्रदेश में प्रतिष्ठान के दक्षिण निर्जन वन में एक स्तूप के पास।

हरि०—वहाँ तुमने कुछ और भी देखा था ?

आगं०—भीषण युद्ध के सभी चिह्न देखे थे। चारों ओर मृत शरीर पड़े सड़ रहे थे। स्तूप प्रायः आधा जला हुआ था।

हरि०—भगवान की जय हो। इतने दिनों में जाकर अवलोकितेश्वर ने सद्धर्म्म के मार्ग का काँटा दूर किया। स्कंद मर गया, गोविंद भी मर गया, अतः इस समय मैं ही मगध का अधीश्वर हूँ। अच्छा, अब तुम एक और काम कर डालो। शत्रु नहीं रह जाना चाहिए। यह शिरस्त्राण वासुदेव के मंदिर में दे आओ।

आगंतुक प्रणाम करके वहाँ से चला गया और कपोतिक संघाराम से निकलकर वासुदेव के मंदिर की ओर बढ़ा। मंदिर के सामने मठ के अलिंद में बैठे हुए वैष्णव संन्यासी जप कर रहे थे। आगंतुक ने रथ से उतरकर उन्हें प्रणाम किया। जप समाप्त होने पर संन्यासी ने आँखें खोलीं और आगंतुक से पूछा—वत्स! तुम क्या चाहते हो ?

आगंतुक ने बिना कोई उत्तर दिए चुपचाप उनके हाथ में वह टूटा हुआ शिरस्त्राण और पत्र दे दिया। दते ही संन्यासी के प्रशस्त ललाट पर

रेखाएँ पड़ गईं। वे घबराकर बोल उठे—क्या गणना भी मिथ्या हो गई? अभी तो युवराज भट्टारक स्कंदगुप्तदेव की मृत्यु नहीं हो सकती। नारायण! यह कैसा छल है!

कई बार भोजपत्र पर लिखी हुई आज्ञा पढ़कर अंत में संन्यासी अपने आसन पर से उठ खड़े हुए। देवकुल के सामने जूही के वृक्षों के पास अरुणादेवी देवमूर्त्ति पर चढ़ाने के लिये माला बना रही थी। संन्यासी ने बहुत धीरे से उसके पास पहुँचकर सूखे हुए कंठ से कहा—बेटी!

अरुणा ने विस्मित होकर उनकी ओर देखा और पूछा—पिता जी, क्या है?

संन्यासी ने चुपचाप वह शिरस्त्राण और पत्र उसके हाथ में दे दिए। पत्र पढ़ते ही उसका मुँह कमल के समान खिल गया। उसने कहा—पिता जी अब इस दासी की आवश्यकता है; इसीलिये प्रभु ने मुझे स्मरण किया है। वे मुझे पहले ही अनुमति दे गए थे।

संन्यासी ने रुँधे हुए स्वर से कहा—बेटी! सुनो, तुमने मुझसे दीक्षा ली है और छः वर्ष तक तुम मेरे पास रही हो। तुम जानती हो कि मैं तुम्हारा शुभचिंतक हूँ। सहसा मोह में पड़कर कोई काम न कर बैठना। मैं बहुत दिनों से युवराज भट्टारक स्कंदगुप्त की जन्मकुंडली देखकर गणना करता आया हूँ। मैंने समझ लिया है कि अभी उनके मरने में विलंब है। मैंने शिरस्त्राण और पत्र देखा है। परंतु अभी तक नक्षत्रों की गति पर से मेरा विश्वास नहीं उठा है। बेटी, तुम जानती हो कि गणितज्ञ लोग झूठी बात नहीं कहते। युवराज अवश्य ही अभी तक जीवित हैं। तुम मेरी बात मानो, अभी कुछ दिनों तक और ठहरो।

अरुणादेवी ने कुछ मुस्कराकर कहा—पिता जी! मैंने आपके ही मुँह से सुना है कि यह संसार मायामय है। पृथ्वी का भार हटाने के लिये अवतार लेने पर स्वयं नारायण ही इसकी माया में फँस गए थे। पिता जी, वैष्णवी माया ने इस समय आपकी आँखों पर परदा डाल दिया है। अब मैं किसके लिये ठहरूँ और किसकी प्रतीक्षा करूँ? क्या मेरे गर्भ में कोई संतान है, अथवा मेरी गोद में कोई बालक है? वेश्या की कन्या आर्यपट्ट

पर बैठी है, गुप्तकुल की लक्ष्मी पट्टमहादेवी के मृत शरीर के साथ ही साथ प्रासाद की सीमा से निकल गई। अब इस देश में अधिक समय तक रहना ठीक नहीं। फिर किसी दिन कोई और चंद्रसेन—

सं०—बेटी, तुम्हारी जैसी इच्छा हो। मैं इस समय भूल गया था। जाओ, तुमने अधिक दिनों तक विरह नहीं सहा, अब भी न सहो। परंतु फिर भी क्षण भर ठहर जाओ।

इतना कहकर बृद्ध संन्यासी देवकुल के पत्थर से ढके उसी आँगन में बैठकर रेखाएँ खींचने लगे। क्षण भर के उपरांत उन्होंने उठकर फिर कहा—बेटी, तुम क्या करोगी? जो कुछ भाग्य में लिखा होता है, वह कभी मिट नहीं सकता। परंतु मैं फिर तुमसे एक बार कहता हूँ—मेरी बात पर विश्वास करो।

अरुणा—पिता जी! यह सब व्यर्थ है। इस संसार में मेरी केवल एक ही ऐसी इच्छा है जो अभी तक पूरी नहीं हुई। क्या आप कृपा करके इस अभागिनी की वह इच्छा पूरी करेंगे?

संन्यासी—क्या है, कहो।

अरुणा—मठ के उद्यान में आम के वृक्ष के नीचे मैंने अपनी खोई हुई निधि फिर से पाई थी, उसी स्थान पर—

संन्यासी—बेटी, ऐसा ही होगा। परंतु यह तो बतलाओ कि शतद्रु तटवाले जो एक सौ सवार तुम्हारी रक्षा के लिये नियुक्त हैं, उनसे क्या कहोगी।

अरुणा—आप कृपाकर उन्हें बुलवा लीजिए। मैं उन लोगों से बिदा हो लूँ। पिता जी, मेरा एक अनुरोध और है।

संन्यासी—वह क्या?

अरुणा—मेरे हिरन—

इत अरुणा का गला रुँध गया। हिरन के एक बच्चे ने आँगन में आकर अरुणा देवी के हाथ में अपना मुँह छिपा लिया। अरुणा की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

वृद्ध संन्यासी ने धीरे से कहा—बेटी, मैं जब तक जीता रहूँगा, तब तक वासुदेव को भूल जाने पर भी तुम्हारे हिरनों का पालन करूँगा।

तीसरे पहर उसी आम के वृक्ष के नीचे एक बड़ी चिता बनाई गई। मठ में रहनेवाले सब लोग और बहुत से हिरन अरुणा की चिता को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए। अरुणा उसी समय स्नान करके आई थी और सफेद रेशमी वस्त्र पहने थी। आते ही वह चिता की ओर बढ़ी। अपने पालन करनेवाली की विपत्ति समझकर गूँगे हिरन उसे चारों ओर घेरकर खड़े हो गए। अरुणा ने प्रत्येक हिरन को गले लगाकर और चूमकर चिता को स्पर्श किया। उस समय शतद्रु-तटवाले सौ वीरों ने उसको अभिवादन किया। सात बार चिता की प्रदक्षिणा करके पट्टमहादेवी अरुणा गोद में लोहे का शिरस्त्राण लेकर चिता पर जा बैठी। आग जलने लगी। एक दिन इसी आग ने वक्षु और वाह्लीका के उस पार हूणों के गाँव और नगर जलाए थे।

चिता बुझने को थी। वृद्ध वैष्णव संन्यासी पास ही हरियाली में बैठे थे। अरुणा के पाले हुए मृग चिता के चारों ओर खड़े थे। इतने में दूर से घोड़े की टाप सुनाई दी। एक सवार बड़े वेग से देवकुल की ओर आ रहा था। आम के पेड़ के नीचे बुझती हुई चिता का प्रकाश देखकर वह वहीं रुक गया। वृद्ध संन्यासी ने खड़े होकर पूछा—कौन?

आगंतुक ने उत्तर दिया—मैं हर्षगुप्त हूँ। मठस्वामी परमेश्वर परमभट्टारक परममाहेश्वर परमवैष्णव महाराजाधिराज स्कंदगुप्तदेव पाटलिपुत्र आ रहे हैं। मैं पट्टमहादेवी को ले चलने के लिये आया हूँ।

वृद्ध पागलों की तरह दौड़कर चिता के पास जा पहुँचे और दोनों हाथों से चिता की जलती हुई राख उठाकर—कुमार, यह लो पट्टमहादेवी। देखो, इसे मार्ग की धूल में न फेंक देना। पाटलिपुत्र के प्रासाद में ले जाना। जब स्कंदगुप्त आवें, तब उनसे कह देना कि इसे अपने हाथ से गंगाद्वारवाले मार्ग से गंगा में फेंक दें।

नवाँ परिच्छेद

भिखारी सम्राट्

सूर्योदय के समय प्रतिष्ठान के निवासियों ने विस्मित होकर देखा कि यमुना के दक्षिण तट पर से होकर सवारों का एक दल गंगा और यमुना के संगम की ओर बढ़ रहा है। उन दिनों उत्तरापथ के निवासी सदा घबराए रहते थे। गाँव गाँव और नगर नगर में मथुरा की दुर्दशा का समाचार फैल गया था। सब लोग जानते थे कि सम्राट् ने पाटलिपुत्र क्यों छोड़ दिया था। सभी लोगों ने सुन रखा था कि युवती पट्टमहादेवी के कहने से वृद्ध सम्राट् ने स्कंदगुप्त को निकाल दिया; और जिस रात को युवराज कान्यकुब्ज से निकले, उसी रात से साम्राज्य की सेना ने युद्ध करना छोड़ दिया। वे यह भी जानते थे कि सफेद वस्त्रोंवाला एक सवार बहुत से सफेद वस्त्रवाले सैनिकों को लेकर सदा छाया की तरह हूण सेना के पीछे पीछे लगा रहता है। इसीलिये हूण लोग अभी तक अंतर्वेदी को पददलित नहीं कर सके हैं।

सवार लोग गंगा और यमुना के संगम पर पहुँचकर खड़े हो गए। उनमें से तीन व्यक्ति अपने अपने घोड़े पर से उतरकर नाव पर चढ़े। यह देखते ही नगर के निवासी द्वार बंद करके अपनी रक्षा के लिये प्रस्तुत होने लगे। छोटी नाव यमुना पार करके प्रतिष्ठान दुर्ग के नीचे आ लगी। दुर्ग का द्वार बंद देखकर उन तीनों में से एक व्यक्ति ने चिल्लाकर कहा—नगर के निवासियो! हम लोग हूण नहीं हैं। आर्यावर्त के ही निवासी हैं। एक विशेष कार्य के लिये प्रतिष्ठान में आए हैं। द्वार खोलो और हम लोगों को स्थाणुदत्त के पास ले चलो।

उन सवारों को नगर की ओर आते देखकर प्रतिष्ठान नगर के नागरिक और सैनिक अपने अपने अस्त्र शस्त्र आदि लेकर प्राकार पर आ खड़े हुए थे। उनमें से एक सैनिक ने एक नागरिक से कहा--देखो रविकीर्ति, ये

लोग कभी हूण नहीं हैं। हूण लोग कभी इस प्रकार आर्यभाषा का उच्चारण कर ही नहीं सकते।

रवि०—भाई यह कौन सी बात है, वाह्लीक से लेकर मथुरा तक हूणों का राज्य है। हो सकता है कि आर्यावर्त का कोई निवासी हूण सेना में मिल गया हो।

सै०—देखो, रविकीर्ति, तुम प्रतिष्ठान नगर के एक प्रधान नागरिक हो। तुम महानायक स्थाणुदत्त के पास जाकर इन लागों के आने का समाचार पहुँचा आओ। मुझे ध्यान आता है कि इस व्यक्ति को मैंने पहले कहीं देखा है .और बहुत बड़ी भीड़ मे इसे बोलते सुना है। ये लोग शत्रु नहीं, मित्र हैं।

रवि०—भाई, तुम तो इतनी बातें कह गए, पर मेरी समझ में कुछ भी न आया। जब हूण लोग आकर मेरी दूकान जलाने लगेंगे तब तुम मुझे बचाओगे या लंबे लंबे डग भरकर दूर जा खड़े होगे ?

सै०—मैं तुमसे शपथ करके कहता हूँ कि ये लोग हूण नहीं हैं। देखो इस व्यक्ति का कंठस्वर सुनकर सहसा मेरा चित्त बहुत चंचल हो उठा है। ये लोग कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। तुम शीघ्र महानायक के पास जाओ।

रवि०—भाई, तुमने इतने दिनों तक युद्ध किया है। अतः तुमने युद्ध करना ही सीखा है, व्यवहार की बातें तुम कुछ भी नहीं जानते। मैं अभी महानायक के पास नहीं जा सकता। क्यों रे ! कढ़ाई का तेल गरम हो गया ?

इतने में दुर्ग के प्राकार के नीचे तीनों आगंतुक द्वार खुलने में विलंब देखकर अधीर हो गए। जिसने पहले नागरिकों से द्वार खोलने के लिये कहा था, उसीने फिर कहा—भाइयो ! हम लोग हूण नहीं हैं। तुम लोगों ने हथकटे बंधुवर्म्मा का नाम सुना है ? देखो, मेरा दाहिना हाथ कटा हुआ है !

इतना कहकर आगंतुक ने अपने दाहिने हाथ का वर्म्म उतारा। कटा हुआ हाथ देखकर, सैकड़ों सैनिक और नागरिक आनंद के मारे चिल्ला उठे। साथ ही साथ भीषण शब्द करता हुआ प्रतिष्ठान नगर का दक्षिण-

वाला फाटक खुल गया। इस पर रविकीर्ति ने कहा—अरे बाप रे! इन बालकों ने सर्वनाश कर डाला। हाय! हाय! मेरी दुकान लुट गई।

तीनों आगंतुकों ने फाटक में से होकर नगर में प्रवेश किया। सबसे आगे हथकटे बंधुवर्म्मा थे। बीच में सिर से पैर तक वर्म्म से ढका हुआ एक व्यक्ति था और सब के पीछे एक नाटा गोरा युवक। पीछेवाले व्यक्ति को देखकर एक सैनिक बोल उठा—यह क्या—स्वप्न—युवराज—महाराज—भाइयो, इतने दिनों पर हम लोगों के भाग्यदेवता प्रसन्न हुए हैं। देखो! देखो! नंगे सिर और नंगे पैर भिखारी की भाँति आर्य्यावर्त के एकछत्र अधिपति आ रहे हैं।

सैनिक की बात सुनकर सैकड़ों सैनिक और हजारों नागरिक आनंद के मारे चिल्ला उठे। सब लोग प्राकार छोड़कर नीचे उतर आए और फटे पुराने कपड़े पहने नंगे पैर और नंगे सिर युवक के सामने घुटने टेकने लगे। अंतःपुर से स्त्रियाँ निकल आईं और राजमार्ग में भिखारी सम्राट् को प्रणाम करने लगीं। स्कंदगुप्त, बंधुवर्म्मा और चक्रपालित रुककर वहीं खड़े हो गए।

सहसा नागरिक और सैनिक मार्ग छोड़कर अलग खड़े हो गए। स्कंदगुप्त ने देखा कि पके हुए बालोंवाले एक दीर्घाकार वृद्ध एक बड़ा त्रिशूल टेकते हुए चले आ रहे हैं। इतने में वृद्ध की आँखों में जल भर आया। वृद्ध ने पास पहुँचकर त्रिशूल फेंक दिया और तलवार निकालकर अपने पके हुए बालों से स्पर्श कराके अभिवादन किया। धीरे धीरे घुटने टेककर वह वृद्ध फटे पुराने वस्त्रोंवाले युवक के सामने बैठ गए। साथ ही साथ सैकड़ों हजारों सैनिकों, नागरिकों, और कुल महिलाओं ने भी घुटने टेके। भिखारी सम्राट् के पैरों के पास तलवार रखकर वृद्ध धीरे धीरे उठ खड़े हुए। तब तीनों आगंतुकों ने उनके चरण छूए। जयध्वनि और मंगलध्वनि से आकाश गूँज उठा। भिखारी सम्राट् को गले लगाकर वृद्ध ने रुँधे कंठ से कहा—मैं जानता था कि सम्राट् स्कंदगुप्त आवेंगे। मेरा मन कहता था कि समुद्रगुप्त का राज्य इस प्रकार नष्ट नहीं होगा। मैंने सुना है कि सम्राट् कुमारगुप्त इस संसार से चले गए, और गोविंदगुप्त भी चले गए। परंतु

फिर भी मैं जानता था कि आप आवेंगे। इन्हीं हाथों ने एक दिन कुमारगुप्त को बाल्यावस्था में तलवार पकड़ाई थी; अग्निगुप्त को धनुष चलाना सिखलाया था। वे लोग तो चले गए, परंतु यह वृद्ध स्थाणुदत्त अभी तक जीता है। महाराजाधिराज, प्राचीन प्रतिष्ठानपुर का अर्घ्य ग्रहण कीजिए। वृद्ध स्थाणुदत्त अभी तक स्वामिधर्म नहीं भूला है महाराजाधिराज यमुना, सिप्रा और शुभ्रमती के तट पर मैंने गरुड़ध्वज उठाया था। आर्य समुद्रगुप्त चले गए। चंद्रगुप्त चले गए। बालक कुमारगुप्त और गोविंदगुप्त भी चले गए। परंतु यह वृद्ध स्थाणुदत्त भूत काल का साक्षी बनकर अभी तक बैठा है। कोई चिंता नहीं। आप किसी बात का भय न करें। यदि आवश्यकता होगी, तो इस वृद्धावस्था में भी मैं गरुड़ध्वज लेकर चलूँगा। साम्राज्य के काम के लिये मेरे पोते ने आत्मोत्सर्ग किया है। विश्ववर्म्मा के पुत्र की भाँति तनुदत्त ने भी स्वामिधर्म के पालन के लिये अपना दाहिना हाथ कटा दिया। परंतु इससे क्या होता है! लड़के पोते और परपोते दत्त वंश के सभी लोग गुप्त वंश के अन्न से पले हैं। यदि आवश्यकता होगी तो प्रतिष्ठान के अणु और परमाणु तक स्वामी के लिये उत्सर्ग कर दिए जायँगे। समुद्रगुप्त के परपोते द्वितीय चंद्रगुप्त के पोते और कुमारगुप्त के पुत्र का प्रतिष्ठानपुर में स्वागत है। मगध में बौद्ध हरिबल प्रबल है और पंचनद में हूणों का डंका बज रहा है। परंतु फिर भी कोई चिंता नहीं। महाराजाधिराज! आर्यावर्त के निवासी भूले नहीं हैं। देखिए, प्रतिष्ठान की स्त्रियाँ और बालक तक आपके पैरों पर गिर रहे हैं। उन्होंने सुना है कि वासुदेव के अंश से आपका जन्म हुआ है और आप देवताओं और ब्राह्मणों, स्त्रियों और बालकों, तीर्थों और शस्यक्षेत्रों की रक्षा करनेवाले और आर्यावर्त के एक मात्र आधार हैं। प्रतिष्ठानपुर के निवासियों, महाराजाधिराज स्कंदगुप्त आ पहुँचे हैं। अब कोई चिंता की बात नहीं है। अब हूण लोग नहीं आ सकेंगे।

धीरे धीरे आकाश को गुँजा देनेवाली जयध्वनि आरंभ हुई, जिसने अंत में प्राचीन प्रतिष्ठानपुर की पत्थर की दीवारों तक को हिला दिया। सहसा हूणों के डर से छूटकर प्रतिष्ठान के निवासियों ने मारे आनंद के

हँसना और रोना आरंभ किया। पिता अपने पुत्र को, भाई को, और मित्र अपने मित्र को गले से लगाकर अनेक प्रकार की उलटी सीधी बातें करने लगे। सारी प्रतिष्ठानपुरी में बड़ा भारी कोलाहल मच गया। सहसा मालव-राज का दाहिना हाथ ऊपर उठा। तुरंत कोलाहल बंद हो गया। बंधुवर्म्मा ने कहा—प्रतिष्ठान के निवासियों, महाराजाधिराज जो कुछ कहते हैं उसे सुनो।

उस समय नंगे पैर और फटे पुराने वस्त्रोंवाले युवक ने धीरे धीरे कहना आरंभ किया—तात! अभी तक हूण-युद्ध का अंत नहीं हुआ, इसी कारण मैं मर भी नहीं सका। कुल लक्ष्मी को विचलित देखकर मैंने शपथपूर्वक निश्चय किया था कि जब तक शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा, तब तक अपने कुल का गौरव फिर से स्थापित करने के लिये तलवार चलाता रहूँगा। तात! महाबलाधिकृत अग्निगुप्त ने अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये वाह्लीका के तट पर आत्मबलि दे दी? गुप्तवंश के दुर्भाग्य से लाखों मागध सैनिकों ने जन्म भूमि की रक्षा के लिये अपने प्राण दे दिए। परंतु फिर भी कोई चिंता नहीं। महामंत्री दामोदर शर्मा अब तक जीवित हैं। महानायक स्थाणुदत्त अब तक गरुड़ध्वज उठा सकते हैं और पितृव्य महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने भी अभी तक तलवार नहीं रखी है—

वृद्ध स्थाणुदत्त का शरीर काँपने लगा। वे बोल उठे—क्या कहा? गोविंदगुप्त अभी तक जीवित हैं?

स्कंद०--जी हाँ, वे जीवित हैं।

हजारों लाखों मनुष्यों ने महाराजपुत्र का नाम लेकर जयध्वनि की जिससे प्रतिष्ठानपुर काँप उठा। उस कोलाहल को शांत होने में ही प्रायः एक दंड बीत गया। जब सब लोग चुप हुए, तब वृद्ध स्थाणुदत्त ने फिर पूछा--क्या गोविंदगुप्त जीवित हैं? कहाँ हैं? नारायण, तुम अवश्य सत्य हो।

स्कंद०—जी हाँ, वे जीवित हैं। परंतु बहुत घायल हो गए हैं। हम लोग उन्हें यमुना के उस पार पालकी में छोड़ आए हैं।

नए सम्राट् की बात का अंतिम अंश सुनने से पहले ही, प्रतिष्ठानपुर की वृद्धा स्त्रियाँ और बालक सभी महाराजपुत्र के दर्शनों के लिये यमुना की ओर चल पड़े।

संध्या के समय सफेद वस्त्र पहने हुए हजारों सवार प्रतिष्ठानपुर के सामनेवाले मैदान में एकत्र हुए। चार बाहकों ने एक पालकी समेत नगर के दक्षिण फाटक में प्रवेश किया। उनके पीछे पीछे श्रेणियों में समान अंतर पर सफेद वस्त्र वाले बीस सवारों ने भी प्रतिष्ठानपुर में प्रवेश किया। पालकी नगर के मध्य में वासुदेव के मंदिर के सामने आकर रुक गई। उस समय मंदिर के सामने खड़े हुए बारह चारणों ने गीत गाना आरंभ किया। वह गीत इस प्रकार का था--

"विजय के अभिमान में फूले हुए यवनों ने गंधार और उद्यान पर अधिकार किया है। उन्हें कौन निकालेगा? भूलना नहीं, चंद्र-गुप्त जीवित हैं। मागध सेना ने वीरतापूर्वक पंचनद पर अधिकार किया है। वही आर्यावर्त के उद्यान के फूल पत्तों को सुशोभित करेगी। अनेक युगों से मागध सेना उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करती आई है। वह अभी अपने गौरव को नहीं भूली है। देखो, वाह्लीक और कपिशा यवनों के हाथ से निकल आई। चंद्रगुप्त की पुरानी कीर्ति अभी तक नष्ट नहीं हुई।"

"अनेक शताब्दियाँ बीत गईं। मगध कुछ दिनों तक सोया हुआ था। परंतु यह न समझना कि वह अपने आपको भूल गया है। मगध के सिंहासन पर फिर चंद्रगुप्त आए हैं। पवित्र आर्यभूमि से अपवित्र शक लोग निकाल दिए गए हैं। समुद्र से लेकर समुद्र तक और हिमालय से लेकर कुमारिका तक चंद्रगुप्त के पुत्र के गरुड़ध्वज का संमान होता है। देवपुत्र शाही का सिर झुक गया है। मागध सेना फिर उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा कर रही है।"

"हूण लोग आ गए हैं; परंतु इससे क्या होता है? हरी भरी आर्यभूमि पर बहुत दिनों से जंगलियों की दृष्टि है: उत्तरापथ में यवन आए थे, शक आये थे; परंतु इस समय वे लोग कहाँ हैं? समय के भीषण परिवर्तन से

शकों और यौवनों का राज्य रसातल को चला गया; परंतु आर्यभूमि फिर भी आर्यभूमि ही है।"

"आर्यावर्त के निवासियों, व्यर्थ की चिंताएँ छोड़ दो। आर्यावर्त की अँधेरी रात बुरे स्वप्न की भाँति बीत गई। सामने सुंदर उजाला पक्ष है। फिर मागध सेना के पैरों के भार से उद्यान और कपिशा की भूमि काँप उठेगी। आर्य रक्त से रँगी हुई वाह्लीका नदी के तट पर मागधों की हड्डियों और मृत शरीरों से बने हुए प्राकार पर मागध सैनिक फिर खड़े होकर उत्तरापथ के प्रवेश-द्वार की रक्षा करेंगे।"

"देखो, सामने असंख्य स्त्रियों और पुरुषों के रक्षक देवताओं और ब्राह्मणों के प्रतिष्ठाता उपस्थित हैं। विचलित कुललक्ष्मी को रोक रखने के लिये कौन भूमि पर सोया था? शतद्रुतट पर केवल दस हजार सैनिक लेकर किसने एक लाख सैनिकों को रोका था? आर्यावर्त के निवासियों, कृतज्ञ होकर चंद्रगुप्त के पौत्र को अभिवादन करो।"

संगीत बंद हो गया। हजारों लाखों कंठों से निकली हुई जयध्वनि से प्राचीन प्रतिष्ठानपुर की पत्थर की दीवारें काँप उठीं।

दसवाँ परिच्छेद

पाटलिपुत्र

विशाल पाटलिपुत्र नगर के बड़े बड़े राजमार्गों में आज बहुत भीड़ है। परमेश्वर परमवैष्णव परममाहेश्वर महाराजाधिराज स्कंदगुप्त देव नगर में आए हैं। पाटलिपुत्र नगर के पुरुष और स्त्रियाँ मार्गों में आनंदपूर्वक गाते फिरते हैं। पट्टमहादेवी अनंता और महाराजपुत्र पुरुगुप्त साधारण चोरों की भाँति पकड़कर रखे गए हैं। कपोतिक संघाराम के सामने भीड़ में चारों ओर घूम घूमकर सफेद वस्त्र पहने हुए गोरे रंग का एक व्यक्ति कहता फिरता है कि

मगध के पुरुषों और स्त्रियों, उत्सव करो। आज केवल महाराजाधिराज का अभिषेक ही नहीं है, स्कंगुप्तदेव का विवाह भी है। यह उत्सव अधिक दिनों तक नहीं होगा। महाराजाधिराज फिर वाह्लीका की ओर जायँगे और मैं गौड़ चला जाऊँगा। उपनगर के उद्यानों के फूलवाले वृक्ष सूख गए हैं। बहुत दिनों के आलते से रँगे हुए कोमल पैर संगमरमर की सीढ़ियों से नहीं लगे हैं।

नागरिक और सैनिक लोग मार्ग छोड़कर हट जाते थे। दो चार वृद्ध सैनिक संमानपूर्वक अभिवादन करते थे। परंतु युवक उन लोगों की ओर नहीं देखता था और आपसे आप कहता जाता था कि उत्सव करो, उत्सव करो। परंतु गंगाद्वार की ओर अवश्य जाना, आज गंगाद्वार पर सम्राट् का विवाह है। बड़े यत्न से कुमार हर्षगुप्त पट्टमहादेवी को नगर में ले आए हैं। गंगाद्वार के सूखे बालू के सिंहासन पर विचलित कुललक्ष्मी फिर से स्थापित की जायगी। नागरिको, आज भोजन करना भूल जाना, विलास करना भूल जाना, परंतु गंगा-द्वार की ओर जाना न भूलना।

देखते देखते असंख्य स्त्रियाँ और पुरुष प्रासाद के गंगाद्वार के सामने-वाले बड़े बलुए मैदान में एकत्र हो गए। नगर और प्रासाद के फाटकों तथा मंदिरों में दूसरे पहर का मंगलवाद्य बजने लगा। उस समय भीषण शब्द करते हुए गंगाद्वार के लोहे के किवाड़ खुल गए। नंगे सिर और नंगे पैर सफेद वस्त्र पहने हुए कुमार हर्षगुप्त सिर पर सोने का एक पात्र रखे हुए फाटक से निकले। उनके पीछे महाराजाधिराज स्कंदगुप्त, महाराजपुत्र गोविंदगुप्त महामंत्री शर्म्मा, वृद्ध महादंडनायक रामगुप्त, पुराने महाप्रतीहार कृष्णगुप्त, युवराज भट्टारकपादीय महानायक जयधवल, बंधुर्म्मा, चक्रपालित आदि साम्राज्य के सभी प्रतिष्ठित और प्रधान पुरुष गंगा तट पर आए। हेमंत में गंगा की क्षीण रेखा जिस स्थान पर उस बलुए से प्रात से अठखेलियाँ करती थी, हर्षगुप्त उसी स्थान पर आ खड़े हुए। स्कंदगुप्त ने सूखे हुए कंठ से पूछा—भाई बतलाओ, क्या कहते हो ?

हर्षगुप्त ने कहा—महाराजाधिराज ? पवित्र प्रतिष्ठानपुर में गंगा और यमुना के संगम पर आपने मुझे आज्ञा दी थी कि जिस दिन आप पाटलिपुत्र

में पदार्पण करें, उसी दिन मैं साम्राज्य की पट्टमहादेवी को लेकर पुरद्वार पर उपस्थित रहूँ। महाराजाधिराज ! परमेश्वरी, परमवैष्णवी, परममातेश्वरी परमभट्टारिका पट्टमहादेवी आपके सामने उपस्थित हैं।

इतना कहकर कुमार हर्षगुप्त ने सोने का वह पात्र महाराजाधिराज के पैरों के पास रख दिया। सम्राट् के पैर उनके शरीर का भार न सह सके। वे धीरे धीरे गंगा तट के उसी तपे हुए बालू पर बैठ गए। गोविंदगुप्त ने मुँह फेर लिया और दामोदर शर्मा तथा रामगुप्त आँसू पोछने लगे। उस समय हर्षगुप्त ने सोने का पात्र खोलकर कहा—आर्य, बहुत दिनों के उपरांत आज पट्टमहादेवी नगर में आई हैं। कृपाकर अपने पैरों से उन्हें छू दीजिए।

सूखे हुए नेत्रों और काँपते हुए हाथ से उस पात्र में से मुट्ठी भर राख लेकर स्कंदगुप्त ने कहा—बस यही है न ?

उस समय एक और गोरा नाटा युवक दूर खड़ा हुआ व्यर्थ की और अनर्गल बातें कर रहा था। वह तुरंत सम्राट् के पास आ पहुँचा और कहने लगा—महाराजाधिराज, आप न रोएँ। वह क्रोध करेगी। वह मुझसे कह गई है कि मैं फिर आऊँगी। वह बिना मुझे देखे नहीं मर सकेगी। आपको भी तो वह यही कह गई है न ?

अब तक स्कंदगुप्त बड़ी कठिनता से अपने आपको रोके हुए थे; परंतु अब उनसे न रहा गया। वे बैठे बैठे उठ खड़े हुए और दोनों हाथों से उस युवक को गले से लगाकर बोले—नहीं भानु, वह तो मुझसे यह बात नहीं कह गई। देखो, यही वह है। प्रासाद की, उद्यान की, अंतःपुर की यही अरुणा है। जिसपर माता का इतना अधिक प्रेम था, वह यही अरुणा है।

पागल भानुमित्र ने सहसा सम्राट् के कलेजे पर हाथ रखकर कहा—महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं ? देखिए इस राख से धीरे धीरे अंग बन रहे हैं। महाराज, महाराजपुत्र, देखिए यह मुट्ठी भर राख धीरे धीरे पट्टमहादेवी का रूप धारण कर रही है। आप जानते हैं कि यह क्या कह रही है ? कुछ सुनाई पड़ता है ? सुनिए—सुनिए—यह भस्म नहीं है। परमभट्टारिका पट्टमहादेवी भी नहीं है। यह कौन है—यह कौन है ? मैं तुम्हें पहचानता

हूँ । अंतःपुर में ध्रुवस्वामिनी के आवास में तुम्हारी संगमरमर की बनी मूर्ति रखी है । तुम कमलदल पर बैठनेवाली हो; तुम विमुख नहीं हुई हो । अच्छा, अब मैं फिर वाल्हीका तट पर जाऊँगा और फिर हूणों के गाँव तथा नगर नष्ट करूँगा ।

वृद्ध महामंत्री दामोदर शर्मा ने धीरे धीरे सम्राट् के पास पहुँचकर कहा—महाराजाधिराज, मैं बुड्ढा हो गया हूँ । अपने अभाग्य के कारण मैंने बहुत कुछ देखा है । रूपलालसा के कारण वृद्ध कुमारगुप्त का जो परिणाम हुआ वह मैं अब फिर नहीं देखना चाहता । यद्यपि यह कष्ट सहा नहीं जाता, परंतु फिर भी जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे कीजिए । इस भस्म को गंगा-जल में प्रवाह कीजिए ।

पागल भानुमित्र ने सहसा दोनों हाथों से सम्राट् को पकड़कर कहा—नहीं, नहीं, ठहर जाइए । देखिए, वह क्या कहता है । महामंत्री जी ! क्या आप सुन नहीं रहे हैं ? सुनिए—सुनिए—जितने दिनों तक इन बालों पर सोने का मुकुट रहेगा, उतने दिनों तक माता लक्ष्मी अचल रहेंगी । सुनिए—माता क्या कहती हैं ? बस अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता । अब कुछ न कहना ।

घृणा और लज्जा के मारे पागल भानुमित्र ने मुँह फेर लिया । सहसा महाराजपुत्र के रोएँ खड़े हो गए, उन्होंने बहुत दुखी होकर पूछा—भानु ! क्या हुआ ?

भानु०—महाराजपुत्र ! आप तो उस समय तक जीवित ही नहीं रहेंगे । आप इन सब बातों को क्या समझेंगे ? माता ! क्या आज तुम यही कहने आई थीं ? जाओ, लौट जाओ । तुम जहाँ से आई हो, वहीं लौट जाओ । अब यहाँ न आना । जाओ हटो ।

गोविंदगुप्त ने फिर पूछा—भानु ! तुम यह क्या कह रहे हो ?

भानु०—आप सुनकर क्या करेंगे ? विधाता आप पर बहुत प्रसन्न हैं । अब आप पर किसी प्रकार का कलंक न लगेगा । छिः छिः, क्या इसी का नाम विचार है ? क्या भाग्य ने इसी लिये इतने दिनों तक दुर्भेद्य कवच की भाँति मेरी रक्षा की थी ? महाराजाधिराज ! यह भस्म जल में फेंक दीजिए ।

स्कंदगुप्त की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उन्होंने रोते रोते दोनों हाथों से सोने का वह पात्र उठाया और धीरे धीरे गंगा में उतरे। बहुत धीरे से वह भस्म उन्होंने जल में बहा दिया। दूर खड़े हुए पाटलिपुत्र के सैकड़ों हजारों निवासी हाहाकार करने लगे। उस समय पागल भानुमित्र ने गरजकर कहा—बस, पहला अंक समाप्त हो गया। अब परदा गिरेगा। वाह्लीका में वृद्ध अग्निगुप्त प्रतीक्षा कर रहे हैं! हूणों के रक्त से उनका तर्पण होगा।

गंगा-जल में सोने का वह पात्र फेंककर सम्राट् फिर धीरे धीरे किनारे पर आ खड़े हुए और भानुमित्र से कहने लगे—भानु, वाह्लीका के तट पर बहुतों का तर्पण होगा। कृष्णगुप्त कहाँ हैं?

बंधुवर्म्मा जाकर महाप्रतीहार को बुला लाए। वृद्ध महाप्रतीहार ने आकर नए सम्राट् को अभिवादन किया। स्कंदगुप्त ने उनसे कहा—पितृव्य! अब वाह्लीका तट पर चलना होगा। मागध सेना फिर उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करेगी। अब की बार मैं पाटलिपुत्र के निवासियों से कुछ बातचीत करना चाहता हूँ?

कृष्णगुप्त ने फिर अभिवादन करके कहा—जो आज्ञा प्रभु!

दंडधरों के बुलाने पर पाटलिपुत्र के हजारों नागरिक वहीं चले आए और चारों ओर से सम्राट् को घेर कर खड़े हो गए। उस समय स्कंदगुप्त ने कहना आरंभ किया—भाइयो! तुम सब लोग मुझसे स्नेह करते हो! दुरवस्था के समय भी तुम लोगों ने मुझे नहीं भुलाया है। इस बात का प्रमाण मुझे अनेक बार और अनेक प्रकार से मिला है। पूज्यपाद प्रथम चंद्रगुप्त ने प्राचीन पाटलिपुत्र नगर और पवित्र मगध-भूमि को शकों के हाथ से छुड़ाकर जो साम्राज्य स्थापित किया था, आज उसपर बड़ी भारी विपत्ति आई है। पवित्र पितृभूमि के प्रवेशद्वार की रक्षा करना मगध-वासियों का परम कर्तव्य है। हजारों वर्षों से माध सेना वाह्लीका और वक्षु के तट पर उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करती आई है। हम लोग क्षण भर के लिये अपना अपना कर्तव्य भूल गए थे—

इतने में भीड़ में से एक वृद्ध नागरिक बोल उठा—महाराज! आप पाटलिपुत्र में ऐसी बातें न कहें। यदि आप अपना कर्तव्य भूल गए होते, तो आज नगरहार और पुरुषपुर की भाँति यह सुंदर पाटलिपुत्र नगर भी श्मशान बन गया होता।

क्षण भर के लिये सम्राट् के होठों पर कुछ मुस्कराहट दिखलाई दी; परंतु उन्होंने फिर वही गंभीर भाव धारण करके कहना आरंभ किया—भाइयों! इसी कारण आज पवित्र आर्यभूमि को जंगली लोग पददलित कर रहे हैं। कपिशा, गंधार, उद्यान और पंचनद मरुभूमि में परिणत हो गए हैं। भाइयो, क्या अब तुम लोग इसी प्रकार सोते रहोगे? क्या कपिशा से लेकर मथुरा तक की आर्यभूमि इसी प्रकार हूणों के भार से काँपती रहेगी? क्या आर्य स्त्रियाँ अब हूणों की दासियाँ बनेंगी?

बादल की गरज की भाँति जयध्वनि सुनाई दी। समुद्र की तरंगों की भाँति भीड़ खड़बड़ा गई। इस कोलाहल के शांत होने में प्रायः आधा दंड लग गया। जब सब लोग चुप हो गए, तब सम्राट् ने फिर कहना आरंभ किया—भाइयों, मैं यही उत्तर पाने के लिये पाटलिपुत्र आया था। अभी तक महाराज गोविंदगुप्त, महामंत्री दामोदर शर्म्मा और हथकटे बंधुवर्म्मा सभी जीवित हैं। शीघ्र ही गरुड़ध्वज वक्षु तट के पर्वतों की चोटी पर दिखाई देने लगेगा—

इतने में भीड़ में से एक व्यक्ति बोल उठा—जिन लोगों का देश है, वे ही क्यों न उसकी रक्षा करें? यदि वे लोग रक्षा न कर सकते हों तो मगध वाले क्यों उनके लिये मरने जायँ?

विस्मित होकर स्कंदगुप्त ने वक्ता की ओर देखा, परंतु वे उसे देख नहीं सके। उन्होंने ठंढी सांस लेकर कहा—भाई, यह बात मागधवासी के लिये उपयुक्त नहीं है। जो लोग अपनी रक्षा नहीं कर सकते, मगधवाले उनकी रक्षा करते हैं। इसी कारण आज मगध देश आर्यावर्त्त में सबसे बढ़कर है। जो लोग आर्यावर्त्त के प्रवेशद्वार की रक्षा करते हैं, पुरानी प्रथानुसार भारत का साम्राज्य उन्हीं का होता है।

भीड़ में से फिर वही व्यक्ति बोल उठा।—हम लोग साम्राज्य को लेकर क्या करेंगे ? व्यर्थ युद्ध में हजारों मागध सैनिकों के प्राण नष्ट करने से क्या लाभ : जब शत्रु लोग मगध में आवेंगे, तब हम लोग उनसे समझ लेंगे।

सम्राट् ने बहुत ही दुखी होकर कहा—भाई जान पड़ता है कि तुम मगध के रहनेवाले नहीं हो। आज सारा आर्यावर्त मगध का मुँह देख रहा है। मनुष्यों का जीवन मागध सैनिकों के बाहुबल पर निर्भर करता है। क्या आज मगधवासी चुपचाप बैठे रह सकते हैं ? जान पड़ता कि तुम्हारा शरीर मागध माता का स्तनपान करके पुष्ट नहीं हुआ है। यदि ऐसा होता तो ऐसी बात तुम्हारे मुँह से कभी न निकलती। हजारों वर्षों से मगधवासी उत्तरापथ की रक्षा करते आए हैं। कुछ समय के लिये मगध सो गया था। इसी कारण आज चारो ओर असहाय मनुष्यों का रोना चिल्लाना सुनाई पड़ता है। क्या स्त्रियों और बालकों, देवताओं और ब्राह्मणों की मर्मभेदी पुकार तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचती ? क्या अपमानित आर्य स्त्रियों और सिंहासन से उतारे हुए आर्य देवताओं की बातें तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँचती ? प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँव के दुखी पुरुष और स्त्रियाँ मगध का नाम सुनते ही संतुष्ट हो जाते हैं और उन्हें आशा बँध जाती है। तुम्हारे पूर्वजों ने बड़े कष्ट से जो कीर्ति प्राप्त की थी, क्या उसे तुम क्षण भर के सुख के लिये कलंकित कर दोगे ? क्या अब मागध सेना उत्तरा के प्रवेशद्वार की रक्षा नहीं करेगी। क्या अब फिर वक्षु और वाह्लीका के तट पर गरुड़ध्वज नहीं दिखलाई देगा ? भाइयों, भली भाँति समझ बूझ लो। तुम्हारे खुले हुए घर में चोर और डाकू घुसे हुए हैं। मुक्तद्वार आर्यावर्त जंगलियों का सिंहासन हो रहा है। यह न समझना कि यदि तुम लोग अपना कर्त्तव्य भूलकर इस छोटे से मगध देश में चुपचाप बैठे रहोगे, तो हूणों के आक्रमण से बच जाओगे। यह न समझना कि तुम्हारा यह प्यारा पाटलिपुत्र नगर इसी प्रकार सुंदर बना रहेगा। अपना कर्तव्य भूल न जाना। यदि कर्तव्य भूल जाओगे, तो एक दिन वह आवेगा, जब कि तुम्हें दूर खड़े खड़े पाटलिपुत्र की राख की ढेर देखकर ठंडी सास लेनी पड़ेगी।

महामंत्री जी बात भूल न जाना। उन्होंने कहा है कि जिसने त्याग करना सीखा है, जिसने अपने देश और अपने धर्म की रक्षा के लिये हँसते हुए मरना सीखा है, देश उसी का है, राज्य उसी का है और धर्म भी उसी का है।

सब लोग यह बात सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। जयध्वनि से आकाश फटने लगा और पृथ्वी काँपने लगी। उसी अवसर पर स्कंदगुप्त की छाती ताककर किसी ने उन पर एक भाला फेंका। वृद्ध महाप्रतीहार ने यह देख लिया और वे तुरंत दौड़कर स्कंदगुप्त के सामने जा खड़े हुए। भाला उनकी छाती में से होता हुआ पीठ की ओर निकल गया और उनके रक्त से सम्राट् के उज्वल वस्त्र रँग गए। सम्राट् ने दोनों हाथों से कृष्णगुप्त के गिरते हुए शरीर को पकड़ लिया। उस समय भी वृद्ध कृष्णगुप्त के होठो पर मुस्कराहट दिखाई दे रही थी। उन्होंने मरते मरते कहा—नारायण—स्वामिधर्म—अंतिम दिन—स्मरण रखिएगा—वासुदेव—

वृद्ध महाप्रतीहार का मृत शरीर वहीं बालू में रखकर सम्राट् ने अपनी छाती खोल दी। उनके सिर के बाल प्रभामंडल की भाँति मुँह के चारो ओर लहराने लगे। उन्होंने कहा—भाइयो! मगध और आर्यभूमि को देखते हुए यह स्कंदगुप्त बहुत ही तुच्छ है। यदि तुम उसका रक्त पीकर ही तृप्त हो, यदि तुम अपना कर्तव्य भूल न जाओ, यदि आर्यभूमि के लाखों असहाय पुरुषों और स्त्रियों पर कृपा करना चाहते हो तो मुझ पर दूसरा भाला फेंको; और नहीं तो मुझको ही अनुमति दो। चंद्रधर के पुत्र की भाँति मै भी आत्मबलि देकर अपने देशवासियों की कामना पूरी करूँ। क्षण भर पहले मैं गंगाजी में जिस स्थान पर उनकी राख बहाकर आया हूँ, वहीं मेरा नश्वर शरीर भी फेंक देना।

इतना सुनते ही पाटिलपुत्र के हजारों नागरिक उसी बालू पर सम्राट् को साष्टांग दंडवत् करने लगे। उस समय सम्राट् की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने एक बार आकाश की ओर देखा और कहना आरंभ किया—भाइयों, भाई का जो कुछ काम हैं, वही करो। मुझ पर दूसरा भाला फेंको मैंने यह शरीर पितृभूमि की सेवा के लिये उत्सर्ग कर दिया है। मेरा

शरीर पितृभूमि के काम आवे। मैं मागध हूँ, मगधवासियों की इच्छा तभी पूरी होगी, जब मगध भूमि की प्यास मेरा रक्त बहाकर बुझाओगे। परंतु आर्यभूमि की रक्षा करो उससे असंख्य सहाय स्त्रियों और पुरुषों की रक्षा होगी।

हजारों नागरिक उसी प्रकार भूमि पर पड़े रहे, परंतु किसी ने दूसरा भाला नहीं फेंका। सम्राट् ने ठंढी साँस लेकर कहा—भाइयो, तो क्या मैं समझ लूँ कि आप लोगों ने मेरी प्रार्थना मान ली?

सहसा गंगाद्वार के पास कोई आनंद के मारे चिल्ला उठा। साथ ही किसी के रोने चिल्लाने का शब्द भी सुनाई दिया। सब लोगों ने देखा कि गौड़ीय महाबलाधिकृत पागल भानुमित्र शीघ्रतापूर्वक छद्मवेशी संघस्थविर हरिबल को तलवार से काटकर टुकड़े टुकड़े कर रहे हैं। फिर जयध्वनि से आकाश गूँज उठा।

उस समय भी मगध में प्राण थे।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

व्रत

दूसरे दिन प्रातःकाल पाटलिपुत्र नगर के पुराने और कुछ उजड़े हुए सभामंडप में सहसा बड़ी भीड़ हो गई। साधारण और उच्च कुल के सभी नागरिक अपनी अपनी मर्यादा भूलकर अलिंदों और मंदिरों के आँगन में बैठ गए। प्रासाद के तीनों फाटकों के बाहर के मैदानों में हजारों पैदल और सवार श्रेणी बाँधकर खड़े हो गए। अभी तक आर्य्यपट्ट की वेदी पर कोई दिखलाई नहीं देता था। प्रासाद के फाटकों पर पहले पहर के मंगलवाद्य बजने लगे। ज्यों ही मंगलवाद्य समाप्त हुए, त्यों ही मंडप के बाहर लाखों सैनिकों और नागरिकों ने जयध्वनि की, जिसे सुनते ही मंडप

में बैठे हुए सब लोग उठ खड़े हुए। सम्राट् स्कंदगुप्त ने वृद्ध महामंत्री दामोदर शर्म्मा के साथ प्रवेश किया। उनके पीछे वृद्ध जयधवल आदि साम्राज्य के प्रधान महानायक लोग मंडप में आए और आर्य्यपट्ट को घेरकर खड़े हो गए। उन लोगों में से बारह प्रधान महाभिषेक की सामग्री लेकर आए थे। जयधवल के हाथ में मोतियों का छत्र, बंधुवर्म्मा के हाथ में इतिहास प्रसिद्ध सोने का गरुड़ध्वज, चक्रपालित के हाथ में चँवर, हरिगुप्त के हाथ में टूटी हुई तलवार, वृद्ध रामगुप्त के हाथ में महामुद्रा, कुमारगुप्त के हाथ में पादुका, स्थाणुदत्त के हाथ में शूल, तनुदत्त के हाथ में चर्म, जयधवल के पुत्र वीरधवल के हाथ में गदा, दामोदर शर्म्मा के हाथ में माला, भानुमित्र के हाथ में चक्र और नागदत्त के हाथ में शंख था। जब बारहो प्रधान आर्य्यपट्ट को घेरकर खड़े हो गए तब महापुरोहित पुंडरीक शर्म्मा ने स्कंदगुप्त को सिंहासन पर बैठाकर दामोदर शर्म्मा की ओर देखा। महामंत्री के संकेत करने पर एक दंडधर ने आर्यपट्ट के पीछे का परदा उठाया और सोने के पात्र में सैकड़ों राजाओं के मुकुट लिए हुए महाराजपुत्र गोविंदगुप्त ने सभामंडप में प्रवेश किया। उन्हें देखते ही सब लोग उठ खड़े हुए। भीषण जयध्वनि से प्राचीन प्रासाद की दीवारें तक हिल गईं। महाराजपुत्र धीरे धीरे आर्य्यपट्ट की ओर बढ़े।

वृद्ध महापुरोहित ने यथारीति अभिषेक का कार्य्य संपन्न किया। उसके समाप्त हो जाने पर दामोदर शर्म्मा ने गोविंदगुप्त से कहा—इस समय गुप्तवंश में रामगुप्त ही सब से बड़े हैं। अतः प्रथम चंद्रगुप्त का मुकुट उन्हीं को दे दीजिए।

रामगुप्त ने हाथ जोड़कर कहा—पितृव्य ! एक बार आपकी आज्ञा से इसी आर्य्यपट्ट पर मैंने प्रथम चंद्रगुप्त का मुकुट उन्हीं के एक और वंशधर को पहनाया था। परंतु जान पड़ता है कि लक्ष्मी उससे प्रसन्न नहीं हुईं और विचलित हो गईं। माता पट्टमहादेवी के रक्त से श्यामा मंदिर भर गया; आर्य्यपट्ट कलुषित हो गया; इतना बड़ा साम्राज्य नष्ट हो गया और आर्यावर्त्त में लाखों मागध सैनिकों के रक्त की नदियाँ बहने लगीं। आज फिर अभिषेक का दिन है। इसी कारण मैं इस वृद्धावस्था में भी यहाँ

आया हूँ। नहीं तो जिन आँखों ने पवित्र आर्य्यपट्ट पर इंद्रलेखा की कन्या को देखा था, वे आँखें फिर आर्यपट्ट के दर्शन न करतीं। आप गुप्तकुल के सबसे बड़े और पुराने हितैषी हैं। आप मुझे कोई ऐसी आज्ञा न दीजिए जिससे साम्राज्य, धर्म्म अथवा नए साम्राट् का अमंगल हो।

दामोदर शर्म्मा ने कुछ समय तक सिर झुकाकर सोचने के उपरांत कहा—अच्छा, ऐसा ही सही, जिसमें पीछे से किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि गुप्तकुल के पुराने सेवक दामोदर ने ही अपनी इच्छा से अपने स्वामी के वंश का अमंगल किया था। महाराजपुत्र! आप गुप्तवंश की प्राचीन रीति जानते हैं। रामगुप्त के उपरांत समुद्रगुप्त के वंश में आप ही अवस्था में सब से बड़े हैं। अतः आप ही चंद्रगुप्त का मुकुट नए सम्राट् को पहनाइए।

महाराजपुत्र काँपते हुए पैरों से आर्य्यपट्ट पर चढ़े। सब लोग फिर उठकर खड़े हो गए। गोविंदगुप्त ने काँपते हुए हाथों से स्कंदगुप्त को मुकुट पहनाया। उस समय सम्राट् की आँखों से दो बूँद आँसू निकल पड़े। आशीर्वाद समाप्त होने पर स्कंदगुप्त सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए और उन्होंने महाराजपुत्र के चरण छूए। इसपर महाराजपुत्र ने उन्हें उठाकर गले लगा लिया। फिर सब लोगों ने जयध्वनि की। सहसा वह भारी मुकुट सम्राट् के सिर से खिसक गया जिसे बंधुवर्म्मा ने झपटकर पकड़ लिया। यह देखकर दामोदर शर्म्मा ने कहा--मालवराज! सदा इसी प्रकार गुप्तकुल के मुकुट की रक्षा कीजिएगा।

बंधुवर्म्मा ने बाएँ हाथ से अभिवादन करके कहा--महामंत्री जी! जब तक जयवर्म्मा का वंश रहेगा, तब तक मालव स्वामिधर्म्म नहीं भूलेंगे। महाराजाधिराज! मंडप के बाहर हजारों सैनिक और लाखों नागरिक इस समय आपके दर्शनों के लिये खड़े हैं यदि आज्ञा हो तो उन्हें बुलवा लिया जाय।

बीच में ही गोविंदगुप्त ने रुँधे हुआ कंठ से कहा—भाई, ठहर जाओ। आज मैं अपने व्रत का उद्यापन करूँगा। आशा है, प्रत्येक क्षत्रिय मेरी सहायता करेगा। आज से तीन वर्ष पहले मैं अपने पिता जी को दुखी करके और

गुप्तकुल को कलंक लगाकर पाटलिपुत्र छोड़ना चाहता था। उस समय परमेश्वर ने मेरी रक्षा की थी। उस समय मैंने कृतज्ञ होकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं पाटलिपुत्र छोड़ दूँगा और मगध की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर दूँगा। जिस दिन मैंने इंद्रलेखा की कन्या को आर्य्यपट्ट पर बैठे देखा था, उसी दिन प्रतिज्ञा की थी कि अपने बड़े भाई के पाप का प्रयश्चित्त अपना रक्त बहा कर करूँगा। परंतु इतने दिनों तक मुझे अवसर नहीं मिला था। साम्राज्य बिना केवट की नाव के समान हूण युद्ध के समुद्र में पड़ा हुआ था। परंतु आज अवसर मिला है। महाराजाधिराज ! आप जानते हैं कि आप मुझे हर्ष से बढ़कर प्रिय हैं आज आप आर्य्यपट्ट पर बैठे हैं। साम्राज्य का शासन कीजिए अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिए, क्षणिक शोक और दुःख भूल जाइए और आर्य्यपट्ट पर नई महादेवी को बैठाइए। मैं महाराजाधिराज कुमारगुप्त के पापों का प्रायश्चित्त करूँगा, जिसमें पीछे से लोग उनका स्मरण करके नाक भौं न सिकोड़ें। आप हर्ष का ध्यान रखिएगा। वह अभी .बालक है; पुत्र के समान उसका पालन कीजिएगा। गोविंदगुप्त का पुत्र कभी कृतघ्न नहीं होगा।

जितने लोग वहाँ एकत्र थे, वे सब चंचल हो उठे। परंतु किसी को जयध्वनि करने का साहस न हुआ। स्कंदगुप्त आर्यपट्ट छोड़कर नीचे उतर आए और अपना मुकुट महाराजपुत्र के पैरों के पास रखकर बोले—तात ! आपने मेरे सिर पर जो भारी बोझ रखा है, मैं यथासाध्य उसे उठाने का प्रयत्न करूँगा। मैं सदा सिर झुकाकर आपकी आज्ञाओं का पालन करता आ रहा हूँ; और जब तक जीवित रहूँगा; तब तक इसी प्रकार पालन करता रहूँगा। परंतु अभी मैं जिसे गंगा-जल में विसर्जित कर आया हूँ उसे इस जन्म में न भूल सकूँगा। पितृव्य ! बहुत दिनों पहले वासुदेव के मंदिर में मेरा विवाह हो चुका है। अब मेरे लिये दूसरी बार विवाह करना असंभव है। परंतु फिर भी आर्यपट्ट सूना नहीं रहेगा। मैं अभी उस पर नई पट्टमहादेवी को बैठाऊँगा। उसे देखकर आप विस्मित न हो।

इतना कहकर नए सम्राट् शीघ्रता से आर्यपट्ट पर जा चढ़े। शतद्रुतटवाली टूटी हुई तलवार कोष से निकलकर बाल सूर्य की किरणों में चमकने लगी

और स्कंदगुप्त ने वही तलवार अपने पासवाले सिंहासन पर रख दी, और कहा—भाईयो ! मैंने आर्यपट्ट पर नई महादेवी को बैठा दिया है। वह निष्कलंक और निर्मल है। एक दिन शतद्रु-युद्ध के स्मृति-चिह्न के रूप में मैंने यह तलवार चंद्रधर के पुत्र महावीर देवधर को दी थी। भाइयो ! साम्राज्य में स्त्रियों की आवश्कता नहीं है। आवश्यता है केवल पुरुषों और तलवारों की। हम लोगों की पितृभूमि जंगलियों के कलंकित पैरों के स्पर्श से पीड़ित हो रही है। लाखों असहाय स्त्रियाँ और पुरुष अब भी मगध की ओर देख रहे हैं। यदि इस समय भी आप लोग चाहें, तो यह मगध उत्तरापथ की रक्षा कर सकता है। शरीर में अभी तक प्राण हैं। अभी तक औषध देने का समय है।

सब लोग उच्च स्वर से गरज उठे। मंडप के बाहर के सैनिकों और नागरिकों ने भी उनका अनुकरण किया। उस गरज से प्राचीन पाटलिपुत्र की दीवारें काँप उठीं। सब लोगों के शांत होने में प्रायः एक दंड लग गया। आर्य्यपट्ट के सामने खड़े होकर स्कंगुप्त ने फिर कहा—पितृव्य ! यह मुकुट गृहस्थ का है मेरा नहीं। मैं इस समय जो व्रत करूँगा, यदि उसका उद्यापन करके मैं लौट आऊँ, तो फिर मैं यह मुकुट पहनूँगा। और नहीं तो गुप्तकुल में पुत्रों का अभाव नहीं है। तात ! जब तक लहू की नदियाँ नहीं बहेगी. तब तक गुप्तकुल का भारी कलंक नहीं मिटेगा। न आर्य्यावर्त की रक्षा होगी और न असहाय स्त्रियों और पुरुषों का रोना चिल्लाना थमेगा। सब को एक न एक दिन मरना होगा और पहले किए हुए कामों का लेखा देना पड़ेगा। अब आप लोग मुझे यह बतलायें कि भूत और भविष्य की आशा छोड़कर, घर लौटने की बात भूलकर और परिवार के लोगों की ममता छोड़कर मगध के पुराने कर्तव्य का पालन करने के लिये मेरे साथ कौन कौन चलेगा। परंतु इतना स्मरण रखें कि यदि मेरे साथ कोई न जायगा, यदि मगध में सच्चे पुरुषों का अभाव हो जायगा, यदि सब लोग पितृऋण को भूल जायँगे, तो भी मैं अवश्य जाऊँगा।

गोविंदगुप्त ने तुरंत आर्य्यपट्ट के सामने पहुँचकर तलवार निकाली और

सम्राट् को अभिवादन किया। उनके पीछे बंधुवर्म्मा बढ़ना ही चाहते थे कि इतने में पागल भानुमित्र ने वहाँ पहुँचकर उन्हें दूर हटा दिया और दोनों हाथों से सम्राट् को गले लगाकर कहा—महाराज! आप एक बार यह कह दीजिए कि हम भूले नहीं हैं।

रुँधे हुए कंठ से स्कंदगुप्त ने कहा—भाई, तुम विश्वास रखो, मैं भूला नहीं हूँ। मैं फिर वाह्लीका तट तक चलूँगा; और यदि आवश्यकता होगी, तो सुमेरु और कुमेरु तक ढूँढ़ डालूँगा। भाई, मैं किसी को भूला नहीं हूँ।

उस समय बंधुवर्म्मा, चक्रपालित तथा उच्च कुल के सभी युवकों ने सम्राट् को अभिवादन किया। सूने सिंहासन पर मुकुट रखकर स्कंदगुप्त ने दामोदर शर्म्मा से कहा—महामंत्री जी! अब मैं पितृऋण चुकाने जाता हूँ। पाटलिपुत्र, मगध और आर्यावर्त्त सब यों ही रहेंगे। यदि मागध सेना अपने पुराने कर्त्तव्य का पालन कर सकेगी, यदि पितृभूमि जंगलियों के हाथ से निकल आवेगी, यदि असहाय स्त्रियों और पुरुषों का रोना चिल्लाना थम जायगा, तो मैं फिर लौटकर पाटलिपुत्र आऊँगा, फिर मगधभूमि को देखूँगा। और नहीं तो यही अंतिम भेंट है। मैंने सुना है कि मेरे पूज्य पितामह ने राज्यभार आपको सौंपा था। अब भी राज्य का भार आप ही पर है। पाटलिपुत्र, मगध और उत्तरापथ सब कुछ आपके ही भरोसे है। देखिए, आर्यपट्ट पर दंड धारण करनेवाले का अभाव न होने पावे।

वृद्ध महामंत्री ने सिर झुकाकर कहा—जो आज्ञा महाराज।

———

बारहवाँ परिच्छेद

गोपाद्रि

मालव के उत्तर, पर्वतों से घिरी हुई उपत्यका में एक ऊँची पहाड़ी है, जिसके ऊपर बहुत ही दृढ़ और दुर्भेद्य गोपाद्रि दुर्ग है। वह पहाड़ी छोटी

है। उसके चारो ओर केवल एक ही छोटा मार्ग है, जो पहाड़ी के चारो ओर होता हुआ. दुर्ग के एकमात्र फाटक तक पहुँचता है; और वह मार्ग भी बड़ी बड़ी चट्टानों से भरा है। उत्तरापथ में हूण युद्ध की अवस्था में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। आज हूण सेना गोपाद्रि दुर्ग में घिरी हुई पड़ी है। महाराजाधिराज स्कंदगुप्त और महाराजपुत्र गोविंदगुप्त साम्राज्य की सेना लेकर गोपाद्रि को घेरे हुए हैं। हेमंत ऋतु में, प्रभात के मृदु प्रकाश में, वस्त्रावास के द्वार पर पाँच युवक योद्धा एक वर्म्मधारी वृद्ध से बातें कर रहे हैं। वृद्ध कह रहे हैं—भाई! सुनो, मेरा व्रत भंग न करो। आज तुम निष्कंटक हो। फल्गुयशनट की कन्या और नाती उद्दंडों से भरे हुए इस दुर्ग में बंद हैं। हरिबल और इंद्रलेखा मार डाली गईं। समय हो गया। अब मुझे अपने पाप का प्रायश्चित करने दो।

उत्तर में एक युवक ने कहा—महाराजपुत्र! यदि हम लोगों के रहते आप अकेले गोपाद्रि पर आक्रमण करेंगे तो आर्यावर्त के निवासी हम लोगों को क्या कहेंगे? समय अवश्य हो गया है और हम लोग आपके व्रत के उद्यापन में विघ्न डालना नहीं चाहते। परंतु देव! क्या आत्महत्या ही प्रायश्चित है?

गोविंद०—मालवराज! तुम शांत हो, मैं हताश प्रेमी की भाँति व्यर्थ आत्महत्या नहीं करूँगा। मेरा कर्तव्य पूरा हो चुका; क्योंकि साम्राज्य की नाव पर मैंने एक अच्छा केवट बैठा दिया है। परन्तु तुम लोगों का कर्तव्य अभी तक पूरा नहीं हुआ है। वाह्लीक, कपिशा, गंधार और पंचनद अभी तक शत्रुओं के हाथ में हैं। करुणा भी अभी तक शत्रुओं के ही साथ में है। सामने बहुत बड़ा क्षेत्र है। मुझे व्यर्थ रोकने की चेष्टा न करो।

इतने में एक और युवक बोल उठा—तात! जब आप अकेले गोपाद्रि दुर्ग पर आक्रमण करेंगे, तब क्या हम लोग रंगशाला के दर्शकों की भाँति चुपचाप दूर खड़े देखते रहेंगे?

गोविंद०—पुत्र! देखो, अब तुम युवराज नहीं हो, और न साम्राज्य के महाबलाधिकृत ही हो, जो छोटे छोटे युद्धों में तलवार लेकर लड़ते फिरो।

आज तुम एक बहुत बड़े साम्राज्य के अधीश्वर हो। अब लाखों स्त्रियों और तुरुषों का सुख दुःख तुम्हीं पर निर्भर करता है। आज तुम्हें सचमुच रंगशाला के दर्शकों की भाँति दूर से गोपाद्रि का युद्ध देखना पड़ेगा। व्यर्थ तर्क न करो। पुत्रों! यदि मेरे हाथ से गरुड़ध्वज गिर पड़े, तब तुम लोग एक एक करके दुर्ग पर आक्रमण करना; व्यर्थ वीरता दिखाने की इच्छा से रणनीति न भूल जाना।

उन पाँचों युवकों में से एक युवक अभी तक चुप था। इस बार उसने कहा—महाराजपुत्र! आपने जो कुछ कहा वह सब ठीक है। परंतु मैं आप की बात नहीं सुनूँगा। मैं अवश्य चलूँगा। मेरे साथ दस हजार सैनिक भी रहेंगे। मैं किसी की बात न मानूँगा।

गोविंद०—भानु! मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। बहुत से युद्धों में मेरा और अग्निमित्र का साथ रहा है। तुम यह चपलता छोड़ दो। तुम पागल नहीं हो; केवल भारी शोक के कारण तुम्हारी बुद्धि ठिकाने नहीं हैं तुम शांत होकर मेरी बातें सुनो। यदि मैं गोपाद्रि पर अधिकार न कर सकूँ, तो तुम गौड़ीय सैनिक लेकर मेरा अनुकरण करना।

भानु०—शोक? काहे का शोक? क्या आप समझते हैं कि करुणा मर गई? यह असंभव है वह मुझसे कह गई है कि मैं लौट आऊँगी; अतः वह अवश्य लौट आवेगी। आप मुझे तो रोक लेंगे, परंतु दस हजार गौड़ीय सैनिकों को न रोक सकेंगे। सम्राट् स्कंदगुप्त भी उन लोगों को न रोक सकेंगे। यहाँ तक कि सारा आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य मिलकर भी उनका मार्ग न रोक सकेगा। गौड़ीय सैनिकों ने हाथ में तलवार लेकर प्रतिज्ञा की है कि हम लोग करुणा को अवश्य ढूँढेंगे?

गोविंद०—अच्छा, तो फिर अब मैं क्या कहूँ। स्कंद! तुम साम्राज्य को देखना और अपने कर्त्तव्य का पालन करने में आगा पीछा न करना। उत्तरापथ को भी देखना। आर्यावर्त्त के प्रवेशद्वार को न भूलना। अनंता और पुरुगुप्त अभी हैं ही। अपनी रक्षा का सदा प्रयत्न करते रहना, हर्ष को देखते रहना; यदि मैं मर जाऊँ और साम्राज्य बचा रहे, तो मेरी हड्डियाँ पाटलिपुत्र भेज देना और गंगाद्वार के मार्ग से उन्हें गंगाजल में फेकवा

देना। मैं मागध हूँ। हरे भरे मगध देश में ही मैंने सब से पहले सूर्यदेव के दर्शन किए थे। जब मेरी आँखें न रह जायँ, तब मेरी राख भी मगध की नदी में ही फेंकना। वृद्ध महामंत्री जी से कह देना कि विचलित कुललक्ष्मी को अचल करके गोविंद ने यह संसार छोड़ा था।

गोपाद्रि दुर्ग के चारों ओर के बड़े मैदान में साम्राज्य के पाँच लाख सैनिक श्रेणी बाँधकर खड़े हो गए। पहाड़ी के ऊपर दुर्ग के प्राकार पर हूण सैनिक युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गए। परंतु उन्होने बहुत ही विस्मित होकर देखा कि सफेद वस्त्रों से ढके हुए बहुत ही थोड़े सवार दुर्ग की ओर बढ़ रहे हैं और शेष सेना चुपचाप अपने स्थान पर खड़ी है। दस हजार गौड़ीय सैनिकों ने पहाड़ी के नीचे पहुँचकर घोड़े छोड़ दिए और शीघ्रतापूर्वक उसी छोटे मार्ग से दुर्ग पर चढ़ना आरंभ किया। उन लोगों पर लक्ष्य करके हजारों बड़े बड़े पत्थर, गरम तेल के सैकड़ों कड़ाहे और लाखों भाले फेंके गए! परंतु फिर भी वे लोग नहीं रुके। दुर्ग मे घिरे हुए हूण बहुत ही विस्मित हुए। दुर्ग के चारों ओर रहनेवाले आर्यावर्त्तवासी प्रसन्न हुए। भीषण जयध्वनि से दुर्ग का प्राकार काँप गया। सफेद वस्त्र पहने हुए सैनिकों के मृत शरीर से वह पहाड़ी मार्ग भर गया, परंतु फिर भी गौड़ीय सैनिकों की गति नहीं रुकी।

दुर्ग के प्राकार के नीचे गौड़ीय सैनिकों ने बहुत ही कुशलता से मृत शरीरों की सीढ़ी बनाई। वह सीढ़ी दो बार खसकी। जब तीसरी बार सीढ़ी बन चुकी तब एक दीर्घाकार पुरुष कूदकर प्राकार पर जा चढ़ा और दुर्ग के फाटक पर हाथ में गरुड़ध्वज लेकर खड़ा हो गया। इसके उपरांत तुरंत ही वह अदृश्य भी हो गया। यह देखकर प्राकार के नीचे के गौड़ीय सैनिक चिल्ला उठे। इस बार एक के स्थान पर मृत शरीरों की कई सीढ़ियाँ बनीं और सैकड़ों गौड़ीय वीर दुर्ग के प्राकार पर जा चढ़े। उनमें से एक सैनिक ने उस गरुड़ध्वजवाले वर्मधारी योद्धा का शरीर पकड़ लिया। यह देखकर साम्राज्य के लाखों सैनिकों ने जयध्वनि की। सहसा सब लोगों ने उपत्यका को गुँजाते हुए चिल्लाकर माता का नाम लिया। हजारों गौड़ीय सवार स्थान छोड़कर

दुर्गकी ओर दौड़ पड़े। आधे दंड के उपरांत गोपाद्रि पर्वत पर गरुड़ध्वज उड़ता हुआ दिखाई दिया।

जब भानुमित्र की सेना दुर्ग की ओर दौड़ी, तब सम्राट् स्कंदगुप्त ने चिंतित होकर बंधुवर्म्मा से पूछा—क्या ये गौड़ीय सैनिक भी पागल हो गए हैं?

बंधुवर्म्मा ने मुस्कराकर कहा—पागल भानुमित्र के सैनिक बहुत पहले ही पागल हो चुके थे। गौल्मिकों ने बड़ी कठिनता से अब तक उन लोगों को रोका था। परंतु दुग पर भानुमित्र की गोद में महाराजपुत्र का शरीर देखकर सब लोग चंचल हो गए और शांत न रह सके। देखिए, कितने कष्ट से चक्रपालित सौराष्ट्रीय गुल्म को रोक रहे हैं। मागध सैनिक पागल हो रहे हैं। यहाँ तक कि बालक हर्षगुप्त भी मारे शोक और दुःख के पागल हो गए हैं। महाराजाधिराज! आप स्वयं आगे बढ़ें। नहीं तो इसी समय इस छोटे पहाड़ी मार्ग में साम्राज्य की सेना नष्ट हो जायगी।

स्कंगुप्त और बंधुवर्म्मा ने गोपाद्रि दुर्ग की प्रदक्षिणा की। उनके बहुत समझाने पर सैनिक लोग कुछ शांत हुए। परंतु फिर भी उन सब ने एक एक करके दुर्ग पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी। इतने मे दुर्ग पर गुप्त-वंश की पताका दिखाई दी! उसे देखकर सैनिक लोग बार बार जयध्वनि करके आकाश गुँजाने लगे। सहसा एक वृद्ध मागध सैनिक ने सम्राट् के घोड़े की बाग पकड़ ली। यह देखकर हर्षगुप्त और बंधुवर्म्मा ने तलवार निकाल ली। वृद्ध ने अभिवादन करके कहा—महाराजाधिराज! मैं हरिबल का अनुचर नहीं हूँ। मैंने सिप्रा और शुभ्रमती पर, वक्षु और वाह्लीका तट पर महाराजपुत्र की अधीनता में युद्ध किया है। महाराज! आज मगध ने जो कुछ गँवाया है, वह अब उसे नहीं मिल सकेगा। मृत्यु भी महाराजपुत्र की मुट्ठी न खोल सकी। अभी आपने देखा ही था कि जब भानुमित्र ने उनका मृत शरीर ऊपर उठाया था, उस समय भी उनके बाएँ हाथ में गरुड़ध्वज था। महाराज! आप इस बात को स्मरण रखिएगा।

इतना कहकर वह सैनिक अभिवादन करके बड़ी शीघ्रता से सेना में जा मिला।

जब दुर्ग पर अधिकार हो गया, तब सब से पहले बंधुवर्म्मा, चक्रपालित और हर्षगुप्त को साथ लेकर स्कंदगुप्त ने उसमें प्रवेश किया। दुर्ग के ऊपर उड़ती हुई पताका के नीचे सफेद वस्त्र पहने हुए भानुमित्र खड़े थे। उन्होंने सम्राट् को अपने पास आने का संकेत किया। स्कंदगुप्त ने प्राकार पर चढ़कर देखा कि एक सैनिक की गोद में सिर रखे हुए गोविंदगुप्त अपनी अंतिम अवस्था में पड़े हुए हैं। सम्राट् और हर्षगुप्त दोनों महाराजपुत्र के पैर पकड़कर वहीं बैठ गए। सारा प्राकार रक्त से भर गया था। गोवर्दिगुप्त ने अपनी अँजली में अपना रक्त भरकर धीरे धीरे कहा—पुत्र! कुमारगुप्त कायर नहीं थे। वे हरिबल के जाल में फँस गए थे। आज मैं गुप्तवंश का रक्त अपनी अँजली में भरकर उसी पाप का प्रायश्चित करता हूँ। मेरा अपराध क्षमा करना।

इतने में महाराजपुत्र के पैरों पर आँसुओं की कई बूँदे आ पड़ी। उन्होंने बड़े कष्ट से सिर उठाकर देखा कि स्कंदगुप्त पैरों के पास बैठे हुए चुपचाप रो रहे हैं। उनका गला रुँध गया। उन्होंने धीरे से स्कंदगुप्त का हाथ खींचकर कहा—पुत्र! शोक न करो। देखो, सदा गरुड़ध्वज के संमान की रक्षा करना; सदा देवताओं और ब्राह्मणों, स्त्रियों और बालकों की रक्षा करना, उत्तरापथ के प्रवेश द्वार को न भूलना। जिन लोगों के कारण समुद्रगुप्त का यह विशाल साम्राज्य नष्ट हुआ है, उन्हें यथेष्ट दंड देना। नारायण—

इतना कहते कहते परमवैष्णव महाराजपुत्र गोविंदगुप्त के मुँह से लहू की धार बहने लगी। नारायण का स्मरण करते करते उन्होंने यह संसार छोड़ दिया। उसी दिन दोपहर के समय चंदन की लकड़ियों की एक बड़ी चिता बनाई गई, जिसे घेरकर साम्राज्य के पाँच लाख सैनिक खड़े हो गए। हर्षगुप्त ने अपने पिता का दाह संस्कार किया। चिता जलने लगी। लाखों कंठों से निकली हुई जयध्वनि से पर्वतमाला काँप गई। वह जयध्वनि सुनते ही पर्वत की कंदराओं में छिपी हुई हूण सेना सिर पर पैर रखकर भाग निकली।

तेरहवाँ परिच्छेद

प्रलय

उद्दंडपुर नगर के बाहर एक सूखी हुई नदी के गर्भ में घास पर दो भिक्षुक बैठे हुए थे। उनमें से दूसरे से एक ने कहा—भद्र! समय अधिक हो गया, चलिए नगर की ओर चलें। सुना है कि सम्राट् ने नगरहार पर अधिकार कर लिया है। शीघ्र ही वक्षु तट पर गरुडध्वज दिखाई देने लगेगा। मगध में तो मेरा कार्य पूरा हो गया। अब मैं पुरुषपुर चलना चाहता हूँ। महावीर गोविंदगुप्त ने गोपाद्रि दुर्ग में प्राण त्याग दिए। अभी यह निश्चय नहीं है कि शकमंडल का मंडलेश्वर कौन बनाया जायगा। जहाँ तक शीघ्र हो सके, मैं लौटकर गंधार पहुँचना चाहता हूँ।

अब तक भिक्षु का साथी चुपचाप सब बातें सुन रहा था। अब उसने कहा—संघस्थविर! परम भट्टारिका पट्टमहादेवी की आज्ञा से एक विशेष कार्य के लिये मैं आपको इस एकांत स्थान में लाया हूँ।

दूसरे भिक्षु ने विस्मित होकर पूछा—महाशय, पट्टमहादेवी कौन? सम्राट् ने तो अभी तक विवाह ही नहीं किया न?

दूस० भि०—संघस्थविर, परम सौगता, परमभट्टारिका पट्टमहादेवी अनंतादेवी की आज्ञा से आप इस स्थान पर लाए गए हैं।

संघ०—अनंता देवी! वे तो कारागार में हैं न?

भिक्षु—भगवान बुद्ध भट्टारक की कृपा से आर्य्यसंघ ने पट्टमहादेवी को कारागार से मुक्त कर दिया है। जान पड़ता है कि अब भारतवर्ष में फिर से सद्धर्म्म स्थापित होगा।

संघ०—भद्र! आप क्या कह रहे हैं? मैं कुछ भी नहीं समझ सका। क्या इस समय उत्तरापथ वा दक्षिणापथ में सद्धर्म्म की प्रतिष्ठा का अभाव है?

भिक्षु—भगवान की कृपा से ब्राह्मण लोग अभी तक सद्धर्म्म को हानि

नहीं पहुँचा सके हैं। परंतु फिर भी राजा वैष्णव होने के कारण सद्धर्म्म के द्वेषी हैं। इसी कारण सद्धर्म्म का भली भाँति प्रचार नहीं हो रहा है।

संघ०—भद्र, आपकी बात सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। गुप्त साम्राज्य में बहुत दिनों से बौद्ध, वैष्णव शाक्त और शैव सभी स्वतंत्रतापूर्वक रहते आए हैं। राजा वैष्णव अवश्य हैं, परंतु वे किसी धर्म्म के द्वेष नहीं करते।

भिक्षु—कुमारगुप्त तो नहीं, परंतु स्कंदगुप्त अवश्य बौद्धों से द्वेष करते हैं।

संघ०—इसका प्रमाण? मैंने तो आज तक वैष्णव अथवा बौद्ध किसी को कभी महावीर स्कंदगुप्त के विरुद्ध कुछ कहते नहीं सुना।

भिक्षु—आपके सामने ही नराधम भानुमित्र ने जिस निर्दयता से महास्थविर हरिबल की हत्या की थी, क्या उसे आप भूल गए?

संघ०—परंतु भद्र! हरिबल राजद्रोही थे। उन्होंने अपने हाथ से सम्राट् पर भाला फेंका था। वे अवश्य दंड पाने के योग्य थे।

भिक्षु - यदि राजा अपने हाथ से उन्हें दंड देते, तो कोई बात नहीं थी।

संघ०—मैंने सुना है कि व्यवहार-शास्त्र के अनुसार राजद्रोह करनेवाले अथवा राजा की हत्या करनेवाले को मार डालना चाहिए।

भिक्षु—राजा यदि बौद्ध होते तो क्या बोधिसत्वपाद संघस्थविर हरिबल को एक साधारण व्यक्ति इस प्रकार हत्या कर सकता था? इस समय उत्तरापथ में वैष्णव सम्राट् की जगह बौद्ध सम्राट् की आवश्यकता आ पड़ी है। नहीं तो सद्धर्म्म के उद्धार की कोई आशा न रह जायगी।

संघ०—यदि सम्राट् बौद्ध धर्म्म ग्रहण कर लें तो सद्धर्म्म का प्रचार अवश्य हो सकता है। परंतु क्या परम वैष्णव गुप्त सम्राट् लोग मद्यपान का अवलंबन करेंगे।

भिक्षु—करेंगे क्या कर ही चुके हैं। पट्टमहादेवी अनंतादेवी ने कभी त्रिरत्न का आश्रय नहीं छोड़ा। इस समय यदि किसी न किसी प्रकार परम सौगत महाराजाधिराज को पुरुगुप्त सिंहासन पर बैठा दिया जाय, तो सब काम हो जाय।

संघ०—ऐसी अवस्था में जब कि देश पर इतनी बड़ी विपत्ति आई हुई है, यदि एक बालक को आर्यपट्ट पर बैठा दिया जायगा तो कितना अनर्थ होगा। इसके अतिरिक्त गाँव गाँव और नगर नगर में महाराजाधिराज नारायण के अंशावतार समझकर पूजे जाते हैं। सभी संप्रदाय के आर्यावर्तवासी उन्हें देवता और एक मात्र रक्षक मानते हैं। यदि उन्हें सिंहासन से उतरने का प्रयत्न किया जायगा, तो जो आग सुलगेगी, उससे सारा उत्तरापथ जलकर राख हो जायगा। इसमें वैष्णवों और बौद्धों दोनों का सर्वनाश होगा।

भिक्षु—क्यों, सर्वनाश क्यों होगा ? यदि आप विचारपूर्वक देखेंगे, तो सब बातें समझ जायँगे।। उत्तरापथ में बहुत से राजाओं के लिये स्थान हो सकता है—

संघ०—भद्र, यदि इस समय सारा उत्तरापथ मिलकर प्रवेशद्वार की रक्षा करेगा, तभी भारत की रक्षा हो सकेगी, नहीं तो नहीं। यदि उत्तरापथ दो भागों में बँट जायगा, तो जंगली हूण सहज में ही आर्यावर्त्त पर अधिकार कर लेंगे।

भिक्षु—मैं तो समझता हूँ कि हूण लोग उत्तरापथ का एक अंश पाकर ही संतुष्ट हो सकते हैं।

संघ—भद्र, आप यह क्या कह रहे हैं ? यदि जंगलियों के हाथ में उत्तरापथ दे दिया जायगा, तो इसका क्या फल होगा ?

भिक्षु—यही कि सद्धर्म का फिर से उद्धार होगा और आर्यसंघ की उन्नति होगी।

संघ—इस बात की आशा स्वप्न में भी न कीजिएगा। हूण लोग नरघातक पशु हैं। उनके लिये बौद्ध, वैष्णव और शैव सभी समान हैं। वाह्लीक, कपिशा और गंधारवाले हूणों के शासन का थोड़ा बहुत फल पा चुके हैं।

भिक्षु—यदि उत्तरापथ का एक अंश शत्रुओं को दे देने से सद्धर्म की उन्नति हो, तो यह क्या आपको अभीष्ट नहीं है ?

संघ—भद्र, एक मागध के मुँह से ऐसी बातें सुनने के लिये मैं मगध में नहीं आया हूँ। जो मगध चंद्रगुप्त, बिंदुसार और अशोक की पितृभूमि है,

जिस मगध में चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त और गोविंदगुप्त ने जन्म लिया है, वह मगध आर्यावर्त्त में सदा पूजनीय रहेगा। हजारों वर्षों से मगधवासी उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करते आ रहे हैं। इसी कारण उत्तरापथ में मगध सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भद्र! मैं गंधार का रहनेवाला हूँ। प्राचीन इतिहास का स्मरण करके लाखों असहाय स्त्रियाँ और पुरुष आज भी यह आशा करते हैं कि मागध सेना आकर हम लोगों को जंगलियों के अत्याचार से बचावेगी। इसी कारण गंधार और कपिशा का दूत बनकर सैकड़ों कोस चलकर मैं यहाँ आया हूँ। क्या आज सद्धर्मी मागध अत्याचार से पीड़ित सद्धर्मियों को पददलित होने के लिये जंगलियों के पैरों के नीचे फेंक देंगे? जो मागध सदा आश्रितों की रक्षा करते हैं, क्या आज वे आश्रय न देंगे? भद्र! सद्धर्म्म की उन्नति न हो, आर्यसंघ रसातल को चला जाय, परंतु फिर भी मागध सैनिकों को अपना कर्त्तव्य न भूलना चाहिए। जिस मगध में भगवान् बुद्ध के ज्ञानचक्षु खुले थे, वह मगध सदा उत्तरापथ में सर्वश्रेष्ठ बना रहे। महाराजाधिराज स्कंदगुप्त के अतिरिक्त और कोई उत्तरापथ की रक्षा नहीं कर सकता। यदि वे उत्तरापथ की रक्षा न करेंगे तो अनर्थ हो जायगा। आप ये बुरे विचार छोड़ दीजिए। स्कंदगुप्त को छोड़कर उत्तरापथ के लिये और कोई उपाय ही नहीं है। यदि उत्तरापथ की रक्षा होगी, तो एक न एक दिन सद्धर्म की उन्नति भी हो ही जायगी।

भिक्षु—प्रभु! आप आर्यसंघ के पूजनीय संघस्थविर हैं। आपके मुँह से सद्धर्म के विरुद्ध बातें सुनकर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। आप एक बार सम्राट् से भेंट करें। वे अवश्य उत्तरापथ की रक्षा का कोई न कोई प्रबंध करेंगे।

संघ—सम्राट्? वे तो मगध में नहीं हैं न?

भिक्षु—स्कंदगुप्त मगध से अवश्य चले गए हैं। परंतु वास्तविक सम्राट् परमेश्वर परमभट्टारक परम सौगत पुरुगुप्तदेव इस उद्दंडपुर नगर में ही हैं।

संघ—मैंने तो सुना था कि महामंत्री की आज्ञा से पुरुगुप्त कारागार में रखे गए हैं।

भिक्षु—जिस प्रकार राहु से ग्रसा हुआ चंद्रमा मुक्त होता है, उसी प्रकार समस्त आर्यसंघों के प्रयत्न से महाराजाधिराज भी मुक्त हो गए हैं। वे इसी समय पाटलिपुत्र की ओर प्रस्थान करेंगे।

संघ—तब तो फिर मगध में गृह विवाद आरंभ हो जायगा।

भिक्षु—गृह विवाद नहीं होगा। स्कंदगुप्त विद्रोही हैं। अब की बार महाराजाधिराज उन्हें उचित दंड देंगे।

संघ०—भद्र! यह बात सुनने के लिये बुद्धभद्र पुरुषपुर से मगध नहीं आया है। मैं मागध के नए सम्राट् को दूर ही से अभिवादन करता हूँ। एक विशेष कार्य के लिये मैं इसी समय यहाँ से चला जाऊँगा।

भिक्षु—संघस्थविर, यह किसी प्रकार संभव नहीं है। आप महाराजाधिराज के महामाननीय अतिथि हैं। यदि आपका उचित सत्कार न किया जायगा, तो आर्य्यावर्तवासी सम्राट् पर कलंक लगावेंगे।

संघ०—भद्र! मैं आपकी इस सुजनता से बहुत ही प्रसन्न हूँ; परंतु अब मेरे लिये मगध में ठहरना संभव नहीं है।

इतना कहकर वृद्ध संघस्थविर बुद्धभद्र घास पर से उठ खड़े हुए। यह देखकर दूसरे भिक्षु ने उनका हाथ पकड़ लिया। संघस्थविर ने विस्मित होकर कहा—कहिए, क्या आज्ञा है।

भिक्षु—यदि आप मगध से चले जायँगे, तो सम्राट् बहुत ही दुखी होंगे।

संघ—क्या करूँ, और कोई उपाय ही नहीं है।

इसपर भिक्षु ने संकेत किया। तुरंत वृक्षों की ओट से दो सैनिकों ने निकलकर वृद्ध बुद्धभद्र को बाँध लिया। वृद्ध ने विस्मित होकर कहा—हैं! यह क्या?

भिक्षु ने हँसते हुए कहा—आर्य, मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा। आर्यसंघ की उन्नति के उद्देश्य से आपके साथ ऐसा कठोर व्यवहार करना पड़ा है।

संघ०—मुझे आपने पकड़ क्यों लिया?

भिक्षु—सद्धर्म की उन्नति के लिये सम्राट् ने वाह्लीक, कपिशा, गांधार और पंचनद हूणराज को देकर उनसे संधि कर ली है। हूणराज पश्चिम की ओर से और सम्राट् पूर्व की ओर से विद्रोही स्कंदगुप्त पर आक्रमण करेंगे। उस समय सद्धर्म के मार्ग का काँटा सहज में ही दूर हो जायगा। कुछ दिनों तक इस समाचार को छिपाए रखने के लिये परम सौगत महाराजाधिराज ने आपको मगध में रहने के लिये निमंत्रित किया है।

वृद्ध संघस्थविर ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँककर रुँधे हुए कंठ से कहा—बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

दूसरे भिक्षुक की आज्ञा से दोनों सैनिक वृद्ध को नदी तट से उद्दंडपुर की ओर ले चले। नगर में पहुँचकर वृद्ध संघस्थविर ने देखा कि सब फाटक फूल-पत्तों आदि से सजे हुए हैं। यह देखकर उन्होंने भिक्षु से पूछा—भद्र। नगर में उत्सव का आयोजन क्यों हो रहा है?

भिक्षु—मगधवासियों ने बारह वर्ष तक सम्राट् का मुँह नहीं देखा था। आज उद्दंडपुर के मार्गों में नए सम्राट् निकलेंगे। इसी कारण आज नगरनिवासी उत्सव का आयोजन कर रहे हैं।

संघ०—क्या बारह वर्ष से सम्राट् मगध के बाहर हैं?

भिक्षु—हाँ! सद्धर्म के द्वेषी स्कंदगुप्त ने बारह वर्ष से इस पवित्र मगधभूमि को अपने कलुषित पैरों के स्पर्श से कलंकित नहीं किया है।

वृद्ध की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। उन्होंने सिर झुकाकर कहा—भद्र! अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता। हे सुगत! यह मगध क्या वही मगध है।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

नगरहार

संध्या के समय नगरहार नगर के फाटक पर कुछ सवार मगध देश के एक बंदी को लिए हुए प्रतीक्षा कर रहे थे। फाटक बंद था और प्रतीहार

लोग उसे खोलने का साहस नहीं कर सकते थे। कुछ समय के उपरांत सवारों के नायक ने अधीर होकर पूछा—भाई, तुम फाटक खोलोगे या नहीं ?

फाटक में से प्रतीहार ने कहा—भाई, मैं क्या करूँ। महानायक की आज्ञा है कि सूर्य अस्त हो जाने के उपरांत नगर का फाटक न खोला जाय।

ना०—मैं कहना तो नहीं चाहता था, परंतु अब मुझे कहना ही पड़ता है। देखो, तुम्हें जो महानायक मिलें, उनसे कह दो कि मुरारी एक गुप्त समाचार लेकर आया है।

मागधबंदी ने नायक के मुँह की ओर देखा। नायक ने हँसते हुए कहा—अब तो तुमने पहचान लिया न ? मैंने तो सोचा था कि बन्धुवर्म्मा अथवा चक्रपालित के सामने पहुँचकर ही अपना परिचय दूँगा।

बंदी ने दाँत पीसकर कहा—विश्वासघातक। तेरे जैसों के कारण ही सद्धर्म की यह दशा है!

इसपर नायक हँस पड़ा और बोला—राहुलभद्र! तुम और जो चाहे सो कह लो, परंतु मुझे विश्वासघातक न कहना। मुझे जिन्होंने पशु से मनुष्य किया था, वे बैकुंठ चले गए। वे जानते थे कि मुरारी विश्वासघातक है या नहीं। यह शरीर गोविंदगुप्त के अन्न से ही पला है। क्या तुमने यह सोचा था कि जो मुरारी महाप्रतीहार के भय से कुछ दिनों के लिये तथागत-गुप्त बन गया था, वह गुप्तवंश का उपकार भूल जायगा? राहुलभद्र! यह आर्यसंघ की बड़ी भारी भूल है। जब मैं लौटकर पाटलिपुत्र न जाऊँगा, तब—

इतने में पीछे से एक दीर्घाकार वर्म्मधारी योद्धा ने मुरारी के कंधे पर हाथ रखकर पूछा—मुरारी! तुम क्यों न जाओगे ?

मुरारी ने चौंककर पीछे देखा और आगंतुक को सामरिक रीति से अभिवादन किया; और तब अपने वस्त्र में से चमड़े का एक छोटा टुकड़ा निकालकर आगंतुक के हाथ में दिया और कहा—महानायक! प्रभु ने स्मरण किया है।

आगंतुक ने बड़े यत्न से धीरे धीरे शिरस्त्राण खोला और पत्र पढ़कर कहा—मुरारी! प्रभु ने केवल तुमको ही स्मरण नहीं किया है। बहुत से लोगों के प्रभु ने बहुत से लोगों को स्मरण किया हैं। तुमने कपिशा का कुछ समाचार सुना है?

मुरारी ने बहुत ही उत्सुक होकर पूछा—क्यों, क्या हुआ है?

महा०—वाह्लीका तट पर इंद्रपालित ने वीरगति प्राप्त की।

मुरा०—और शेष लोग?

महा०—अरे पागल! क्या यह चंद्रसेन का युद्ध है? और सब लोग भी अब तक दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गए।

मुरा०—आचार्य राहुलभद्र जो पत्र लाए हैं, आपने उसके अक्षर देखे हैं न?

महा०—हाँ देखे हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ न कि मेरे प्रभु ने भी मुझे स्मरण किया है।

मुरा०—मैंने महाराजाधिराज के रुग्ण होने अथवा युद्ध आदि की बात तो नहीं सुनी। पर अब यह भी सुनना पड़ा कि अनंता का पुत्र और इंद्रलेखा का नाती पुरगुप्त इस समय मगध साम्राज्य का अधीश्वर है। महानायक! आप कर्तव्यनिष्ठ हैं। आप साम्राज्य के महाबलाधिकृत हैं। आप नए सम्राट् की प्रतीक्षा कर सकते हैं। परंतु मैं वृद्ध हो गया हूँ। मुझे अब आज्ञा दीजिए।

बंधुवर्मा ने मुस्कराकर कहा—यह पत्र पढ़ लो।

मुरारी ने पत्र पढ़ना आरंभ किया। उसमें लिखा था—"मागध आर्य संघ की आज्ञा से लिखित। परमेश्वर परमवैष्णव परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री पुरगुप्तदेव सकुशल पाटलिपुत्र नगर में पहुँच गए हैं। यदि हूणराज आर्यावर्त्त में आवें, तो कान्यकुब्ज तक का प्रदेश उन्हें दिया जायगा।"

महा०—अब तुम क्या करना चाहते हो?

मुरा०—मैं तो पहले ही प्रार्थना कर चुका हूँ कि मुझे विदा होने दीजिए। मेरी और कोई प्रार्थना नहीं है।

महा०—तुम अकेले क्या जाओगे, और भी बहुत से लोग जानेवाले हैं। चलो, सब लोग साथ ही चलेंगे।

मुरा०—बहुत से लोग जायँगे ?

बंधु०—हाँ, चलो देखो। दुर्ग में कितनी सेना है ?

मुरा०—पाँच हजार।

बंधु०—इन पाँच हजार में से एक भी मगध न लौटेगा।

मुरा०—यह क्या ?

बंधु—तुम महाराजपुत्र गोविंदगुप्त के सहचर होकर ऐसा प्रश्न करते हो ? जिन्हें अपने प्राणों का मोह होता है, वे हम लोगों के साथ युद्ध में नहीं आते। और जिन्हें लौटकर देश जाने की इच्छा होती है, वे स्कंदगुप्त की सेना में संमिलित नहीं होते।

मुरा०—मालवराज, मैं बौद्ध हूँ। बौद्ध का पुत्र हूँ। जीवहिंसा देखकर सचमुच मुझे बहुत कष्ट होता है। अब तो स्कंदगुप्त नहीं हैं, आज साम्राज्य पुरगुप्त का है। अब किसके लिये व्यर्थ पाँच हजार मनुष्यों की बलि दीजिएगा ?

बंधु०—मैं बलि नहीं दूँगा। लोग स्वयं आनंदपूर्वक आत्मबलि देंगे। तुम मगध के रहनेवाले हो। इसी कारण तुम नहीं समझ सकते। मैं मागध नहीं हूँ। मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि यही मागध का अंत है, यही मागध साम्राज्य का अंत है और यहीं गुप्तवंश का अंत है ' अब कभी मागध सेना उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करने नहीं आवेगी। उत्तरापथ और दक्षिणापथ के असहाय निवासी अब कभी आश्रय पाने की आशा से मगध की ओर नहीं देखेंगे। जिस शक्ति के कारण इतने दिनों तक भारत में मगध का प्रभुत्व था, वह शक्ति अग्निगुप्त, गोविंदगुप्त और स्कंदगुप्त के साथ चली गई। जो लोग मेरे साथ वक्षुतट पर आए थे वे उसी शक्ति के कारण शक्तिमान थे। अब वे लोग आर्यपट्ट पर अनंता के पुत्र को देखने के लिये नहीं लौटेंगे।

मुरा०—मालवराज ! क्या सचमुच यह मगध की अंतिम अवस्था है ? मैं मागध हूँ। यद्यपि मैं यम के द्वार पर खड़ा हूँ, परंतु फिर भी यह बात सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है। महानायक ! किस अपराध के कारण मगध का अस्त हो रहा है ?

बंधु०—मुरारी ! मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। तुम हरिबल से जाकर पूछो। उस पार तुम्हें मागध संघ के नायक लोग मिलेंगे। उन्हीं से यह बात पूछना। तुमने मागध आर्यसंघ का पत्र पढ़ लिया न ? तुम्हारे संघनायक लोग कहते हैं कि यदि हूणराज आर्यावर्त्त में आवेंगे, तो उन्हें आधा आर्यावर्त्त दे दिया जायगा। जानते हो कि क्यों ? यह गुप्त साम्राज्य को नष्ट करने का मूल है। मुरारी ! विष्णु के अंशावतार स्कंदगुप्त अब इस संसार में नहीं हैं। इसी कारण अब कभी आर्यावर्त्त में मगध वह प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सकेगा स्कंदगुप्त चले गए, महाराजपुत्र चले गए, और उच्च-कुल के सभी वैष्णव चले गए। आर्य संघ की हार्दिक इच्छा पूरी हो गई। हे सद्धर्मी ! अब सद्धर्म की उन्नति के मार्ग में कोई कंटक नहीं रह गया। देश-धर्म और पूर्वस्मृति को भुलाकर, मगध साम्राज्य को समुद्र में डुबाकर उसके स्थान पर आर्यसंघ और सद्धर्म की उन्नति की प्रार्थना की गई थी। अब वह प्रार्थन पूरी हो गई। अब क्यों साम्राज्य का नाम लेते हो ? तुम जानते हो कि इतने दिनों तक समस्त भारत में मागध क्यों पूज्य थे ? उन्होंने अपने रक्त से भारत की कलंक कालिमा धो दी थी; बहुत दिनों तक अपने प्राण देकर भारत की रक्षा की थी। इसी कारण हिमालय से लेकर कुमारिका तक और समुद्र से समुद्र तक सभी स्थानों में लोग मागधों की पूजा करते थे। अब प्राचीन काल के वे मागध भविष्य में सभी स्थानों पर पूजे जायँगे। परंतु वर्तमान काल के मागध अपने आपको भूल गए हैं। वे भारत को भी भूल गए हैं। इसी कारण भारत भी मागधों को भुला देगा और मगध साम्राज्य नष्ट हो जायगा। मुरारी ! अब विलंब न करना चाहिए। हूण सेना पास आ गई है। चलो, नगर में चलें।

मुरा०—इन आचार्य की क्या व्यवस्था कीजिएगा ?

बंधु—छोड़ दो।

मुरा०—मैंने इनके लिये शरशय्या की व्यवस्था की थी।

बंधु—हे सद्धर्मी ! एक बार वैष्णव की बात भी मान लो।

मुरारी ने अधमरे आचार्य के हाथ में पत्र देकर कहा—जाओ, अब तुम मुक्त हो। (बंधुवर्मा से) महानायक ! मैं चाहता हूँ कि मरने पर मैं भी आपके ही समान वैष्णव होऊँ। चलिए, चलूँ।

फाटक खुल गया और बंधुवर्मा ने नगर में प्रवेश करके शंख बजाया। देखते देखते पाँच हजार सैनिक नगरहार के राजमार्ग में एकत्र हो गए। बंधुवर्मा ने उन लोगों से कहा—भाइयो ! मुझे समाचार मिला है कि महाराजाधिराज स्वर्ग चले गए। इस समय पुरगुप्त मगध के अधीश्वर हैं। उन्होंने अपनी इच्छा से आधा आर्यावर्त्त हूणराज को दे दिया है। अब तुम लोग किसके लिये युद्ध करोगे ? बहुत दिनों पर आर्यावर्त्त में शांति स्थापित हुई है। आशा है कि यह शांति बहुत दिनों तक बनी रहेगी। स्कंदगुप्त ने मुझे साम्राज्य का महाबलाधिकृत बनाया था। परंतु अब न तो सम्राट् ही हैं और न साम्राज्य ही। अब तुम लोगों की जहाँ इच्छा हो चले जाओ।

सब सैनिक चुपचाप खड़े रहे। अंत में एक गौल्मिक ने पूछा—क्या आप मालव लौट जायँगे ?

बंधुवर्मा ने मुस्कराकर कहा—भाई ! मालव बहुत दूर है। मुझे महाराज ने बुलाया है। मैं उन्हीं के पास जाऊँगा। तुम लोग देश लौट जाओ।

उत्तर में वृद्ध गौल्मिक ने मुस्कराकर कहा—महाराज ! मैं बहुत दिनों तक युद्ध करता करता थक गया हूँ। अब भी मैं कुछ दिनों तक विश्राम करना चाहता हूँ। मगध बहुत दूर है। इस वृद्धावस्था में मुझसे इतनी दूर जाया न जायगा। जिस मगध में मैंने जन्म लिया था वह मगध अब नहीं रहा; और जो मगध इस समय है, वह मगध देखने को जी नहीं चाहता।

बंधु—अच्छा, तो सुनो। इंद्रपालित ने वाह्लीका तट सर वीरगति प्राप्त कर ली। पहर भर में हूण सेना नगरहार के फाटक पर आ पहुँचेगी। स्वर्गवासी महाराजाधिराज ने मुझे उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा के लिये नियुक्त किया था। अतः मैं यहाँ से हटना नहीं चाहता। जिसकी इच्छा हो, वह पुरगुप्त के मगध को लौट जाय।

किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पाँच हजार तलवारों ने कोष से निकलकर लोहे के शिरस्त्राणों को स्पर्श किया। उस समय बंधुवर्म्मा ने हँसकर मुरारी से कहा—मुरारी! देखा?

उस अँधेरी रात में पाँच हजार मागध सैनिक स्कंदगुप्त के पास पहुँचने की इच्छा से नगरहार से निकलकर वक्षु के पहाड़ी मार्ग पर चल पड़े। इसके उपरांत उन लोगों की क्या गति हुई, यह आज तक कोई नहीं जानता।

इसके उपरांत फिर कभी मागध लोग उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करने के लिये नहीं गए।

———

पंद्रहवाँ परिच्छेद

प्रतिष्ठान का युद्ध

बहुत कड़ी गरमी पड़ रही है। रात बीत चली है। हवा का कहीं नाम नहीं है। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। बहुत दिनों से मध्यदेश में ऐसी गरमी नहीं पड़ी। प्रतिष्ठान के पत्थर के दुर्ग की दीवारें अभी तक तप रही हैं। उन तपे हुए पत्थरों के प्राकार पर बैठा हुआ एक नाटा पुरुष टक लगाए गंगा यमुना और सरस्वती के संगम की लहरें देख रहा है। अभी तक अँधेरा पूर्ण रूप से दूर नहीं हुआ है। पूर्व की ओर उषा की केवल एक स्वच्छ रेखा दिखाई दे रही है। इतने में उस व्यक्ति ने धीरे से कहा—मैं भूला नहीं हूँ। पिछले जीवन में—

इतने में प्राकार के नीचे दुर्ग में से कोई बोल उठा—महाराजाधिराज! तो फिर कब भूलेंगे?

स्कंद०—चक्रपालित! यदि मैं यह जानता कि मैं कब भूलूँगा तो देवता हो जाता। भानुमित्र ठीक कहते हैं कि मनुष्य जब मरना चाहता है, तब मृत्यु दूर भाग जाती है।

चक्र०—महाराज ! यदि आप न रहेंगे तो आर्यावर्त्त की रक्षा कौन करेगा ?

स्कंद०—भाई ! जिनका आर्यावर्त्त है, वे ही इसकी रक्षा भी करेंगे। कदाचित वे लोग यह नहीं चाहते कि मेरे द्वारा पितृभूमि शत्रुओं के हाथ से मुक्त हो। न जाने पिछले जीवन में मैंने कितने प्यासों के हाथ का पानी छीना था, जिसके कारण इस जन्म में मुझे सदा अतृप्त रहना पड़ा। देखो वह सामने त्रिवेणी में अनंत जल बह रहा है; और मैं इस कड़ी गरमी में प्यास के कारण बिछौना छोड़कर चला आया हूँ और इन तपे हुए पत्थरों पर बैठकर मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

चक्र०—महाराज ! दो दिन से आपने एक बूँद भी जल ग्रहण नहीं किया। इस प्रकार कब तक काम चलेगा ? अब भी केवल आप पर ही उत्तरापथ और दक्षिणापथ की सारी आशाएँ निर्भर करती हैं।

स्कंद०—चक्र, अब काम नहीं चल सकेगा। तनुदत्त ने कल संध्या को मुझ से कहा था कि कूएँ में केवल दो दिनों के लिये और जल है। तीसरे दिन कुआँ सूख जायगा।

जिस समय महाराजाधिराज के पास यह समाचार पहुँचा था कि नगरहार में महानायक महाबलाधिकृत मालवराज बंधुवर्म्मा मारे गए, उस समय वे पाटलिपुत्र के राजमार्ग में थे। मगध विद्रोही हो गया था। महामंत्री दामोदर शर्मा कारागार में थे और बालक पुरगुप्त आर्यपट्ट पर थे। चरणाद्रि दुर्ग के नीचे सम्राट् की छावनी थी। दूसरे स्कंदगुप्त वाराणसी जाने को थे। बंधुवर्म्मा के मरने का समाचार सुनते ही उन्होंने सबको प्रतिष्ठान लौट चलने की आज्ञा दी। विस्मित होकर चक्रपालित ने पूछा—महाराज ! शत्रुओं को छोड़कर आप कहाँ जायँगे ?

स्कंदगुप्त० ने मुस्कराकर उत्तर दिया—खिंखिल से भेंट करने।

चक्र०—दोनों ओर से शत्रु सेना हम लोगों को घेर लेगी।

स्कंद०—चक्र ! यह समझ रखना कि कभी कोई मागध मुझ पर अस्त्र न चलावेगा। मैं प्रवेशद्वार का एक प्रतीहार मात्र हूँ, साम्राज्य का महाराजाधिराज

नहीं। मैं अपना कर्तव्य पालन करने जाता हूँ। मुझे अपने मार्ग से हटाने की चेष्टा न करना। जब तक इंद्रपालित और बंधुवर्म्मा आदि थे, तब तक मैं निश्चित था। मैं जानता था कि जब तक उनके शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा, तब तक खिंखिल प्रवेशद्वार में पैर रखने का साहस न करेगा। तुम जानते हो कि मनुष्य भाग्य के हाथ की कठपुतली है, चाहे वह राजा हो और चाहे भिखारी। पितृव्य का अंतिम उपदेश न भूलना। मगध रसातल को चला जाय, आर्यपट्ट समुद्र में डूब जाय, परंतु जब तक मैं जीता रहूँगा, तब तक उत्तरापथ के प्रवेशद्वार की रक्षा करूँगा।

सम्राट् लौटकर प्रतिष्ठान में आ गए। देखते देखते हूण सेना ने अंतर्वेदी पर अधिकार कर लिया। जब शूकर क्षेत्र के दूसरे युद्ध में तनुदत्त हार गए, तब हूण सेना ने तीनों ओर से प्रतिष्ठान को घेर लिया। स्कंदगुप्त ने नगरनिवासियों को दूसरे स्थान पर भेजकर गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम पर बने हुए प्रतिष्ठान के निकटवाले दुर्ग में आश्रय लिया। उस समय पाटलिपुत्र से मागध राजदूत ने आकर हूण राज को अभिवादन किया। घिरे हुए मागध सैनिकों ने प्राकार पर खड़े होकर आँसुओं भरी आँखों से मगध का वह अपमान देखा। वृद्ध स्थाणुदत्त, अधेड़ तनुदत्त, पागल भानुमित्र, चक्रपालित और महाकुमार हर्षगुप्त ने हाथ में तलवार लेकर शपथपूर्वक प्रण किया कि जब तक हम लोग जीते रहेंगे, तब तक हूणों के पैरों पर गिरनेवाले बौद्ध मागधों को सुख से न सोने देंगे।

कुछ समय के उपरान्त स्कंदगुप्त ने धीरे धीरे कहा—चक्र! आज मैं यमराज को निमंत्रण देने जाऊँगा।

चक्रपालित ने दुखी होकर कहा—महाराज! यह तो नित्य का काम है। बिना जल के कब तक काम चलेगा? क्या अब यही समझ लिया जाय कि हूणयुद्ध का अंत हो गया?

स्कंद०—भाई चक्र! मुझे बड़ी प्यास लगी है। देखो, कालिंदी का हरा जल किस प्रकार गंगा के स्वच्छ जल में मिल रहा है। तुम इसी प्राकार पर खड़े होकर देखना कि मैं किस प्रकार यमुना के ठंढे जल में अपने सारे जीवन की प्यास बुझाता हूँ।

चक्रपालित ने हँसकर कहा—महाराज ! तो फिर समझ लीजिएगा कि सौराष्ट्र विद्रोही हो गया। मैं बहुत दिनों से सौराष्ट्र से आया हुआ हूँ। अब इन आँखों से मैं फिर कभी सौराष्ट्र की हरी भरी भूमि न देखूँगा। परंतु फिर भी आप यह न समझिएगा कि जिस समय आप महाप्रलय के अंतिम अंक का अभिनय करेंगे, उस समय मैं चुपचाप प्राकार पर बैठा रहूँगा।

पीछे से भानुमित्र बोल उठे—और मैं ?

दोपहर के समय पाँच सौ मागध सैनिक ऊँटों पर चढ़कर बलुआ मैदान पार करते हुए यमुना की ओर बढ़े। ऊँटों पर पीने का पानी लादकर वे लोग लौटना ही चाहते थे, कि इतने में चारों ओर से हूणों ने आकर उन्हें घेर लिया। ऊँट हूणों की छावनी की ओर चल पड़े। जब केवल पचास सैनिक बच रहे, तब चारों ओर से शस्त्र बरसने लगे। दुर्ग के द्वार पर सौराष्ट्रपति चक्रपालित ने तलवारों और भालों आदि के अठारह वार सहकर अपने स्वामी के शरीर की रक्षा की। चक्रपालित का शरीर वहीं फाटक के बाहर रह गया और सम्राट्, भानुमित्र तथा हर्षगुप्त ने फिर दुर्ग में प्रवेश किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल के समय प्रतिष्ठान दुर्ग में सैकड़ों शंख बज उठे। कूएँ का बचा हुआ जल नहाने और पीने आदि में व्यय करके और सिर से पैर तक अबीर तथा लाल चंदन लगाकर सब सैनिक दुर्ग के दक्षिण फाटक पर एकत्र हुए। वहीं स्कंदगुप्त, महाबलाधिकृत भानुमित्र और महाकुमार हर्षगुप्त प्रतीक्षा कर रहे थे। सब के आ जाने पर सम्राट् शिरस्त्राण उतारकर मुस्कराए। यह देखकर वृद्ध सेनापति लोग काँप उठे। सम्राट् ने कहा—भाइयों, कूएँ का जल समाप्त हो गया। अतः दुर्ग की रक्षा नहीं हो सकती। अब हूण युद्ध की भी समाप्ति है। चारो ओर से खिंखिल ने दुर्ग को घेर रखा है। आज हमें हूणों की सेना को चीरकर मगध लौटना है। अतः आज साम्राज्य की सेना का महोत्सव है। हर्षगुप्त मेरे बाएँ और भानुमित्र दाहिने रहेंगे; और सारी सेना हर्षगुप्त के अधीन रहेगी।

हर्षगुप्त ने विस्मित होकर पूछा—तो क्या अब मगध लौट चलना होगा ?

सम्राट् ने उन्हें गले लगाकर कहा—तब और कहाँ जायँगे ? मधग के राजा क्या मगध न जाकर पुरुषपुर जायँगे ?

इसपर सब लोग ठठाकर हँस पड़े और कुमार हर्षगुप्त लज्जित हो गए। दो वृद्ध सेनानायकों ने आगे बढ़कर कहा—महाराजाधिराज ! हम लोगों में से बहुतेरे शतद्रु, वाह्लीका और वक्षु तट पर उपस्थित थे। हम लोगों ने अपने जीवन में तीन ही बार ऐसी विकट हँसी सुनी है। महाराजाधिराज की जय हो। आपकी आज्ञा का पालन होगा।

सम्राट् ने दोनों नायकों की ओर देखा, और वे अभिवादन करके पीछे हट गए। उस समय सम्राट् ने कहा—आज के युद्ध में शृंखला की आवश्यकता है ? जब तक मैं शंख न बजाऊँ, तब तक युद्ध होता रहे। और जब शंख बजे, तब जिधर जिसे मार्ग मिले, वह उधर भाग जाय, (मुस्कराकर) उस पार निकल जाय।

ग्रीष्म ऋतु की दोपहर के समय दुर्ग के ऊपरी भाग पर प्रचंड जलती आग देखकर हूण लोग विस्मित हुए। प्रासाद, फाटक, अलिंद सभी स्थानों में जो कुछ जल सकने योग्य पदार्थ थे, वे सब अग्निदेव को समर्पित कर दिए गए। इसके उपरांत दुर्ग का लोहेवाला फाटक खुला और उसके किवाड़े खाईं के उस पार तक जा पहुँचे। भीषण जयध्वनि से आकाश गुँजाते हुए साम्राज्य के पाँच हजार सैनिक दुर्ग से बाहर निकले। अब तक हूण सैनिक दूर खड़े हुए दुर्ग का जलना देख रहे थे। परंतु अब वे चैतन्य हुए। जयध्वनि और शंखध्वनि सुनकर सब लोग अस्त्र-शस्त्र आदि लेने लगे। साम्राज्य की इस छोटी सी सेना ने बड़े वेग से गंगा, यमुना और सरस्वती संगम पर की हूणों की छावनी पर आक्रमण किया। छावनी जलने लगी और हूणों ने भागकर अपने प्राण बचाए।

इतने में शंख बजा। साम्राज्य की सेना का तीसरा भाग हर्षगुप्त की अधीनता में गंगा के दूसरे पार पहुँच गया। दूसरी बार शंख बजने पर बची हुई सेना ने तिर्यक् व्यूह रचा। उस समय तीनों ओर से काले बादलों के

समान हूणों ने उनपर आक्रमण किया। सहसा व्यूह के एक कोने में से कूदकर पागल भानुमित्र ने सम्राट् के पास पहुँचकर पूछा—महाराज! कापालिक की बात स्मरण है न?

सम्राट् ने मुस्करा कर कहा—मैं वही सोच रहा था।

संध्या के समय उस छोटे व्यूह पर लाखों सैनिकों ने आक्रमण किया। व्यूह आकार में छोटा होता गया, परंतु अपने स्थान से न हिला। जब व्यूह बहुत छोटा हो गया, तब हूण लोग स्कंदगुप्त को ताक ताककर अस्त्र चलाने लगे। उन अस्त्रों को भानुमित्र ने अपने वर्म्म पर रोका। इस काम में भानुमित्र का एक हाथ और एक पैर कट गया। वे गिर पड़े। उस समय तीन हाथ लंबा एक तीर स्कंदगुप्त की बाईं आँख को छेदता हुआ निकल गया। साम्राज्य के जो थोड़े से सैनिक बच रहे थे, उन्होंने सम्राट् को चारो ओर से घेरकर चक्रव्यूह रचा। जब तक उनमें से एक भी सैनिक बचा था, तब तक परमेश्वर परमवैष्णव परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज स्कंदगुप्तदेव के शरीर को हूणों के कलंकित हाथ न लग सके थे।

आकाश में असंख्य तारे निकल आए। संध्या की ठंढी वायु से त्रिवेणी का तपा हुआ बालू ठंढा होने लगा। उस समय उसी बालू में हजारों घायल सैनिक पड़े हुए रोते चिल्लाते और छटपटाते थे। हूण युद्ध के उस अंतिम युद्धक्षेत्र में हाथ में उल्का लिए हुए उज्वल वस्त्र पहने हुए एक स्त्री अपने किसी आत्मीय को ढूँढने के लिये निकली। जिस स्थान पर स्कंदगुप्त ने अपना शरीर छोड़ा था, उस स्थान पर आर्यों और हूणों के मृत शरीरों का ढेर लगा हुआ था। वह स्त्री उसी ढेर के सामने पहुँचकर खड़ी हो गई। उस ढेर में से किसी मरते हुए व्यक्ति ने बड़े कष्ट से सूखे कंठ से बहुत धीरे धीरे पुकारा—करुणा—

शब्द सुनते ही वह स्त्री काँप उठी। मानों सहसा उसकी पूर्व स्मृति लौट आई। उसने आकुल कंठ से कहा—देव! मैं आ गई। तुम कहाँ हो?

उस स्त्री की आज्ञा से सैकड़ों हूण उन मृत शरीरों को हटाने लगे। उस समय उस ढेर में केवल एक व्यक्ति जीवित था।

चारों ओर सैकड़ों उल्काएँ जल रही थीं। और हजारों हूण सैनिक खड़े थे। उन सब के सामने हूणों की देवी कटे हुए हाथ और पैरवाले एक अधमरे योद्धा के शरीर से लिपटकर फूट फूटकर रोने लगी।

इतने में हूणों का पुरोहित वहाँ आ पहुँचा। उसने उस योद्धा के कटे हुए हाथ और पैर तथा दूसरे घावों पर औषध लगाया। इसके उपरांत एक बहुत बड़ी चिता बनाई गई। उस विजेता हूणों और विजित आर्यों का मृत शरीर एक साथ ही जलाए गए। दोपहर के समय प्रतिष्ठान दुर्ग में जो आग जली थी, वह इस समय बुझ चली थी। आर्यों का धर्म, आर्यों का राज्य और आर्यों का देश उसी आग में जलकर राख हो चुका था।

कुछ समय के उपरांत भानुमित्र चैतन्य हुए। उन्होंने करुणा का हाथ पकड़कर पूछा—करुणा! क्या तुम सचमुच आ गईं?

करुणा—देव! मैं आ गई; और अब कभी तुम्हारे चरण छोड़कर कहीं न जाऊँगी। चलो, वहीं चलें जहाँ न हूण हैं, न युद्ध है और न गृह विवाद है।

भानुमित्र ने आँखें मूँदे हुए कहा—चलो।

इतने में हूणराज वहाँ आ पहुँचे। उस समय करुणा ने घूँघट खींच लिया। हूणराज ने उसके पैरों पर गिरकर पूछा—माता! क्या अब आप हम लोगों को छोड़ देंगी?

करुणा ने घूँघट में से कहा—पुत्र! भगवान तुम्हें विजयी करें। मैं देवी नहीं हूँ। एक साधारण स्त्री हूँ। शोक और भय के कारण पागल हो गई थी। आज बीस वर्ष के उपरांत मुझे अपने पति के दर्शन हुए हैं। अब मैं अपने घर जाऊँगी।

बहुत दिनों तक बुड्ढे हूण लोग कहा करते थे कि फिर जब महायुद्ध आरंभ होगा, तब देवी आ जायँगी।

परिशिष्ट

गौड़ नगर के बाहर एक छोटे ताल के टूटे फूटे घाट पर सफेद वस्त्र पहने हुए, एक अधेड़ स्त्री के कंधे के सहारे सफेद बालोंवाला एक व्यक्ति चुपचाप खड़ा था। उसका एक हाथ और एक पैर कटा था। स्त्री ने कहा—ब्राह्मण देवता की आज्ञा का तो पालन हो चुका। अब मैं नया घर बनवाऊँगी। देखो, घाट की छत में के संगमरमर तक न जाने कौन निकाल ले गया।

सचमुच किसी समय सरोवर के उस घाट पर संगमरमर की छत थी। संगमरमर के दो चार टुकड़े अभी तक ईंटों की सीढ़ियों पर लगे हुए थे। उस समय कुछ दूर पर न जाने कौन बोल उठा—क्या कभी किसी ने चंद्रगुप्त का अन्न खाया है ?

यह प्रश्न सुनते ही कटे हुए हाथ पैरवाला वह अधेड़ उत्तेजित हो उठा और तीव्र स्वर से चिल्ला उठा—कौन ?

इतने में उस टूटे फूटे घाट पर मैले कुचैले वस्त्र पहने एक दीर्घाकार वृद्ध आ पहुँचा और कहने लगा—तुमने कभी द्वितीय चंद्रगुप्त का अन्न खाया है ? लाओ, भिक्षा दो, एक कौड़ी भिक्षा दो। इस समय साम्राज्य में न तो धन है और न बल। स्कंदगुप्त की रक्षा करना आवश्यक है; नहीं तो आर्यावर्त्त की रक्षा कौन करेगा ?

अधेड़ ने स्त्री के कंधे पर सिर रखकर कहा—कौन ? महामंत्री जी ?

इतना सुनते ही वह बुड्ढा वहाँ से भाग गया।

———